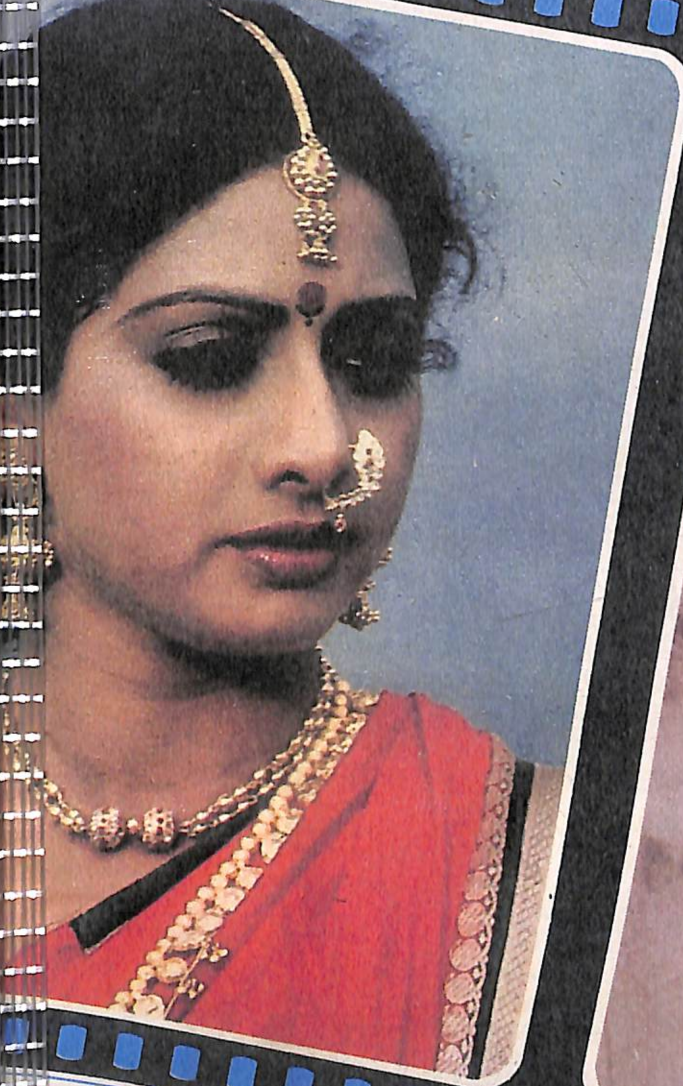
…दुनिया

…मा विशेषांक १९९०

परदे की परियाँ

(१९१३-१९९०)





… तारिकाओं का रोचक संसार

मूल्य ३५/-

परदे की परियाँ

१९१३-१९९०



□ प्रधान सम्पादक
अभय छजलानी

□ सहयोगी सम्पादक
महेन्द्र सेठिया

□ सौजन्य सम्पादन
श्रीराम ताम्रकर

□ साज-सज्जा
दिलीप चिंचालकर

नईदुनिया

प्रकाशन
इंदौर की
तृतीय प्रस्तुति

■ मूल्य: २५ रुपए

परदे की परियाँ
१९१३-१९९०

खण्ड एक
१९१३-१९४०



* पहली नायिका श्रीमान् सालुंके: श्रीराम ताम्रकर (९) * तारिकाओं की आकाशगंगा: * जेबुन्निसा * माधुरी (११) * जुबेदा * शांता कुमारी * लीला चन्द्रगिरि * खुर्शीद (१२) * सबिता देवी * पेशंस कूपर * पद्मा (१३) * शरीफा-हुस्नबानू * मेहताब * सरदार अख़्तर (१५) * जहाँआरा कज्जन * सुशीला रानी * जद्दनबाई * फातिमा बेगम * लीला देसाई (१६) * उमा शशि * रतनबाई * रोज * जिल्लो * एर्मलिन * एनाक्षी रामाराव * गुलाब (१७) * फीरोजा (१८) * कमलाबाई कामत (१८) * सुलोचना (रुबी मेयर्स) (१९) * नलिनी तरखुड (२०) * ललिता पवार : सुरेश ताम्रकर (२१) * देविकारानी: रनवीर सक्सेना (२२) * शोभना समर्थ (२४) * कानन देवी : गोपा चक्रवर्ती (२६) * सरदार अख़्तर (२८) * दुर्गा खोटे (३०)* कंचनमाला (३१) * अजूरी (३२) * नादिया : गिरीश कर्नाड (३३) * वनमाला (३४) * लीला चिटणीस (३५) * गौहर (३६) * जमुना (३६) * लीला मिश्रा (३७) * नसीम (३९) * साधना बोस (४१) * नूरजहाँ: सुरेश गावड़े (४४) * शांता आप्टे (४५) * प्रोतिमा दासगुप्ता (४७) * स्नेह प्रभा प्रधान (४९) * सितारा (५०)।





छाया सौजन्य:
* पी.के. जैन * मधुकांत मौर्य * ओ.पी. सिंह
* प्रतापराव शिंदे * मेजर अशोक कौल
* फिरोज रंगूनवाला * नेशनल फिल्म आर्काइव ऑव इंडिया
* व्यंग्य चित्र: देवेन्द्र शर्मा

खण्ड दो
१९४१-१९६५

* सुरैया (५२) * देवआनंद से पहला और आखिरी प्यार: राजू भारतन (५५) * टुनटुन (उमा देवी) (५६) * मीनाकुमारी: विनोद मेहता (५९) * कहाँ शुरू हुए: मीनाकुमारी (६०) * दर्द की देवी मीनाकुमारी: जयप्रकाश चौकसे (६२) * मधुबाला: बी.के. करंजिया (६५) * रजतपट की वीनस मधुबाला (६७) * नरगिस: जयप्रकाश चौकसे (७०) * बेगम पारा (७३) * वीना (७५) * उषा किरण (७५) * रमोला (७५) * दुलारी (७६) * सरोजादेवी (७७) * जयललिता (७८) * माधवी मुखर्जी (७९) * शशिकला (८०) * कामिनी कौशल (८१) * कुक्कू (८१) * बीना राय (८२) * नाज (८३) * जमुना: शिखा परिहार (८४) * नूतन (८७) * गज़ल: नूतन (८७) * नूतन (इंटरव्यू): अजातशत्रु (८८) * तनूजा (८९) * नादिरा (९०) * सुप्रिया देवी (९१) * नंदा (९१) * सुचित्रा सेन (९२) * शकीला (९३) * निम्मी (९४) * शकीला बानो भोपाली (९४) * लीला नायडू (९५) * अरुणा ईरानी (९६) * नलिनी जयवंत (९७) * गीताबाली: अजातशत्रु (९८) * अनिता गुहा (१००) * निरुपाराय (१०३) * वहीदा रहमान: अजातशत्रु (१०४) * सायरा बानो (१०७) * हेलन (११०) * अपर्णा सेन:अवतार (११२) * साधना (११३) * शर्मिला ठाकुर (११४) * बबीता (११६) * [illegible] * [illegible] (१२०) * वैजयंतीमाला [illegible] * [illegible] आशा पारेख (११६) * मुमताज (११७) * तबस्सुम (११९) * बिंदु [illegible] * मालासिन्हा (१२२) * वैजयंतीमाला (इंटरव्यू): शिखा परिहार (२१०)।

नईदुनिया प्रकाशन की प्रस्तुति — जून १९९०



खण्ड तीन
१९६६-१९९०

* हेमा मालिनी: उषा चौकसे (१२५) * मौसमी चटर्जी: रिंकी भट्टाचार्य (१२६) * प्रेमानारायण (१२७) * रेहाना सुल्तान (१२९) * सुहासिनी (१२९) * अर्चना (१३०) * लक्ष्मी (१३१) * परवीन बॉबी (१३३) * जीनत अमान:उषा चौकसे (१३४) * जया भादुड़ी संस्मरण: तरुण कुमार भादुड़ी (१३७) * जया बच्चन: अवतार (१३८) * राखी: रिंकी भट्टाचार्य (१४०) * रेखा: अजातशत्रु (१४३) * रेखा: दीपक नास्ता (१४७) * जया प्रदा: दीपक नास्ता (१५०) * नयना दास (१५२) * देबाश्री राय (१५२) * इंद्राणी दत्त (१५२) * श्रीला मजुमदार (१५३) * ममता शंकर (१५५) * शबाना आजमी: विनोद भारद्वाज (१५६) * शबाना होने का अर्थ: हेमचंद्र पहारे (१५८) * स्मिता पाटिल: आर.एस. यादव (१६२) * बेजोड़ लाजवाब स्मिता: श्याम बेनेगल (१६६) * रोहिणी हट्टंगड़ी (१६७) * डिम्पल (१६८) * मीनाक्षी शेषाद्रि (१७०) * महुआ रायचौधरी (१७३) * माधुरी दीक्षित: एच. कुमार (१७४) * सुजाता मेहता (१७६) * दीप्ति नवल (१७६) * अमृता सिंह (१७७) * किमी काटकर (१७८) * फरीदा जलाल: खालिद समी (१७८) * फरहा (१८१) * पद्मिनी कोल्हापुरे (१८२) * नीलम (१८३) * कल्पना अय्यर (१८५) * पल्लवी जोशी (१८६) * शताब्दी राय: असीम चक्रवर्ती (१८६) * प्रदीप्ता: सुषमा त्रिपाठी (१८९) * सुपर्णा आनंद (१९०) * हुमा खान (१९०) * मंदाकिनी (१९१) * श्रीदेवी: के.एल. अरोरा (१९३) * बीना (१९५) * सोनम (१९६) * जेबा बख्तियार: रीमा कश्यप (१९८) * टीना मुनीम/रति अग्निहोत्री/पूनम ढिल्लो (२०१) * संगीता बिजलानी/जूही चावला/ सोनू वालिया/ अर्चना पूरनसिंह/भाग्यश्री/ ऋचा शर्मा/ सलमा आगा (२०२-२०३) * रंजीता/जरीना वहाब/रामेश्वरी/विद्या सिन्हा/ विजयेता पंडित (२०५) * मुनमुन सेन/खुशबू (२०६) * मुमताज शांति/मुनव्वर सुल्ताना/मनोरमा (२०६) * यशोधरा काटजू/शीला रमानी/स्मृति विश्वास/चित्रा/कृष्णा कुमारी/अमिता (२०७) * आशा माथुर/सईदा खान/विजया चौधरी/प्रवीण चौधरी/ सोनिया साहनी/श्यामा (२०९)।

खण्ड चार

* विश्लेषणात्मक आलेख
* फिल्म इतिहास ,* रोमांस/जोड़ियाँ

* सात दशक में फिल्म नायिका के बदलते रूप: फिरोज रंगूनवाला (२१३) * पुरुष तारिका पुरुषोत्तम वैद्य (२१५) * जगमग विदेशी तारिकाएँ (२१७) * मराठी फिल्मों की प्रधान तारिकाएँ: शशिकांत किणीकर (२१९) * गुजराती फिल्मों की तारिकाएँ: यासीन दलाल (२२३) * दक्षिण भारत की तारिकाएँ: रमेश वैद्य (२२६) * अभिनेत्रियाँ और सिनेमा के नारी पात्र: कुमार शहानी (२२९) * बंगला फिल्मों की नायिकाएँ: असीम चक्रवर्ती (२३१) * फिल्मी सितारों की जोड़ियाँ: बच्चन श्रीवास्तव (२३६) * सितारों के रोमांस: इसाक मुजावर (२४१) शास्त्रीय संगीत की गायिकाएँ, कभी थीं तारिकाएँ: शम्भुनाथ मिश्र (२४४) * इस तरह निम्मी आई हरम में: जयसिंह (२४७)।

संदर्भ: सौजन्य: साभार
* फिल्म इंडिया * सिनेमा विजन * फिल्म फेयर * माधुरी * सिनेमा इन इंडिया * सिनेमा इंडिया इंटरनेशनल * इलस्ट्रेटेड वीकली ऑव इंडिया * स्क्रीन * राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय * डायरेक्टोरेट ऑव फिल्म फेस्टिवल ऑव इंडिया के प्रकाशन * विनोद मेहता * बी.के. करंजिया।

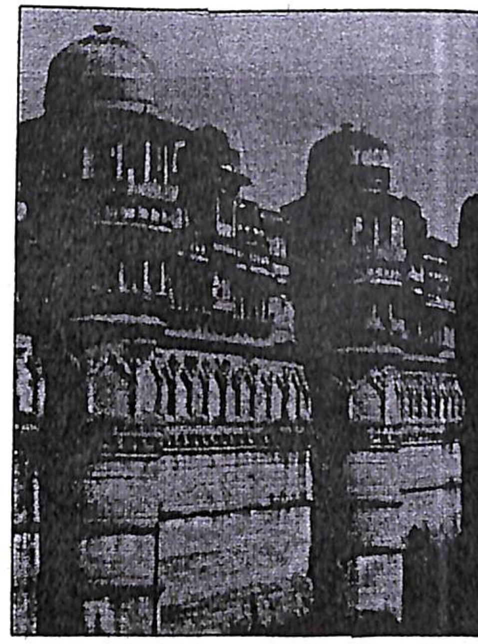
विशेष:
परदे की परियाँ शीर्षक के इस विशेषांक में प्रकाशित लेखकों के विचार निजी अभिव्यक्ति हैं। उनसे सम्पादक अथवा प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। ***—प्रधान सम्पादक***

रंगीन चित्र

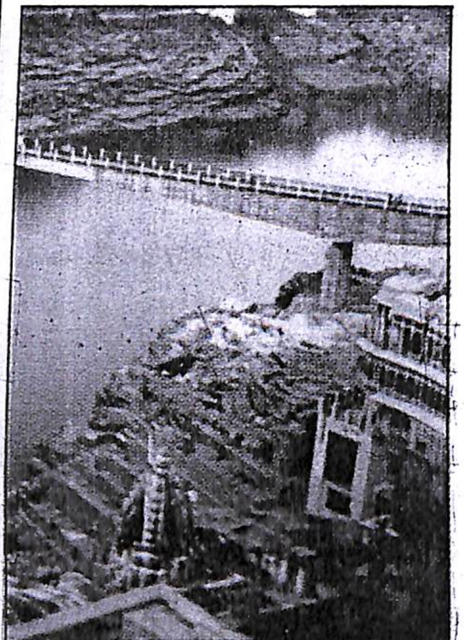
* नूरजहाँ (४४) * सुरैया (५३) * जमुना (८५) * लीला नायडू (९५) * वहीदा रहमान (१०५) * सायराबानो (१०७) * शर्मिला ठाकुर (११५) * मुमताज (११७) * हेमामालिनी (१२५) * जीनत अमान (१३५) * जया भादुड़ी (१३७) * रेखा (१४५) * जया प्रदा (१५१) * श्रीला मजूमदार (१५३) * शबाना आजमी (१५७) * शबाना मदाम सुजात्स्का (१६१) * स्मिता पाटिल (१६२) * डिम्पल (१६९) * मीनाक्षी शेषाद्रि (१७१) * माधुरी दीक्षित (१७५) * दीप्ति नवल (१७६) * अमृतासिंह (१७७) * किमी काटकर (१७९) * फरहा (१८१) * नीलम (१८४) * प्रदीप्ता (१८९) * श्रीदेवी (१९४) * सोनम (१९७) * जेबा (१९९) * पूनम ढिल्लो (२०१) * भाग्यश्री (२०३) * वैजयंतीमाला (२१०) * नीतापुरी (२१६) * मल्लिका साराभाई (२२३) * सुधा चंद्रन (२२६) * स्वप्ना (२२७) * शर्मिला ठाकुर (२३१) * मुनमुन सेन (२३३) * रूपा गांगुली (२३५)।

मुखपृष्ठ: □ श्रीदेवी □ मधुबाला □ जेबा बख्तियार □ नरगिस

सचमुच ....खूबसूरत है



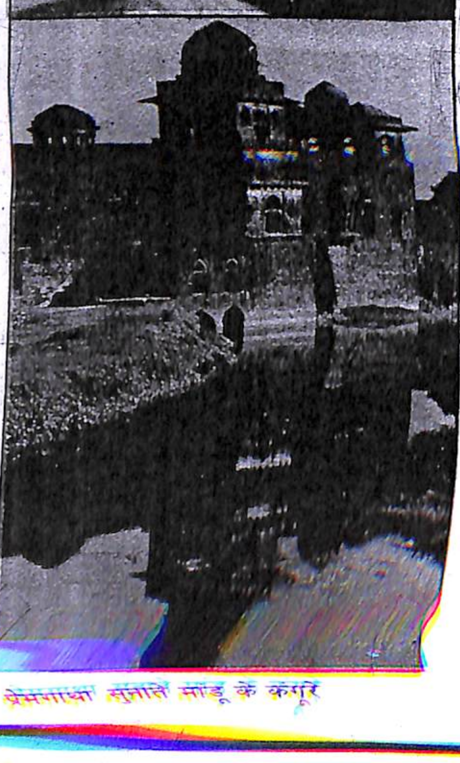
भारतीय स्थापत्य कला का एक और शानदार नमूना है ग्वालियर का किला



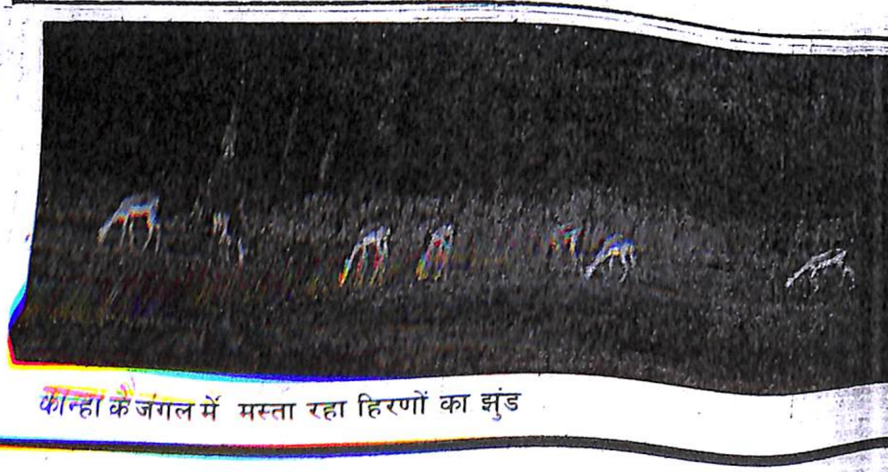
सभ्यता की साक्षी और पवित्रता की प्रतीक नर्मदा जिसके तटों पर है उपासना स्थलों की श्रृंखला-उन्हीं में से एक है ओंकारेश्वर

सब न्यौता देते हैं, आपको बुलाते हैं। आइये, देखिये कितना खूबसूरत है—आपका

अपना मध्यप्रदेश



प्रेमगाथा सुनाते माँडू के कंगूरे



कान्हा के जंगल में मस्ता रहा हिरणों का झुंड

■ सम्पादकीय

परछाईं से झाँकती स्त्री

समाज को, पुरुष प्रधान समाज जरूर कहा जाता है किंतु क्या नारीविहीन समाज की कल्पना संभव है। फ्रेंच अभिनेत्री क्लादिया दे फ्रिस की टिप्पणी इस संबंध में बहुत ही सटीक है। वे कहती हैं - 'तुमने पृथ्वी को नष्ट करने का यदि इरादा कर लिया है, तो तुम्हें बम बनाने की जरूरत नहीं है। तुम पृथ्वी से स्त्री को हटा लो, पृथ्वी यों ही रसातल में पहुँच जाएगी।'

जो कथ्य जीवन के बारे में अकाट्य है, अनिवार्यता दर्शाता है, स्वाभाविक ही वह जीवन को प्रदर्शित करने वाले हर प्रयास की भी अनिवार्यता बन जाता है। सिनेमा का परदा (सेल्यूलाइड से लगाकर टी. वी. की ट्यूब तक) स्त्री की उपस्थिति के बिना जीवन को प्रदर्शित ही नहीं कर सकता। परदे पर जीवन प्रदर्शित करने की कोशिश में लगे पुरुष की लाचारी इतनी थी कि जब स्त्री की भूमिका करने के लिए उसे महिला पात्र उपलब्ध नहीं हो सका तो उसने स्वयं श्रृंगार कर महिला का रूप धारण किया, उसकी भूमिका निभाई (**राजा हरिश्चंद्र, १९१३**)। इसके कई वर्षों बाद भली प्रकार शिक्षित किसी महिला ने नायिका की भूमिका स्वीकार करने का साहस किया था। परदे के दृश्यों के लिए महिला पात्र की जरूरत इतनी प्रबल थी कि उपलब्ध महिला पात्र से, फिर वह समाज के किसी भी वर्ग या पेशे से हो, भूमिका करवाना पुरुष की लाचारी हो गई। इसके लिए उसे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और मूल्यों के दायरों को भी नकारना पड़ा। क्योंकि वह जानता था कि नायिका की, हर किस्म की, भूमिका कृत्रिम आवरण में पुरुष नहीं कर सकता। जो जीवन में संभव नहीं है वह परदे पर जीवन की दृश्य रचने वाली कथाओं के प्रदर्शन में कैसे संभव होता।

किंतु विडम्बना कैसी और कितनी? जो पुरुष, स्त्री की तमाम समस्याओं को, त्रासदी को, पीड़ाओं को अत्यधिक प्रभावी ढंग से परदे पर प्रस्तुत करने की कोशिश में लगा रहता है, उसके प्रति भावनाओं को उद्वेलित करने और सदाशयता का सैलाब रचने में अपना तन, मन, धन, सब कुछ झोंक देता है, वही पुरुष वास्तविक जीवन में बदलाव लाने के प्रति निष्ठुर बना रहता है। समय और दृश्य के साथ नायिका के प्रति कोमलता को पल्लवित करने के बजाए अब उसका प्रयास उसे निष्ठुरता के प्रतीक के रूप में चित्रित करने का है। भावनाओं से ओत-प्रोत, भारतीय चित्रपट की धीर, गंभीर, कोमलांगी नायिका कहीं-कहीं आज के परदे पर छुरी, कटार, फरसे, बंदूक और कोड़ों को धारण करने वाली नृशंस भूमिकाओं की सूत्रधार हो रही है। क्या यह किसी ऐसे परिवर्तन का संकेत है कि पुरुष, स्त्री को भी अपनी निर्ममता और निष्ठुरता के समकक्ष देखने को आतुर है। अगर सिनेमा का परदा वास्तविक जीवन का कोई आभास है (जैसा दावा किया जाता है) तो उसके दृश्यों में आया यह परिवर्तन चौंकाने वाला है। समाज केवल क्रूरता में नहीं पनपता उसे कोमल सुगंधित फूलों का भी स्पर्श चाहिए। सिनेमा की यह भूमिका रही है कि उसने क्रूरता व कोमलता दोनों के प्रति दर्शक मन को उद्वेलित किया है।

समाज में बराबरी के दरजे की हकदार 'स्त्री' हक की लड़ाई लड़े, अनाचार-अत्याचार के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करे, इस दिशा में 'सिनेमा' ने पहले भी अपनी भूमिका निभाई है किंतु तब उसने नायिका की भूमिका को पुरुष की क्रूरता के समकक्ष लाने की कोशिश नहीं की थी। परदे के दृश्यों पर आ रहा यह बदलाव अगर नई संभावित सामाजिक व्यवस्था व सामाजिक व्यवहार के संतुलन का कोई संकेत है तो समय है कि हम उसके प्रति चेतें। कठोर और निष्ठुर 'नायक' (पुरुष) को बदलने वाली नायिका (महिला) परदे पर कठोर व निष्ठुर नहीं थी। उन्मुक्त और अल्हड़पन के पारदर्शी चरित्र के साथ भोली, कोमल, भावुक और सहनशील थी वह। यह अब तक की परदे की कहानी रही है (कुछ अपवाद छोड़कर)। परंतु अब ...... नायिकाओं के किरदार में परिवर्तन लाने की कल्पना परदे पर रूप ले रही है। परिवर्तित किरदार वाली नायिकाओं के अस्वाभाविक चित्रण से अभी तक तो समाज में वास्तविक जीवन प्रभावित नहीं हुआ है। परदे पर नायिका के हाथ की पिस्तौल देखकर समाज की स्त्रियों ने हिंसा को नहीं अपनाया है। जबकि एक गब्बरसिंह ने सैकड़ों गब्बरसिंह तैयार कर दिए हैं। नायक व नायिका की भूमिकाओं के सामाजिक प्रभाव में अंतर होता है। अगर नायक ने अदब और फैशन के साथ व्यवहार की उच्छृंखलता को भी हवा दी है तो नायिका का प्रभाव अदब व फैशन तक ही सीमित रहा है। एक माने में यह अच्छा भी हुआ वरना आज का सिनेमा, समाज पर क्या कहर ढाएगा इसकी कल्पना मात्र भी सिहरन पैदा करती है।

हम आशा करें, नारी अपने हक प्राप्त करे और ममता व कोमलता का उसका स्वरूप अक्षुण्ण रहे। साथ ही उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण भी आदर और आराधना का रहे। अन्यथा अमेरिकी कवि व निबंधकार एमर्सन के इस कथन का समाज के पास क्या उत्तर होगा- जिसमें एमर्सन ने कहा है कि "तुम स्त्री के संबंध में अपने विचार बताओ मैं तुम्हें उसी वक्त बता दूँगा कि तुम्हारा समाज कितना सभ्य है।"

भारतीय सिनेमा अपने जीवन यात्रा की प्लेटिनम जुबली मना चुका है। इन बीते वर्षों में अनेकानेक नायिकाओं ने अहम भूमिकाएँ निभाई हैं। उन्हे याद करना समय, समाज और परिवर्तनों को परत दर परत याद करना भी है। नईदुनिया ने प्लेटिनम जुबली वर्ष में सिनेमा की यात्रा कथा और गत वर्ष 'सरगम का सफर' प्रकाशित कर-सर्वाधिक प्रभावशाली और मनोरंजन के लोकप्रिय संस्थागत प्रयास के भूतकाल और वर्तमान में झांकने की कोशिश की। यह प्रयास है भारतीय सिनेमा के जीवनकाल को नायिकाओं के माध्यम से टटोलने का। जिसकी वास्तविक जीवन में अहम भूमिका है, परदे का अल्पकालीन, पर संपूर्ण, जीवन उसकी भूमिका के अहम को रेखांकित किए बिना कैसे रह सकता है।

प्रस्तुत अंक में सात से अधिक दशक की नायिकाओं को तीन कालखंडों में हमने विभाजित किया है। यह विभाजन ऐतिहासिक न होते हुए भी यह दर्शाता है कि उस कालखंड में कौन सी तारिका फिल्माकाश में उदित हुई, जगमगाई और कब कैसे अस्त हुई। हमारी तमाम कोशिशों के बावजूद तारिकाओं की आकाशगंगा की प्रमुख तारिकाओं को ही हम रेखांकित कर पाए हैं। हिंदी में फिल्म साहित्य का जो अभाव है, उस दिशा में नईदुनिया का यह तीसरा कदम है। देश भर के सुधिजनों, फिल्म माध्यम के विशेषज्ञों तथा फिल्म प्रेमियों के उत्साह भरे समर्थन से प्रेरित होकर हमने यह प्रयास किया है। निश्चित ही इसके मूल्यांकनकर्ता आप हैं।



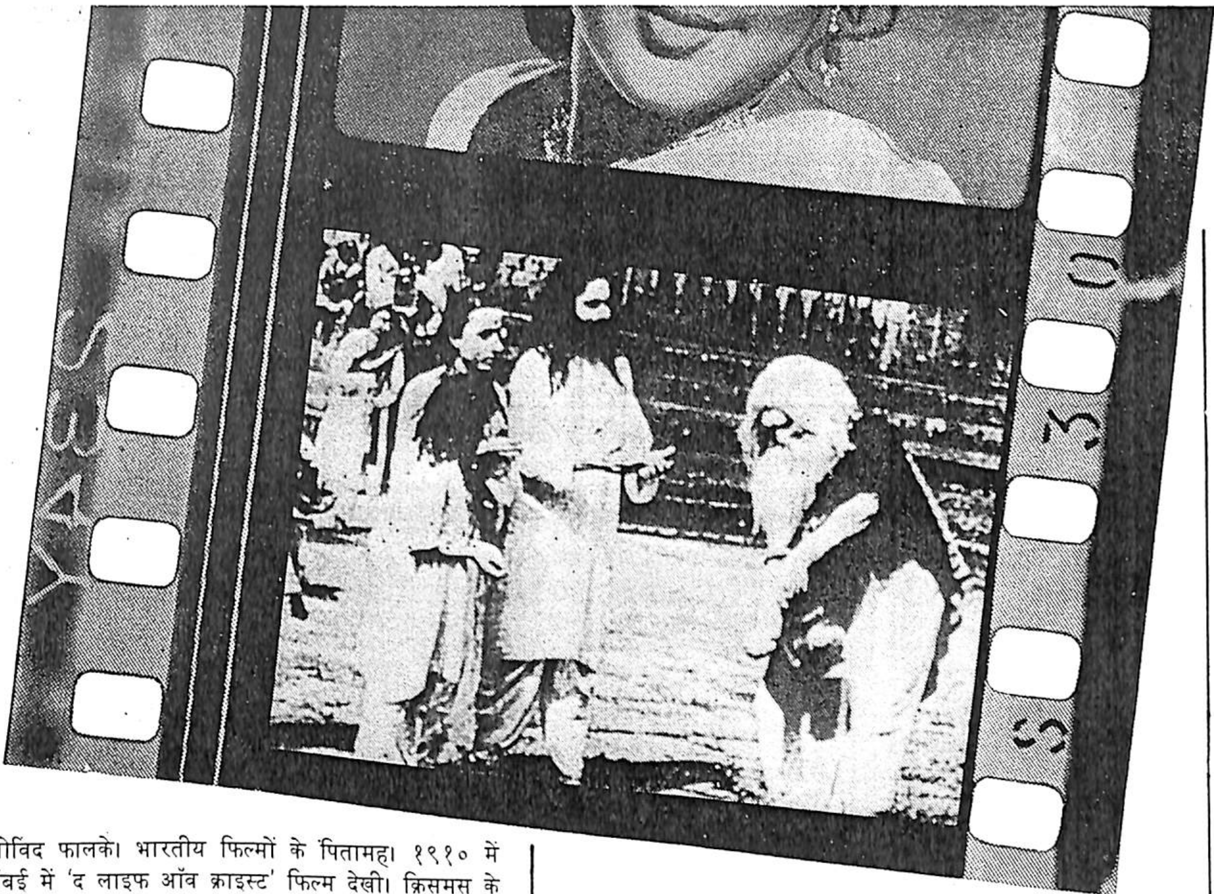



परदे की परियाँ
खण्ड: एक
१९१३-१९४०

- ☐ सालुंके ☐ कमलाबाई
- ☐ गौहर ☐ सुलोचना
- ☐ फीरोजा ☐ दुर्गाखोटे
- ☐ देविका रानी
- ☐ ललिता पवार
- ☐ वनमाला ☐ अजूरी ☐ जमुना ☐ जेबुन्निसा
- ☐ नलिनी तरखुड ☐ कानन देवी ☐ शांता आप्टे
- ☐ खुर्शीद ☐ शोभना समर्थ ☐ लीला चिटणीस







धुंडीराज गोविंद फालके। भारतीय फिल्मों के पितामह। १९१० में उन्होंने बंबई में 'द लाइफ ऑव क्राइस्ट' फिल्म देखी। क्रिसमस के दिनों का शनिवार, दादा फालके के जीवन में क्रांतिकारी सावित हुआ। उन्होंने लाइफ ऑव क्राइस्ट को बार-बार देखा।ईसा मसीह के जीवन की घटनाओं को सुधबुध खोकर वे देखते रहे। तालियाँ बजाते रहे। उसी समय उनके मन में विचार आया कि भगवान श्रीकृष्ण अथवा भगवान श्रीराम के जीवन-चरित्र को परदे पर उतारा जाना चाहिए। उस रात वे सो नहीं सके। दो महीने बेचैनी से बिताए।

पहली फिल्म के लिए राजा हरिश्चंद्र के कथानक को सबसे अधिक उपयुक्त पाया। तमाम व्यवस्थाएँ कर ली गई, लेकिन तारामती की भूमिका के लिए कोई स्त्री नहीं मिली। मित्रों, परिचितों तथा संबंधियों के दरवाजे से निराश लौट आए। पराजित मुद्रा में लाचार होकर एक वेश्या के द्वार पर दस्तक दी। अपनी विवशता समझाई। उसकी बेटी के लिए प्रलोभन दिया कि तारामती की भूमिका से वह जग-जाहिर हो जाएगी। शोहरत और दौलत कदमों में होगी। वेश्या ने फिल्म में काम करने को अपने पेशे से भी घटिया समझा। दादा को साफ इंकार करते हुए कहा कि-"अपनी बेटी को इसी शर्त पर काम करने की इजाजत दे सकती हूँ कि पहले आप उससे शादी करेंगे। फिर उसे तारामती बनाइए या लक्ष्मी।"



भारतीय फिल्मों की पहली नायिका : श्रीमान् सालुंके

निराश और परेशान दादा फालके एक होटल में चाय पीने के लिए गए। जिस नौकर ने चाय लाकर मेज पर रखी, उसकी अँगुलियाँ बड़ी नाजुक थीं। उसके हाव-भाव भी जनाना लगे। दादा के दिमाग में तेजी से विचार आया कि इस नौकर को तारामती बनाया जाए, तो कैसा रहे? उन्होंने नाम पूछा-सालुंके। उसे सब समझाया। राजी किया। पैसों की लालच दी। मान-मनौवल से वह मान गया। इस तरह भारत की पहली फिल्म राजा हरिश्चंद्र की नायिका तारामती एक स्त्री न होकर स्त्री-वेश में एक पुरुष सालुंके था। **श्रीमान् सालुंके।** दादा की अगली फिल्म लंका-दहन (१९१७) में सालुंके राम और सीता की दोनों भूमिकाओं में आया था।

दादा फालके की दूसरी फिल्म थी भस्मासुर-मोहिनी (१९१४)। इस फिल्म के लिए उन्हें सचमुच की दो स्त्रियाँ मिल गई-**दुर्गा** और **कमला।** दुर्गाबाई बड़ी थी, इसलिए पहली स्त्री-नायिका होने का उन्हें श्रेय जाता है, लेकिन स्त्री रूप में दर्शकों को आकर्षित करने वाली पहली बाल-नायिका है मंदाकिनी। दादा फालके की बिटिया। मंदाकिनी ने कई फिल्मों में कृष्ण बनकर दर्शकों पर जादू कर दिया था।

● श्रीराम ताम्रकर

किफ़ायती दाम में उपलब्ध
कितनी सुख सुविधा!



करीना ५३.५ सें.मी. एफ एस टी कलर टीवी

रु. ११,५००/-
सिर्फ मध्य प्रदेश में

★ ५३.५ सें.मी. वर्टीकल टीवी ★ टॉप कंट्रोल ★ फ्लॅट स्क्वेअर स्क्रीन ★ वैकेशन स्विच ★ वॉल्यूम अप ॲण्ड डाउन-ऑन-स्क्रीन इंडीकेशन ★ चैनल अप ॲण्ड डाउन-ऑन-स्क्रीन इंडीकेशन ★ टीवी विडियो इंडीकेशन बटन ★ स्टैंड बॉय इंडीकेशन

क्राउन-टीवी
क · ल · र

NAC-2652 HIN-I

मूक-युग

फिल्म तारिकाओं की आकाशगंगा

श्रीराम ताम्रकर

यदि एंग्लो-इंडियन कन्याएँ आगे नहीं आतीं, तो शायद १९३०-३२ तक भारतीय सिनेमा के परदे पर पुरुष ही स्त्रियों के रोल कर रहे होते। अँगरेज अफसरों के यहाँ टाइपिस्ट गर्ल, टेलीफोन ऑपरेटर अथवा रिसेप्शनिस्ट का काम करने वाली कन्याओं को बेहतर वेतन और 'लाइम-लाइट' में आने के सुनहरे मौके दिखाई दिए, तो वे दौड़कर ऑफिस से स्टूडियो में दाखिल हो गईं।

सुलोचना बनाम रूबी मेयर्स एक टेलीफोन ऑपरेटर थी। जैसे ही वह फिल्म अभिनेत्री बनी टिकट खिड़की पर भीड़ बढ़ गई। बीस के दशक के उत्तरार्द्ध में और तीस के दशक के आरंभ के वर्षों में सुलोचना सबसे महँगी सितारा थी। मास्टर विट्ठल ढाई हजार रुपए वेतन पाते थे, जबकि सुलोचना पांच हजार रुपए महीना। फिल्म निर्माताओं ने दर्शकों और भारतीय समाज की नब्ज पहचानते हुए एंग्लो-इंडियन कन्याओं के नाम शुद्ध भारतीय कर दिए। जैसे-सुलोचना, माधुरी, सविता देवी और सीता देवी। मूल अँगरेजी नाम से ये बालाएँ फिल्मों में काम करतीं तो दर्शक इन्हें सीता, सावित्री, तारामती या दुर्गा के रूप में शायद ही स्वीकार करते। सुलोचना को सुलोचना नाम महज



जेबुन्निसा

इसलिए दिया गया था कि उसकी आँखें बहुत सुंदर थीं। गूँगे-युग की **अनारकली** फिल्म में सुलोचना की भूमिका को स्मरणीय बताया जाता है। जब गूँगा बोलने लगा तो भाषा की समस्या को भी सुलोचना ने पार कर लिया। उसकी अँगरेजी उच्चारण में अटपटी-चटपटी हिंदी सुनकर दर्शक मजे लेते थे। ऐसी फिल्म थी 'माधुरी।' बोलती फिल्मों में 'इंदिरा एम.ए.' सुलोचना की सर्वोत्तम फिल्म है। सुलोचना के मुकाबले जब देविका रानी, दुर्गा खोटे, मुमताज शांति, गौहर जैसी नायिकाएँ आ गईं तो उसकी लोकप्रियता कम होती चली गई। अपनी वृद्धावस्था में भी सुलोचना कभी-कभार फिल्मों में आकर झलक दिखाया करती थी। जुआरी (१९६८), झुक गया आसमान और खट्टा-मीठा फिल्म में दर्शकों ने उसे देखा था।

जेबुन्निसा

जिन दर्शकों ने दिलीप कुमार की फिल्म राम और श्याम देखी है, उन्होंने प्राण की माँ के रोल में **जेबुन्निसा** को देखा होगा। जेबुन्निसा का फिल्मों में प्रवेश गूँगे युग से हुआ है। वह भी सुलोचना की तरह दर्शकों के दिलों की धड़कन रही है। अपनी किशोर उम्र में वह इंपीरियल फिल्म कंपनी की फिल्म **कुल्फी-मलाई** में पहली बार आई थी। नानूभाई देसाई की अधिकांश अवाक्-सवाक् फिल्मों में जेबुन्निसा आई है और मास्टर विट्ठल के साथ उसकी जोड़ी खूब जमी है। मास्टर विट्ठल को उन दिनों भारतीय डगलस फेअरबैंक्स कहा जाता था और जेबुन्निसा को मेरी पिकफोर्ड। शशि-पुन्नू तथा सोनी-महिवाल फिल्मों में प्रेमिका की भूमिकाओं में उसने जान फूँक दी थी। होटल पद्मिनी तथा बहादुर बेटी में जेबुन्निसा, जयराज की नायिका थी।

उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत की निवासिनी होने से सवाक् सिनेमा में जेबुन्निसा को परेशानी नहीं हुई, वह हिंदुस्तानी मजे से बोल लेती थी। गुले बकावली उसकी पहली बोलती फिल्म थी।

माधुरी



राजा भर्थरी फिल्म में वह खलनायिका क्या बनी, आगे चलकर उसे **ईद का चाँद** तथा **शाह-बेहराम** में वैसे ही रोल दिए गए। **दिलारा** फिल्म में वह गिडवानी की नायिका थी। परदे का प्यार नीचे उतर आया और जेबुन्निसा-गिडवानी पति-पत्नी बन गए। इसके बाद वह सिर्फ दो फिल्मों में आई-बाम्बे टॉकीज की **प्रतिमा** में दिलीप कुमार के साथ मेहबूब की फिल्म **ऐलान** में फिर से खलनायिका बनाई गई। गुरुदत्त ने चौदहवीं का चाँद फिल्म में भी उसे छोटा सा रोल दिया था।

माधुरी

बेरिल क्लीसन उर्फ माधुरी का जन्म दिल्ली में और शिक्षा नैनीताल में हुई थी। गुजरात के विद्रोही नेता इंदुलाल याज्ञिक ने माधुरी की खोज कर पंद्रह साल की उम्र में फिल्म 'राजपूत केवलियर' में पेश किया था। इंदुलाल याज्ञिक किसी जमाने में फिल्म निर्माण में सक्रिय थे। उन्होंने जयराज और माधवराव काले जैसे शिक्षित एवं होनहार युवकों को प्रेरित कर फिल्मों में प्रविष्ट कराया है। कान्वेंट में शिक्षित **माधुरी के 'बोल्डनेस' के दर्शक दीवाने हो गए।** एश ऑव स्पेड्स में वह माधव काले की नायिका थी। **कश्मीरा** फिल्म में राजपूती पोषाक पहनकर माधुरी ने अपनी प्रतिभा के साथ सौंदर्य प्रदर्शन भी किया था। जयंत देसाई ने अपने निर्देशन में माधुरी को खूब चमकाया। फिल्म **तूफानमेल** से लेकर **नादिरा** तथा **शादी** तक यह सिलसिला चला। तूफानमेल में ई. बिलिमोरिया, माधुरी के नायक थे। ईश्वरलाल खलनायक तथा गोरी-दीक्षित कॉमेडियन बने थे। रंजीत स्टूडियो के दरवाजे पर सुबह-शाम दीवाने दर्शकों की भीड़ माधुरी की एक झलक पाने को घंटों खड़ी रहती थी।

जयराज, पृथ्वीराज और मोतीलाल के साथ माधुरी की जोड़ी लोकप्रिय हुई। फिल्म शादी में मोतीलाल-माधुरी ने एक गीत गाया था-माशूक हर जगह है, आशिक कहीं-कहीं। गीत के आखिर में मोतीलाल ने माधुरी के गालों का हौले से चुम्बन ले लिया था। इस 'पवित्र चुम्बन' को सेंसर ने भी पास कर दिया। ससुराल, माधुरी की आखिरी फिल्म थी। इसके बाद शादी कर वह इंग्लैंड चली गई। बाद में बंबई आकर बस गई। शानदार कपड़े पहनकर रानी की तरह रहने का माधुरी को विशेष शौक था।

जुबेदा

भारत की पहली बोलती फिल्म **आलमआरा** की नायिका थी **जुबेदा।** फिल्म अभिनेत्री और फिल्म निर्मात्री फातिमा बेगम की वह सबसे छोटी बेटी थी। मूक-युग में जुबेदा की महत्वपूर्ण फिल्म है-सेक्रीफाइस, जो गुरुदेव टैगोर के नाटक पर आधारित थी। सवाक् युग में जुबेदा की ज्यादा धूम रही। आर्देशिर ईरानी ने आलमआरा के लिए उसका चयन कर अमर बना दिया। सागर कंपनी की पहली बोलती फिल्म **मेरी जान** की नायिका भी जुबेदा रही है। गुले बकावली उसकी पहली सुपरहिट फिल्म थी। जुबेदा ने ३६ गूँगी तथा २० बोलती फिल्मों में काम किया है। जब वह कोहिनूर फिल्म कंपनी में खाली रहतीं, जो दूसरी फिल्म कंपनियों के लिए किराए पर दे दी जाती थीं।

घुँघराले बालों वाली जुबेदा को नाचना, गाना, अभिनय सब आता था। जिप्सी लड़की की भूमिका हो या पौराणिक चरित्र, सब में उसने शानदार प्रस्तुति दी थी। जाल मर्चेंट के साथ उसकी जोड़ी लोकप्रिय रही। वीर अभिमन्यु फिल्म में वह उत्तरा बनी, सुभद्राहरण में सुभद्रा। सागर कंपनी के बैनर में बनी **जरीना** फिल्म उसकी यादगार फिल्म है। इसका निर्देशन इजरा मीर ने किया था। यह एक ताँगेवाले और जिप्सी लड़की के प्यार की दुःखांत कहानी थी।

महालक्ष्मी मूवीटोन में जाकर जुबेदा और शाहू मोडक की जोड़ी सफल हुई। नंद के लाला फिल्म में वह राधा बनी थी और शाहू मोडक कृष्ण। जुबेदा का गाया यह गीत गली-गली बजा था-नंद के लाला मुरली वाला तुझको लाखों प्रणाम। उस समय का समाज इतना कठमुल्ला नहीं था कि एक मुस्लिम लड़की द्वारा गाए इस गीत पर आपत्ति करता। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास सेवा सदन पर इसी नाम से बनी सामाजिक फिल्म के नायक-नायिका यही जोड़ी थी।

शांताकुमारी

शांताकुमारी के बारे में कहा जाता था कि वह कविता की तरह सुंदर और भावनामयी थी। उसकी पहली फिल्म थी **भाई या कसाई,** जिसमें राजा सेंडो सहनायक थे। कोहिनूर की कई गूँगी फिल्मों में शांताकुमारी ने काम किया है। सीता देवी ने 'लव्ज ऑव ए मुगल प्रिन्स' में अनारकली का रोल किया था, शांताकुमारी ने उसमें भी अभिनय किया था। निर्देशक नंदलाल जसवंतलाल के ध्यान में यह बात आई कि शांताकुमारी के क्लोज-अप्स से दर्शकों पर सम्मोहन किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने ड्रम्स ऑव लव, प्यारी जोगन, परदेसी सैंया, प्रेम-यात्रा, रसीली राधा, मौजेली माशूक और शेखचिल्ली में शांताकुमारी को पेश कर उसके चेहरे का बढ़िया उपयोग किया।

सन् १९३० में शांताकुमारी कलकत्ता गई और राधा फिल्म कं. की श्रीकांत फिल्म में रोल किया। कृष्णा सिनेटोन से जुड़कर पहली बोलती फिल्म हीर-राँझा में वह हीर बनी। इसके बाद चिंतामणि, कृष्णावतार, लंकादहन और चार भाग वाली हातिमताई में उसने हुस्न बानू का रोल किया था। संत तुलसीदास में शांताकुमारी गायक जी.एन. जोशी के साथ आई। उसकी आवाज भी अच्छी थी, इसलिए १९३६ में वह अक्सर बंबई रेडियो पर गीत गाती थीं। प्रेम-रात्रि (१९३६) शांताकुमारी की अंतिम महत्वपूर्ण फिल्म थी। साउंड रेकार्डिस्ट कोठारी से उसकी शादी हो गई। इसलिए भरत भेंट तथा रामराज्य में कौशल्या के रूप में दिखाई दी थीं। १९४९ में बनी राम-विवाह के बाद शांताकुमारी को किसी ने परदे पर नहीं देखा।

लीला (चंद्रगिरि)

शांताराम और प्रभात फिल्म कंपनी ने कई नए चेहरों को खोजकर रजतपट पर पेश किया है, उनमें से एक है **लीला चंद्रगिरि।** यह तारिका लीला नाम से अधिक प्रसिद्ध हुई है। प्रभात की महत्वपूर्ण अवाक् फिल्म **उदयकाल** में लीला पहली बार कैमरे के सामने आई। देवी भवानी के रूप में लीला ने शिवाजी को आशीर्वाद दिए थे। इसके बाद भव्य सेटों पर बनी **चंद्रसेना** फिल्म की सफलता ने लीला को स्टार बना दिया। लीला के सामने सवाक् फिल्मों के समय कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि उसके उच्चारण साफ थे। गोरी, छरहरी लीला ऊँचे कद की सुंदर नायिका थी। **जलती निशानी** उसकी पहली बोलती फिल्म थी, जो मुस्लिम पृष्ठभूमि पर आधारित थी। इसमें लीला ने गाने भी गाए और मास्टर विनायक के साथ अपनी जोड़ी जमाई। माया मछिन्द्र तथा सिंहगढ़ में वे दोनों फिर साथ आए। प्रभात की पहली रंगीन फिल्म सैरन्ध्री की नायिका भी लीला थी। भाल जी पेंढारकर लिखित इस फिल्म का कलर-प्रोसेसिंग जर्मनी में हुआ था।

प्रभात फिल्म कंपनी कोल्हापुर से पुणे गई, तो लीला कोल्हापुर में ही रह गई और कोल्हापुर सिनेटोन की फिल्मों में भाल जी. पेंढारकर के निर्देशन में काम करती रहीं। अधिकतर उसने पौराणिक-कालिया मर्दन, गोपीचंद, कर्ण, वाल्मिकी तथा स्वर्णभूमि फिल्मों में ही रोल किए। मराठी में निर्मित सावित्री फिल्म का रोल करने पर लीला काफी चर्चित हुई। सावित्री के हिंदी संस्करण में देविका रानी तथा गौहर थीं, तमिल संस्करण में शांता आप्टे और गुजराती में शशिकला। लीला की आखिरी फिल्म छत्रपति शिवाजी थी। इसे हिंदी-मराठी में भाल जी. पेंढारकर ने निर्मित किया था।

खुर्शीद

लाहौर में १४ अप्रैल १९१४ को जन्मी **खुर्शीद** को फिल्मों में नानूभाई देसाई लाए थे। वह रणजीत कम्पनी की सितारा के रूप में मशहूर थी। मोतीलाल के साथ फिल्म परदेसी में

जुबेदा



लीला



खुर्शीद



उसने गाया था– 'पहले जो मोहब्बत से इन्कार किया होता- इस गीत को गाकर वह लोकप्रिय गायिका नायिका बन गई। चन्दूलाल शाह जब सहगल को लेकर आए, तो उनका मुकाबला करने के लिए खुर्शीद को पेश किया गया। भक्त सूरदास और तानसेन में सहगल तथा खुर्शीद के गीत सुनकर यह कहना कि दोनों में श्रेष्ठ कौन है, बड़ा कठिन काम है। १९४४ में मुमताज महल, शहंशाह बाबर तथा नर्स फिल्मों की सफलता ने खुर्शीद की लोकप्रियता बढ़ाई। होली, मुसाफिर, महाराणा प्रताप उनकी स्मरणीय फिल्में हैं। देव आनंद के साथ **आगे बढ़ो** में भी खुर्शीद थी। सोहराब मोदी की फिल्म मझधार में काम करने के बाद वह पाकिस्तान चली गई। खुर्शीद के यादगार गीत हैं– * पंछी बावरा काहे चाँद से प्रीत लगाए (भक्त सूरदास) * छाई घटा घनघोर (तानसेन) * अम्बुआ पे कोयल बोले (मूर्ति) * मोहब्बत में सारा जहाँ (बाबर) और * बरसो रे.... (तानसेन)।

सबिता देवी

सबिता देवी का असली नाम आयरिस गेस्पर था। माधुरी तथा सुलोचना की तरह वह भी एंग्लो-इंडियन थीं। स्कूली जीवन से ही उन्हें संगीत तथा नाटकों का शौक था। बंगाल के फिल्म पितामह धीरेन गांगुली ने सबिता देवी को खोजा और दो फिल्मों में पेश किया-मनी मेक्स व्हाट नाट तथा फ्लेम्स ऑव फ्लेश। ब्रिटिश डोमिनियन फिल्म के बैनर तले ये फिल्में बनी थीं। कंठहार फिल्म में बंगाल के महानायक दुर्गादास बनर्जी के साथ आने से सबिता देवी को लोकप्रियता मिली। भाग्यलक्ष्मी तथा पारसमणि फिल्मों ने उन्हें प्रथम श्रेणी की नायिकाओं में खड़ा किया। **अपराधी** बंगला फिल्म को तो सर्वोत्तम मूक फिल्म माना जाता है। इस फिल्म में पी.सी. बरुआ ने अभिनय किया था। पूरे देश में सबिता देवी मशहूर हो गई।

जब फिल्में बोलने लगीं तो सबिता देवी के सामने दो समस्याएँ आईं। उन्हें बंगला तथा हिंदी भाषा एक साथ सीखना पड़ी। एक दिन का बादशाह सबिता देवी की पहली हिंदी बोलती फिल्म थी। मजहर खान के साथ जरीना बनकर उसने दर्शकों का दिल जीता था। ए.आर. कारदार ने इसी जोड़ी को फिल्म चंद्रगुप्त में दोहराया। कलकत्ता की हवाएँ जब बंबई पहुँची, तो चिमनलाल देसाई ने सबिता देवी को बंबई बुला भेजा। 'फेंटम ऑव द हिल्स' फिल्म सुपरहिट रही। 'मेरी कॉफी है काफी मजेदार' को एंग्लो-इंडियन स्टाइल में कुछ इस तरह गाया कि दर्शक सिनेमा हॉल में झूमने लग जाते थे। एज्यूकेटेड वाइफ फिल्म जाल मर्चेंट के साथ की, जिसके निर्देशक सर्वोत्तम बदामी थे। शहर का जादू फिल्म से सबिता को 'सितारा' का दर्जा मिला। इस फिल्म में इंटरवल तक वह पुरुष पोषाक में आई थीं। मोतीलाल ने इस फिल्म में रोमांटिक नायक का रोल किया था। के.एम. मुंशी के उपन्यास पर आधारित 'वेनपिस इज माइन' की सर्वत्र चर्चा हुई। मुंशी की अन्य रचनाओं-डॉ. मधुरिका तथा कुलवधू में भी सबिता देवी ने काम किया। डॉ. मधुरिका में वह डॉक्टर बनीं, जबकि मोतीलाल उसके वकील पति थे। दो शिक्षित पत्ति-पत्नी की नोक-झोंक ने फिल्म को हास्य-व्यंग्य से भरपूर कर दिया था।

मोतीलाल के साथ सबिता देवी की जोड़ी को काफी लोकप्रियता मिली। जीवनलता तथा सिल्वर किंग इस क्रम की अगली फिल्में थीं। ३०० डेज एंड ऑफ्टर, लेडिज ऑनली और आम्रपाली सबिता देवी की उल्लेखनीय एवं अंतिम फिल्में हैं।

पेशंस कूपर

पेशंस कूपर के बारे में कहा जाता है कि मूक युग की वह पहली 'स्टार' हीरोइन थी। १९०४ में जन्मी इस आंग्ल- भारतीय कन्या ने चौदह वर्ष की उम्र में फिल्मों में प्रवेश किया था। मदन थिएटर के माध्यम से आने से पेशंस को जल्दी लोकप्रियता मिली। वह गूँगे युग में पूरी तरह छाई रही और सवाक् फिल्में आरम्भ होने के कुछ बरसों तक बनी रही। पेशंस ने कुल ३० फिल्मों में काम किया है, जिनमें से कुछ ने इतिहास बनाया है। जैसे नल-दमयंती और कपाल कुण्डला। पेशंस की बहन **वॉयलेट** भी प्रसिद्ध अभिनेत्री हुई है। पेशंस ने अपने जमाने में कहा था– "समय आएगा जब अभिनय के व्यवसाय को प्रतिष्ठा का दर्जा मिलेगा।"

* प्रमुख फिल्में: सती लक्ष्मी (१९२५), जयदेव (१९२६), चंडीदास (१९२७), दुर्गेश नंदिनी (१९२७), कपाल कुण्डला (१९२९)।

पद्मा

पद्मा एक ऐसी बंगाली तारिका है, जो पहले बंबई में सफल हुई, बाद में कलकत्ता जाकर अपनी सफलता की पताका फहराई। पद्मा का असली नाम **नीलिमा** था। रणजीत की फायटिंग वेगाबांड उसकी पहली फिल्म थी। रेड लाइन, हिंद केसरी तथा वानर सेना पद्मा की अन्य गूँगी फिल्में थी। गूँगी फिल्मों में अपने सौंदर्य और आकर्षक व्यक्तित्व से तो वह सफल हो गई, मगर बोलती फिल्मों से उसे परेशानी होने लगी। उसे हिंदुस्तानी भाषा के अलावा संगीत और गीत भी सीखना पड़े। लाले-यमन, पृथ्वीराज-संयोगिता (१९३३) जैसी फिल्मों में उसने यह सब कर दिखाया। सती महानंदा फिल्म की सफलता ने उसे स्टार का दर्जा दिलाया। बाबूराव पटेल के संपर्क में आकर पद्मा को कई फिल्में मिली, जैसे-बंगबीणा, बाला जोबन, महारानी, परदेसी सैंया। पद्मा का फिल्म इतिहास में इसलिए भी महत्व है कि प्रभात की रंगीन फिल्म सैरन्ध्री प्रोसेसिंग की गड़बड़ी से फ्लॉप हो गई थी। आदेशिर ईरानी ने किसान कन्या (१९३६) को रंगीन बनाकर सर्वप्रथम होने का श्रेय लेना चाहा, तो उसकी नायिका पद्मा को बनाया। इसलिए **पद्मा भारतीय रंगीन फिल्मों की पहली कलर-क्वीन**

मिस बिब्बो



पेशंस कूपर



पद्मा देवी




सोनालीका
के उत्कृष्ट उत्पादन
सदैव आपके लिए
सोनालीका
निर्माता :
पंजाब कृषि उद्योग निगम, होशियारपूर
6. इण्डस्ट्रियल इस्टेट, होशियारपूर - 146 001 (पंजाब) ग्राम : सोनालीका
वितरक :
रंजन जैन एंड कंपनी
32, शास्त्री मार्केट इन्दौर-7 ✆ 37305 ग्राम - रंजन को
Nidhi Advt.

है। बाद में पद्मा हिंदी,बंगला फिल्मों में चरित्र रोल करने लगी। बात एक रात की तथा बीवी और मकान में भी वह उपस्थित हुई थी।

शरीफा और हुस्न बानू

सिनेमा बोलने लगा तो रंगमंच के कलाकारों को यह सुनहरा मौका लगा। वे दौड़कर फिल्मों में आने लगे। गूँगी फिल्मों के नायक-नायिका तो भाषा की कठिनाई के आगे एकाएक असहाय हो गए। ऐसी तारिकाओं में जहाँआरा कज्जन, पेशंस कूपर और शरीफा के नाम प्रमुख हैं, जो कलकत्ता के मदन थिएटर से जुड़ी थीं।

शरीफा ने मदन थिएटर के मंच पर आगा हश्र काश्मीरी लिखित अनेक नाटक खेले थे। जैसे आँख का नशा, पति भक्ति और यहूदी की लड़की आदि। उसने फिल्म **चूँ चूँ का मुरब्बा** से फिल्मों में प्रवेश लिया। शीरी-फरहाद में भी वह आई थी। बीमारी की वजह से शरीफा बम्बई आई और वाडिया की काला गुलाब (१९३४) में रोल किया। तीस के दशक में उसने नेकेड ट्रूथ, सुल्ताना चाँदबीवी और मदर इंडिया में काम किया। मदर इंडिया पहली पूर्ण रंगीन फिल्म थी। शरीफा ने पत्नी और माँ दोनों रोल उम्दा किए। इस वजह से उसे लार्ड लिनलिथगो मेडल भी मिला था।

शरीफा के सामने ही उसकी बेटी हुस्न बानू भी परदे पर चमकने लगी। उसका असली नाम रोशन आरा था। पृथ्वीराज तथा उमा शशि की फिल्म डाकू मन्सूर (१९३४) में हुस्न बानू पहली बार आई। बाद में बम्बई आकर जे.बी.एच. वाडिया की जयभारत, हिंद केसरी, नवजवान, फ्लाईग रानी, वसंत बेंगाली जैसी फिल्मों में रोल किए।

मेहबूब खान के नेशनल स्टूडियो से जुड़कर उसने सामाजिक फिल्मों में प्रतिष्ठा अर्जित की–जवानी (सुरेन्द्र के साथ) नई रोशनी तथा बहन। शौकत हुसैन की फिल्म दोस्त में हुस्न बानू की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसकी नायिका थी नूरजहाँ। मधुबाला-याकूब अभिनीत सिपहिया में भी वह सहनायिका थी। हुस्नबानू की आखरी फिल्म गंगा-जमुना थी, जिसमें छोटा सा रोल था। के. आसिफ ने लैला-मजनू फिल्म के लिए हुस्न बानू का चयन किया था, मगर गुरुदत्त की मौत ने उसे लैला नहीं बनने दिया। शरीफा की पोती और हुस्न बानू की भतीजी नाजिमा भी फिल्म अभिनेत्री है।

मेहताब

फिल्म इतिहास में जब मूक युग अंतिम दौर में चल रहा था, तब **मेहताब** लाइम लाइट में आई। नवीनचंद्र के साथ मेहताब की जोड़ी बेहद लोकप्रिय रही। मोहन भावनानी की फिल्म वीर कुणाल, मेहताब की पहली बोलती फिल्म थी। वह जुबेदा के साथ वीर अभिमन्यु, सुभद्राहरण और मीराबाई में आई। माधुरी के साथ कृष्ण-सुदामा में और गौहर के साथ 'मिस १९३३' में। रणजीत कंपनी की **भोला शिकार** में ई. बिलिमोरिया के साथ आकर मेहताब १९३३ के साल की 'स्टार' बन गई। नवीनचंद्र के साथ फिर से उसने लाफिंग केवेलियर, रणचंडी और राज रामत में काम किया। मोती का हार तीस के दशक की उसकी आखिरी फिल्म थी।

मेहताब में अभिनय प्रतिभा थी, उसके बावजूद वह सुलोचना, सबिता या माधुरी की तरह सफल नहीं हो सकी। १९४१-४२ में वह कलकत्ता चली गई। किदार शर्मा की चित्रलेखा में वह काफी चर्चित हुई, क्योंकि उसने अर्द्ध-नग्न स्नान दृश्य किया था। इस स्नान दृश्य को देखने दर्शक बार-बार फिल्म देखते थे। चित्रलेखा के नायक बी. नांद्रेकर थे। इसके बाद मेहताब बंबई आ गई। कारदार की **शारदा** फिल्म सुपरहिट रही। कानून और संजोग ने भी शारदा का अनुसरण किया। मेहताब ने इन सफलताओं का लाभ उठाया। वह नौकरी के बजाए फ्री लांसिंग करने लगी। सोहराब मोदी की **परख** फिल्म को कई पुरस्कार मिले। फाजली भाइयों की फिल्म अस्मत में मेहताब, नरगिस के साथ थी। परख के बाद शमा, मेहताब-मोदी की दूसरी हिट फिल्म थी। बाद में मेहताब ने सोहराब मोदी से शादी कर ली। भारत की पहली टेक्नीकॅलर फिल्म झाँसी की रानी (१९५७) में वह लक्ष्मीबाई बन कर आई, मगर फिल्म और मेहताब दोनों ही फ्लॉप हो गए। उसने फिल्मों से संन्यास ले लिया।

सरदार अख्तर

लाहौर में जन्मी (१९१५) मगर लाहौर की किसी फिल्म कंपनी में काम नही करने वाली **सरदार अख्तर** की मिसाल अनोखी है। मदन थिएटर की मार्फत रंगमंच से रजतपट का सफर सरदार अख्तर ने तय किया और **ईद का चाँद** में अशरफ खान के साथ नायिका बनी। **मालती माधव** में वह मालती के रूप में दिखाई दी और शाह बेहराम में मास्टर निसार उसके नायक थे। संगदिल समाज में सरदार अख्तर ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया और समीक्षकों की प्रशंसा बटोरी। मेहबूब ने उन्हीं दिनों फिल्म मनमोहन में लेने की पेशकश की थी, मगर अनुबंध आड़े आ गए। प्रकाश फिल्म कंपनी ज्वाइन कर जयंत के साथ स्टेट एक्सप्रेस जैसी कई फिल्में की। विजय भट्ट ने रमणलाल देसाई के उपन्यास पूर्णिमा पर आधारित फिल्म में सरदार अख्तर को लेकर उसकी इमेज ही बदल दी। सोहराब मोदी ने फिल्म पुकार में धोबन का रोल दिया, जिसका पति नूरजहाँ के तीर से घायल हो जाता है। इस फिल्म में नूरजहाँ का रोल नसीम ने किया था, लेकिन सरदार अख्तर ने बाजी जीत ली। मेहबूब ने दूसरी बार कोशिश कर सरदार अख्तर को फिल्म **औरत** में नायिका बनाया, जो उसकी जिंदगी का अहम रोल साबित हुआ। इसी औरत का नया संस्करण मदर इंडिया के नाम से मेहबूब ने १९५७ में बनाया था, जिसमें नरगिस

मिस रोज



गंगूबाई



अनिस खातून



नायिका थी। २४ मई १९४२ को सरदार अख्तर ने फिल्मकार मेहबूब को अपना महबूब बना लिया। उनकी चंद्रमोहन तथा सबिता देवी के साथ आखरी फिल्म थी फैशन। साजिद को दत्तक पुत्र लिया, वह भी अभिनेता रहा है। १९६४ में मेहबूब की मृत्यु के बाद स्टूडियो का सारा कारोबार सरदार अख्तर ने संभाला था। फिर वह अमेरिका चली गई, जहाँ २ अक्टूबर १९८४ को उनकी मृत्यु हो गई। अपने केरियर के आरंभ में उन्होंने गाने भी गाए थे।

जहाँआरा कज्जन

जहाँआरा कज्जन की असली दौलत उनकी सुन्दरता थी। नसीम बानो और बिब्बो की तरह उन्होंने दर्शकों के दिलों पर राज किया था। उनकी माँ स्वयं गायिका थी। सवाक् फिल्मों के जमाने में मास्टर निसार के साथ उनकी जोड़ी काफी लोकप्रिय हुई थी। उन्हें कुंदनलाल सहगल से अधिक वेतन मिलता था। शकुन्तला, लैला मजनूँ, शीरी फरहाद, घर संसार, प्रार्थना, सुहागन और भर्तृहरि उनके खाते में लिखी गई उल्लेखनीय फिल्में हैं। उनके शुरू के गीतों के ग्रामोफोन रेकार्ड उपलब्ध नहीं हैं। शास्त्रीय ढंग से गाने वाली कज्जन की आवाज सभा-सम्मेलन के लायक थी। * घूँघट पट नहीं खोलूँ * कूकत कोयलिया (भर्तृहरि) * आया सावन (प्रार्थना) उनके श्रेष्ठ गीत हैं। दिसंबर १९४५ में सिर्फ तीस साल की उम्र में उनका निधन हो गया।

सुशीला रानी

फिल्म इंडिया और बाद में मदर इंडिया पत्रिका के संपादक स्वर्गीय बाबूराव पटेल की पत्नी **सुशीला रानी** हैं। फिल्मी दुनिया में सर्वाधिक शिक्षित गायिका- अभिनेत्री होने का उन्हें गौरव प्राप्त है। २० अक्टूबर १९१८ को मद्रास में जन्मी सुशीला रानी फर्स्ट क्लास फर्स्ट



सुशीला रानी

एम.एस.-सी. हैं। द्रौपदी तथा ग्वालन नामक फिल्मों में उन्होंने काम किया तथा गीत गाए हैं। द्रौपदी का निर्माण स्वयं बाबूराव पटेल ने किया था। फिल्म तो फ्लॉप रही, मगर सुशीला रानी लोकप्रिय हो गई। शास्त्रीय संगीत की समझ के साथ ही फिल्म इंडिया के सम्पादन में सुशीला रानी का योगदान रेखांकित करने योग्य है। उनके गाए गीतों में सुनो अब श्याम तथा बाँध के रखूँगी (द्रौपदी) उल्लेखनीय हैं।

जद्दन बाई

जद्दन बाई, नरगिस की माँ होने के पहले काफी मशहूर थी। लाहौर की इस गायिका ने १९३५ में बंबई में संगीत फिल्म कम्पनी की स्थापना की। इस संस्था की पहली फिल्म थी– तलाश-ए-हक। इस फिल्म की नायिका जद्दन बाई थी। उनकी आठ साल की बेटी बेबी रानी ने बालापन की भूमिका की थी, जो आगे चलकर नरगिस बनी। जद्दनबाई ने निर्देशन-अभिनय किया और अपने गाने भी खुद गाए। मोतियों का हार उनकी यादगार फिल्म है। एक बार पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिलने जद्दनबाई गई थी। बड़ी मुश्किल से उन्हें पाँच मिनट का समय मिला। लेकिन बातचीत डेढ़ घंटे तक चली। इसी घटना का बाद में परिचय देकर नरगिस ने पंडितजी से मुलाकात की थी।

फातिमा बेगम

अभिनय में ही नहीं मूक-युग में ऐसी साहसी महिलाएँ हुई हैं, जिन्होंने फिल्म निर्माण के क्षेत्र में भी मजबूती से कदम रखे हैं। भारत की प्रथम महिला निर्देशिका होने का श्रेय **फातिमा बेगम** को है। फातिमा फिल्म कार्पोरेशन के नाम से एक कम्पनी बनाकर उन्होंने बुलबुल-ए-परिस्तान फिल्म बनाई। इसके बाद पाँच फिल्में निर्देशित कीं, जिनमें हीर-रांझा, नसीब की देवी और शकुंतला प्रमुख थीं। आलमआरा फिल्म की नायिका जुबेदा, फातिमा बेगम की सबसे छोटी बेटी थी। फातिमा की प्रमुख फिल्में हैं– * पृथ्वी वल्लभ (१९२४), देवदासी (१९२५), मुम्बई नी मोहिनी (१९२५)।

लीला देसाई

अपनी पहली फिल्म से स्टार का दर्जा पाने वाले कलाकार बहुत कम होते हैं। न्यू थियेटर्स की फिल्म **प्रेसिडेन्ट** (१९३७) में नायिका बनते ही **लीला देसाई** स्टार बन गई। गुजराती डॉक्टर पिता और बंगाली माता की संतान लीला का जन्म न्यूयॉर्क में हुआ था। वह बचपन से नृत्य की शौकीन थी। अमलादेवी से उसने नृत्य सीखा, जो बाद में उदय शंकर की पत्नी बनी थी। लखनऊ में कथक नृत्य के प्रदर्शन में निर्देशक हेमचन्दर ने उसे देखा और फिल्म में काम करने का न्यौता दिया। फिल्म प्रेसिडेंट में वह कमलेश कुमारी की छोटी बहन बनी थी, नायक कुन्दनलाल सहगल थे।

लीला देसाई की आँखें चपल और चमकदार थी और आवाज में मिश्री जैसी मिठास। दिखने में वह आकर्षक थी। विद्यापति में उसने नर्तकी

जहाँआरा कज्जन



जद्दनबाई



लीला देसाई



की भूमिका की थी। उसके नृत्य के साथ के.सी. डे का गीत था। तपेदिक पर आधारित फिल्म **दुश्मन** में उसके नायक सहगल थे। कपाल कुण्डला के बाद न्यू थिएटर्स में लीला देसाई की आखरी फिल्म थी नर्तकी। नर्तकी में नजमल हुसैन के साथ वह नर्तकी के रोल में थी।

इसके बाद चिमनलाल त्रिवेदी लीला को बम्बई ले आए और जयराज के साथ तमन्ना फिल्म में पेश किया। इसका निर्देशन फणी मजूमदार ने किया था। विश्राम बेडेकर निर्देशित नकदनारायण में वह बाबूराव पेंढारकर की नायिका बनकर कामेडी रोल में आई। नितिन बोस निर्देशित मुजरिम उसकी चर्चित फिल्म है। कलियाँ (किदार शर्मा), मेघदूत (देवकी बोस) उसकी अन्य उल्लेखनीय फिल्में हैं। एक दशक में उसने लगभग २२ फिल्में कीं और फिर परदे के पीछे चली गई।

उमा शशि

फिल्म चण्डीदास (१९३४) की रामी आपको याद है? रामी धोबन के रूप में उमा शशि ने काम किया था। पूरन भगत फिल्म से प्रवेश लेकर चण्डीदास में चमकने वाली उमा शशि में अपार प्रतिभा थी। प्रेमगीतों को उमा शशि कुछ ऐसे अंदाज में गाती थीं कि श्रोता मदमस्त हो जाता था। उनकी अगली फिल्म धूप छाँव भी काफी सफल रही थी।

रतनबाई

दादा साहेब फालके के शिष्य बाबूराव पेंटर ने अपने सहयोगियों के साथ १९१८ में कांग्रेस अधिवेशन पर एक फिल्म बनाई थी। उस फिल्म को देखकर अनेक लोग प्रभावित हुए, जिनमें एक धनी महिला **रतनबाई** भी थी। बाबूराव पेंटर द्वारा बातचीत करने पर रतनबाई ने एक नया स्टूडियो बनाने के लिए ३० हजार रुपए दान किए थे, जिससे **कोहेनूर फिल्म कम्पनी** की स्थापना की गई।



रतनबाई

अंतहीन आकाशगंगा....

सन् १९१३ से १९३० तक का भारतीय फिल्मों का इतिहास व्यवस्थित रूप से लिखा ही नहीं गया है। अधिकांश फिल्में नष्ट हो गईं। उन दिनों फिल्मी पत्रिकाएँ और फिल्म पत्रकारिता भी नहीं थी, इसलिए छपे हुए अक्षरों में भी कुछ नहीं मिलता। जो कुछ भी है, बुजुर्ग कलाकारों या दर्शकों की याददाश्त के सहारे मिलता है। इस दिशा में निजी या शासकीय स्तर पर कोई गंभीर प्रयास आज तक नहीं हुए है। तारिकाओं की आकाशगंगा का सिलसिला अनंत है। कुछ सितारे जो औरों से ज्यादा चमकदार साबित हुए, उनके संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

मिस रोज का नाम पुराने दर्शक आदर के साथ लेते हैं। इम्पीरियल फिल्म कम्पनी में रहते हुए फैशनेबल बनकर काम करना उसकी आदत रही है। वह इस रहस्य को जानती थी कि आकर्षक माल पहले बिकता है।

जिल्लो नामक तारिका ने मूक-युग में अपने हावभाव से दर्शकों को रिझाया और मनोरंजन किया। उसकी प्रमुख फिल्में हैं: अलाउद्दीन एंड वांडरफुल लेम्प (१९२७) नारी या नागन (१९२७), अनारकली (१९२८), माधुरी (१९२८), पूरन भगत (१९२८), इंदिरा बी.ए. (१९२९), पंजाब मेल (१९२९)।

एनाक्षी रामाराव हिमांशु राय के साथ फिल्म शिराज (१९२९) के कारण चर्चित है। यह फिल्म जर्मन सहयोग से बनी थी। फातिमा बेगम की बेटी **सुल्ताना** ने वीर अभिमन्यु (१९२२) गुलेबकावली (१९२४), कल्याण खजिना (१९२४), इन्द्रसभा (१९२५) में काम किया था। कल्याण खजिना में वह बाबूराव पेंटर के साथ थी।

गुलाब के नाम की भी अक्सर चर्चा होती है। भद्रभामिनी (१९२५), फारच्यून एंड फूल (१९२५), लव इज ब्लाइंड (१९२६), रूप सुन्दरी (१९२७), देवकन्या (१९२९), हातिमताई, जय सोमनाथ (१९२९) और शूर का संग्राम (१९३०) उसकी उल्लेखनीय फिल्में हैं।

एर्मलिन का हवाला भी कई आलेखों में दिया जाता है। १९२५ से १९३० तक उसकी अभिनीत फिल्में मिलती हैं। उनमें प्रमुख हैं– लालन बंजारी (१९२५), रामभरोसे (१९२६), खूबसूरत बला (१९२६), बोलती बुलबुल (१९२६), मदन मंजरी (१९२८), रेड सिग्नल (१९२९), सिनेमा गर्ल (पृथ्वीराज के साथ) १९३०।

इनके अलावा इस आकाशगंगा की कुछ तारिकाओं के नाम हैं– * डोरोथी किंगडम * लीना वेलेंटीना * सुशीला देवी * कुसुम कुमारी * मिस स्टीवर्ट * मिस चंदा * नलिनी * निर्मल बाला * प्रभावती * मिस कैसर * बेलारानी * रामप्यारी * मिस वुड * गंगूबाई * शहजादी * मिस जोंस * मिस मोती * पुतली * दुर्गाबाई * मिस बिब्बो (वासवदत्ता तथा मनमोहन की नायिका)

उमा शशि



मोहिनी



रामप्यारी



सूर्यास्त के इंतजार में फ़ीरोज़ा

मूक फिल्मों के दौर की **बेवफा कातिल** अत्यंत सफल फिल्म थी। इसके निर्माता बी.आर. मेहता एवं निर्देशक श्री गुंजाल थे। इस फिल्म में खलनायिका की भूमिका करने वाली **फीरोजा** असली नाम **सुसान ऐजीकिस सोलोमॉन** इन दिनों गुमनामी के साए में जीर्ण अवस्था में और संपत्ति के नाम पर सिर्फ एक कमरे में जिंदगी गुजार रही है। आर्क लाइटस, कैमरा, फिल्म उनके लिए मानो अतीत का हिस्सा बन चुके हैं। जबकि मूक फिल्मों की वे पहली कलाकार है जिनका फिल्मी कैरियर काफी ग्लैमरस रहा है।

सोलोमॉन ने तेईस साल के फिल्म सफर में अनेक दुःखों को सहा। आत्मनिर्भर औरत बनकर अपनी कला का बेहतरीन प्रदर्शन किया। प्रारंभ से ही फ़ीरोजा के साथ समस्याएँ जुड़ी रहीं। जब वे मुश्किल से १५ साल की थीं, उन्होंने 'यावेह' (यहूदी भगवान) को अभिनय करने की इच्छा प्रकट की। उनकी इस इच्छा को परिवार वालों ने एकदम नकार दिया। वे परंपरावादी परिवार की थीं। फिल्मों में काम करना घटिया समझा जाता था। परंतु फीरोजा अभिनय करना तुच्छ नहीं मानती थीं। इसलिए वे घर से निकल गईं। उस जमाने के सुप्रसिद्ध निर्माता बी.आर. मेहता को सोलोमॉन जानती थीं। उन्होंने सोलोमॉन की अभिनय करने की तीव्र इच्छा को ताड़ लिया और इस प्रकार सन् १९३० में पहली फिल्म 'बेवफा कातिल' सोलोमॉन ने साइन की। इस प्रकार उनके सपनों की हकीकत का ताना-बाना आरंभ हुआ। अब उनके स्मृति पटल से यह विस्मृत हो चुका है कि हास्य दृश्य किस प्रकार के होते थे। आज बहुतों को यह याद भी नहीं है कि किसने सबसे पहले फिल्मों में अभिनय करना प्रारंभ किया था।

उनकी कई ऐसी मूक फिल्में हैं जिनमें फ़ीरोजा ने बेहतरीन अभिनय किया है। उसके बाद टॉकी का जमाना आया, वे काम में व्यस्त होती गईं। **भारत के लाल** में उनकी प्रमुख भूमिका थी। चंद्रराव कदम जो इस फिल्म के निर्माता भी थे वे उनके सामने थे। उन दिनों जैसे फिल्मों की बाढ़ आ गई थी। लंकादहन, हातिमताई, भागता भूत, सरकस गर्ल और मिलिट्री जो हिन्दी और मराठी में बनाई गई थीं। विनायक राव की 'प्रेमवीर' फिल्म जिसमें उन्होंने कॉलेज गर्ल की भूमिका की थी, अविस्मरणीय थी। वे राव की सदैव प्रशंसा करते नहीं थकती थीं, क्योंकि उनकी सफलता के पीछे राव का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जब भी वे कहीं जाती कॉलेज के लड़के उन्हें आवाज देने लगते। अपनी इस लोकप्रियता को वे राव के कारण मानती हैं।

जब वे लोकप्रियता के शिखर पर थीं, तो जाहिर है जैसे कलाकार थोड़ा अभिमानी हो जाता है वैसे ही फीरोजा के साथ हुआ। उनकी

मंथरा, कैकेयी के साथ

दशरथ भी बनी थीं कमलाबाई कामत

भारतीय फिल्मों के पितृ-पुरुष दादा साहेब फालके की दूसरी फिल्म **'भस्मासुर मोहिनी'** की शीर्ष भूमिका करने वाली **कमलाबाई कामत** के साथ इसी फिल्म में उनकी माता दुर्गाबाई ने भी पार्वती की भूमिका की थी। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि फालके को अपनी पहली फिल्म, जो कि भारत की पहली फिल्म भी थी, के लिए नारी-पात्रों की भूमिकाएँ पुरुषों से ही करवानी पड़ी थीं। वास्तव में कमलाबाई का पूरा परिवार इस सदी के प्रारंभ से ही मराठी-मंच के प्रति समर्पित था। उनके बेटे चंद्रकांत गोखले मराठी फिल्मों के समर्पित कलाकार हैं। अन्य बेटे सूर्यकांत तथा लालजी गोखले संगीतकार रहे हैं। उनके पोते विक्रम गोखले मंच, सिनेमा और आजकल दूरदर्शन के धारावाहिकों में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शित कर रहे हैं। बहरहाल, कमलाबाई ने भारतीय सिनेमा की सबसे बुजुर्ग जीवित नायिका के रूप में सन् '७५ में स्क्रीन को दिए गए इंटरव्यू में अपने प्रारंभिक जीवन तथा मराठी मंच की स्थिति के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी इस प्रकार दी थी।



कमलाबाई के पिता बंबई के एक कॉलेज में प्राचार्य थे और उनके असामयिक निधन के कारण उनकी माता दुर्गाबाई और उन्हें पारिवारिक मित्र रामभाऊ गोखले की कंपनी सामाजिक नाटक मंडली में अभिनय करना पड़ा। बाद में कमलाबाई ने रामभाऊ के छोटे भाई रघुनाथ राव के साथ विवाह किया और बच्चों की भूमिकाओं के बदले वयस्क पात्रों का अभिनय शुरू किया। कालांतर में कमलाबाई की ख्याति विविध प्रकार की भूमिकाएँ, जिनमें पुरुष-भूमिकाएँ भी थीं, करने के लिए फैली। यह प्रथा उस समय शुरू हुई जब **'गोपीचंद'** नाटक के दौरान उनके पति के अचानक बीमार पड़ जाने से उन्हें उनकी भूमिका भी करनी पड़ी। रामायण की कथा पर आधारित एक नाटक के पहले दो अंकों में जहाँ उन्होंने क्रमशः मंथरा और कैकेयी की भूमिकाएँ कीं, तीसरे अंक में वे खुद दशरथ बनकर मंच पर आईं। सन् १९२७ में रघुनाथ राव की मृत्यु के बाद उन्होंने कुछ समय तक खुद नाटक मंडली का संचालन किया लेकिन बाद में उन्होंने 'फ्री लांस' काम शुरू कर दिया। सन् १९०६ से लेकर १९४४ तक उन्होंने कोई ७५ नाटकों में अभिनय किया। इनमें से अधिकांश भूमिकाएँ उन्होंने अपनी ही कंपनी चित्तहर्षक नाटक मंडली के लिए कीं।

दादा साहेब फालके की फिल्म में काम करना मात्र एक संयोग था। उन दिनों उत्तरी महाराष्ट्र के इलाके में उनकी कंपनी का धंधा कुछ ठीक नहीं चला था। बंबई वापस लौटते समय रामभाऊ कुछ देर के लिए नासिक रुके। वहाँ दादा साहेब अपनी दूसरी फिल्म शुरू करने जा रहे थे। उन्होंने दुर्गाबाई तथा उनकी बेटी को मंच पर देखा था और उन्हें लगा कि वे दोनों 'भस्मासुर मोहिनी' की भूमिकाओं के लिए, बहुत उपयुक्त होंगी। उन्होंने रामभाऊ से बात की और उनकी दयानतदारी और प्रतिष्ठा से प्रभावित हो उन्होंने तीन महीने नासिक में रहकर फिल्म में अभिनय करने की अनुमति कमलाबाई और दुर्गाबाई को दे दी। वैसे उन दिनों मंच के कलाकार इस नए माध्यम के प्रति ज्यादा आकर्षित नहीं होते थे। लेकिन कमलाबाई के ही शब्दों में, "उस काम में मेहनत बहुत थी लेकिन हमें काम में मजा आया। सबसे ज्यादा मेहनत स्वयं दादा साहेब करते थे। शूटिंग उन्हीं के बंगले में, जहाँ हम सभी एक परिवार की तरह रहते थे, तथा कुछ ही फासले पर स्थित तीर्थस्थान त्र्म्बयकेश्वर में होती थी। हम सब लोग सुबह तीन बजे बैलगाड़ियों पर बैठकर 'लोकेशन' के लिए जाते थे। चूँकि उन दिनों शूटिंग पूरी तरह धूप और रिफ्लेक्टरों की मदद से ही होती थी, पार्टी का सूर्योदय के समय ही शूटिंग स्थल पर पहुँचना जरूरी होता था। शूटिंग शाम तक चलती थी और यदि अगले दिन शूटिंग होती तो सब लोग वहीं मंदिर में सो जाते थे। "भस्मासुर मोहिनी" तैयार हो जाने के बाद दादा साहेब लंदन चले गए और कमलाबाई वापस मंच पर। इसके बाद कमलाबाई ने केवल दो और फिल्मों में छोटी-छोटी भूमिकाएँ कीं। **विश्राम बेडेकर** की सन् १९३१ में बनी **'कंगाल'** तथा **'लक्ष्मी चे खेल'** में उनसे अभिनय करवाया। वैसे फालके की फिल्म के बाद से ही वे नियमित रूप से फिल्में देखती रहीं। लेकिन इधर लगभग ७५ वर्ष की हो जाने के बाद वे केवल खास फिल्में ही देखती थीं। 'सामना' ऐसी ही एक फिल्म थी जिसमें श्रीराम लागू तथा नीलू फुले के जोरदार अभिनय ने उन्हें प्रभावित किया था। हिंदी अभिनेताओं में दिलीप कुमार, अमिताभ तथा 'कोशिश' में संजीवकुमार तथा जया भादुड़ी का अभिनय भी उन्हें पसंद आया था।

इच्छा किसी हॉलीवुड के अभिनेता या किसी ब्रिटिश नवाब के साथ विवाह करने की थी। उनका अभिमान 'भागता भूत और सुखी जीवन' फिल्मों की वजह से ज्यादा बढ़ गया था। उस वक्त उन्होंने विश्राम बेड़ेकर का एक प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था क्योंकि चंद्रमोहन जिन्हें फीरोजा प्यार करती थीं, उन्होंने फिल्म का प्रस्ताव उनके सामने रखा था। इसके बाद फीरोजा शराब और सिगरेट का सेवन करने लगी। तब निर्माता भी उन्हें साइन करने के प्रति सावधानी बरतने लगे। उन्हें लगने लगा कि उनके सपनों का राजकुमार कब मिलेगा। एक निर्माता था जिनका वे नाम नहीं बताना चाहती। उस वक्त हिमांशुराय की 'अछूत कन्या' की एक भूमिका के लिए प्रस्ताव उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

सोलोमॉन (फीरोजा) जिस व्यक्ति (निर्माता) के साथ रहती थीं, उसने पंद्रह हजार रुपए इनसे लिए और वादा किया कि जब वे माँगेंगी वह रुपए लौटा देगा। उसने यह भी वादा किया कि जब उसकी फिल्म प्रदर्शित होगी वह



रुपए बैंक में जमा कर देगा। वह फिल्म सफल रही किंतु सोलोमॉन को उसका रुपया नहीं मिला। वे उस निर्माता के पास गई लेकिन तब तक देर हो चुकी थी।

उनका आकर्षण खत्म हो चुका था। उनका नाम गुम होने लगा था। सहायता के लिए कई दरवाजे खटखटाए क्योंकि उनके पास कुछ नहीं बचा था। तब देविका रानी ने एक्स्ट्रा के रूप में काम दिलवाया। कुछ अन्य फिल्मों जैसे सोनाबाई (मराठी) और दिन रात (हिन्दी) में भी काम किया। उनकी आखिरी फिल्म यास्मीन (१९५४) में थी, जिसमें वे नौकरानी बनी थीं।

धीरे-धीरे उनकी जिंदगी गहरे दलदल में धँसती गई। जब भूमिकाएँ मिलना बंद हो गई तो वे इगतपुरी (महाराष्ट्र) लौटी, जहाँ उनके माता-पिता रहते थे। किंतु वहाँ जाकर पता लगा कि वे बंबई में रहने चले गए हैं। १९७० में उनकी माँ की मृत्यु हो गई। जब माँ जीवित थी वे उन्हें काफी रुपए भेजा करती थीं। किंतु उनकी माँ ने उन रुपयों को कभी स्वीकार नहीं किया। एक नाचने वाली की कोई चीज वे स्वीकार नहीं कर सकती थीं। १९७१ में पिता की मृत्यु से एक बड़ा झटका उन्हें लगा। ■

सुलोचना (रुबी मेयर्स): पहली 'सितारा'

फिल्म उद्योग के प्रारंभिक वर्षों में अच्छे परिवारों से लड़कियाँ फिल्मों में नहीं आती थीं। उन दिनों उत्तरप्रदेश के कोठों से फिल्मों के लिए नायिकाएँ लानी पड़ती थीं। दूसरा तरीका था एंग्लो इंडियन परिवारों से लड़कियों को लाने का। यूरेशियन लड़कियों को भी फिल्म में काम करने से कोई एतराज नहीं होता था।

कोहिनूर फिल्म कम्पनी के मोहन भावनानी ने रुबी मेयर्स नामक एक टेलीफोन ऑपरेटर को १९२५ में 'वीरबाला' नामक फिल्म में प्रस्तुत किया। रुबी का पर्दे के लिए नाम रखा गया सुलोचना। वह गूँगी फिल्मों का जमाना था–इसलिए यूरेशियन रुबी को भाषा की कठिनाई नहीं थी। सुलोचना का रंग गोरा था। चेहरे पर एक कशिश भरी लाचारी थी और अभिनय के मामले में उसे केवल इतना ही करना था कि कैमरे से कोई झिझक नहीं हो। पहली फिल्म की सफलता के बाद सुलोचना का वेतन एक हजार रुपए महीना हो गया, जो उस समय के मान से अधिक था। सुलोचना की अदाएँ जनता को इतनी पसंद आई कि वह भारतीय फिल्म उद्योग की पहली 'स्टार' अभिनेत्री बनी। पहले वर्ष में ही सुलोचना की आठ फिल्में बनीं।

सुलोचना ने १५ वर्षों में ५० फिल्मों में काम किया–इनमें से ३७ फिल्में केवल इम्पीरियल कम्पनी के लिए और नौ फिल्में कोहिनूर के लिए कीं। सुलोचना के साथ अधिकांश फिल्मों में डी. बिलिमोरिया नायक थे। इन दोनों की 'अनारकली' (१९२८) अत्यंत लोकप्रिय रही। फिलिमस्तान की बीनाराय वाली अनारकली में सुलोचना ने जोधाबाई का रोल किया था। अनारकली के लेखक आर.एस. चौधरी थे,

◆◆◆

कान्वेंट में शिक्षित सुलोचना उर्फ रुबी मेयर्स फिल्मों में आने से पहले टाइपिस्ट और टेलीफोन ऑपरेटर थी। उसकी भूरी सुन्दर आँखों को देखकर मोहन भावनानी ने १९२५ में फिल्म 'वीरबाला' की नायिका बना दिया। बीस और तीस के दशक में सुलोचना बॉक्स ऑफिस हिट नायिका रही। उसे पाँच हजार रुपए महीना वेतन मिलता था, जबकि उस जमाने के मशहूर हीरो मास्टर विट्ठल को सिर्फ ढाई हजार रुपए दिए जाते थे। सुलोचना ने जब रणजीत कम्पनी छोड़ी, तब उसका वेतन ७५०० रुपए था। १९७९ में दादा साहेब फालके सम्मान के साथ एक लाख रुपए जब मिले, तो सुलोचना की आँखें खुली रह गईं।



सुलोचना और डी. बिलिमोरिया फिल्म इंदिरा एम.ए. (१९३४

जिन्होंने महबूब खान के लिए 'औरत' और 'मदर इंडिया' बाद में लिखी है।

उन दिनों हिन्दी फिल्म बनाने वालों के सिर पर हॉलीवुड के सीसिल बी. डीमिल का प्रभाव था और उन्होंने सुलोचना को लोकप्रिय सितारा बनाने के लिए अजीबोगरीब नामों वाली मनोरंजक फिल्में बनाई। सुलोचना को **'रोमांस की रानी'** के रूप में बहुत प्रचारित किया गया और बाद में **'जंगल की रानी'** के नाम पर बहुत धन खर्च किया गया। आम दर्शक को बहलाने के लिए सुलोचना के जीवन पर कई सच्चे-झूठे किस्से भी स्टूडियो द्वारा प्रचारित किए गए। इस तरह सुलोचना भारतीय दर्शकों के लिए पहली 'सपनों की रानी' बनी। इसका नतीजा यह हुआ कि भले घर के लोग उसकी तस्वीरें किताबों या तकिए के नीचे छिपाकर रखते थे। इम्पीरियल कम्पनी ने सुलोचना की गूँगी हिट फिल्मों का टॉकी के जमाने में पुनर्निमाण किया। पुनर्निर्मित 'माधुरी' और 'अनारकली' को सफलता मिली, परन्तु अन्य फिल्में असफल रहीं। इसी कारण इम्पीरियल के मालिक आर्देशिर ईरानी और सुलोचना के बीच का अनुबंध भंग हुआ। सुलोचना को इस बात का श्रेय है कि गूँगी फिल्मों की अपार सफलता के बाद टॉकी के जमाने में भी वह 'स्टार' बनी रही।

सुलोचना ने रुबी फिल्म के नाम से अपनी कम्पनी में 'प्रेम की ज्योति' (१९३८) बनाई।

नलिनी तरखुड

सुन्दरता के सभी पुजारी

भारत में फिल्में जब शैशव अवस्था में थीं तब भारतीय नारी का फिल्मों में काम करना एक दिवा स्वप्न माना जाता था। हालत यह थी कि पहली फीचर फिल्म "राजा हरिश्चंद्र" (१९१३) में नायिका तारामती की भूमिका निभाने के लिए दादा फालके को एक पुरुष पात्र सालुंके का चयन करना पड़ा। हिंदी फिल्मों में उच्च शिक्षा प्राप्त पहली अभिनेत्री थीं एनाक्षी रामाराव (एम.ए. तक अध्ययन)। इसके बाद **नलिनी तरखुड** का आगमन हुआ। नलिनी का परिवार मराठा था। उसके पिता डॉ. आत्माराम पांडुरंग तरखुड सामाजिक कार्यकर्ता तथा बंबई के पहले हिंदू शेरिफ थे। नलिनी का बचपन धार्मिक वातावरण में बीता। वह भावुक और कल्पनाशील लड़की थीं। निर्माता-निर्देशक मोहन भावनानी ने सबसे पहले उसकी प्रतिभा को पहचाना। उन्होंने नलिनी का चयन **वसंत सेना** (१९३१) के लिए किया। यह फिल्म संस्कृत के मशहूर नाटक 'मृच्छकटिकम' पर आधारित थी। फिल्म में वे सहनायिका थीं, जबकि नायिका की भूमिका एनाक्षी रामाराव ने निभाई थी। फिल्म की शूटिंग बंगलोर में हुई। फिल्म के अन्य कलाकारों में प्रमुख कमला देवी चट्टोपाध्याय थीं। इसके अलावा शकुंतला व जे.के. नंदा की भी भूमिका थी। नंदा ने आगे जाकर कई फिल्मों का निर्देशन किया। उनकी पहली निर्देशित फिल्म थी 'पवित्र गंगा'। इसका निर्माण लाहौर के ओरियंटल पिक्चर्स ने किया था। नलिनी ने इसमें नायिका की भूमिका निभाई।

उच्च शिक्षित महिलाओं द्वारा फिल्मों में प्रवेश का पहला नाम है एनाक्षी रामाराव एम.ए.। उसके पीछे-पीछे आईं नलिनी तरखुड। नलिनी की असली पूँजी थी उसकी क्लासिक-ब्यूटी।

फिल्म के अन्य कलाकार थे इंदर, नांबियार और हीरालाल। उस जमाने में नलिनी का फिल्मों में काम करने का परंपरागत रूढ़िवादी परिवारों ने तीखा विरोध किया। उन्हें काफी आलोचनाओं का शिकार भी होना पड़ा। अखबारों में नलिनी की तस्वीरें और उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि प्रकाशित हुई। उच्च शिक्षित इस महिला के प्रति भारतीय समाज में एक कौतूहल सा पैदा हो गया।

बड़ी-बड़ी आँखों वाली, गोरी-चिट्टी नलिनी ने प्रभात फिल्म कंपनी पुणे यह सोचकर ज्वाइन किया कि निर्देशक वी. शांताराम नवोदितों को काफी प्रोत्साहित करते हैं। शांताराम के मार्गदर्शन में नलिनी के अभिनय गुणों का विकास हुआ। शांताराम ने उन्हें **अमृत मंथन** (१९३४) में सुरेश बाबू के विरुद्ध नायिका की भूमिका निभाने का मौका दिया। शांताराम ने नलिनी को **चंद्रसेना** (१९३५) में भी अवसर दिया। इस फिल्म के नायक भी सुरेश बाबू थे। फिल्म में नलिनी द्वारा निभाई गई भूमिका की अखबारों ने उन्मुक्त प्रशंसा की। नलिनी की सर्वश्रेष्ठ फिल्म **राजपूत रमणी** (१९३६) थी। इस फिल्म के अलावा एक भी ऐसी फिल्म नहीं थी, जिसमें उन्हें अभिनय प्रतिभा दर्शाने का अवसर मिला हो। उस समय की ज्यादातर फिल्में नायिका प्रधान नहीं होती थीं।

नलिनी बहुमुखी प्रतिभा की धनी थी। अपनी मधुर आवाज में वे 'मीरा' के गीत गाती थीं। वे मराठी में गीत भी लिखा करती थीं। वे अच्छी चित्रकार भी थीं। वे मराठा समाज की एक सम्मानित अभिनेत्री थीं। यद्यपि उनका फिल्मी जीवन बहुत ही छोटा था। लेकिन, वे अच्छे परिवारों की लड़कियों को फिल्म में प्रवेश के लिए आदर्श उदाहरण बन गईं।



इसके बाद दो साल तक वह फिल्मों से दूर रही। नायिका के रूप में यह उसकी अंतिम फिल्म थी। १९४२ में 'आँख मिचौली' में वह नलिनी जयवंत के साथ सहनायिका के रूप में आई। कारदार के 'शाहजहाँ' में वह मुमताज महल की सहेली बनी। अपने जमाने में उसने स्वयं मुमताज महल की भूमिका की थी। सन् ४२ और ४७ के बीच सुलोचना को केवल चार फिल्मों में छोटे-छोटे रोल ही मिले।

गाने वाली नायिकाओं (सुरैया, खुर्शीद, नूरजहाँ) के आविर्भाव के साथ ही सुलोचना का सितारा अदृश्य हो गया। अँग्रेजों जैसे रूप रंग वाली सुलोचना ने गुलामी के दिनों के दर्शकों को अपने मोहपाश में बाँध रखा था, परन्तु भारतीय रजतपट पर नायिका के बदलते हुए स्वरूप के साथ वह कदम मिलाकर नहीं चल सकी।

अपनी निवृत्ति के ३७ वर्षों बाद उसे १९७९ में दादा फालके पुरस्कार लेने के लिए भारत सरकार ने निमंत्रित किया। उस समय तक सुलोचना अपनी स्मरण शक्ति खो चुकी थी। उन्हें यह भी नहीं याद था कि फिल्मों में कभी काम किया है। भारतीय सिनेमा की पहली 'स्टार' नायिका के सम्मान में सरकार ने निश्चित ही देर कर दी। अपना स्टार का दर्जा बनाए रखने के लिए सुलोचना ने फिल्मों से संन्यास लेने के बाद भी पैसा पानी की तरह बहाया और आखिरी दिन मुसीबतों में बिताए।

प्रमुख फिल्में: * लवर्स सेक्रिफाइस * वीरबाला (१९२५) * टेलीफोन गर्ल (१९२६) * सिनेमा क्वीन * टाइपिस्ट गर्ल * माधुरी (१९३२) * इन्दिरा एम.ए. * सुलोचना * अनारकली * बम्बई की बिल्ली * दया की देवी * पागल प्रेमी * दो घड़ी की मौज * जंगल की रानी * वाह री दुनिया।

इंदौर में जनमी थीं ललिता पवार

सुरेश ताम्रकर

सन् १९२८ की बात है। उन दिनों फिल्मों ने बोलना नहीं सीखा था। दस साल की एक बालिका जिसे प्यार से '**अम्बू**' कहते थे अपने माता–पिता के साथ छुट्टियाँ बिताने पुणे आती है। रात को वे आर्यन सिनेमा में '**रामायण**' फिल्म देखने जाते हैं। बालिका को ताज्जुब होता है, फिल्म के सभी पात्र हिलते–डुलते तो हैं मगर बोलते क्यों नहीं। इससे पहले उसने कभी फिल्म देखी नहीं थी। शो समाप्त होने पर वह जिज्ञासावश परदे के पीछे झाँक कर देखती है कि इतनी अच्छी उछलकूद करने वाले ये गूँगे कौन हैं और कहाँ छुपे हैं। मगर वहाँ सिवा एक चौकीदार के कोई नजर नहीं आता। वह लड़की चौकीदार से ही सवाल कर अपनी जिज्ञासा शांत करना चाहती है। चौकीदार उसे बताता है कि अगर इन गूँगों को प्रत्यक्ष देखना हो तो आर्यन फिल्म कंपनी में जाओ वहाँ सब मिल जाएँगे। दूसरे दिन वह लड़की कुछ सहेलियों के साथ आर्यन फिल्म कंपनी पहुँच जाती है।

एक विशाल परकोटे से घिरे आर्यन फिल्म कंपनी के बाड़े में उस समय किसी फिल्म की शूटिंग चल रही थी। कई बच्चे मुंडेर पर चढ़ कर बड़े कौतूहल से यह नजारा देख रहे थे। 'अम्बू' भी अपनी सहेलियों के साथ मुंडेर पर चढ़ जाती है। जब ये बच्चे अपनी शरारत के कारण कलाकारों के कार्य में व्यवधान डालने लगते हैं तो वहाँ का चौकीदार छड़ी से डरा कर उन्हें भगा देता है, लेकिन अम्बू नहीं भागती। हवा में लहराती चौकीदार की छड़ी अम्बू के हाथ पर पड़ जाती है। उसके कोमल शरीर से रक्त बहने लगता है। शूटिंग बंद हो जाती है और कलाकार उसकी मरहम पट्टी में लग जाते हैं, लेकिन उन्हें यह देख कर हैरानी होती है कि बालिका अपनी चोट से बेखबर बस उन्हें ही एक-टक घूरे जा रही है। आर्यन फिल्म कं. के हिस्सेदार एन.डी. सरपोत्दार अम्बू के साहस और जिज्ञासा से प्रभावित होकर उससे सवाल करते हैं–"तुम फिल्मों में अभिनय करोगी? अगर इच्छा हो तो अपने माता–पिता को लेकर कल आना।" और दूसरे दिन अम्बू आर्यन फिल्म कं. में तीन वर्ष के लिए अनुबंधित हो जाती है। उस समय उसे अठारह रुपए मासिक वेतन मिलता था।

'अम्बू' नाम की यह बालिका और कोई नहीं आज की सर्वश्रेष्ठ चरित्र अभिनेत्री **ललिता पवार** थी। ललिताजी का नाम सुन कर नई पीढ़ी के मानस पर एक ऐसी कर्कशा औरत की तस्वीर उभरती है जो सास के रूप में बहुओं पर जुल्म ढाती है, माँ बनती है तो बच्चों को डपट लगाती है और पत्नी बनती है तो परदे पर पति की नाक में दम कर देती है। लेकिन यह तो ललिताजी का आजादी के बाद का स्वरूप है। इससे पूर्व तो उन्होंने अनेक मूक और सवाक फिल्मों में हीरोइन की ग्लैमरस भूमिकाएँ निभाई हैं। उनकी पहली सवाक फिल्म **हिम्मत–ए–मर्द** में चंद्रराव के साथ उन्होंने बड़ी ग्लैमरस भूमिका की थी। टारजन शैली पर बनी इस फिल्म में ललिताजी को मृगचर्म की बिकिनी में पहचानना मुश्किल है।





असल में शूटिंग के दौरान एक हादसे ने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी। १९४६ में जब वे महज २८ वर्ष की थीं एक फिल्म की शूटिंग के समय भगवान (आज के हास्य कलाकार) को उनके गाल पर थप्पड़ मारने का दृश्य फिल्माया जा रहा था। भगवान ने थप्पड़ इतनी जोर से जड़ दिया कि उनके बाएँ कान से खून बहने लगा। शूटिंग चूँकि एक दूरस्थ ग्राम में चल रही थी इसलिए तुरंत चिकित्सा सहायता भी उपलब्ध नहीं हुई। दूसरे दिन जब बंबई लाया गया तो उनके बाएँ चेहरे पर पक्षाघात हो गया। तीन वर्ष तक बिस्तर पर रहने के बाद उन्होंने फिर फिल्मों में काम करना शुरु किया। लेकिन इस दुर्घटना ने उन्हें जवानी में चरित्र अभिनेत्री बना दिया।

आज भी परदे पर जब ललिताजी तैश में आकर बोलती हैं तो उनकी बाईं आँख कुछ छोटी हो जाती है। बावजूद इसके वे अपनी हर भूमिका को बेहद ईमानदारी से निभाती हैं। अभिनय के प्रति समर्पण की भावना इस बात से ही जाहिर होती है कि ललिताजी ने विवाह तो कर लिया लेकिन जीवन में माँ नहीं बनने की प्रतिज्ञा कर ली। क्योंकि वे बच्चों को आया के पास छोड़ने पर भरोसा नहीं करतीं और अगर खुद बच्चे पालने

◆◆◆

एक नारी के जितने भी रूप हो सकते हैं, ललिता पवार ने सबको सहज भाव से परदे पर पेश किया है। अपनी बहत्तर साल की उम्र में उन्होंने ८०० से अधिक फिल्मों में काम किया है। श्री ४२० फिल्म की केले वाली की उदारता को भला कोई कैसे भूल सकता है? अनाड़ी की मिसेज डिसूजा रह–रहकर याद आती हैं। ललिता पवार सिर्फ कर्कशा पत्नी या जल्लाद सास ही नहीं है, उनके शरीर में भी औरत का मोम–दिल धड़कता है।

में लग गईं तो अपने अभिनय के शौक को तिलांजलि देना पड़ती। ललिताजी के पति राजकुमार गुप्ता बिलियर्ड के खिलाड़ी हैं।

अपने ७२ साल के सफर में आपने कोई आठ सौ फिल्मों में विविध प्रकार की भूमिकाएँ कीं और आज भी सक्रिय हैं। कपूर खानदान की तो आप तीन पीढ़ियों के साथ काम कर चुकी हैं। पापा पृथ्वीराज और राजकपूर से लेकर बेटे चिंटू तक। एक बार 'दुनिया मेरी जेब में' के सेट पर उन्होंने चिंटू से कहा था बेटे जल्दी ब्याह करो ताकि मैं तुम्हारी चौथी पीढ़ी के साथ भी काम कर सकूँ। ललिताजी ने लगभग हर प्रकार की फिल्मों में काम किया है। चाहे वो धार्मिक हो या ऐतिहासिक, सामाजिक हो या फंतासी। स्टंट फिल्मों में तो उन्होंने बगैर डुप्लीकेट की मदद से घुड़सवारी जैसे जोखिम वाले दृश्य भी फिल्माए हैं और इस चक्कर में एक बार घोड़े से गिर कर चोट भी खाई है। उन्होंने १९३१ में सवाक फिल्मों में प्रवेश के बावजूद १९३४ तक मूक फिल्मों में भी कार्य जारी रखा। फिल्मों के



साथ-साथ वे रंगमंच से भी जुड़ी रहीं। रंगमंच पर उन दिनों प्रायः उनके अभिनय की तुलना हालीवुड की प्रसिद्ध तारिका डोलोरस डेलरिओ से की जाती थी।

ललिताजी ने एक बार पार्श्व गीत भी गाया था जो फिल्म में उन्हीं पर फिल्माया गया था। उनकी पहली वाक मराठी फिल्म 'ताकसेन राजपुत्र' १९३४ में बनी और पहली हिन्दी वाक फिल्म हिम्मते-ए-मर्द (लार्ड ऑफ जंगल) १९३५ में। ललिताजी को भावनात्मक दृश्यों में आँसू बहाने के लिए ग्लिसरीन की जरूरत नहीं पड़ती। वे अभिनय के वक्त इतनी भाव-विभोर हो जाती हैं कि आँसू खुद-ब-खुद लुढ़कते चले आते हैं। नई अभिनेत्रियों से उन्हें बस यही शिकायत है कि वे अभिनय पर कम और सजने-सँवरने पर ज्यादा ध्यान देती हैं। नई अभिनेत्रियों में वे श्रीदेवी को इसका अपवाद मानती हैं। १९३१ में उन्होंने कुछ समय बंगलोर में बिताया और कर्नाटक फिल्म कार्पोरेशन के साथ दक्षिण की फिल्मों में काम किया। वे संभवतः उत्तर की पहली नायिका थीं जिसने दक्षिण में जाकर अभिनय की परम्परा डाली।

'अमृत' में मास्टर विनायक के साथ उन्होंने एक हरिजन महिला की भूमिका निभाई थी। इसी तरह शांताराम की 'दहेज' में वे पृथ्वीराज कपूर के साथ आई थीं। इसके बाद शांताराम की ही 'परछाइयाँ' में उनकी भूमिका अविस्मरणीय है। राजकपूर की फिल्म श्री ४२० की केलेवाली को भला कौन भूल सकता है। अनाड़ी में राजकपूर के साथ मिसेस डीसूजा आज भी याद आती हैं। प्रभात की 'रामशास्त्री' में आनंदीबाई भी सदैव याद की जाएँगी। हाल ही रामानंद सागर की रामायण में उन्होंने मंथरा की भूमिका निभा कर छोटे परदे पर भी अपनी धाक जमा दी और भगवान (राम) को चौदह बरस के वनवास पर भेज कर अपने थप्पड़ का बदला ले लिया। ऐसा नहीं है कि उनके अभिनय की कद्र न हुई हो। छोटे-बड़े कई पुरस्कारों से उनकी झोली भरी हुई है। १९६१ में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार देकर सम्मानित किया था। अनेक बार उन्हें फिल्म फेयर व अन्य पुरस्कार भी मिले हैं।

ललिताजी निर्देशकों के रूप में वी. शांतारामजी का बड़ा आदर करती हैं। उन्होंने फिल्मों में अभिनय के अलावा निर्माण भी किया है। उनके द्वारा निर्मित पहली मूक फिल्म थी **'कैलास'**। इस फिल्म में उनके सहयोगी निर्माता थे गणपत। इस फिल्म में ललिताजी ने नायिका, खलनायिका और माँ की तिहरी भूमिका निभाई थी। हिम्मत-ए-मर्द १९३५ भी आपने ही बनाई थी। इसके बाद बनाई 'दुनिया क्या है' (१९३६)। यह तालस्ताय की कहानी पर आधारित थी और काफी सफल रही। ललिताजी द्वारा अभिनीत कुछ सफल फिल्मों में गृहस्थी अनाड़ी, दाग, पतिता, दहेज, परछाइयाँ, मन की आँखें, प्रोफेसर, बहूरानी और घराना, जंगली के नाम उल्लेखनीय हैं। ललिताजी का जन्म १८ अप्रैल १९१८ को इंदौर में हुआ था।



देविका रानी

भारतीय

बॉम्बे टॉकीज की **"अछूत कन्या"** मेरे दर्शक जीवन की पहली फिल्म थी। 'अछूत कन्या' के पहले एक-दो फिल्में और भी देखी थीं, इतना भर याद है। पर 'अछूत कन्या' तो ऐसे लगता है जैसे कल या परसों ही देखी हो। हालाँकि उसे पहली बार देखे लगभग चौवन साल बीत चुके हैं। कितना सुखद संयोग है कि 'अछूत कन्या' के नायक अशोक कुमार तथा नायिका देविका रानी आज भी हमारे बीच हैं।

इन चौवन सालों में एक से एक खूबसूरत, प्रतिभासंपन्न तथा सुसंस्कृत महिलाएँ हिंदी फिल्मों में जगमगाई हैं। इन्होंने हिंदी सिनेमा को अपने अभिनय, व्यक्तित्व तथा सौंदर्य से नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। इन सबका हिंदी फिल्मों के इतिहास में ऊँचा स्थान है। पर जो स्थान देविका रानी ने हिंदी फिल्मों में बनाया, वैसा कोई और नहीं बना सका।

उन्नीस सौ तैंतीस में, मुख्यतः लंदन में, हिमांशु राय की इंडो-इंटरनेशनल टॉकीज लिमिटेड के बैनर तले बनी अँगरेजी फिल्म **'कर्म'** ने देविका रानी को रुपहले पर्दे की रानी बनाया। हिमांशु राय द्वारा बंबई के मलाड उपनगर में सन् १९३४ में स्थापित फिल्म निर्माण कंपनी बॉम्बे टॉकीज की पहली फिल्म 'जवानी की हवा' में देविका रानी नजमुल हुसैन के साथ पर्दे पर आईं। फिर बनी **'जीवन नैया'** जिसमें अशोक कुमार तथा देविका रानी पहली बार नायक तथा नायिका के रूप में आए। 'अछूत कन्या' (१९३६) अशोक कुमार तथा देविका रानी की दूसरी फिल्म थी और वह हिंदी सिनेमा का मील का पत्थर बन गई। सन् १९४३ में देविका रानी अंतिम बार पर्दे पर आईं-बॉम्बे टॉकीज की 'हमारी बात' में। अभिनेत्री के रूप में देविका रानी १९३३ से १९४३ तक महज दस साल तक पर्दे पर रहीं। पर इन दस वर्षों में वे बराबर शीर्ष पर ही रहीं। यह साधारण उपलब्धि नहीं है।

आज हेमा मालिनी को फिल्मी दुनिया की 'ड्रीम गर्ल' (स्वप्न सुंदरी) कहा जाता है। लेकिन फिल्मी इतिहासकारों के अनुसार देविका रानी भारतीय सिनेमा की पहली 'ड्रीम गर्ल' थीं। यह खिताब पहली बार देविका रानी को दिया गया था तीस के दशक में। अपने जमाने में नर्गिस को 'फर्स्ट लेडी ऑफ द इंडियन स्क्रीन' की उपाधि दी गई। लेकिन पहली 'फर्स्ट लेडी ऑफ द इंडियन स्क्रीन', यानी, भारतीय चित्रपट की पहली पटरानी होने का श्रेय भी देविका रानी को ही जाता है। 'कर्म' के प्रदर्शन के बाद से ही उन्हें 'फर्स्ट लेडी ऑफ द इंडियन स्क्रीन' का सम्मान

रजतपट की पटरानी

रनवीर सक्सेना

प्रदान कर दिया गया था। एक साथ 'ड्रीम गर्ल' तथा 'फर्स्ट लेडी' कहना इस बात का प्रमाण है कि देविका रानी अपने जमाने की असाधारण नायिका थीं। दरअसल, देविका रानी के जीवन में साधारण नाम की कोई चीज न पहले थी और न आई है। असाधारण सौंदर्य, असाधारण अभिनय क्षमता, असाधारण कला-बोध तथा असाधारण व्यक्तित्व की धनी अस्सी वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के बाद भी देविका रानी विलक्षण रूप से जीवंत, सक्रिय, जागरूक तथा ज्योतिर्मय हैं।

देविका रानी चौधरी का जन्म दक्षिण भारत में आंध्रप्रदेश के वाल्टेयर नगर में हुआ था। उनके पिता कर्नल एम.एन. चौधरी ऊँचे बंगाली खानदान के सुसंस्कृत व्यक्ति थे, जो बाद में मद्रास में सर्जन-जनरल पद पर नियुक्त हुए। ननिहाल की ओर से वे बंगाल के ठाकुर परिवार से जुड़ी थीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनके नाना लगते थे। नौ वर्ष की अल्पायु में ही देविका रानी को शिक्षा के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया। यहाँ उन्होंने कुछ वर्ष रॉयल अकादमी ऑफ ड्रामेटिक आर्ट (नाट्य कला की शाही अकादमी) में विधिवत अभिनय कला का अध्ययन किया। इंग्लैंड में ही देविका रानी ने वास्तुकला में डिप्लोमा हासिल कर वास्तुविद बनने का विचार किया। ब्रूस वुल्फ नाम के फिल्म निर्माता ने देविका रानी की वास्तुशिल्प संबंधी योग्यता देखकर उन्हें अपनी कंपनी में डिजाइनर के पद पर नियुक्त कर दिया।

हिमांशु राय उन दिनों इंग्लैंड में ही थे। कलकत्ता तथा शांति निकेतन में उच्च शिक्षा प्राप्त हिमांशु राय, महात्मा गाँधी तथा रवीन्द्रनाथ से प्रभावित थे। आदर्शवाद से प्रेरित हिमांशु राय भारत को विश्व के फिल्मी नक्शे पर स्थान दिलाने को आतुर थे। ब्रूस वुल्फ ने हिमांशु राय के साथ मिलकर अँगरेजी भाषा में **'थ्रो ऑफ डाइस'** नाम से एक फिल्म की शुरूआत की। यहीं देविका रानी चौधरी की मुलाकात हिमांशु राय से हुई। दोनों में आयु का काफी अंतर होने के बावजूद, प्रेम के अंकुर फूटते देर नहीं लगी। उन्नीस सौ उनतीस में वे विवाह बंधन में बँध गए और देविका रानी चौधरी, देविका रानी राय बन गईं। नव-दंपति ने अपना हनीमून (मधु मास) जर्मनी में मनाया। जर्मनी में रहकर देविका रानी ने विश्वविख्यात फिल्म टैक्नीशियनों से फिल्म शिल्प का ज्ञान प्राप्त किया। जर्मनी में उन्होंने प्रख्यात रंगमंच विशेषज्ञ तथा निर्माता मैक्स राइनहार्ट से मंच कला की शिक्षा ली।

मैथ्यू अर्नाल्ड की प्रख्यात कविता 'लाइट ऑफ एशिया' के आधार पर इसी नाम की अवाक फिल्म बनाकर हिमांशु राय इंग्लैंड में नाम कमा चुके थे। **गौतम बुद्ध के जीवन पर निर्मित लाइट ऑफ एशिया को बादशाह जार्ज पंचम तथा महारानी मेरी ने एक विशेष प्रदर्शन में देखा था और फिल्म में गौतम बुद्ध बने हिमांशु राय के अभिनय तथा फिल्म निर्माण की गरमजोशी से प्रशंसा की थी।** यह फिल्म लंदन में लगातार नौ महीने चली थी। यह १९२६ की बात है। फिर हिमांशु राय ने 'शिराज' तथा 'थ्रो ऑफ डाइस' नामक फिल्में बनाई, जिन्होंने इंग्लैंड तथा योरप में नाम और पैसा कमाया। इसके बाद आया सवाक् फिल्मों का क्रांतिकारी जमाना। अँगरेजी भाषा में 'कर्म' बनाकर हिमांशु राय ने यह सिद्ध कर दिया कि बोलपट पर उनका उतना ही अधिकार है, जितना मूकपट पर था। 'कर्म' के नायक स्वयं हिमांशु राय थे और नायिका थीं उनकी पत्नी देविका रानी। 'कर्म' को किसी भारतीय द्वारा निर्मित पहली अँगरेजी सवाक फिल्म होने का गौरव प्राप्त है।

'कर्म' में देविका रानी पहली बार रुपहले पर्दे पर आईं। उनके व्यक्तित्व ने इंग्लैंड को किस कदर सम्मोहित किया, यह उन समीक्षाओं से उजागर होता है जो उस समय लंदन तथा बर्मिंघम नगरों के प्रमुख समाचार पत्रों में प्रकाशित हुईं। लंदन के **मार्निंग पोस्ट** ने लिखा,





देविका रानी और हिमांशु राय फिल्म कर्म (१९३३) में

"इसमें जरा भी शक नहीं कि 'कर्म' की नायिका देविका रानी सवाक् फिल्मों की श्रेष्ठतम तारिकाओं में हैं।" **बर्मिंघम पोस्ट** ने कहा– "इस बारे में दो रायें नहीं हो सकतीं। उनके (देविका रानी में) अभिनय में ऐसा गीतात्मक लालित्य तथा सम्मोहन है जिसने एक सरल पटकथा को अद्भुत सौंदर्य की वस्तु बना दिया है। वे स्वयं पर्दे पर आने वाली सबसे सुंदर नारी हैं।" लंदन के **'द स्टार'** ने एक कदम आगे बढ़कर कहा, "जाकर मिस देविका रानी द्वारा बोली गई अँगरेजी सुनिए। आपको न तो इससे बेहतर आवाज सुनने को मिलेगी और न इससे बेहतर चेहरा देखने को मिलेगा। देविका रानी का बेमिसाल सौंदर्य लंदन को चकाचौंध कर देगा।" 'कर्म' देखकर भारत-कोकिला सरोजनी नायडू ने जो कुछ कहा, वह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा, "मैं 'कर्म' को एक साहसपूर्ण प्रयास ही नहीं, बल्कि एक उल्लेखनीय उपलब्धि मानती हूँ। यह चित्र अपने आप मे एक ओर निर्माता हिमांशु राय के विलक्षण साहस, कल्पनाशीलता, धैर्य तथा सूझबूझ की प्रशस्ति है, वहीं दूसरी ओर वह फिल्म की नायिका, उस सुंदर तथा प्रतिभासंपन्न कृषकाय नारी, देविका रानी, की प्रशस्ति है, जो नाटक के हृदयस्थल से रोमांस के जादुई फल के रूप में कुसमित होती प्रतीत होती है।"

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, 'कर्म' की सफलता ने देविका रानी को 'द फर्स्ट लेडी ऑफ द इंडियन स्क्रीन' बना दिया। देविका रानी फिल्म की मायानगरी की पटरानी बन गईं।

जैसे हिमांशु राय तथा देविका रानी की फिल्म 'कर्म' एक सीमाचिह्न थी, उसी प्रकार बॉम्बे टॉकीज की तीसरी फिल्म अछूत कन्या भी एक

सीमाचिह्न थी। फिल्म शिल्प की दृष्टि से अछूत कन्या अत्यंत परिपक्व तथा समन्वित फिल्म थी। हिमांशु राय जर्मन टैक्नीशियन तथा श्रेष्ठतम उपकरण अपने साथ लाए थे। इनके संयोग से 'अछूत कन्या' का फिल्म शिल्प अन्य भारतीय फिल्मों से बहुत ऊपर उठा हुआ था। जर्मन निर्देशक फ्रैंज आस्टिन के मार्गदर्शन में फिल्म का अभिनय पक्ष उभर आया। अशोक कुमार ने अभी फिल्मी दुनिया में कदम रखा ही था और 'अछूत कन्या' उनकी दूसरी ही फिल्म थी। इसलिए उनके अभिनय में नौसिखियापन जहाँ-तहाँ झलक जाता था। यह साफ लगता था कि वे अभिनय कर रहे हैं। लेकिन देविका रानी का अभिनय प्राकृतिक और परिष्कृत था। अभिजात कुल की सुशिक्षित शहरी लड़की होने पर भी देविका रानी ने गाँव की गरीब हरिजन लड़की (कस्तूरी) की भूमिका इतनी सफलता से निभाई कि रातोंरात वे 'ड्रीम गर्ल' बन गई। मद्रास के अँगरेजी दैनिक 'हिन्दू' का कहना है कि 'अछूत कन्या' देविका रानी की श्रेष्ठतम फिल्म थी। इस मत से बहुत लोग सहमत होंगे। यह उल्लेखनीय है कि यह सीमाचिह्न फिल्म सिर्फ ९० दिनों में बनकर तैयार हो गई थी।

'अछूत कन्या' को सीमाचिह्न फिल्म माने जाने का एक सामाजिक कारण भी था। गाँधीवाद से प्रभावित इस फिल्म ने हरिजन-सवर्ण प्रेम की कहानी पर्दे पर उतारी थी। कस्तूरी (देविका रानी) रेलवे के हरिजन गेटमैन की बेटी थी। उसका प्रेम हुआ गाँव के संपन्न ब्राह्मण परिवार के बेटे प्रताप (अशोक कुमार) के साथ। जाति और धर्म की दीवार कस्तूरी तथा प्रताप के बीच आ



प्रशंसकों के पत्रों से खुश देविका रानी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी उन्हें प्रशंसा पत्र लिखा था।

खड़ी होती है। दोनों के माता-पिता उनकी भावनाओं के खिलाफ उनके विवाह करवा देते हैं। लेकिन एक दिन कस्तूरी के पति और प्रताप में ठन जाती है। दोनों लड़ते-लड़ते पटरियों पर आ जाते हैं। उन्हें बचाने की कोशिश में कस्तूरी रेल से कट मरती है। जातिभेद की वेदी पर बलिदान की यह कहानी फ्लैश-बैक में पर्दे पर आती है। जिस रेलवे समपार पर कस्तूरी ने अपने प्रेमी की जान बचाने के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए थे, उसके पास एक शिला पर यह वाक्य उत्कीर्ण कर लगवाया गया—"उसने अपनी जान दी, दूसरों की जान बचाने के लिए।" कहानी इसी आलेख से शुरू होती है और इसी आलेख पर फोकस डालकर समाप्त हो जाती है।

तीस के दशक में बनी 'अछूत कन्या' सामाजिक दृष्टि से क्रांतिकारी फिल्म थी। उस पर गाँधीजी का प्रभाव स्पष्ट था। अच्छे सामाजिक आदर्श के साथ अच्छे अभिनय, अच्छे संगीत, साफ सुथरी फोटोग्राफी तथा स्वाभाविक एवं सहज हिंदी संवादों ने अछूत कन्या को लोकप्रियता की चोटी पर पहुँचा दिया। कहा जाता है कि अछूत कन्या देखकर जवाहरलाल नेहरू ने देविका रानी को प्रशंसा का वैसा भावनात्मक पत्र लिखा था जैसा कि एक दर्शक आमतौर पर अपनी चहेती तारिका को लिखा करता है। संभव है कि इसी कारण २५ अगस्त १९३६ को बंबई में मौजूद कांग्रेस कार्यकारिणी के कुछ सदस्यों ने एक विशेष शो में 'अछूत कन्या' को रॉक्सी सिनेमा में देखा। इन नेताओं में पंडित जवाहरलाल नेहरू के अलावा सरदार वल्लभभाई पटेल, आचार्य नरेन्द्रदेव तथा श्रीमती सरोजनी नायडू भी शामिल थे। यह 'अछूत कन्या' की सामाजिक धर्मिता के साथ हिमांशु राय के फिल्म शिल्प तथा देविका रानी के व्यक्तित्व को राष्ट्रनेताओं की उच्चतम श्रद्धांजलि थी।

उन्नीस सौ तैंतीस तथा उन्नीस सौ तैंतालीस के बीच देविका रानी ने सोलह फिल्मों में काम किया। उनकी पहली फिल्म 'कर्म' में हिमांशु राय

सीता की छाया-प्रति : शोभना समर्थ

बैंकर पी. एस. शिलोत्री की एकमात्र पुत्री सरोज विवाह के बाद शोभना समर्थ के नाम से **'विलासी ईश्वर'** (१९३४) नामक फिल्म में प्रथम बार आई। ऊँचे और पढ़े-लिखे खानदान की दुर्गा खोटे ने फिल्मों में प्रवेश कर शोभना का मार्ग आसान कर दिया था। पिता शिलोत्री की मृत्यु के



बाद मामा जयंत ने ही शोभना (सरोज) को सहारा दिया था। इन्हीं मामा जयंत की पुत्री नलिनी जयवंत भी एक बहुत सफल सितारा बाद में बनी। इसके बाद गुजराती हिन्दी द्विभाषी चित्र **'दो दीवाने'** में शोभना ने मोतीलाल के साथ काम किया और इनकी मित्रता जीवनभर कायम रही। अभिनय जीवन के प्रारंभ में ही शोभना ने दो वर्ष का संन्यास लिया—नूतन को जन्म देने के लिए। लौटते ही **'कोकिला'** फिल्म में काम किया, जो सफल रही। इसके बाद 'पति-पत्नी' में काम किया। उन दिनों 'वाडिया' वाले केवल एक्शन फिल्म ही बनाते थे, परंतु शोभना समर्थ को लेकर उन्होंने एक सामाजिक फिल्म बनाई—**"शोभा"**।

सन् १९४१ में विजय भट्ट **'भरत मिलाप'** का निर्माण कर रहे थे। विजय भट्ट ने 'भरत मिलाप' में सीता की भूमिका में शोभना समर्थ को लिया। 'भरत मिलाप' में सीता की भूमिका छोटी थी, परंतु शोभना ने अच्छा प्रभाव पैदा किया। विजय भट्ट ने १९४३ में **'राम-राज्य'** बनाई, जिसमें शोभना ने फिर सीता की भूमिका अभिनीत की। राम-राज्य उस युग की सफलतम फिल्म थी। कहा जाता है कि महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में एकमात्र यही फिल्म देखी थी। इसके बाद हर पौराणिक फिल्म में शोभना को लिया गया। प्रेम अदीब (राम) और शोभना समर्थ (सीता) के कैलेंडर बने और राम-सीता की यह छबि लोगों के अंतर्मन में पैठ गई। १९४९ में 'रामबाण' और १९५० में रामविवाह में भी वे सीता बनीं। पौराणिक फिल्मों पर शोभना का राज्य स्थापित हो चुका था।

पृथ्वीराज के साथ शोभना ने 'नल-दमयंती' में सफलता पाई। अभिनय की दृष्टि से शोभना की सफलतम फिल्म थी, किशोर साहू की **"वीर कुणाल"**, जिसमें शोभना ने सम्राट अशोक की पत्नी तिष्यरक्षिता की भूमिका की जो अपने सौतेले पुत्र कुणाल से प्रेम करने लगती है। उद्योग की 'सीता' ने इस दारुण भूमिका को कुशलता से निबाहा, परंतु सती सावित्री सीता के अभ्यस्त दर्शकों ने इसे नापसंद किया।

सन् १९५० के बाद फिल्म दृश्य में परिवर्तन हुआ और पौराणिक फिल्में बनना बंद हो गईं। शोभना भी अपनी पुत्रियों नूतन और तनूजा के लालन-पालन में लग गईं। नूतन को पर्दे पर प्रस्तुत करने के लिए शोभना ने 'हमारी बेटी' फिल्म बनाई, फिर तनूजा के लिए 'छबीली' का निर्माण भी किया।

नायक थे। बाद की फिल्मों में नजमल हुसैन, अशोक कुमार, किशोर साहू, रामा शुक्ल और जयराज नायक बने। १९४३ में बनी 'हमारी बात' देविका रानी की अंतिम फिल्म थी। इसके बाद वे फिल्मों में नहीं आईं।

यह बात ध्यान खींचे बिना नहीं रहती कि इन दस वर्षों में बनी सोलह फिल्मों में देविका रानी की अभिनय कला का बराबर निखार होता गया। केवल दस वर्षों तक फिल्मों में आने के बावजूद देविका रानी ने अपनी कला, सौंदर्य तथा व्यक्तित्व के द्वारा फिल्म जगत पर जो जादू किया था वह कम से कम पुरानी पीढ़ी पर आज भी बरकरार है।

हिमांशु राय की १९४० में आकस्मिक मृत्यु के बाद देविका रानी ने पुराने सहयोगियों की मदद से बॉम्बे टॉकीज को चलाया। हिमांशु राय के अवसान के बाद बॉम्बे टॉकीज ने नौ फिल्में बनाईं। इनमें से पुनर्मिलन, बंधन, कंगन, झूला, वसंत और किस्मत अत्यंत सफल हुईं। 'किस्मत' ने तो कलकत्ता के एक सिनेमाघर में चार वर्ष लगातार चलकर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था। हिमांशु राय की मृत्यु के पाँच वर्ष बाद (१९४५ में) देविका रानी बॉम्बे टॉकीज से अलग हो गईं। १९५२ में हिमांशु राय-देविका रानी की बॉम्बे टॉकीज ने फिल्में बनाना बंद कर दिया। यह पूछे जाने पर कि जब बॉम्बे टॉकीज की फिल्में टिकट खिड़की पर सोना बरसा रहीं थी,तो वे बॉम्बे टॉकीज से बाहर क्यों हो गईं, देविका रानी ने कहा कि "पैसे कमाना बॉम्बे टॉकीज का एकमात्र लक्ष्य नहीं था। हिमांशु राय ने यह जरूर सिखाया था कि अगर फिल्मों को अपने पैरों पर खड़ा होना है तो उन्हें व्यावसायिक दृष्टि से आकर्षक होना चाहिए। किंतु यह सफलता कतिपय कलात्मक मूल्यों की बलि देकर हासिल नहीं की जाना चाहिए।" देविका रानी ने आगे कहा, "जिस पल मुझे लगा कि मैं इन मूल्यों की रक्षा नहीं कर सकती, उसी पल मैंने बॉम्बे टॉकीज छोड़ने और फिल्म निर्माण से निवृत्त होने का फैसला कर लिया।"

सन् पैंतालीस में देविका रानी ने रूसी मूल के भारतीय चित्रकार स्व्यातोस्लाव रोएरिख से शादी की और कला तथा संस्कृति के नए जीवन में प्रवेश किया। देविका रानी तथा रोएरिख पहले हिमाचल प्रदेश में कुलू में रहते थे। आजकल वे बंगलौर के निकट तत्गुनी ग्राम में अपने फॉर्म में रहते हैं। उनके कोई संतान नहीं है। उनका दो वृद्धजनों का छोटा-सा परिवार है। रोएरिख दंपति आपस में जर्मन भाषा में बात करते हैं। हालाँकि देविका रानी को बंगला, हिंदी, अँगरेजी तथा फ्रेंच सहित अनेक भाषाएँ आती हैं।

भारत सरकार द्वारा स्थापित दादा साहेब फालके सम्मान १९६९ में सर्वप्रथम देविका रानी को प्रदान किया गया। इसके पूर्व १९५८ में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया जा चुका था।

फिल्म जगत से हटने के बाद से देविका रानी शिक्षा, कला तथा संस्कृति के क्षेत्रों में कितनी व्यस्त रही हैं, इसका अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि अनेक वर्षों तक वे भारत सरकार के दृश्य-श्रव्य शिक्षा मंडल की सदस्य रहीं, संगीत नाटक अकादमी तथा ललित कला अकादमी की सदस्य रहीं। राष्ट्रीय हैंडीक्राफ्ट्स बोर्ड तथा इंडियन काउंसिल फॉर कल्चरल रिलेशंस की सभासद रहीं। १९७८ में उन्हें बल्गारिया ने सम्मान पदक प्रदान किया। १९८१ में उन्हें चलचित्र जगत की सेवाओं के लिए इंडियन अकादमी ऑफ मोशन पिक्चर द्वारा स्थापित विशेष तमगा श्रीमती इंदिरा गाँधी ने प्रदान किया। देविका रानी शायद एकमात्र ऐसी तारिका हैं जिन्हें देश ने रुपहले पर्दे से हट जाने के लगभग आधी शताब्दी बाद भी याद रखा है और हर संभव सम्मान से उनकी आरती उतारी है।

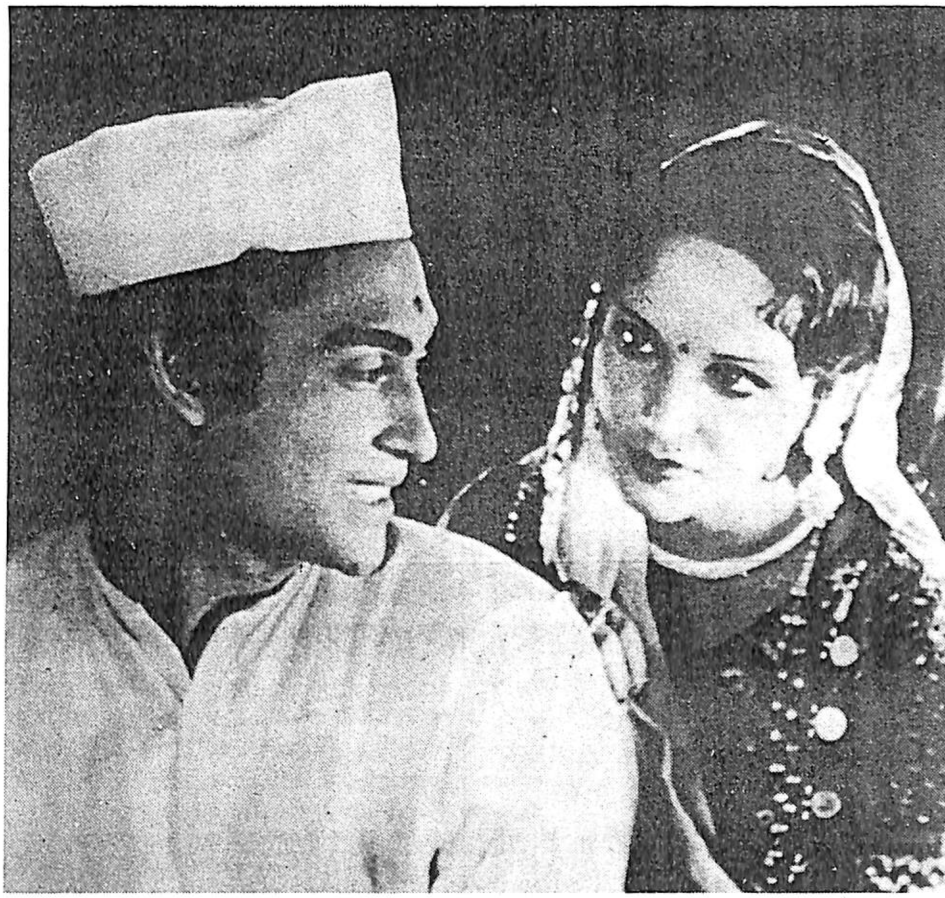
पाँच वर्ष पूर्व फिल्म पत्रकार राजू भारतन ने बंगलोर जाकर देविका रानी से लंबी मुलाकात ली थी। यह मुलाकात बंबई से प्रकाशित अँगरेजी साप्ताहिक द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया में प्रकाशित हुई थी (२८ जुलाई १९८५)। शायद ही किसी और पत्रकार ने देविका रानी को इतने निकट से देखने-समझने की कोशिश की हो, जितनी राजू भारतन ने भारतीय चित्रपट की पहली पटरानी को समझने के लिए की। इस मुलाकात के कुछ अंश प्रस्तुत हैं :–

* हिमांशु राय दूसरों से बिलकुल भिन्न थे। वे स्वप्नदृष्टा होने के साथ ही निर्माणकर्ता भी थे (जवाहरलाल नेहरू की भाँति)। बॉम्बे टॉकीज उन्हीं का सपना था। बॉम्बे टॉकीज को भी फिल्म नगरी बनाना चाहते थे। हॉलीवुड की भाँति। लेकिन अपना सपना पूरा करने के पूर्व ही उनका देहावसान हो गया।

* सब कला योग है। सब अभिनय योग है।

* अशोक कुमार के साथ (आठ फिल्मों में) काम करना अत्यंत सुखद था। वे कुशाग्र बुद्धि थे और समझने में उन्हें देर नहीं लगती थी। उनका अभिनय का तरीका पूर्णतः स्वाभाविक था। अशोक में वे लक्षण थे, जो अच्छे अभिनेता की पहचान होते हैं।

* दिलीप कुमार और अशोक कुमार की मैं तुलना नहीं करूँगी, क्योंकि ये कलाकार एक-दूसरे से बिलकुल जुदा हैं। अशोक कुमार हमेशा सहज तथा बेफिक्र रहते थे। दिलीप कुमार चिंतक थे। उनका अपना व्यक्तित्व था। अपना अलग सम्मोहन था।



अछूत कन्या (१९३६) में अशोक कुमार–देविका रानी

* जीवन की सीढ़ी पर इतने ऊपर चढ़कर मैंने अपने को अतीत से दूर करना सीख लिया। नहीं, मैं बीते दिनों के लिए शोक नहीं करती। यह शोक तब है, जब हम वर्तमान से असंतुष्ट होते हैं। मैं वर्तमान से संतुष्ट हूँ और हमेशा आगे की ओर देखने में भरोसा करती हूँ।

* अपने देश की जनता में मुझे पूरा भरोसा है। आप उन्हें अच्छी फिल्में देंगे तो वे उन पर टूट पड़ेंगे।

देविका रानी का बहुआयामी, सक्रिय तथा सकारात्मक व्यक्तित्व मुझे आज भी वैसे ही आकर्षक लगता है, जैसे चौवन वर्ष पूर्व अछूत कन्या पहली बार देखने पर लगा था। ■

टालीगंज की चर्चाएँ आज भी कानन देवी के ईर्द-गिर्द घूमती हैं

गोपा चक्रवर्ती

◆◆◆

परिस्थितियों ने कानन बाला पर इतना दबाव डाला कि दस साल की मासूम उम्र में मजबूर होकर उसे फिल्मों में काम करना पड़ा, ताकि पेट की आग बुझाई जा सके। उसके सौंदर्य को देख फिल्म वाले काम देते थे। एक रोल के बदले में २५ रुपए पारिश्रमिक मिलता था, जिसमें से २० रुपए दलाल रख लेता था। तीस के दशक की इस गायिका-नायिका ने सही अर्थों में दर्शकों के दिलों पर राज किया है। विद्यापति फिल्म से कानन देवी को अपार लोकप्रियता मिली, जो मुक्ति, साथी, स्ट्रीट सिंगर तथा जवाब फिल्म के माध्यम से सीढ़ियाँ चढ़ती चली गईं। समाज की चुनौतियों पर अपने साहसी व्यक्तित्व से उन्होंने विजय पाई और भद्रलोक ने उन्हें कानन बाला से कानन देवी के रूप में स्वीकार किया। कानन देवी ने श्रीमती पिक्चर्स तथा कलकत्ता मूवीटोन नामक संस्थाएँ गठित कर फिल्म निर्माण भी किया है। शरत बाबू के कई उपन्यासों को रजतपट पर प्रस्तुत करने का श्रेय उन्हें है। उनके दीर्घ एवं सार्थक योगदान के लिए १९७७ का दादा साहेब फालके अवार्ड कानन देवी का सही सम्मान करता है।

कानन देवी यानी एक ऐसी अभिनेत्री जिन्होंने अपने आवेगमय अभिनय और मधुर कंठस्वर के कारण अन्य नायिकाओं को अपने आसपास आने का मौका ही नहीं दिया। उस युग में चंद्रावती देवी ने अपने उग्र ग्लैमर और बौद्धिक अभिनय की वजह से अपना एक खास मुकाम बना रखा था। वे गायन कला में भी माहिर थीं। उमा शशि, मलिना देवी, छाया देवी, मेनका देवी, जमुना देवी सभी अत्यंत सुंदरी न होते हुए भी अच्छी अभिनेत्रियाँ थीं। ये सब गाती भी थीं, लेकिन फिर भी इनमें से कोई भी कानन देवी से आगे निकलने की बात जाने दीजिए, उनके बराबर तक नहीं आ सकीं। दरअसल गायन के मामले में कोई भी अभिनेत्री कानन देवी जैसी लोकप्रियता अर्जित नहीं कर पाई। यह उनका बहुत बड़ा गुण था। इस प्रसंग में यह बहुत आश्चर्य की बात है कि गायन में जिन्हें इतनी ख्याति मिली हुई थी वो फिल्म और रेकॉर्डिंग के अलावा बाहर कहीं गाने के लिए बहुत ही कम राजी हुआ करती थीं। श्रोताओं के सम्मुख अपना गायन पेश करना उन्हें अच्छा ही नहीं लगता था।

कानन देवी अत्यंत साधारण निम्न मध्य वर्ग के परिवार की लड़की थीं। दरिद्रता और भूख को मिटाने के लिए ही बहुत कम उम्र में उन्होंने फिल्मोद्योग का दरवाजा खटखटाया था। सन् १९२६ में 'जयदेव' फिल्म से उन्होंने अपना फिल्म कैरियर शुरू किया। तब फिल्में बोलती नहीं थीं। इसके पाँच साल बाद जब वो बच्ची से किशोरी बन चुकी थीं, उन्होंने 'ऋषिप्रेम' नामक जिस फिल्म में काम किया था, उसमें उनकी आवाज थी। १९३१ में प्रदर्शित इस फिल्म के बाद कानन देवी ने फिर पीछे मुड़ कर नहीं देखा। एक के बाद एक दर्जनों फिल्मों में उनके अभिनय का रंग इस कदर बिखरा कि दर्शक पूरी तरह से उसमें सराबोर हो गए। इस पर उनके सुरीले कंठ ने सोने पे सुहागे का काम किया, जिसके लय पर दर्शक वर्षों तक झूमते रहे। खुद मिलनसार न होने के कारण स्टूडियो के विविध रंगी परिवेश में वे अपने आपको काफी असहाय महसूस करती थीं। इसलिए उन्हें कई तरह के अनाचार और शोषण का शिकार होना पड़ा था। लेकिन उच्चाभिलाषी मन की दृढ़ता की वजह से वे इन काँटों को उखाड़ फेंक कर लक्ष्य की ओर बढ़ती चली गई। इसीलिए आगे चल कर वे भरपूर प्रतिष्ठा तथा मान-सम्मान की अधिकारी हो सकीं।

ध्रुपद संगीत की तरफ विशेष ध्यान न देने के बावजूद भी कानन देवी के गीतों का एक अद्भुत आकर्षण था। वे फिल्म और रेकॉर्ड के लिए साधारणतया बंगला गाना गाती थी। उन्होंने काफी हिन्दी गीत भी गाए हैं। शुरू से ही सुन कर गाना गाने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। राधा फिल्म्स कंपनी में रहने के दौरान लखनऊ के उस्ताद अल्लारक्खा से उन्होंने कुछ दिनों तक संगीत की तालीम ली थी। उसी समय उस्ताद की सलाह पर गाने के ताल-लय को ठीक रखने के लिए उन्होंने कुछ दिनों तक तबला बजाना भी सीखा, लेकिन फिल्मों में व्यस्त हो जाने की वजह से ध्रुपद संगीत की पूरी जानकारी लेना उनके लिए संभव नहीं हो सका। राधा फिल्म्स के प्रमुख



संगीत निर्देशक अनाथ बोस और मृणालकांति घोष के सुर और निर्देशन में गाना गाकर कानन देवी ने उसी समय काफी प्रशंसा अर्जित की। इसके कुछ दिनों बाद मेगाफोन रेकॉर्ड कंपनी के जे.एन. घोष के उत्साहवर्धन पर कानन देवी मेगाफोन कंपनी के ट्रेनर भीष्मदेव चटर्जी के पास गई। उन्होंने उनसे ही विशिष्ट शैली के बंगला गानों की शिक्षा ली। इसी दौरान उनके गाए कई गाने, जैसे "निशीथ राते के जानो" और "भूले जदि ओगो प्रिय" सुनते ही मन में अद्भुत आनंद की अनुभूति होती है। राधा फिल्मस् की 'श्री गौरांग', 'माँ', 'मानमयी गर्ल्स स्कूल', 'कंठहार', 'कृष्ण सुदामा' आदि फिल्मों में अभिनय करके ही कानन देवी ने अभिनय और गाने में काफी प्रसिद्धि अर्जित की थी।

उन्हीं दिनों न्यू थिएटर्स के प्रथमेश बरूआ अपनी अगली फिल्म **'देवदास"** में पार्वती की भूमिका को निभाने के लिए कानन देवी की सहमति लेने गए। प्रथमेश बरूआ जैसे विख्यात और गुणी कलाकार की तरफ से ये दुर्लभ आफर मिलने पर कानन देवी खुशी से फूली नहीं समाई थीं। लेकिन राधा फिल्मस् में अनुबंध का समय पूरा न होने की वजह से उन्हें और प्रमथेश बरूआ



न्यू थिएटर्स की पहली फिल्म 'मुक्ति' में प्रमथेश के साथ कानन देवी

को साथ-साथ हताश होना पड़ा था। लेकिन यह हताशा ज्यादा दिन तक नहीं रही। राधा फिल्म्स से अनुबंध समाप्त होते ही, कानन देवी न्यू थिएटर्स में चली आई। इस फिल्म कंपनी से १९३७ में उनकी पहली फिल्म 'मुक्ति' रिलीज हुई, जिसमें प्रमथेश बरूआ निर्देशक और नायक दोनों ही थे। इस फिल्म के प्रदर्शित होते ही इसके नायक-नायिका और संगीत की प्रशंसा लोगों की जुबान पर छा गई। इस फिल्म से ही अरसे बाद कानन देवी को मर्यादा मिली, अर्थात वे कानन बाला से कानन देवी बन गई। यही वह फिल्म थी, जिसमें पंकज मलिक के संगीत निर्देशन में उन्होंने पहली बार रवींद्र संगीत गया। 'आज सबार रंगे मेशारे हबे' और 'तार विदाय बेलार माला खानी' जैसे गीतों ने कानन के कंठ से जो तहलका मचाया था, शायद उसका आवेश अब तक महसूस किया जा सकता है। इसी फिल्म में सजनीकांत दास का लिखा एक गीत 'ओगो सुंदर मनेर गहने तोमार मूर्ति खानी' सिर्फ कानन देवी की सुरीली आवाज की वजह से एक नए रस का आस्वाद कराती है।

काजी नजरूल इस्लाम की कहानी पर आधारित और देवकी बोस के निर्देशन में बनी 'विद्यापति' १९३८ में प्रदर्शित हुई। इस फिल्म में देवकी बाबू की नई चरित्र कल्पना 'अनुराधा' को अपने असाधारण अभिनय से ही नहीं, बल्कि अपनी अनोखी गायन प्रतिभा से कानन देवी ने एकदम जीवंत कर दिया था। 'विद्यापति' की मुख्य भूमिका पहाड़ी सान्याल ने निभाई थी। यह फिल्म संपूर्णतया कानन देवी की होकर रह गई थी। रायचंद बोराल के संगीत निर्देशन में गाया, उनका गीत 'आँगने आयब जब रसिया', 'सजल नयन करि पिया पथ हेरि हेरि', 'सीख के बोले प्रीति भालो' मन को मोह लेता है। इसके कुछ गीतों में कृष्णचंद्र डे की भी आवाज थी। इसी दौरान कानन देवी कृष्णचंद्र डे के संपर्क में आई और दोनों ने मिल कर एक गाना भी रेकॉर्ड करवाया 'ओ तोर अभिसारेर लग्ने एलो'। न्यू थिएटर्स में भी कानन देवी को अनेक कष्ट झेलना पड़े थे, लेकिन कृष्णचंद्र डे को हमेशा प्रफुल्ल देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य होता था। "दुनिया की सबसे बड़ी दौलत आँखें ही जिसके पास नहीं है वह हमेशा इतना खुश नजर कैसे आता है?" यह प्रश्न कानन देवी को अकसर झकझोरता था और वे एक तरह से उन्हे देख कर ही अपने दुखों को भूलने की प्रेरणा पाती थीं।

कानन देवी की एक और उल्लेखनीय फिल्म है फणी मजुमदार निर्देशित 'साथी' जिनमें कानन देवी और सहगल नायक-नायिका थे। इसमें दोनों के युगल गीतों तथा सहज सरल अभिनय ने ऐसा कमाल दिखाया कि यह फिल्म उस युग की एक अत्यंत सफलतम फिल्म बन गई।आज भी यदि यह फिल्म कहीं प्रदर्शित हो जाए, तो दर्शकों का अभाव नहीं होता। इसमें कानन देवी ने एक सुंदर और आकर्षक नृत्य भी पेश किया था। वैसे सहगल और कानन के गाए गीत ही दर्शकों को बार-बार सिनेमा हॉल की तरफ खींच ले जाते थे। "घर जे आमार डाक दिये छे", 'घरे जले फटिक बाती, बाइरे जले चांद्रेर बाती', 'सेइ जे बाचे सेइ जे मरे जे बेशेछे भालो' जैसे इस फिल्म के लोकप्रिय गीतों को क्या सहज ही भुलाया जा सकता है। उस समय न्यू थिएटर्स की सारी फिल्में बंगला और हिन्दी दोनों भाषाओं में बनाई जाती थीं। 'साथी' फिल्म का भी हिन्दी संस्करण "स्ट्रीट सिंगर" जबरदस्त हिट हुआ था।

सन् १९३९ में देवकी बोस की 'सापुड़े' प्रदर्शित हुई, इसमें कानन देवी ने पुरुष का रूप धर कर चंदन नामक एक रहस्यमय चरित्र को जीया था। यही नहीं पहाड़ी सान्याल के साथ उनका रोमांटिक अभिनय भी अविस्मरणीय है। रायचंद बोराल इस फिल्म के संगीत निर्देशक थे। कानन का गाया गाना- "आकाशे हेलान दिए पहाड़ धुमोय ओई", "कथा कइबे ना कथा कइबे ना बौ" 'सापुड़े' का हिन्दी संस्करण भी पूरे भारत में काफी हिट हुआ। इसी दौरान कानन देवी को शोहरत के साथ-साथ एक स्टार की मर्यादा भी मिली।

हेमचंद्र द्वारा निर्देशित फिल्म "पराजय" में निभाया गया "अनिता" का किरदार कानन देवी को बहुत पसंद था। इसमें उन्होंने अपने आपको बिल्कुल नए अंदाज में पेश किया था जो दर्शकों को भरपूर पसंद आया। उनका गाया रवींद्र संगीत "प्राण चाय चक्षु ना चाय" एवं "बारे-बारे पेयेछी जे तारे", विशेष रूप से "प्राण चाय..." गाना उस युग में अत्यंत जनप्रिय हुआ था। इसके अलावा अजय भट्टाचार्य का लिखा दो गाना- "शे निलो विदाय" एवं "कोन प्रभातेर मनेर रंगे" विशेष उल्लेखनीय है। इस फिल्म के हिन्दी संस्करण "जवानी की रात" ने सारे भारत में कानन की अभिनय कला को स्थापित किया था। इस फिल्म के नायक नजाम थे। दूसरी ओर १९४० में अमर मल्लिक द्वारा निर्देशित "अभिनेत्री" फिल्म में सुरमा की भूमिका उन्हें नापसंद थी। इसमें अभिनय करते समय उन्होंने काफी परेशानी महसूस की। आधुनिक युग के कलाकारों जैसी स्वतंत्रता तथा अपना विचार व्यक्त करने की सुविधा न होने के कारण, इस पराजित आत्मसमर्पण चरित्र में अभिनय करने के लिए वे बाध्य थीं। फिल्म भी आशानुरूप नहीं चली। लेकिन कानन का गाया गाना फिर भी काफी लोकप्रिय हुआ। "प्रिय तोमार तुलना नेइ", "आमि जे आपना माझे आपनारे हारिये छिलाम गो" जैसे इन लोकप्रिय गीतों के रचयिता अजय भट्टाचार्य तथा संगीतकार रायचंद बोराल थे।

न्यू थिएटर्स में कानन देवी की अभिनीत अंतिम फिल्म थी "परिचय" जो सन् १९४१ में प्रदर्शित हुई थी। इस संबंध में कानन देवी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि इस फिल्म के बाद ही एक ऐसी कष्टदायक परिस्थिति का मुझे सामना करना पड़ा कि बाध्य हो कर मुझे न्यू थिएटर से अपना रिश्ता तोड़ना पड़ा। दरअसल फिल्म के लिए कानन देवी ने जो पारिश्रमिक की माँग रखी थी वह पूरी न होने की वजह से दुखी हो कर उन्होंने न्यू थिएटर्स छोड़ना ही ठीक समझा। जिस फिल्म कंपनी ने उन्हें बुलंदी पर पहुँचाया था, उसे छोड़ना उनके लिए अत्यंत कष्टप्रद स्थिति थी। इस संस्थान की अंतिम फिल्म परिचय में भी कानन देवी का अभिनय और गायन अदभुत था। इसके निर्देशक नीतिन बोस और संगीतकार रायचंद बोराल थे। जिंदगी में अनेक दुख सहते हुए भी विजय की ओर बढ़ना ही उनका लक्ष्य था। इसलिए इस तरह के संघर्षपूर्ण चरित्र मिलने पर उनका अभिनय और भी जीवंत हो उठता था। "परिचय" में निभाया गया किरदार भी उन्हें बहुत पसंद था। यही वजह थी कि इस किरदार के साथ वे पूरी तरह से रच-बस गई थीं। उनके सुरीले कंठ से इस फिल्म का रवींद्र संगीत झंकृत हो उठा था। "आमार बेला जे जाये", "आमार

हृदय तोमार आपन हाथेर'', सेइ भालो सेइ भालो'' आदि गीतों को आज भी बार-बार सुनने पर भी मन नहीं भरता है। इसमें उनके नायक थे सहगल। कानन देवी की तरह इसमें गाए सहगल के गीतों को भी सुनने पर मन तृप्त हो जाता है। ''परिचय'' फिल्म में सती चरित्र को अभिनीत करने के लिए बंगला फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएंशन का श्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार कानन देवी को मिला।

न्यू थिएटर्स से निकलकर कानन देवी ने कुछ दिनों तक आराम किया। फिर अचानक एक दिन प्रमथेश बरूआ से मुलाकात हो गई। प्रमथेश पहले ही न्यू थिएटर्स छोड़ चुके थे। उनके कहने पर उनकी फिल्म कंपनी एम.पी. प्रोडक्शन की फिल्म **''शेष उत्तर''** में नायिका की भूमिका निभाना कानन देवी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। १९४२ में प्रदर्शित इस फिल्म में मीना के किरदार को अपने असामान्य कंठ संगीत एवं संवेदनशील अभिनय के सहारे फिर कानन देवी ने असाधारण बना दिया, और जिसके चलते वे एक बार फिर छा गंई। इस फिल्म में नायक प्रमथेश बरूआ के अलावा अहींद्र चौधरी, जमुना देवी, जोगेश चौधरी और रतीश बंद्योपाध्याय ने भी अहम भूमिकाएँ निभाई थी। संगीत निर्देश कमल दासगुप्त ने इसके गीतों को बहुत ही कर्णप्रिय सुरों में बांधा था। इस फिल्म की आशातीत लोकप्रियता की एक वजह यह भी थी। इस बार भी श्रेष्ठ अभिनय के लिए बंगला फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन का पुरस्कार कानन देवी को ही मिला।

फिर से उन्हें नाम, यश, अर्थ और प्रतिष्ठा भरपूर प्राप्त हुई। न्यू थिएटर्स में कानन देवी की पहली फिल्म 'मुक्ति' के नायक प्रमथेश बरूआ थे और इसी फिल्म ने उन्हें नए सिरे से नई मर्यादा, और ख्याति प्रदान की थी। इस प्रसंग में यह एक मजेदार बात है कि न्यू थिएटर्स छोड़ने के बाद प्रमथेश की ही फिल्म 'शेष उत्तर' से कानन देवी ने नए सिरे से यश का मुकुट पहना था। ये दोनों फिल्में ही उनके कलाकार जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। प्रमथेश के साथ कानन ने सिर्फ इन दो ही फिल्मों में काम किया था और यह एक बहुत आश्चर्य की बात है कि इन दोनों फिल्मों के आधार पर ही प्रमथेश के साथ उनकी

सरदार अख्तर

श्वेत-श्याम मदर इंडिया

गुजरे वक्त के कलाकारों में **सरदार अख्तर** का नाम कई संदर्भों में लिया जाता है। बोलती फिल्मों का जब चलन हुआ था। १९३९ के आसपास फिल्म **'पुकार'** में सरदार अख्तर ने धोबन का रोल किया था। और वे पहचानी जाने लगी थीं। इस फिल्म में चंद्रमोहन और नसीम की जोड़ी थी। तीस और चालीस के दशक में जब वह जमाना रुबी मेयर (सुलोचना) का था, अख्तर ने कई प्रकार की भूमिकाओं को निभाया। किन्तु यह बड़े अफसोस की बात है कि जब तीस और चालीस की फिल्मों का समारोह मनाया गया, तब सरदार अख्तर को भुला दिया गया। तीस वर्ष पश्चात् ओ.पी. रल्हन की फिल्म **हलचल** में अख्तर को देखकर लोग चकित रह गए। लोगों का मानना है अपने समय में अख्तर ने छोटे-छोटे पर महत्वपूर्ण रोल किए हैं।

उन दिनों सादिक अली, जयंत और एस. नजीर जैसे हीरो के साथ दिलेर नादिया, सुलोचना, गौहर और स्वयं सरदार अख्तर जैसी हीरोइनें आती थीं। वह दौर ऐतिहासिक, रोमांचक तथा स्टंट फिल्मों का था। अख्तर स्टंट क्वीन के नाम से मशहूर थीं, क्योंकि उन्होंने तीस फिल्मों में से आधी फिल्मों में स्टंट कलाकार की भूमिका की है। हीरेन बोस की पिया की जोगन, राम दरयानी की 'प्रतिमा', 'संगदिल समाज' ने उनकी इमेज अलग प्रकार की बनाई।

सरदार अख्तर लाहौर से बम्बई आई थीं मदन थिएटर के साथ और यहीं की होकर रह गईं। नानूभाई देसाई ने सरदार अख्तर को देखा और ईद का चाँद फिल्म में नायिका बना दिया। मेहबूब की फिल्म औरत (१९४०) सरदार अख्तर की सशक्त फिल्म है, जिसका १९५७ में रंगीन संस्करण मदर इंडिया नाम से बना है। पहले नायिका की भूमिका सरदार को दी जा रही थी, बाद में नरगिस ने उसे निभाया।

अख्तर, सुलोचना, वीना एवं नसीम जब परदे पर अभिनय करती थीं, तो बिल्कुल आम औरत लगती थीं और दर्शकों को वे अपने बीच की लगती थीं। *असल में तब हीरो-हीरोइन स्वाभाविक अभिनय करते थे और निर्देशक भी जानते थे कि कौन कलाकार* कैसा है। यह अख्तर का *सौभाग्य है* कि उन्होंने ज्यादातर फिल्में उच्च कोटि के निर्देशकों के साथ की हैं।

सोहराब मोदी जैसे उच्च दर्जे के फिल्मकार ने अख्तर की भूमिका को दृढ़ता प्रदान की। पुकार फिल्म में मोदी को धोबन की भूमिका के लिए सरदार अख्तर सर्वाधिक उपयुक्त लगीं। अख्तर ने इसे अभिनीत कर चरित्र को जीवंत बना दिया था। फिल्म के संवाद कमाल अमरोही ने लिखे थे। पुकार में इनके अभिनय से प्रभावित होकर मेहबूब ने अपनी फिल्म 'औरत' में उन्हें चुना। यह १९४० की बात है। १९५७ में बनी मदर इंडिया इसका रीमेक थी। इसमें राधा की भूमिका में अख्तर ने जैसे जान डाल दी थी। मेहबूब ने दरिद्र किसानों का ऐसा वर्णन कर चित्रित किया कि भारतीय सिनेमा के इतिहास में ये दोनों फिल्में मील का पत्थर साबित हुईं। 'औरत' फिल्म में उनकी गंभीर भूमिका को बड़ी सहजता से निभा लिए जाने की सर्वत्र प्रशंसा हुई। उन्होंने कुछ हल्के-फुल्के हास्य किस्म के रोल भी किए हैं, जैसे 'भरोसा' और 'फैशन' फिल्मों में।



'फैशन' और 'मास्टरजी' फिल्म पूरी करने के पश्चात मेहबूब और अख्तर ने विवाह कर लिया और १९४३ से फिल्मों में काम करना बंद कर दिया। ओ.पी. रल्हन ने उनकी प्रारंभिक फिल्में देखीं थीं, इसलिए अपनी फिल्म हलचल में काम करने का आग्रह किया। उनकी दूसरी फिल्म तलाश में भी उन्होंने अभिनय किया है। भले ही इन फिल्मों ने उन्हें महत्वपूर्ण सफलता न दी हो, किन्तु उनके अभिनय की प्रशंसा अवश्य की गई।

जोड़ी बहुत विख्यात हुई थी। 'शेष उत्तर' में भी कानन देवी के गाए सारे गीत "जदि आपनार मन माधुरी मिशाये", "आमि बनफूल गो", "भोला पथेर पथिक हे मोर" अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं। इस फिल्म का हिन्दी संस्करण 'जवाब' भी सुपर हिट थी। सुशील मजमदार निर्देशित एम.पी. प्रोडक्शंस की अगली फिल्म 'जोगाजोग' भी सुपर हिट थी। इसके गीतों को धुनों में बाँधा था कमल दासगुप्त ने। इसके बाद बाहर की विभिन्न निर्माण कंपनियों की फिल्में 'बनफूल', 'कृष्णलीला', 'अरेबियन नाइट्स', 'चंद्रशेखर', 'फैसला' आदि में काम कर उन्होंने अपने अभिनय और गायन से जन-जन तक अपनी लोकप्रियता का परचम फैलाया। देवकी बोस के 'चंद्रशेखर' में शैवालिनी की भूमिका कानन देवी ने और प्रताप की भूमिका अशोक कुमार ने अभिनीत की थी। उन दोनों का गाया युगल गीत "अनादि कालेर श्रोते" आज भी हजारों श्रोताओं के मन में बसा हुआ है। 'अनिर्वाण' फिल्म में कानन देवी का गाया रवींद्र संगीत "सेदिन दुजने दुलेछिनु बने" और "तोमाय साजाबो जतने" आज भी हृदय को झंकृत कर देता है।

सन् १९४७ में कानन देवी विदेश भ्रमण करने निकलीं। इस दौरान उन्होंने कई देशों के स्टूडियो को बहुत करीब से देखा। वहाँ के कलाकारों से अच्छी जान-पहचान स्थापित की। वहाँ से बहुत सारा अनुभव अपनी झोली में समेट कर वे भारत में आकर फिर फिल्मों में व्यस्त हो गई। इसके बाद जिन दो फिल्मों 'बांका लेखा', 'अनुराधा' में उन्होंने काम किया, ये दोनों फिल्में ही बाक्स ऑफिस में लुढ़क गई। पर उनका गाया गाना फिर हिट रहा।

बाहर की फिल्मों में काम करके कानन देवी ने जो अनुभव अर्जित किया था, उससे उत्साहित होकर वे फिल्म निर्माण के क्षेत्र में भी कूदी। उन्होंने अपनी निर्माण संस्था का नाम 'श्रीमती पिक्चर्स' रखा। सन् १९४९ में उनके निर्माण संस्थान की पहली फिल्म **'अनन्या'** प्रदर्शित हुई। फिर कानन के गायन और अभिनय का दर्शकों ने भरपूर स्वागत किया। उस समय वे अनादि दस्तिदार से रवींद्र संगीत की विशेष तालीम ले रही थीं। इसलिए इस फिल्म के दो रवींद्र संगीत "एई लभिनु संग तबो" और "आमादेर जात्रा होलो शुरू" उनके गायन कला की अनुपम उपलब्धि है। इस फिल्म के निर्माण के दौरान ही उनके जीवन में एक नए अध्याय की शुरूआत हुई। पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल के.एन. काटजू के सहायक हरिदास भट्टाचार्य के साथ वे विवाह बंधन में बंध गई। उनके मन में घर बसाने का सपना बहुत पहले से ही था, पर अरसे बाद ही यह साकार हो सका। विवाह के बाद ही उनके निर्माण संस्था की फिल्म 'मेज दीदी' प्रदर्शित हुई। इसमें उन्होंने नारी की ममता का आश्चर्यजनक रूप पेश किया। उनके कंठ से निकला "प्रणाम तोमाय घनश्याम" सहज ही हृदय को द्रवित कर देता हैं।

'दर्प चूर्ण' फिल्म में सजनीकांत दास का लिखा हुआ और कालीपद सेन के संगीत से सजा कानन देवी का गाया गाना "आंधार नेमेई आशो" और



"सम्मुखे दिशाहीन अंधियार रात्रि" आज भी हजारों श्रोता भूल नहीं पाए हैं। किन-किन फिल्मों का जिक्र किया जाए इसके बाद 'नवविधान', 'देवत्र', 'आशा', 'इंद्रनाथ', 'श्रीकांत' और 'अन्नदा दीदी' आदि एक से बढ़ कर एक फिल्मों में उनके अभिनय और सुरीले कंठ ने दर्शकों पर एक नशा सा कर दिया था। ऐसे में जब वे अपनी बुलंदी पर खड़ी थी, अचानक 'अन्नदा दीदी' में काम करने के बाद उन्होंने फिल्मोद्योग से अपना रिश्ता एक झटके में तोड़ लिया। उनके अभिनय जीवन का अंत यहीं हुआ। पर इससे ही वे पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुई। कुछ दिनों बाद फिल्म के निर्माण से भी संन्यास लेकर उन्होंने फिल्मोद्योग से अपनी सक्रिय भूमिका पूरी तरह से खत्म कर दी। उनका अधिकांश फिल्मी संगीत ग्रामोफोन रेकॉर्ड में वर्तमान में भी बहुत जनप्रिय है।फिल्मी संगीत के अलावा उनके गाए हुए रवींद्र संगीत का भी रेकॉर्ड है। "तिमिर दुआर खोल", "एतोदिन जे बसेछिलाम" जैसे रवींद्र संगीत सुनने से ही पता चलता है कि उनकी आवाज में कितनी निष्ठा और सम्मोहन भरा हुआ था। इस बात की प्रामाणिकता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने जिन फिल्मों के लिए गाया उनमें से अधिकांश अत्यंत चर्चित और सफल रही हैं। इसे यदि हम उनके संगीतकार की निपुणता मानें तो गलत होगा, क्योंकि यदि यह संगीतकारों का कमाल होता तो इनके संगीत निर्देशन में गाए गए दूसरे कलाकारों के गाने भी जबरदस्त हिट होते। सच तो यह है कि जो माधुर्य कानन देवी की आवाज में था, वह अन्य गायिकाओं को नसीब नहीं हुआ। हाँ, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि उनके संगीत जीवन में कई बड़े संगीतकार जैसे अनाथ बोस, मृणालकांति घोष, पंकज मल्लिक, रायचंद बोराल, कमल दासगुप्त, कालीपद सेन, रतीन चट्टोपाध्याय आदि आए और इनके मार्गदर्शन ने उनकी आवाज को और सुदृढ़ बनाया। इनके बारे में कानन देवी का कहना है कि पंकज मल्लिक अत्यंत अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे। गीतों को स्वरबद्ध करते समय शब्द और उनके शुद्ध उच्चारण की ओर वे विशेष



ध्यान देते थे। साथ ही गीत की भावना को भी बहाल रखने की सख्त हिदायत देते थे। रायचंद बोराल को देशी और विदेशी संगीत का विशेष ज्ञान प्राप्त था। इसलिए उनकी संगीत रचना से रस माधुर्य का आविर्भाव होता था। वे कभी भी दर्शक और श्रोता के डिमांड पर ध्यान नहीं देते थे। श्रेष्ठ धुनों की रचना करना ही उनका मुख्य लक्ष्य होता था, और बाद में अकसर यह देखा गया कि उनके द्वारा बनाई धुनों का लोगों ने भरपूर स्वागत किया। कमल दासगुप्त के बारे में कानन देवी का कहना है कि उनकी बनाई धुनों में रस का स्वाद मिलता था। उनके संगीत देने की क्षमता असाधारण थी।वे अपने सहयोगियों के परामर्श का उचित मूल्य देते थे। यही उदारता उनकी विशेषता थी जिस कारण शिक्षार्थी के लिए वे आदरणीय थे।

अनेक बाधा-विघ्नों और दुखों को झेलते हुए, अंततः कानन देवी का वह सपना पूरा हुआ था, जो वे किशोरावस्था में देखा करती थी यानी "नाम कमाने की उच्चाभिलाषा" दरिद्रता से भरे जीवन को लांघ कर एक साम्राज्ञी का स्थान प्राप्त करना कोई सरल बात नहीं थी। ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं। इसलिए जब तक सेल्यूलाइड जिंदा रहेगा कानन देवी एक तुलनाहीन जगह पर विराजमान रहेंगी।

दुर्गा खोटे

प्रेमिका से परदादी का सफर

बम्बई के जानेमाने वकील घराने में जन्मी **दुर्गा खोटे** ने अपने गरिमामय व्यक्तित्व के कारण फिल्मी दुनिया में एक विशिष्ट स्थान बना लिया था। उसके पिता वकील थे तथा भाई बैरिस्टर। दुर्गा पूरे परिवार की लाड़ली थी। शिक्षा-दीक्षा पश्चिमी शैली में हुई तथा विख्यात जेवियर कॉलेज में वह बी.ए. की शिक्षा प्राप्त करने लगी। इसी दौरान उसका विवाह खोटे परिवार में हो गया। ग्रेजुएट गृहणी के रूप में वह दो बेटों की माँ बनी तथा फुरसत का वक्त समाज सेवा में गुजारने लगी। सुखी गृहणी के रूप में भरापूरा परिवार जमा लेने के बाद उसकी इच्छा कुछ नया करने की होने लगी। इसी दौरान बहन शालिनी के जरिए उसे फिल्मों में काम करने का प्रस्ताव मिला।

प्रभात की फिल्म माया मछिन्द्र (१९३२) में दुर्गा खोटे



शालिनी विवाहित थी तथा फिल्म निर्माता जे.बी.एच. वाडिया उनके पारिवारिक मित्र थे। उन दिनों वे मोहन भावनानी के सहायक के तौर पर काम कर रहे थे। फिल्मों में आवाज का प्रवेश ताजा–ताजा ही हुआ था तथा भावनानी साहब नायक के तौर पर फिल्म में आना चाहते थे व अपनी पत्नी को नायिका के रूप में स्थापित देखना चाहते थे। इस फिल्म का नाम उन्होंने 'ट्रेप्ड' रखा था और उसके क्लाइमेक्स दृश्य में वे किसी नई लड़की को चाहते थे। इस भूमिका के लिए वाडिया साहब ने शालिनी के सामने प्रस्ताव रखा। शालिनी ने स्वयं तो प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया मगर दुर्गा खोटे का नाम इस भूमिका के लिए सुझा दिया। दुर्गा ने फौरन प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा चटपट काम शुरू कर दिया। फिल्म जितनी तेजी से पूरी हुई उससे कहीं ज्यादा तेजी से थिएटरों से उतर गई। बेचारी दुर्गा खोटे इस फ्लॉप फिल्म में काम करने के कारण काफी शर्मिन्दगी झेलने को मजबूर हो गई। ससुराल और मायके वालों ने ऐसी कठिन घड़ी में उसे दिलासा दिया। 'ट्रेप्ड' बुरी तरह से असफल तो हुई मगर उस फिल्म में उसके अभिनय को वी. शान्ताराम ने काफी सराहा। उन दिनों वे 'प्रभात' के लिए हिन्दी और मराठी में **अयोध्या चा राजा** नामक फिल्म बना रहे थे। उन्होंने तारामती की भूमिका के लिए दुर्गा खोटे के सामने प्रस्ताव रखा। परिवारजनों से प्रोत्साहन पाकर दुर्गा खोटे ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिल्म में उसने पूरी निष्ठा और लगन के साथ अभिनय किया। फिल्म के हिन्दी और मराठी दोनों संस्करण हिट रहे। दुर्गा खोटे का नाम चमकने लगा। इसके बाद की फिल्म '**माया मछिन्द्र**' की सफलता ने उसे स्टार बना दिया। इसके बाद तो दुर्गा खोटे ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। चार दशकों के अभिनय अभियान के दौरान उसने हर तरह की भूमिकाएँ कीं। नायिका, माता, बहन, सास, रानी, वीरांगना, दादी, आदि के पात्रों को उसने जीवन्त बना दिया।

दुर्गा खोटे की कुछ सफल फिल्मों में-न्यू थिएटर्स की 'राजरानी मीरा', 'गीता' 'अमर ज्योति', 'पृथ्वी वल्लभ','भरत मिलाप' थीं। 'चैतन्य महाप्रभु' में माँ के रूप में उसकी भावपूर्ण भूमिका अद्वितीय और बेमिसाल थी। 'भरत मिलाप' में कैकयी की भूमिका को उसने जितने सशक्त ढंग से निभाया शायद ही कोई दूसरी अभिनेत्री कर पाती। चेहरे से संजीदा नजर आने वाली दुर्गा खोटे की अभिनय क्षमता का निराला रंग हास्य फिल्म 'चाचा चौधरी' में प्रकट हुआ। राजा परांजपे, धुमाल तथा दुर्गा खोटे की तिकड़ी ने हास्य हिलोरों की अनोखी सृष्टि कर डाली।

दस वर्षों तक रोमान्टिक नायिका की भूमिका करने के बाद दुर्गा खोटे द्वारा स्वेच्छा से चरित्र अभिनेत्री के रूप में खुद को ढाल लेना जितनी बुद्धिमत्ता का काम था उतना ही साहस का भी। प्रशंसकों ने ऐसा निर्णय करने पर अपना असंतोष व्यक्त करते हुए कई पत्र लिखे। दुर्गा खोटे ने अपना निर्णय नहीं बदला बल्कि चरित्र अभिनेत्री के रूप में अपनी भूमिका को स्वाभाविक बनाने के लिए वह और भी अधिक श्रम करने लगी। 'चरणों की दासी' में उसे धोबन की भूमिका करनी थी। अतः उसने धोबियों के बात करने के तरीकों तथा

कंचनमाला
दक्षिण भारत की ग्रेटा गार्बो

तीस और चालीस के दशक में सब तरफ नायिकाओं का वर्चस्व था। हॉलीवुड में ग्रेटा गार्बो, बंबई में देविका रानी, कलकत्ता में कानन देवी और मद्रास में **कंचनमाला** का दबदबा था। दक्षिण भारत की अभिनेत्रियों में वे ऐसी पहली सुपर स्टार थीं, जिनके पास कार थी तथा जो मासिक पाँच हजार रुपए वेतन लेती थीं। एक समाचार पत्र द्वारा किए गए मत संग्रह में उन्हें ही पहली बार सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री करार दिया गया था। फिल्म निर्माण के हर क्षेत्र की वे मलिका थीं। चूँकि उनके जमाने में पार्श्व गायन का रिवाज नहीं था, अपने गाने भी वे स्वयं गाती थीं। उनकी आवाज में गजब की मिठास थी और उन्होंने शास्त्रीय संगीत की बाकायदा शिक्षा ली थी।

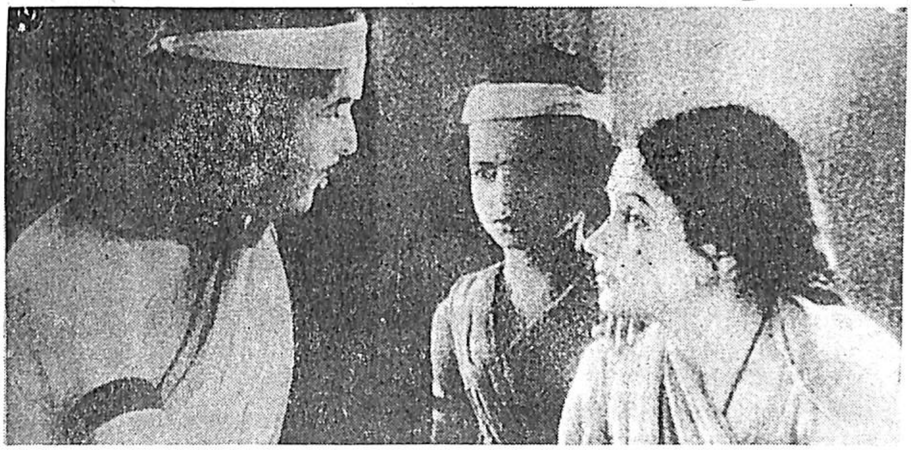
इस बारे में कोई संदेह नहीं कि कंचनमाला दक्षिण की सर्वकालिक महानतम अभिनेत्री थीं। उन्होंने कुल मिलाकर ग्यारह फिल्मों में काम किया। उनकी पहली फिल्म **श्रीकृष्ण तुलाभरणम्** कलकत्ता में १९३५ में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा बनाई गई थी। इसमें उन्होंने भगवान कृष्ण की आठ में से एक रानी मित्रवृंदा की भूमिका की थी। कंचनमाला उनका असली नाम था। उस युग के चलन के अनुरूप उन्होने अधिकांश धार्मिक फिल्मों में ही काम किया था, जिनमें से कुछ के नाम थे-'वीराभिमन्यु' (१९३५), 'विप्र नारायण' (१९३६), 'बाल नागम्मा' तथा 'वंदे मातरम्' (१९३९)। इनके अलावा १९६३ में उन्होंने 'नर्तन शाला' में भी एक भूमिका की थी।

कंचनमाला का दैदीप्यमान फिल्मी कैरियर अचानक और असमय ही समाप्त हो गया। सितंबर १९४२ में उनके पति, जिन्हें वे बहुत प्यार करती थीं, की मृत्यु हो गई। उनके पति वैसे कोई बड़ी हस्ती नहीं थे, लेकिन वे कंचनमाला की शक्ति और प्रेरणा के स्रोत थे। दूसरी त्रासदी एक तरह से उनकी स्वयं की आमंत्रित की हुई थी। असली सुपर स्टार नायिकाओं की तरह कंचनमाला भी 'मूडी' और 'अति संवेदनशील' थीं। उनके नायक तक उनसे भयभीत रहते थे, क्योंकि उन्होंने अपनी एक 'देवी' की छवि बना रखी थी। उनमें कोई दुर्गुण न होने के कारण उद्योग या प्रेस में उनके बारे में कोई कानाफूसी कभी नहीं चलती थी। लेकिन, अपनी अंतिम फिल्म 'बाल नागम्मा' के निर्माण के दौरान उनकी जेमिनी स्टूडियो के मालिक एस.एस. वासन के साथ जो झड़प हो गई, वह उन्हें बहुत महँगी पड़ी। बतलाया जाता है कि निर्देशक सी. पुल्लैया ने उन्हें अपनी साड़ी का पल्लू एक खास ढंग से रखने को कहा, जो कंचनमाला नहीं चाहती थीं। पुल्लैया ने पल्लू अपने हाथ से सरकाकर सही जगह कर दिया। कंचनमाला भड़क उठीं और निर्देशक को खूब बुरा-भला कहा। माइक्रोफोन चालू था और सारी बातचीत टेप-रिकॉर्ड हो गई। पुल्लैया क्रोध से धधकते हुए वासन के पास पहुँचे। वासन ने पहले तो कंचनमाला का पक्ष लिया, लेकिन जब पुल्लैया ने टेप सुना दिया तो वासन ने कंचनमाला का काम करना मुश्किल कर दिया। जिन चार फिल्मों के लिए उन्हें वासन ने अनुबंधित किया था, उनमें से कंचनमाला को खुद निकल जाना पड़ा।

ईश्वर ने कंचनमाला को जो कुछ बड़ी उदारता से दिया था, उसे ही उसने बड़ी निर्ममता से छीन लिया। लगभग दस वर्ष पूर्व अट्ठावन वर्ष की उम्र में जब उनकी मौत हुई तो



उनकी आर्थिक हालत तो बुरी नहीं थी, लेकिन अनिद्रा, पागलपन, तपेदिक तथा हृदयरोग के बार-बार के हमलों ने उन्हें पूरी तरह तोड़ दिया था। इससे भी बुरी बात यह थी कि फिल्मों से निवृत्ति के बाद से ही उनके संवेदनशील मस्तिष्क और कमजोर दिल पर एक भारी बोझ, एक व्यावसायिक फिल्मी-मुगल, जो कि कलाकारों के मूड तथा भावनाओं की कदर नहीं कर सकता था, के हाथों अपमानित होने के कारण बना रहा था। ■



अयोध्या का राजा (१९३१) फिल्म में दुर्गा खोटे

प्रयुक्त शब्दावली का गहरा अध्ययन किया।

फिल्मों में काम करके भी जब दुर्गा खोटे के भीतर छुपी अभिनेत्री को सकून नहीं मिला तो वह रंगमंच की ओर मुड़ी। मराठी साहित्य संघ के साथ १९५० में जुड़ने के बाद उसने कई मराठी नाटकों में अभिनय किया तथा कुछ का निर्देशन भी किया। छोटी तथा विज्ञापन फिल्मों का निर्माण करने वाली संस्था 'खोटे प्रॉडक्शन' की स्थापना कर वह लघु, डाक्यूमेन्टरी तथा विज्ञापन फिल्मों के निर्माण व्यवसाय से भी जुड़ी।

चरित्र अभिनेत्री के रूप में 'आनन्द','अभिमान', 'खुशबू',बॉबी, 'जानेमन', 'बावर्ची','बिदाई'आदि उसकी प्रमुख फिल्में हैं। बिदाई में सशक्त अभिनय के कारण उसे कई अवार्ड भी मिले। मराठी, हिन्दी, उर्दू, गजराती,बंगाली, फ्रेन्च आदि भषाओं में पारंगत दुर्गा खोटे को कुशल अभिनेत्री होने का गर्व कम था उसे ज्यादा अभिमान अपनी बढ़िया पाककला पर था। खाना बनाने और खिलाने की शौकीन इस सदाबहार अभिनेत्री को फूलों और खुशबू का शौक था तथा साड़ियाँ उसकी कमज़ोरी थी।

कलाकार के रूप में दुर्गा खोटे की सबसे बड़ी विशेषता वक्त की पाबंदी थी। फिल्म उद्योग में प्रवेश के बाद वह सदा निश्चित समय पर शूटिंग पर पहुँचने के लिए मशहूर हो गई थी। यदि एक बार वह समय निश्चित कर देती थी तब किसी भी स्थिति में वक्त पर पहुँचना नहीं भूलती थी।

दुर्गा खोटे एकमात्र ऐसी भारतीय अभिनेत्री थी जिसे प्रवेश से लेकर सदा ही परिवारजनों का प्रोत्साहन मिलता रहा। फिल्म असफल होने पर पिता ने दिलासा दिया तथा सफलता मिलने पर खुशियों में शामिल हुए। इसी प्रोत्साहन तथा समर्थन के कारण दो बेटों की माता रोमान्टिक नायिका से कैरियर शुरू कर हर स्तर पर सफलता का ध्वज फहराती हुई– 'दादी', 'नानी' और 'परदादी' के किरदार तक की सफल यात्रा पूरी कर सकी। ■

मेनका की तरह थिरकती थी अजूरी

लगभग दस वर्ष पूर्व राजकमल स्टूडियो में वी. शांताराम एक जरूरी बैठक में भाग ले रहे थे। किसी भी हालत में, किसी को भी उनसे मिलने न दिए जाने के आदेश थे। उनके बेटे किरण कुमार स्वयं मिलने आने वालों को बाहर ही रोक रहे थे। अचानक दो बुजुर्ग मगर बेहद उत्साही महिलाएँ वहाँ पहुँचीं। उनमें से एक ने कहा कि वह ठेठ पाकिस्तान से आई है और शांताराम से मिलना बहुत जरूरी है। किरण ने वही बात दुहरा दी। मगर इस बार उस महिला ने उतावलेपन के साथ कहा अपने पिता से जा कर कहो कि **अजूरी** उनसे मिलना चाहती हैं। अचानक किरण के दिमाग में भी कुछ झंकृत हुआ। इस नाम का उल्लेख करते उन्होंने अपने पिता को कई बार सुना था। उन्होंने तत्काल शांताराम को खबर की और वे न केवल अजूरी से मिलने आए बल्कि दोनों कोई घंटेभर तक बातें कर पुराने जमाने की यादें ताजा करते रहे।

वर्तमान पीढ़ी अजूरी के बारे में नहीं जानती लेकिन उन्होंने सन् १९३८ से ४८ के बीच अपने नृत्यों से सनसनी मचाते हुए हिंदी सिनेमा में अपना काफी ऊँचा स्थान बनाया था। अजूरी का असली नाम ऐंनोटी था। वह सर्जन जनरल गेल्जीयर की बेटी थीं और उनकी माता ब्राह्मण थीं। घर में कड़ा अनुशासन होने के कारण फिल्मों का जिक्र तक नहीं होता था। चौदह वर्ष की उम्र में जाकर उनके 'कुक' तथा ड्राइवर ने उनका ध्यान इस तरफ आकर्षित किया। पहली फिल्म ने ही उन्हें चमत्कृत कर दिया। इसके बाद तो उन पर जैसे फिल्मों का भूत सवार हो गया। बंबई में वे छुपकर फिल्मों की शूटिंग देखने जाने लगीं। यहीं उन्होंने पहली बार सुलोचना (रुबी मेयर्स) को देखा और उनके सौंदर्य से अभिभूत हो उठीं।



स्टूडियो की इन्हीं यात्राओं के दौरान उनसे एक निर्माता ने पूछा कि वे नृत्य कर सकेंगी। अजूरी ने बगैर दुबारा सोचे हाँ कर दी। बाद में उन्हें पता चला कि नृत्य की उनमें जन्मजात नैसर्गिक प्रतिभा थी। "हर मुद्रा, हर भाव जैसे शरीर से स्वत: प्रवाहित हो उठता था। मेरे निर्देशक प्रसन्न थे और मैं उनसे भी ज्यादा।" इसी बीच वे निजी समारोहों और महफिलों में भी नृत्य करने लगीं। ऐसे ही मौके पर अचानक उनके पिता ने उन्हें नृत्य करते हुए पकड़ लिया। उनकी खासी पिटाई हुई मगर नृत्य करने से अब अजूरी को कोई नहीं रोक सकता था।

ऐंनोटी से वे अजूरी बन गई। अजूरी का मतलब होता है चमकीली नीली रोशनी। शोख, भड़कीली तथा इस दुनिया के बाहर की पोशाकें पहन के अपने नृत्यों के द्वारा सीधे दर्शकों के दिल में उतर जाती थीं। उनके जिस्म, उसके उतार-चढ़ाव तथा ग्लॅमर के चर्चे उस जमाने में हर कहीं होते थे। उनकी खास फिल्में थीं 'मेरे वतन', जय स्वदेश', कलियुग', 'नई दुनिया', शेख चिल्ली', 'पन्ना दाई', 'नया संसार', 'याद', 'तस्वीर', 'शाह जहाँ', 'लाखारानी', 'हातिमताई' तथा शांताराम की 'चंद्रसेना'। इस फिल्म में जो नगाड़ा-नृत्य उन्होंने सिर्फ परछाई के रूप में किया था उसे लोग आज भी याद करते हैं। 'रतन' में कृष्ण कुमार के साथ उन्होंने "ओ जाने वाले बालमवा लौट के आ-लौट के आ" नृत्य किया था। ख्वाजा अहमद अब्बास ने बॉम्बे टॉकीज के लिए बनाई फिल्म 'नया संसार' में उनसे एक गीत गवाया था "मैं हरिजन की छोरी"। खुद अजूरी का कहना है कि यह गीत गाँधीजी ने भी सुना था और उनसे कहा था कि वे उनके आश्रम में दाखिल होकर हरिजनों की सेवा करें।

विभाजन के कुछ ही पहले उन्होंने महमूद नामक एक व्यक्ति के साथ शादी कर ली और पाकिस्तान चली गई। बंबई में रहते हुए उन्होंने न केवल फिल्मों में नृत्य किए बल्कि देश की कला और संस्कृति को विदेशों में प्रसारित-प्रचारित करने के लिए वे अपने दल के साथ विदेश भी गईं। बकिंघम राजप्रासाद में अपने शिष्य कृष्ण कुमार के साथ उन्होंने जो नृत्य किया था वे उसे गर्व के साथ याद करती थीं। शायद वे एकमात्र ऐसी भारतीय नृत्यांगना हुई है जिसे प्रसिद्ध ब्रिटिश नाटककार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के सम्मुख भी अपना प्रदर्शन करने का मौका मिला था। "शॉ उनके नृत्य के बजाए उनके 'फिगर' से ज्यादा प्रभावित हुए थे।" बहरहाल, अजूरी ने न केवल फिल्मी-नृत्य की एक नई शैली का प्रवर्त्तन किया, बल्कि टोनी (कृष्ण कुमार) तथा रॉबर्ट (सूर्य कुमार) जैसे दो प्रसिद्ध नृत्य निर्देशकों के कैरियर को भी सँवारा। ■

◆◆◆

वर्तमान पीढ़ी नृत्यांगना अजूरी के बारे में कुछ नहीं जानती, लेकिन १९३८ से १९४८ तक अपने नशीले नृत्यों से अजूरी ने देश भर में सनसनी फैला दी थी। अजूरी का मतलब होता है चमकीली नीली रोशनी। शोख भड़कीली और पारलौकिक पोशाकों में सजी-धजी अजूरी दर्शकों के दिलों में सीधे उतर जाती थी। फिल्म 'नया संसार' में उसने गाया था -मैं हरिजन की छोरी। इस गीत को गाँधीजी ने सुना था और अजूरी से आश्रम में आकर हरिजन-सेवा करने का संदेश भिजवाया था। ब्रिटेन के बकिंघम पैलेस में विश्व प्रसिद्ध नाटककार बर्नार्ड शॉ के सम्मुख अपना नृत्य प्रस्तुत करने वाली वह एकमात्र नृत्यांगना है। शॉ उसके नृत्य के बजाए उसके 'फिगर' पर ज्यादा मोहित थे।

फ्री-फ्रेंक-फिअरलेस : स्टंट-क्वीन नादिया

गिरीश कर्नाड

हमारे स्कूल में जो लड़का वह खबर लाता था, वह उस दिन का हीरो बन जाता था। बल्कि कक्षा में उसके प्रवेश करते ही मांहौल में सनसनी दौड़ जाती थी। सब समझ जाते थे कि शहर में कोई स्टंट फिल्म लगने वाली है' और उसी समय हम भगवान से प्रार्थना करने लगते थे कि काश यह फिल्म **नादिया** या **वाडिया** की हो। हम लोगों के लिए ये दोनों शब्द एक ही मतलब रखते थे। जैसे-जैसे फिल्म के बारे में और विवरण मिलते जाते, हम लोग पूरी योजना बनाते कि कैसे तीन आने वाली श्रेणी की अंतिम कतार में जगह प्राप्त कर ली जाए।

सन् १९२८ में कोहिनूर स्टूडियो के कंपाउंड में स्थित देवारे फिल्म लेबोरेटरी में जमशेद (जे.बी.एच.) तथा होमी वाडिया काम करते थे और यहीं उन्हें अपनी फिल्में बनाने की धुन सवार हुई। इसी वर्ष जमशेद ने **वसंत लीला** फिल्म बनाई, मगर उसी वर्ष अमेरिकी स्टंट फिल्म जोरो देखकर उन्होंने सोचा कि वे भी उसी तरह की कोई फिल्म बनाएँ। लगभग उन्हीं दिनों स्टूडियो में यशवंत दवे नामक एक युवक अभिनेता बनने की इच्छा से आया करता था। उसने वाडिया से कहा, "आप मुझे 'हीरो' बनाइए, मैं भी एक छत से दूसरी छत पर कूद कर दिखला दूँगा" दवे ने यह असंभव कारनामा कर दिखलाया और वाडिया बंधुओं ने अपनी पहली स्टंट फिल्म **'थंडरबोल्ट'** उर्फ 'दिलदार डाकू' बनानी शुरू कर दी। यह समय १९३१ का था। इसके बाद तो वाडियाओं ने मारधाड़ वाली अपनी स्टंट फिल्मों की कतार लगा दी। मगर उनकी सबसे बड़ी सफलता सन् १९३४ में बनी फिल्म **हंटरवाली** थी, जिसकी नायिका नादिया थीं। फिल्म के नायक बोमन श्रॉफ असली जाँबाज़, ईरानी थे और किसी भी तरह का जोखिम भरा काम करने को हमेशा तैयार रहते थे। एक दृश्य के लिए टाटा पैलेस की छत से उन्होंने चलती मोटर कार में छलाँग लगाई थी। मगर, 'हंटरवाली' के सबसे बढ़िया करतब नायिका नादिया ने ही किए थे।

उन दिनों हमें छह हफ्तों में एक फिल्म देखने दी जाती थी। मेरे पिता पूरे सिनेमा माध्यम को ही वक्त और पैसे की बरबादी मानते थे, लेकिन नादिया की फिल्मों को वे भी अपवाद मानते थे। वे स्वयं तो ऐसी फिल्में नहीं देखते थे, मगर वाडिया या नादिया के नाम पर वे हमेशा हमें बगैर आनाकानी किए साढ़े तीन-तीन आने निकाल कर दे देते थे। आधा आना इंटरवल में



भुनी हुई मूमफली खाने के लिए दिया जाता था। एक अच्छी स्टंट फिल्म देखने के साथ मूमफली खाना एक पवित्र अनुष्ठान समझा जाता था। इंटरवल के बाद के पहले पाँच मिनट मूमफली चटखाने तथा चबाने के समवेत स्वर में डूब जाते थे। 'हंटरवाली' ने न केवल होमी वाडिया को सबसे कम उम्र (तब वे मात्र २४ वर्ष के थे) निर्देशक के रूप में स्थापित कर दिया, बल्कि स्टंट फिल्मों की उस नई विधा को भी जन्म दिया, जिसमें बदला लेने वाली एक नकाबपोश जाँबाज नायिका होती थी। एक घोड़ा होता था। एक कुत्ता होता था और एक से बढ़कर एक हैरत अंगेज करतब होते थे। प्रकाश और मोहन स्टूडियो भी अपने ढंग की स्टंट फिल्में बनाते थे। उनकी **साइकलवाली** तथा **मोटरवाली** जैसी फिल्मों में भी बहादुर घोड़ा तथा टाइगर कुत्ता होता था और नायिका रमोला नेकी की खातिर बदी से टक्कर लेती थी। शंकरराव पहलवान तथा मास्टर विट्ठल ने भी स्टंट फिल्में बनाईं, लेकिन "हम लोगों का कोई सानी नहीं था" विनम्र मुस्कान के साथ होमी वाडिया कहते हैं।

"भले राजा को शैतान वजीर गिरफ्तार कर लेता है। प्रजा के ईमानदार लोगों पर जुल्म होते हैं। लाचार राजकुमारी मजबूर होकर सब कुछ ठीक कर देने की जिम्मेदारी अपने नाजुक कंधों पर उठा लेती है और एक ही क्षण में ऊँची-पूरी, गोरी-चिट्टी नायिका, जिसके लिए साड़ी पहनना राजनीतिक लफड़ों से निपटने से ज्यादा मुश्किल होता था, नकाब लगाकर, तंग काली पोशाक पहनने वाली उस औरत में बदल जाती थी, जो घुड़सवारी, कुश्ती, तैराकी, तलवारबाजी और जमीन से बालकनी पर उलटी छलाँग लगाने में भी माहिर होती थी। यह वह क्षण होता था, जिसका इंतजार तीन आने वाले सारे दर्शक दम साधकर करते थे। और यह नायिका होती थी नादिया।

नादिया का जन्म पर्थ (ऑस्ट्रेलिया) में सन् १९१० में मेरी इवान्स के रूप में हुआ था। उनकी माता यूनानी और पिता वेल्श थे। उनके कैरियर की शुरूआत स्टेनो टाइपिस्ट के रूप में हुई थी, मगर अपना मोटापा कम करने के लिए उन्होंने नृत्य सीखना शुरू किया। यहाँ से वे कुछ दिनों के लिए जेको के रशियन सर्कस में चली गई और बाद में मदाम एस्ट्रोवा के बैले ग्रुप की सदस्या बन गईं। इस ग्रुप के साथ वे पूरा भारत घूमीं। उन दिनों सिनेमाघरों में फिल्म के साथ-साथ जीवंत नाच-गाने (डबल प्रोग्राम) के कार्यक्रम भी होते थे। नृत्य के सिलसिले में वे रंगून तक पहुँचीं, मगर उन्हें लाहौर ज्यादा पसंद आया। इन्हीं दिनों उन्होंने अपना नाम बदलने का विचार किया। एक आर्मेनियाई नजूमी ने उन्हें सलाह दी कि वे ऐसा नाम रखें जो **न** से शुरू हो और उसमें चार अक्षर हों। शुरू में **नादा** नाम पसंद किया गया, मगर बाद में **नादिया** को पसंद किया गया, क्योंकि उसमें भारतीयता तथा विदेशीपन दोनों थे। यह नाम उनके लिए वाकई भाग्यशाली साबित हुआ।

"अपने बचपन की जो ध्वनि मुझे सबसे ज्यादा याद रहती है वह है जोर से हेsss" का युद्ध घोष, जिसके साथ घोड़े पर सवार नादिया दुष्टों पर टूट पड़ती थी। चालीस के दशक में हम सभी स्कूली बच्चों के लिए नादिया साहस, बहादुरी, शक्ति और आदर्शवादिता की प्रतीक थीं। नादिया की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि बहादुरी के ये कारनामे वे खुद करती थीं। डुप्लिकेट स्टंट-मैन उन दिनों नहीं मिलते थे। आजकल की तरह फाइट कंपोजर भी तब नहीं होते थे। सारा काम निर्देशक और कैमरामैन की सहायता से

◆◆◆

भले राजा को शैतान वजीर गिरफ्तार कर लेता है। ईमानदार लोगों पर जुल्म होते हैं। लाचार राजकुमारी सब कुछ ठीक कर लेने की जिम्मेदारी अपने नाजुक कंधों पर उठा लेती है। पलक झपकते ही ऊँची-पूरी, गोरी-चिट्टी नायिका नकाब लगाकर तंग काली पोशाक पहनकर उस औरत में बदल जाती थी, जो कुश्ती, तैराकी, घुड़सवारी, तलवारबाजी और जमीन से बालकनी पर उलटी छलाँग लगाने में माहिर होती थी। यह सब वह क्षण होता था, जिसका इंतजार तीन आने वाले दर्जे के दर्शक दम साधकर करते थे। और वह नायिका होती थी नादिया!

वनमाला

वसंत सेना का आधुनिक संस्करण



एक बार शशिकपूर ने बताया कि संसार की सबसे सुंदर महिला वनमाला थी। जब पृथ्वीराज वनमाला के साथ 'सिकंदर' फिल्म की शूटिंग करते थे, शशिकपूर बहुत छोटे थे, परन्तु वे मंत्रमुग्ध होकर एकटक वनमाला की ओर देखा करते थे। जब शशिकपूर ने वनमाला की **'वसंत सेना'** देखी, तो वे मंत्रमुग्ध हो गए। बाल मन पर सौंदर्य की छाप ऐसी पड़ी कि जब शशि के सामने गिरीश कर्नाड ने 'वसंत सेना' को 'उत्सव' के नाम से बनाने का प्रस्ताव रखा, तो शशि ने स्वीकृति दे दी। रेखा को लेकर 'उत्सव' प्रारंभ हुई। पर्दे से पटाक्षेप के बाद भी वनमाला के प्रभाव ने शशि से एक महँगी फ़िल्म बनवा ली।

वनमाला का जन्म उज्जैन में हुआ था—कालिदास का उज्जैन। वनमाला का लालन-पालन ग्वालियर में हुआ। उनके पिता सरदार राव बहादुर बापूराव पवांर थे। ग्वालियर राजघराने से जुड़े इस परिवार की कन्या वनमाला देवी अत्यंत सुसंस्कृत एवं पढ़ी-लिखी विदुषी महिला थी, जो बी.ए.बी.टी. थी। वनमाला एक अत्यंत अशांत आत्मा थी, जो अपने विचारों के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम खोज रही थी। उसने इक्कीस वर्ष की आयु में प्रगतिवादी आगरकर हाईस्कूल पूना में अध्यापन का कार्य प्रारंभ किया। वह स्वभाव से ही विद्रोहिणी थी। एक परम्परावादी मराठी घराने में जन्मी विद्रोहिणी। आचार्य अत्रे के घर वी. शांताराम ने सुझाव दिया कि वनमाला उनकी कम्पनी में दिग्दर्शन और लेखन का कार्य करें। शांतारामजी यह साहस तो नहीं कर सकते थे कि ग्वालियर घराने की कन्या को अभिनेत्री बनने का कहें। उस जमाने में फिल्मों को अनादर की दृष्टि से देखा जाता था। वनमाला को माध्यम की तलाश थी और परम्परा तोड़ने का साहस था। **'लपंडाव'** (आँखमिचौली) उनकी पहली मराठी फिल्म थी।

वनमाला के व्यक्तित्व में सबसे अनोखी चीज थी, उनकी आँखें—समुद्र के रंग और गहराई वाली आँखें, जिनके कारण उन्हें 'सिकंदर' में रुखसाना की भूमिका मिली। शशिकपूर ने अपनी फिल्म 'अजूबा' की नायिका का नाम भी रुखसाना इसी प्रभाव में रखा है। पठान पृथ्वीराज और मराठा सरदार पुत्री वनमाला ने पूरे भारत में तहलका मचा दिया। 'सिकंदर' उस समय की 'शोले' थी।

वनमाला ने अनुभूति की इतनी तीव्रता के साथ अंधी लड़की की भूमिका फिल्म 'पर्वत पे अपना डेरा' में निभाई कि उन्हें शूटिंग के समय कई बार दिखना बंद हो जाता था। अभिनय का शायद प्रथम मेथड स्कूल वनमाला थी। वनमाला ने 'शरबती आँखों', 'बीते दिन', 'मुस्कराहट' आदि सफल फिल्मों में काम करने के बाद आचार्य अत्रे के साथ भागीदारी में 'वसंत सेना' का निर्माण किया। वसंत सेना एक राजनर्तकी की गरीब कवि से प्रेम की कहानी है। वनमाला की प्रिय भूमिका थी और फिल्म भी खूब सफल रही।

यह वनमाला का ही स्वभाव था कि उन्होंने फिल्म अभिनय की चोटी पर पहुँचने के बाद मराठी नाटकों में काम करने के लिए फिल्में छोड़ दीं। धन कमाना वनमाला का उद्देश्य कभी नहीं रहा। फिल्मों से निवृत्ति के पहले वनमाला ने **'श्यामची आई'** में कार्य कर अभिनय का स्वर्ण पदक भारत के राष्ट्रपति से ग्रहण किया था।

जब वनमाला को पिता की बीमारी की खबर मिली, तो उन्होंने मराठी स्टेज भी छोड़ दिया और ग्वालियर जाकर अपने पिता की सेवा की। वनमाला ने अपने फिल्मी जीवन में अनेक विद्वानों और कला के पारंगत लोगों की निकटता पाई। गुलामी के दिनों में वनमाला ने अरुणा आसफ अली और अच्युत पटवर्धन जैसे क्रांतिकारियों को अपने घर में शरण दी।

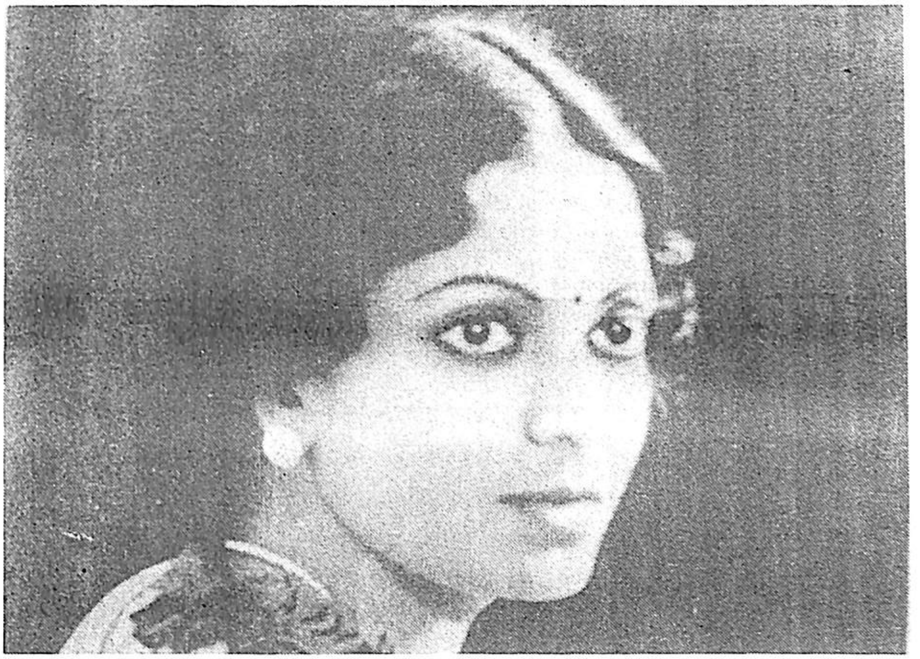
यह भारतीय फिल्मों का सौभाग्य है कि उसे वनमाला जैसी विदुषी महिला का योगदान मिला।

प्रमुख फिल्में तथा नाटकः * घर जवाँई * चरणों की दासी * सिकन्दर * कादम्बरी * राजा रानी * वसंत सेना * पर्वत पे अपना डेरा * दूसरा पेशवा (रेडियो नाटक) * हेमिंग ऑव द शू * संशय कल्लोल।

अभिनेताओं को ही करना पड़ता था। वास्तव में इस काम में मशक्कत बहुत थी। यहाँ मतलब शूटिंग से नहीं है। असली मेहनत कलाकार जिम्नेशियम में दृश्य का अभ्यास करते हुए करते थे।'' घोड़े से गिरना, खलनायक को कंधे पर उठाना आदि सब करना पड़ता था। पुराने जमाने की यादों को ताजा करते हुए नादिया खुद बतलाती हैं-''दुर्घटनाएँ भी होती थीं। जॉन कावस और मैं अमावस को अशुभ दिन मानते थे। ऐसे ही एक दिन 'हंटरवाली' की शूटिंग के दौरान लटकते हुए लाइट के सहारे झूलकर मुझे हॉल के उस पार जॉन कावस तक पहुँचना था। रिहर्सल के दौरान तो सब ठीक-ठाक रहा, लेकिन असली 'टेक' के समय जॉन चूक गए और मैं चारों खाने चित्त जमीन पर आ गिरी। वह तो अच्छा हुआ कि सेट पर मौजूद लोग मुझे संभालने को दौड़ पड़े और मुझे चोटें कुछ कम आईं। एक बार मुझे कॉमेडियन भगवान के भाई सदाशिव को अपने कंधों पर उठाए चलती रेलगाड़ी की छत पर दौड़ना था। दो डिब्बों के बीच एक चपटी पट्टी पर दौड़ते हुए मुझे कैमरे की तरफ भी देखना था और अपना संतुलन भी बनाए रखना था। सदाशिव बदस्तूर 'हमको मत छोड़ो' चिल्लाए जा रहे थे।'' अपने खतरनाक दृश्यों में नादिया **डायमंड क्वीन** के विल्सन बाँध के तेज बहाव में फिसलने तथा **जंगल प्रिंसेस** में बबर शेर के साथ उनकी लड़ाई को नहीं भूल पाती हैं। मगर नादिया की असली समस्या स्टंट न होकर भाषा थी। हिंदुस्तानी संवाद बोलने में उन्हें सबसे ज्यादा दिक्कत आती थी। **पहाड़ी कन्या** में उन्हें दो पृष्ठ का एक संवाद दिया गया था, जिसे याद करने में उन्हें पूरा महीना भर लगा। बसंत की **मौज** फिल्म में उन्होंने एक भावुक दृश्य भी किया था। मगर लगातार रोने के इस दृश्य को बाद में वितरक के सुझाव पर यह कहते हुए काट दिया गया कि 'नादिया रो नहीं सकती।'

नादिया की फिल्मों का असली असर हम लोगों के घरों तक पहुँचता था। देखी हुई फिल्म के एक-एक दृश्य को 'डिशुम' और 'ठाँऽऽ' के साथ हमारी मित्र मंडली फिर से अभिनीत करती थी।

स्टंट फिल्मों का सर्वश्रेष्ठ युग १९३५-४० के बीच था। उसके बाद भी स्टंट फिल्में बनती रहीं, लेकिन लोगों की पसंद बदल रही थी। **हंटरवाली की बेटी** सफल रही और कोई दस ऐसी स्टंट फिल्में करने के बाद नादिया ने हेयर ड्रेसर के रूप में प्रशिक्षण लेना शुरू कर दिया। नादिया की अंतिम स्टंट फिल्म **सर्कस क्वीन** (१९५९) थी। इसके बाद १९६० में होमी वाडिया के साथ उनकी शादी हुई। सन् १९६८ में बनी वाडिया की **खिलाड़ी** में उन्होंने आखिरी बार एक छोटी से भूमिका की थी। (सिनेमा विजन से) ■



लीला चिटणीस की चंदेरी दुनिया

पुरानी फिल्मों के दौर में ज्यादातर अभिनेत्रियों ने विवाह के पश्चात् फिल्मों में काम करना शुरू किया था, जिसमें एक नाम लीला चिटणीस का भी है। लीला नगरकर (चिटणीस) का विवाह डॉ. चिटणीस से हुआ था। लीला ने जब अपनी पढ़ाई खत्म कर ली तो उनके पति ने उन्हें स्टेज पर कार्यक्रम देने हेतु प्रोत्साहित किया। जब टॉकीज का प्रारंभ हो गया तो कुछ बुद्धिजीवियों जैसे के. नारायणन् काले, अनंत कानेकर, केशवराव भोले ने मिलकर मराठी स्टेज को विभिन्नताओं के साथ प्रारंभ किया। केशवराव दाते मराठी स्टेज के प्रसिद्ध अभिनेता थे। वे 'नाट्यमनवांतर' के साथ अभिनेता और निर्माता के रूप में जुड़े। डॉ. चिटणीस भी इसके साथ संबंधित थे, इसलिए जब इनके नाटक 'बेबी' का निर्माण हुआ तो लीला चिटणीस ने उसमें काम किया।

इसके पश्चात लीला को एक फिल्म का प्रस्ताव मिला। जबलपुर के सेठ गोविन्ददास और द्वारकाप्रसाद मिश्र, जो कांग्रेस के प्रमुख नेता थे, वे इस फिल्म के लेखक और संवाद लेखक थे। फिल्म का नाम **धुआँधार** था, जो जबलपुर की संगमरमरी चट्टानों पर शूट की गई थी। नाना पलसीकर, लीला के साथ थे। परंतु यह फिल्म फ्लॉप हो गई।

मास्टर विनायक ने लीला को अपनी सामाजिक फिल्म **छाया** के लिए शीर्ष भूमिका के लिए चुना। इसमें उन्होंने अमीर लड़की की भूमिका अभिनीत की। फिल्म की नायिका को गरीब- बेरोजगार कवि से प्यार हो जाता है। कवि की कविता से वह इस कदर प्रभावित हो जाती हैं कि एक डॉक्टर से अपनी सगाई तोड़ देती है। 'छाया' में लीला की भूमिका काफी सराही गई और तब उन्हें विभिन्न भूमिकाओं के कई प्रस्ताव मिले। निर्माता के. नारायणन् काले की फिल्म वाहन में उन्होंने एक आर्य लड़की की भूमिका की। इसमें शांता आप्टे भी थीं। सोहराब मोदी की फिल्म जेलर में लीला ने एक गुस्सैल जेलर की पत्नी की भूमिका निभाई। इसकी पटकथा कमाल अमरोही ने लिखी थी।

उन्हें सबसे बड़ा ब्रेक बाम्बे टॉकीज की **'कंगन'** फिल्म में मिला। इसमें देविका रानी और अशोक कुमार उनके साथ थे। दुबली पतली, घुँघराले बाल, दिखने में सुंदर लीला और अशोक कुमार की रोमांटिक जोड़ी का लोगों में काफी क्रेज था। 'आजाद' फिल्म में भी यही जोड़ी थी। इसे एन.आर. आचार्या ने बनाया था। परंतु लीला को इसमें खास सफलता नहीं मिली। 'तुलसीदास' फिल्म लीला के लिए मील का पत्थर साबित हुई। इसमें वे संत कवि की पत्नी बनी थी। इसे जयंत देसाई ने बनाया था। सन् १९४० लीला के लिए भाग्यशाली सिद्ध हुआ। उनकी तीन फिल्में तुलसीदास, अर्धांगिनी और बंधन जुबिली हिट हुईं। इन तीनों फिल्मों में उनकी अलग-अलग किस्म की भूमिकाएँ थीं।

जब वे सफलता के शिखर पर थीं, तब ही उनका व्यक्तिगत जीवन तनावग्रस्त हो गया। डॉ. चिटणीस से उनकी नहीं जमी। अंततः उन्होंने तलाक ले लिया। एक फिल्म निर्माता सी.आर. ग्वालानी से लीला ने शादी कर ली। दूसरे विवाह के पश्चात लीला प्रोडक्शन में भी रुचि लेने लगीं। ग्वालानी की दूसरी फिल्म 'किसी से न कहना' में लीला ने प्रोडक्शन के साथ-साथ पटकथा लेखन में भी योगदान दिया। यह फिल्म कृष्णगोपाल के साथ मिलकर बनाई गई थी। इसमें लीला के साथ केशवराव दाते थे। जल्दी ही ग्वालानी और लीला चिटणीस में भी तनाव बढ़ने लगा। ग्वालानी 'प्रतिज्ञा' फिल्म बनाने के बाद 'लाहौर' चले गए। लीला पूर्ववत् स्वतंत्र रूप से अपने कैरियर को बनाने में लग गई। बाम्बे टॉकीज में उनकी वापसी हुई 'चार आँखें' से। इसे सुशील मजूमदार ने बनाया था और जयराज, लीला के साथ थे। एक अन्य फिल्म 'छोटी सी दुनिया' में भी जयराज उनके साथ थे। जयंत देसाई की 'मनोरमा' फिल्म से लीला को काफी सफलता मिली। बाद की कुछ फिल्में जैसे गजल, भक्त प्रहलाद, शतरंज, घर-घर की कहानी, अंधों की दुनिया से कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। १९४८ में बनी 'शहीद' फिल्म से लीला के केरियर में नया मोड़ आया। इस फिल्म में दिलीपकुमार, कामिनी कौशल और चंद्रमोहन उनके साथ थे।

'आवारा' फिल्म में राजकपूर ने पृथ्वीराज कपूर के साथ उन्हें लिया। इसमें वे युवा और वृद्ध दोनों भूमिकाओं में थीं। इसमें उन्होंने एक ऐसी पत्नी की भूमिका की, जो परिस्थितिवश अपने पति का घर छोड़ देती है और उसके बच्चे का जन्म निचले तबके में होता है। इस भूमिका को लीला ने काफी गंभीरतापूर्वक निभाया था। इसके पश्चात विमल रॉय की माँ फिल्म में उन्होंने अभिनय किया, जिसमें भारतभूषण और श्यामा भी थे। आवारा और माँ फिल्मों में उनकी भावनात्मक अभिनयक्षमता के कारण कई फिल्मों में माँ की भूमिका के प्रस्ताव मिले। फिल्मों के साथ-साथ लीला स्टेज का मोह न छोड़ पाई। राजकपूर की एक और फिल्म **'सत्यं शिवं सुंदरम'** में डेविड के साथ काम किया। यों वे अमेरिका में स्थायी रूप से बस चुकी हैं और चुनिंदा फिल्मों में ही अभिनय करने की इच्छुक हैं।

◆◆◆

मध्यप्रदेश के स्वर्गीय मुख्यमंत्री पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र तथा नाटककार सेठ गोविन्ददास ने मिलकर फिल्म धुआँधार के संवाद और कथा लिखी थी। जबलपुर की संगमरमरी चट्टानों के बीच लीला चिटणीस तथा नाना पलसीकर को लेकर फिल्माई यह फ़िल्म तो फ्लॉप हो गई, मगर लीला चिटणीस का नाम कई फिल्मकारों की स्मृति में दर्ज हो गया। अशोक कुमार के साथ लीला चिटणीस की जोड़ी खूब जमी और कंगन, बंधन फिल्मों ने देशभर में धूम मचा दी। आमतौर पर फिल्मों में काम कर अभिनेत्रियाँ शादी करती हैं, लेकिन लीला चिटणीस ने पहले शादी की, फिर फिल्मों की चौखट में कदम रखे।

ग्लोरियस गौहर मामाजीवाला

फिल्म जगत में **गौहर मामाजीवाला** का नाम काफी सम्मान के साथ लिया जाता है। वे न केवल अभिनेत्री थीं, अपितु निर्माता और एक स्टुडियो की मालकिन भी थीं। गौहर अभिनेत्री होने के अलावा काफी मेधावी थीं। उनकी तार्किक क्षमता जबर्दस्त थी। एक सम्पन्न बोहरा परिवार में गौहर का जन्म हुआ। उन्हें बचपन में किसी भी चीज की कमी महसूस नहीं हुई। लेकिन किस्मत का खेल ही कुछ ऐसा है कि गौहर के परिवार पर एकाएक विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। उनके पिताजी का व्यापार चौपट हो गया। हालत यह हो गई कि घर चलाना मुश्किल हो गया। ऐसी नाजुक घड़ी में उनके पारिवारिक मित्र होमी मास्टर ने गौहर के पिता को सुझाव दिया कि गौहर को अभिनय को पेशे के रूप में अपनाना चाहिए। इस प्रकार गौहर का फिल्म जगत में पदार्पण हुआ।

गौहर का जब फिल्मी प्रवेश हुआ, तब वे १६ साल की नाजुक कली-सी थीं। उनकी पहली फिल्म कोहिनूर फिल्म की **'फारचून एंड द फूल्स' थी।** यह फिल्म सुपरहिट हुई। इस फिल्म के निर्देशक कान्जीभाई राठौर और नायक खलील थे। मूक फिल्मों के उस दौर में जबकि पौराणिक, मारधाड़ और रोमांचक फिल्में दर्शक पसंद करते थे, गौहर की सामाजिक फिल्म काफी सराही गई। पहली ही फिल्म में गौहर ने करिश्मा कर दिखलाया। उनकी दूसरी फिल्म थी **'फेयरी ऑफ सिलोन'।** इस फिल्म की भी काफी प्रशंसा हुई। इस फंतासी फिल्म के निर्देशक होमी मास्टर तथा नायक खलील थे। कोहिनूर फिल्म की 'शीरी फरहाद' (नायक खलील), ऐतिहासिक जस्मा ओडन (नायक खलील) तथा 'एजुकेटेड वाइफ' काफी चर्चित हुई। 'एजुकेटेड वाइफ' में उन्होंने एक ऐसी पत्नी की भूमिका निभाई जो कि डॉक्टर है तथा जिसकी नई-नई शादी हुई है। डॉक्टर होने के कारण वह (गौहर) समझ जाती है कि जिससे उनकी शादी हुई है, वह 'सिफलिस' का शिकार है। फिल्म की नायिका (गौहर) इससे हताश नहीं होती है और वह अपने प्यार, आपसी समझ-बूझ और परस्पर आकर्षण के जरिए उसे स्वस्थ होने में सहयोग देती है। फिल्म के नायक वैद्य थे, जो अधिकांशतः खलनायक की भूमिका निभाते थे। गौहर की प्रतिभा से उस समय के मशहूर निर्देशक **चंदूलाल शाह** भी प्रभावित हुए। उन्होंने कोहिनूर फिल्म की 'टाइपिस्ट गर्ल' के लिए गौहर को अनुबंधित किया। हालाँकि फिल्म की अभिनेत्री सुलोचना थी, लेकिन गौहर की ख्याति रातोंरात फैल गई। इस फिल्म ने गौहर को स्थापित कर दिया। फिल्म में गौहर ने एक शराबी की पत्नी की भूमिका निभाई थी। गौहर ने कोहिनूर फिल्म की कई अन्य फिल्मों में भी काम किया। इन सभी फिल्मों के निर्देशक चंदूलाल शाह थे। जबकि नायक की भूमिका खलील या राजा सेंडो निभाते थे। कोहिनूर फिल्म्स के लिए वे दो सालों तक अनुबंधित रहीं। १९२७ में वे कोहिनूर फिल्म्स से अलग हुईं। गौहर व चंदूलाल शाह के संयुक्त मित्र जगदीश पास्ता इस शर्त पर फिल्म निर्माण संस्था खोलने के लिए तैयार हो गए कि उन्हें उन दोनों से तकनीकी सहयोग प्राप्त होगा। इस प्रकार इन तीनों के अलावा राजा सेंडो और कैमरामैन पांडुरंग नाइक ने मिलकर श्रीसाउंड स्टूडियो की स्थापना की। इस स्टूडियो को चंदूलाल शाह ने पास्ता की जमीन पर बनाया था। इस स्टूडियो में दस फिल्मों का निर्माण किया गया, जिसमें 'चंद्रमुखी' और 'विश्व मोहिनी' शामिल है। १९२९ में चंदूलाल शाह और गौहर, पास्ता से अलग हो गए और रणजीत स्टूडियो की स्थापना की।

इस स्टूडियो में पहली सवाक फिल्म **पति-पत्नी** का निर्माण किया गया। यह स्टूडियो आधुनिक सुविधाओं से युक्त था। लगभग बीस सालों तक शाह और गौहर के संयुक्त मार्गदर्शन में इस स्टूडियो में फिल्में बनती रहीं। गौहर न केवल अभिनेत्री थी, अपितु वह स्टूडियो की पार्टनर तथा फिल्मों की निर्मात्री भी थी। उन्होंने रणजीत स्टूडियो की प्रगति के लिए काफी परिश्रम किया। गौहर जब तक अभिनेत्री रहीं, वे फिल्मों में अपना गाना खुद ही गाती थीं। फिल्मों से संन्यास के बाद उन्होंने स्टूडियो की ओर भरपूर ध्यान दिया। फिल्मों के अलावा उन्हें किताबें पढ़ने का भी शौक था। वे अँगरेजी, उर्दू, हिंदी, गुजराती और मराठी भाषा की अच्छी जानकार थीं। गौहर की फिल्मों की संख्या बहुत कम हो सकती है, लेकिन फिल्म माध्यम के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ■



माचिस बॉक्स पर मुद्रित गौहर मामाजीवाला

जमुना देवी बनाम

देवदास की पारो



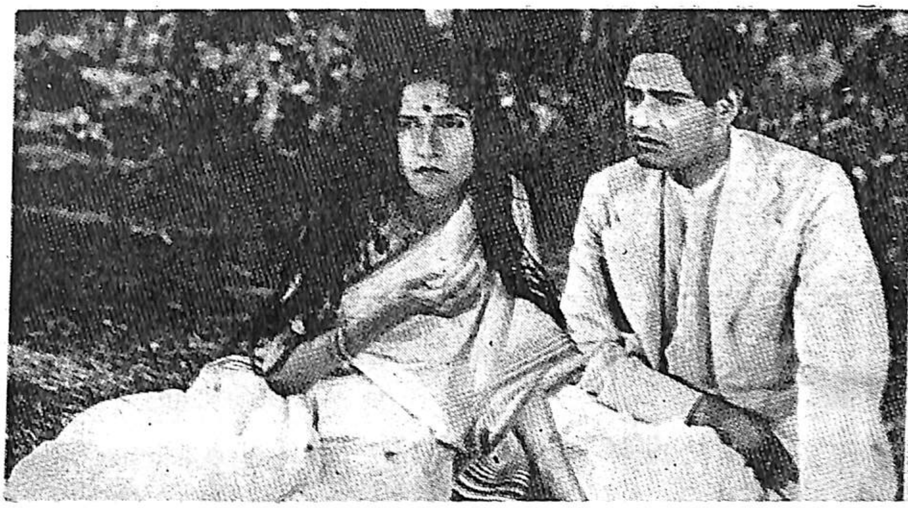
जमुना बरुआ का फिल्म केरियर प्रमथेश बरुआ के साथ प्रारंभ हुआ और उनके साथ ही अंत। पी.सी. बरुआ की पहली फिल्म **रूपलेखा** (१९३४) से जमुना का फिल्मी जीवन आरंभ हुआ। यह वह फिल्म थी, जिसमें सबसे पहले फ्लेश बेक तकनीक का प्रयोग प्रारंभ किया गया था। उसी वर्ष जमुना और बरुआ ने शादी कर ली। बरुआ की फिल्म 'देवदास' (१९३६) से वे बतौर नायिका का रोल निभाने लगीं। यह फिल्म बंगाली के साथ हिंदी में भी बनी थी। बंगाली फिल्म में उनके साथ उनके पति बरुआ और हिंदी संस्करण में के.एल. सहगल नायक थे।

फिल्म 'भिखारी' में पराए मर्द के लिए- "मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकती"- संवाद बोलने के बजाए लीला मिश्रा ने फिल्म छोड़ दी थी।

मास्को फिल्म समारोह में बाल-फिल्म 'नानी माँ' को डिप्लोमा अवार्ड मिला। प्रतिक्रिया में लीला मौसी बोली- "काहे की खुशी रे, अगर मिठाई का डिब्बा देते तो पड़ोसियों को खिलाती, इस मुँए डिप्लोमा को क्या करूँ।"

लीला मिश्रा सिनेमा के परदे की परी तो कभी नहीं रही। लेकिन सत्रह की उम्र से सत्तर साल तक परियों की नानी, दादी, माँ और मौसी की भूमिका में वे सदैव याद की जाती रहेंगी। वे फिल्म जगत में मौसी के नाम से मशहूर थीं और अभिनय का स्कूल मानी जाती थीं। पाँच दशक के फिल्मी जीवन में उन्होंने पाँच सौ से अधिक फिल्मों में चरित्र भूमिकाएँ बखूबी निभाईं।

जमुनादेवी की अंतिम फिल्म फुलवारी थी, जो बंगाली में 'मालछा' नाम से बनी थी। यह टैगोर की एक कहानी पर आधारित थी। १९५१ में बनी इस फिल्म के निर्देशक प्रफुल्ल राय थे। प्रभात मुखर्जी फिल्म के नायक थे। इसी वर्ष बरुआ साहब की मृत्यु हो गई और जमुनादेवी के फिल्मी जीवन का अंत हो गया।



फिल्म देवदास (१९३६) में जमुना तथा सहगल

जमुनादेवी कलकत्ता में पैदा हुई और वहीं बड़ी हुई। उनके माता- पिता उत्तरप्रदेश के थे, इसलिए वे हिंदी व बंगाली भाषा अच्छी तरह से बोल लेती थीं। उन्होंने फिल्मों में काम कर थोड़ी उर्दू बोलना-लिखना भी सीख लिया था। देवदास फिल्म भारतीय सिनेमा के इतिहास में क्लासिक फिल्म है। आज के नजरिए से यह फिल्म उस दौर की कलात्मक फिल्म थी। जमुनादेवी की जिंदगी का सर्वाधिक सौभाग्यशाली क्षण था, जब उन्हें पार्वती की भूमिका के लिए लिया गया। इसके पहले बरुआ साहब ने काननदेवी को यह प्रस्ताव भेजा था, परंतु कानन देवी उस वक्त राधा फिल्म्स के साथ अनुबंधित थी। वे इसमें काम नहीं कर सकती थीं। इसलिए शायद भाग्य ने यह अमूल्य अवसर जमुनादेवी के लिए रख छोड़ा था। यह फिल्म सिनेमा वालों के लिए जैसे प्रेरणा का स्रोत बन गई। इस फिल्म ने उस समय जबरदस्त लोकप्रियता हासिल की। उसी वर्ष मंजिल ने भी उनके केरियर को स्थापित करने में मदद की। बरुआ की एक और हिट फिल्म 'गृहदाह' शरतचन्द्र की कहानी पर आधारित थी। उस समय कलाकार एक साल में ज्यादा से ज्यादा तीन फिल्में ही करते थे। 'गृहदाह' के अलावा एक और फिल्म 'माया' भारतीय फिल्म इतिहास में अविस्मरणीय मानी जाती है। पहाड़ी सान्याल के साथ जमुना देवी ने कुछ और फिल्में भी कीं। 'माया' में सान्याल के साथ दूसरे हीरो बरुआ थे। सन् १९३८ में फिल्म 'अधिकार' ने भी सफलता अर्जित की। बरुआ की फिल्म 'जिंदगी', जिसमें सहगल उनके साथ थे, वह उनके दिल को छू गई। कुछ सालों बाद अर्थात् १९७५ में सुचित्रा सेन ने इसी प्रकार की भूमिका 'प्रियबांधवी' में की और सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के अलावा चार फिल्म फ़ेअर अवार्ड प्राप्त किए।

'जिंदगी' के पश्चात् जमुना ने न्यू थिएटर के तहत् एस.वी. प्रॉडक्शन स्टूडियो को ज्वाइन कर लिया। जहाँ उनकी दो फिल्में उत्तरायण (बरुआ के साथ) और शेष उत्तर (हिन्दी फिल्म जवाब) काफी हिट हुई। जवाब फिल्म ने तो बहुत ज्यादा सफलता हासिल की थी। बॉक्स ऑफिस पर उस फिल्म ने २८ लाख रु. का व्यवसाय किया था, जबकि हिंदी व बंगाली भाषा में उसकी कुल लागत पाँच लाख रुपए आई थी। जवाब में उन्होंने एक ऐसी औरत की भूमिका की थी, जो अपने प्यार को दूसरी औरत के लिए कुरबान कर देती है।

अमीरी, पहचान और रानी तीनों फिल्में बरुआ ने बनाई थीं, वे इनमें स्वयं नायक बने थे। हिंदी में बनी सुलह फिल्म में भी जमुना काफी सफल रहीं। बाद में बंगाली में यह फिल्म **संधि** नाम से बनी थी। १९४८-४९ तक जमुनादेवी काफी लोकप्रिय व स्थापित कलाकार बन चुकी थीं। उसी समय राम दरियानी और बी.एस. व्यास बंबई से कलकत्ता आए और जमुना देवी को साथ लेकर फिल्म बनाई। दरियानी की 'हिंदुस्तान हमारा' और व्यास की 'घर' फिल्म ने जमुना देवी को काफी सफलता प्रदान की। 'हिंदुस्तान हमारा' में वे बरुआ के साथ थी, जबकि 'घर' में हीरो इफ्तिखार थे। दोनों फिल्में हिट हुई। १९५१ में बरुआ की मौत ने जमुना को भी फिल्मों से अलग कर दिया।

जिंदगी और देवदास में उनके अभिनय ने उच्च आयामों को स्पर्श किया, जबकि देवदास की पारो की गहरी पीड़ा को उन्होंने अपने अंतस में महसूस किया था। दिलीपकुमार के प्रति उनके मन में काफी सम्मान की भावना है। किन्तु वे बरुआ की देवदास और विमल रॉय की देवदास की तुलना नहीं करना चाहती। फिल्में छोड़ देने के बाद भी लंबे समय तक फिल्मकारों के प्रस्ताव उनके पास आते रहे, किन्तु वे सदैव नम्रतापूर्वक उन्हें इन्कार करती रहीं। ■

परियों की नानी : लीला मिश्रा

एक जैसी भूमिकाएँ करते-करते हर कलाकार की परदे पर एक छवि बन जाती है जिससे वह चाहते हुए भी मुक्त नहीं हो पाता। लीला मिश्रा को दर्शक फिल्मी मौसी के रूप में अच्छी तरह जानते हैं। उनके जीवन की इससे बड़ी त्रासदी और क्या होगी कि बालपन में विवाह होने के कारण १४ वर्ष की उम्र में वे माँ बन गई और सिर्फ १७ वर्ष की उम्र में उन्हें परदे पर भी माँ की भूमिका करनी पड़ी। गजानन जागीरदार की 'होनहार' में उन्हें शाहू मोडक की माँ का रोल मिला। मजे की बात यह कि बेटा माँ से उम्र में बड़ा था, लेकिन लीलाजी सदैव माँ या मौसी ही नहीं बनीं भाभी, जेठानी, देवरानी या चाची की भूमिकाएँ भी उन्हें मिलती रहीं।

वैसे नायिका की भूमिका नहीं मिलने के लिए लीला मौसी स्वयं को ही दोषी मानती थीं। इसका किस्सा एक बार उन्होंने सुनाया था। १९३६ की बात है-उन्हें मास्टर विनायक के साथ 'भिखारी' फिल्म में नायिका का रोल सौंपा गया। यह एक प्रेम त्रिकोण वाली फिल्म थी। फिल्म के पहले दृश्य में ही नायक को बाँहों में भर कर उन्हें यह संवाद बोलना था- **"मैं तुम्हारे बिना जिंदा नहीं रह सकती।"** शाट की तैयारी पूरी हो गई मगर जैसे ही यह दृश्य फिल्माया जाने लगा लीलाजी नर्वस हो गई और उन्हें बुखार चढ़ गया। कुछ दिनों बाद दुबारा इस दृश्य की शूटिंग शुरू हुई और इस बार भी वैसा ही हुआ। आखिर लीलाजी ने इंकार कर दिया। उन्होंने कहा- मैं विवाहित हूँ और अपने पति के अलावा किसी पराए मर्द के आगे ये लफ्ज नहीं बोल सकती। फिर भले ही वह अभिनय क्यों न हो।

लीलाजी की पहली फिल्म थी दादा फालके द्वारा निर्मित **'गंगावतरण'** जो १९३५ में रीलिज हुई। १९३५ से १९४० के बीच लीलाजी को काफी भागमभाग करनी पड़ी। कभी शूटिंग के लिए कोल्हापुर तो कभी कलकत्ता। १९४२ में वे बंबई आ गई और फिर यहीं बस गई। बंबई आने के बाद उनके पास अनुबंधों की बाढ़-सी आ गई। ▷



एक बार की बात है वाडियां स्टूडियो में शूटिंग के दौरान ही लीलाजी ने छः फिल्में साइन कीं।

फिल्मों की सफलता-असफलता से लीलाजी निर्लिप्त रहती थीं। वे कहती थीं फिल्म अगर सफल होगी तो निर्माता को फायदा होगा और पिट गई तो उसका नुकसान। मेरा कुछ नहीं बिगड़ता मेरी भूमिका वैसी ही रहती है और मुझे काम मिलने में कमी भी नहीं आती। मास्को फिल्मोत्सव में बाल फिल्म 'नानी माँ' में श्रेष्ठ भूमिका के लिए मौसी को 'डिप्लोमा' अवार्ड प्रदान किया गया था। जब उनसे इस पर प्रतिक्रिया पूछी गई कि क्या आप 'डिप्लोमा' पाकर खुश हैं, तो उन्होंने कहा था- 'काहे की खुशी रे, वे अगर मिठाई का डिब्बा देते तो अड़ोसी-पड़ोसियों को खिलाती इस मुँए डिप्लोमा को क्या करूँ।'

लीलाजी को फिल्मों में एक बार अभिनय शुरू करने के बाद कभी किसी के पास काम माँगने नहीं जाना पड़ा। निर्माता खुद चलकर उनके घर आते थे। उनके बारे में कहा जाता था कि मौसी बहुत पैसे की लालची हैं, शूटिंग से पहले ही हिसाब चुकता कराती हैं, फिर काम करती हैं, लेकिन मौसी का कहना था कि मेरे साथ कुछ कड़ुए अनुभव हुए इसलिए बाध्य होकर मुझे यह तरीका अपनाना पड़ा। लोग अनुबंध कर लेते और शूटिंग हो जाने पर मुँह ही नहीं दिखाते।

इतना पैसा और प्रसिद्धि पाने के बाद भी लीला मौसी बड़ा सादगीपूर्ण जीवन जीती थीं। वे ज्यादा ऐशो आराम में विश्वास नहीं करती थीं। यहाँ तक कि उनके पास स्वयं की कार भी नहीं थीं। वे कहती, यह जो मन है बच्चे के समान है। इसे जैसे रखो रह जाता है। मैं मन के वश में नहीं रहती, मन मेरे वश में रहता है। उनका यही दर्शन उनके अभिनय में झलकता है। लीला मौसी को अभिनय में इतनी महारत हासिल थी कि वे एक बार में शॉट ओके कर देतीं। निर्देशक को उन्हें कुछ समझाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। बासु चटर्जी और गुलजार जैसे निर्देशक भी अपनी फिल्म में उन्हें लेना जरूर पसंद करते थे।

१७ से ७० बरस की उम्र तक मौसी ने इतनी फिल्मों में काम किया कि नाम गिनाएँ तो उनकी फेहरिस्त काफी लंबी हो सकती है। पिछले साल यह फिल्मी मौसी हमेशा-हमेशा के लिए बिदा हो गई।

उनकी कुछ उल्लेखनीय फिल्में हैं- 'छोटी छोटी बातें, एक थी लड़की, नवबहार, प्यासा, संजोग, दीवाना, आवारा, आखिरी दाव, बंधन, सवेरा, चाँद, प्यार का सागर, शिकस्त, जिंदगी, बावरे नयन, ताजा अतीत में राम और श्याम, बैराग, बालिका वधू, गीत गाता चल, सावन को आने दो, कथा, चश्मेबद्दूर, मेरा घर मेरे बच्चे। छोटे परदे पर दादा दादी की कहानी व बुनियाद में वे दिखाई दी थीं। उनकी कुछ विज्ञापन फिल्में तो मरणोपरांत भी टीवी पर दिखाई गई।

फिल्म जीवन ज्योति के निर्देशक महेश कौल से जब अभिनेत्री चाँद उस्मानी ने अभिनय की बारीकियाँ सिखाने को कहा तो महेशजी बोले- जो मौसी के अभिनय की बारीकियों को देख ले उसे कहीं अभिनय सीखने की जरूरत नहीं है। मौसी तो एक्टिंग का स्कूल है। ■

नसीम
असीम सौन्दर्य की स्वामिनी

हार्डी लेमार, एवा गार्डनर, विवियन ली तथा एलिजाबेथ टेलर को विश्व भर में फिल्मी दुनिया की रूपवती नायिकाओं में शुमार किया जाता है। इस श्रेणी में आने का दावा रखने की रूपराशि यदि किसी भारतीय नायिका को नसीब हुई है तो वह नसीम है। नसीम के पास रूप सौंदर्य का प्राकृतिक कोष था। उसे अपने रूप को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने के लिए न तो सौंदर्य प्रसाधनों की आवश्यकता पड़ती थी और न ही सुन्दर कीमती कपड़ों की। उसकी गोलाकार आँखों में एक खास आकर्षण और कशिश थी। सौंदर्य के साथ-साथ नसीम के पास व्यक्तित्व की गरिमा थी। चेहरे पर ताजगी और तेज था।

◆◆◆

नसीम की खोज फिल्मकार सोहराब मोदी ने की थी। हेमलेट के हिन्दी संस्करण 'खून का खून' की वह षोडशी नायिका था। ओफेलिया के चरित्र के बजाए दर्शक नसीम की सुंदरता पर मोहित थे। १९३९ में निर्मित 'पुकार' नसीम-चंद्रमोहन की जोड़ी की यादगार फिल्म है। भारत की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक फिल्म भी इसे ही माना जाता है। पृथ्वीराजकपूर, अशोककुमार तथा श्याम के साथ 'ब्यूटी-क्वीन' कही जाने वाली इस तारिका की सायरा बानो बिटिया है।

उस काल की अधिकांश नायिकाएँ समाज के निर्धन वर्ग की थी तथा अधिकांश प्राथमिक स्तर तक ही शिक्षित थीं। ऐसे में समृद्ध परिवार की इस शिक्षित और सुसंस्कृत महिला द्वारा फिल्मी दुनिया में विशिष्ट स्थान बना लेना स्वाभाविक ही था। उसकी सुरुचि, कलात्मक रहन-सहन, बातचीत का तरीका, दिखावे की प्रवृत्ति से मुक्ति आदि गुणों ने समकालीन नायिकाओं में उसे सर्वोच्च क्रम पर पहुँचा दिया।

नसीम का फिल्मों में प्रवेश एक संयोग ही था। स्कूलों की छुट्टियाँ होने पर वह माँ के साथ बंबई घूमने आई थी। बंबई भ्रमण के दौरान वह जब फिल्म स्टूडियो देखने गई तब वहाँ 'सिल्वर किंग' नामक फिल्म की शूटिंग चल रही थी। फिल्म के नायक **मोतीलाल** तथा नायिका **सबिता देवी** थीं। घर लौटने पर उसे लगा कि फिल्म अभिनेत्री बनना कोई कठिन काम नहीं है। इसके बाद उसने स्टूडियो आना-जाना जारी रखा। कुछ निर्माताओं ने उसके सामने अभिनय के प्रस्ताव भी रखे। नसीम की माँ बेटी को अभिनेत्री नहीं बनाना चाहती थी बल्कि उसकी इच्छा थी कि उसे डॉक्टर बनाया जाए।

परिवार के साथ वह वापस दिल्ली आ गई तथा स्कूली शिक्षा फिर शुरू हो गई। नसीम मन ही मन फिल्मों में काम करने का इरादा पक्का कर चुकी थी। इसीदौरान उसे सोहराब मोदी के **'हेमलेट'** में काम करने का प्रस्ताव मिला। नसीम ने भूख हड़ताल कर माँ को राजी किया। तय यह

फिल्म पुकार (१९३९) में नसीम और चन्द्र मोहन





हुआ कि स्कूली पढ़ाई खत्म करके वह बंबई जाएगी तथा फिल्म में काम करके वापस आकर कॉलेज की पढ़ाई जारी रखेगी। जब नसीम वापस लौटी तब किसी भी कॉलेज में उसे प्रवेश नहीं मिला। कारण था उसका फिल्म अभिनेत्री बनना। अतः नसीम फिर से फिल्मी दुनिया में चली गई। **खान बहादुर, मीठा जहर** तथा **वासन्ती** के बाद आई मिनर्वा मूवीटोन की 'पुकार'। इस ऐतिहासिक रोमांटिक फिल्म का जादू आज भी बरकरार है। चंद्रमोहन ने इस फिल्म में जहाँगीर की भूमिका की थी तथा नसीम बनी थी नूरजहाँ।

'पुकार' में नसीम ने अपने गीतों को स्वयं गाया था और इसके लिए उसे दो वर्ष तक सतत् अभ्यास करना पड़ा था। इस फिल्म का गीत **'जिंदगी का साज भी क्या साज है'** आज भी श्रोताओं का मन मोह लेता है। मिनर्वा मूवीटोन की एक अन्य फिल्म **शीशमहल** में अपनी अभिनय क्षमता का तराशा हुआ रूप पेश किया। वक्त के हाथों बर्बाद हुए जमींदार की लड़की की भूमिका उसनें बेहद भावपूर्ण तरीके से अदा की। स्वाभिमानी बेटी बनकर उसने गैरों की दया पर जीने की बजाए खुद नौकरी कर गृहस्थी की गाड़ी खींचना बेहतर समझा। नसीम बिना मेकअप के निहायत सादी वेशभूषा में फिल्म में आई। इसी फिल्म में निगार सुलताना एक समृद्ध जमींदार की सुंदर बिगड़ैल भूमिका में थी। नसीम और निगार के क्लोज अप सादगी और तड़क-भड़क दोनों पहलुओं को दर्शकों के सपने साकार करने में कामयाब रहे।

मिनर्वा मूवीटोन की महारानी के रूप में स्थापित होने के बाद नसीम ने फिलिमस्तान की ओर रुख किया। यहाँ उसे अशोककुमार, बीना राय, नलिनी जयवन्त जैसे जमें हुए कलाकारों के साथ काम करना था। पहली फिल्म **चल चल रे नौजवान** में वह अशोक कुमार के साथ नायिका के रूप में आई। यह फिल्म सफलता की चोटियों को छू गई. तथा यहीं से नसीम को 'ब्यूटी क्वीन' का टाइटल मिला।

फिलिमस्तान की अगली हिट 'शबिस्तान' थी इसमें नसीम लम्बा गाउन पहने स्पेनिश राजकुमारी की तरह नजर आती थी। इसी फिल्म की शूटिंग के दौरान युवा नायक श्याम की मृत्यु घोड़े से गिर जाने के कारण हो गई थी। श्याम, नसीम से उम्र में काफी छोटा था। इस सिलसिले में नसीम को यदि सदाबहार नायिका कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। उम्र का तीसवाँ मोड़ पार कर चुकने के बावजूद वह श्याम (शबिस्तान), रहमान (अजीब लड़की), अनीस (तरंग) के साथ नायिका के रूप में आई। ये सभी सितारे उससे करीब दस साल छोटे थे।

नसीम के पति एहसान एक फिल्म निर्माता बन गए तथा 'ताजमहल पिक्चर्स' के बेनर में 'उजाला', 'मुलाकातें', 'बेगम', 'चाँदनी रात' तथा 'अजीब लड़की' का निर्माण किया। बाद में नसीम सात वर्षो तक ब्रिटेन में रही तथा इस दौरान उसने सारे योरप का भ्रमण किया।

फिल्मी दुनिया में नई नायिकाओं के आने का दौर जारी रहा, नरगिस, सुरैया, मधुबाला, खुर्शीद, नूरजहाँ, स्वर्णलता, रागिनी, मुमताज शांति तथा सरदार अख्तर को पृष्ठभूमि में डाल दिया। नसीम, निगार सुलताना तथा मुनव्वर सुलताना तीन नायिकाएँ ही ऐसी थीं जो नयों के आने के बावजूद अपनी लोकप्रियता कायम रखे हुए थीं। नसीम की सबसे बड़ी भूल 'सी' ग्रेड फिल्मों में भूमिकाएँ स्वीकार करना था। 'बागी' और 'सिन्दबाद' जैसी फिल्मों में काम करने से उसकी प्रतिष्ठा को काफी आघात लगा। अतः नसीम को सक्रिय अभिनय से लगभग संन्यास ही लेना पड़ा। मिनर्वा की नौशेरवाने आदिल में उसकी छोटी सी भूमिका थी, गुरुदत्त उसे 'प्यासा' में एक महत्वपूर्ण भूमिका देना चाहते थे, मगर कहा जाता है कि नसीम ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

पुत्री सायरा जब नायिका के रूप में हिन्दी फिल्मों में स्थापित हो गई तब विख्यात निर्माता के. आसिफ ने 'नूरजहाँ' पर फिल्म बनाने का विचार किया। मुख्य भूमिका के लिए वे नसीम को चाहते थे पर उसने इंकार कर दिया। इस प्रकार ढेरों प्रस्ताव आए जो नसीम ने ठुकरा दिए। जब एक पत्रकार ने अभिनय से इस विरक्ति का कारण उससे पूछा तो नसीम का जवाब था कि वह किसी भी क्षेत्र में खुद की बेटी से अपनी तुलना नहीं करवाना चाहती।

अभिनय से पूरी तरह संन्यास लेकर नसीम ने ड्रेस डिजाइनर के रूप में काम शुरू किया। 'आई मिलन की बेला' में सायरा द्वारा पहनी गई चर्चित और बेहद लोकप्रिय हुई साड़ी का डिजाइन उसी ने तैयार किया था।

'पुकार' और 'शीशमहल' की यह असामान्य रूपवती नायिका जब बंबई के राजभवन में गुलाब की प्रदर्शनी देखने जाती थी तब फूलों का सौंदर्य देखने आए दर्शक उसे देखकर कह उठते थे कि सबसे खूबसूरत फूल यही है। ■

एक किंवदंती : साधना बोस

फिल्मों में आने के पहले ही **साधना बोस** ने शास्त्रीय नृत्य के मंच पर धूम मचा दी थी। पारंपरिक भारतीय नृत्य की सभी शाखाओं के कलाकार उसके सामने फीके पड़ गए थे। बावजूद शास्त्रीय नृत्य पेश करने के, उसने बेहिसाब पैसा और बेमिसाल लोकप्रियता अर्जित की। बाद में वह फिल्मों में आई और वहाँ भी छा गई। मगर प्रतिभा की धनी साधना बोस का अंत बड़ा दर्दनाक रहा। वह अपनी प्रतिभा के शिखर पर पहुँचकर शराब के जाम में डूब गई। फिर वह उसमें से अपनी मौत तक न निकल पाई।

यह बड़ी अजीब बात है कि इस नायिका का जीवन ब्रह्मो-समाज की नींव रखने वाले प्रसिद्ध समाज सुधारक के जीवन से सीधे प्रभावित हुआ। उसे ख्याति भी उन्हीं के कारण मिली और उनसे प्रभावित विचारों के कारण ही उसे पुरातन किस्म के दकियानूसी लोगों की आलोचना का शिकार होना पड़ा। ब्रह्मानंद केशबचंद्र सेन, जिन्होंने १९ वीं शताब्दी में अपने सुधारवादी आंदोलन से बंगाल में और बाद में बाकी देश में भूचाल सा ला दिया था, यही हस्ती साधना के दादा थे। जहाँ तक वक्त का ताल्लुक है, वे एक-दूसरे से बड़े दूर थे। उनके बीच कोई पचास बरस का फासला था, मगर साधना विचारों के धरातल पर अपने दादा से सीधे जुड़ी हुई थी।

साधना बोस कुशल नृत्यांगना थीं। उन्होंने अपनी नृत्य-कला का सामाजिक सुधार एवं बदलाव के लिए जबर्दस्त उपयोग किया। उन्होंने दक्षिण भारत के शास्त्रीय नृत्य के गढ़ में क्रांति लाने के बाद एक विशाल सभागृह में अपनी बात दोहराई। वहाँ उन्हें देखने-सुनने के लिए इतनी भीड़ जमा हुई कि सभी कुर्सियाँ हटवा दी गई और सभी दर्शकों ने खड़े होकर कलात्मक चमत्कार के दर्शन किए। साधना का कहना था कि मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि मैं नृत्य की इन शाखाओं में से किसी एक का चुनाव क्यों नहीं करती, उसमें पारंगत क्यों नहीं होती? मेरा



सब की तरह साधना बोस ने भी सपने बुने थे। एक कुशल नर्तकी और अभिनेत्री के अलावा वह भावुक स्त्री ज्यादा थी। ब्रह्मो समाज के सूत्रधार केशबचंद्र सेन की पुत्री और फिल्म निर्माता-निर्देशक मधु बोस की पत्नी। मधु बोस उससे उम्र में इतने बड़े थे कि साथ खड़े रहने पर 'अंकल' लगते थे। साधना उनके प्यार में इतनी दीवानी हो गई कि बीमार पड़ गई। शादी से पहले जितना प्यार साधना ने मधु से किया, शादी के बाद उतनी ही हिंसक नफरत उसके मन में भर गई। सन् १९४७ में कानूनन दोनों अलग हो गए। अपने खालीपन को साधना ने शराब के जाम में ऐसा डुबोया कि उसकी शेष जिंदगी गलकर तार-तार हो गई। साठ के दशक में मधु-साधना फिर से मिले-हमेशा बिछुड़ जाने के लिए। १९६९ में जब मधु बोस की मृत्यु हुई तो साधना उनके साथ अकेली थी। अक्टूबर १९७३ में वह भी चल बसी, लेकिन एक किंवदंती की तरह माहौल में वह आज भी मौजूद है।

जवाब यह रहता है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य की गहराई इतनी असीम है कि उसमें पारंगत होने के लिए एक जीवन काफी नहीं है। यह संभव नहीं है। इसलिए हमें सिर्फ नृत्य की तकनीक में उलझकर नहीं रहना चाहिए।

साधना के ऐसे क्रांतिकारी और मौलिक विचार पारंपरिक पंडितों को रास नहीं आए। उन्होंने उसकी बड़ी कड़वी आलोचना की। एक ने तो इसे वेश्यावृत्ति ही ठहरा दिया। मगर साधना जानती थी कि घिसे-घिसाए विचारों वाले कलाकार और गुरु इससे और ज्यादा दुःखी थे कि उसके कार्यक्रमों में शास्त्रीयता और स्तर के बावजूद पैसों की वर्षा हो रही थी। साधना ने अपना प्रयोग जारी रखा। उदाहरण के लिए पश्चिम बंगाल के भयंकर अकाल के समय सिर्फ वही एक ऐसी कलाकार थी, जिसने पारंपरिक कथानकों को छोड़कर 'भूख' नामक बैले का प्रदर्शन करके लोगों का दिल छू लिया। कत्थक में राधा और कृष्ण के प्रेम की कथा बयान की जाती है। साधना को नए जमाने में इस रासलीला तक सीमित रहना रास नहीं आया। उसने बला के साहस के साथ अपने नृत्य में उमर खय्याम की रूबाइयों को पेश किया। इस तरह साधना की प्रसिद्धि देश की सीमाओं को भी लाँघने लगी। उसकी कला में कत्थंकली की भावनात्मकता होती थी, कत्थक की नाटकीयता, मणिपुरी का तितली समान सूक्ष्म लालित्य और भरतनाट्यम की कविता। मगर उसकी हर मुद्रा शास्त्रीय होती थी और शास्त्रीयता के साथ हम-आपकी, आज की कहानी कहती थी।

साधना कला को कला के लिए ही रखने की उतनी कायल न थी। उसका कहना था कि कला लोगों के लिए ही है, जीवन के लिए ही है। उसकी पहली हिंदी फिल्म **कुमकुम** में यह कथन देखा जा सकता है। यहाँ उसकी मुद्राओं ने जब कमल खिलाया तो कैमरे ने वाकई फूल को सजीव कर दिया। साधना ने बाद में **अलीबाबा** फिल्म में जिप्सी लड़की का रोल अदा किया जो बेहद लोकप्रिय रहा। यह फिल्म उसके पति मधु बोस ने बनाई थी। साधना पहले ही उनकी नृत्य मंडली में शामिल थी। जब इस बेजोड़ कलाकार ने रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी **डालिया** में टीनी की भूमिका अदा की तो सौंदर्य बोध के महारथी टैगोर खुद इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने साधना को शांति निकेतन बुलवाया। बरसों बाद साधना ने उनकी रचना **अभिसार** को पेश किया, जिसमें राजनर्तकी वासवदत्ता और बुद्ध के युवा शिष्य उपगुप्त के प्रेम की कहानी कही गई है। साधना का फिल्मी जीवन अधिक लंबा न रहा। १९४१ में उसने राजनर्तकी फिल्म बनाई, जिसका निर्माण हिंदी, बंगाली और अँगरेजी तीन भाषाओं में हुआ। इस फिल्म को पारखी लोग आज भी श्रेष्ठ कला के नमूने के रूप में पेश करते हैं। उदाहरण के लिए शास्त्रीय नृत्य के दौरान देवदासी का इशारा देने के लिए साधना ने सिर्फ एक बार अपनी कमर लचकाई। इस क्रिया ने सभी कला-पारखियों का दिल जीत लिया।

अपनी जगह अफसोस की बात है कि इस पाए के कलाकार को बाद में सिर्फ पेट भरने के लिए **फॉर लेडिज ओनली** और शिन शिनाकी बूबलाबू जैसी फिल्मों में काम करना पड़ा।

दरअसल साधना की तकदीर उसे बर्बादी के रास्ते पर डाल चुकी थी। उसके पति मधु बोस भी मौलिक विचार रखते थे, पर शायद साधना की कला उनके लिए भी बाढ़ आई नदी जैसी बे-लगाम साबित हुई। अपनी तरफ से इस नर्तकी को अपनी कला में किसी भी किस्म का समझौता मंजूर नहीं था। उनके बीच जो कुछ गुजरा हो, वह पहले उनकी नृत्य मंडली से दूर हुई और बाद में जीवन से भी। उस खाली जगह को अनजाने में ही शराब ने भरना शुरू कर दिया। पहले उसने थकान मिटाने के लिए जाम थामा, फिर वह उससे बोरियत दूर करने लगी और बाद में वही उसके शरीर का ईंधन बन गया। काफी समय तक आम दर्शक यह न भाँप सके कि इस बेजोड़ नर्तकी की मुद्रा और गति की कसावट में नामालूम तरीके से ढिलाई आ गई है। वह नृत्य के साथ इतनी जीवंतता से जुड़ी थी कि काफी समय तक उसके कहीं-कही ताल-बेताल होने को लोगों ने एक नई व्याख्या की तरह लिया। मगर तब तक वह जहरीला पानी सिर के ऊपर पहुँच गया था। शायद अपने जीवन में आए शून्य का सामना करने के लिए पोलो खेलने वाले एक खूबसूरत राजकुमार के साथ उसके संबंध हुए। और बाद में, आज के एक चोटी के उद्योगपति के पिता के साथ। एक की मौत हो गई और दूसरा साधना को न झेल सका। साधना ने नए-नए नृत्य कार्यक्रम जारी रखने की कोशिश की, पर वह एक ठंडी आग साबित हुई। १९७३ के अक्टूबर महीने में उसकी मौत हो गई। साधना के पुराने प्रशंसकों के पास आज भी उसका वह चित्र मिल जाएगा, जिसमें उसके बड़े-बड़े धूप के चमकीले चश्मे में फोटोग्राफर की छाया दिखाई दे रही है और खुद साधना उसके लिए जड़ तरीके से मुस्करा नहीं रही है, बल्कि मुस्कराने ही वाली है। यह कली सी अधखिली मुस्कान कई आलोचकों को मोनालिसा की याद दिलाती है।

[वीकली में प्रकाशित पार्थ बसु के आलेख पर आधारित]



आ इंतजार है तेरा...

सुरेश गावड़े



पाँचवें दशक की शुरूआत में लता मंगेशकर नामक दिव्य आवाज की गूँज शुरू हो चुकी थी किंतु लता सहित सभी पार्श्व गायिकाओं के लिए तब आदर्श हुआ करती थीं **मलिका-ए-तरन्नुम नूरजहाँ,** जिस तरह से पुरुष गायकों के आदर्श **कुंदनलाल सहगल** हुआ करते थे। भारतीय फिल्मों में नूरजहाँ और सुरैया दो ऐसी अभिनेत्रियाँ रहीं जो अभिनय के साथ-साथ गायन में भी सिद्धहस्त थीं। खासकर नूरजहाँ। लता मंगेशकर के शुरूआत के वर्षों के पार्श्व गायन का विश्लेषण किया जाए तो बेहिचक कहा जा सकता है कि नूरजहाँ की गानशैली का उन पर जबर्दस्त प्रभाव था। बानगी के लिए लाहौर फिल्म में श्याम सुंदर की सदाबहार रचना 'बहारें फिर भी आएँगी' और बाजार फिल्म की 'ऐ दिल उनको याद न करना' इन गीतों को लता ने सीधे नूरजहाँ शैली में गाया है। विभाजन के बाद किसी रात अपने पति शौकत हुसैन के साथ नूरजहाँ पाकिस्तान चली गईं और उनकी गायकी से हम एक तरह से मोहताज हो गए। आज भी जानकारों में यह विवाद का विषय है कि नूरजहाँ की उपस्थिति में लता मंगेशकर किस मुकाम पर होती। मेरी राय में यह विवाद एकदम अनावश्यक है। निश्चित ही लता जहाँ आज हैं, वे नहीं होतीं, पर नूरजहाँ की जीवंत उपस्थिति से भारतीय सिने संगीत जरूर संपन्न से अति संपन्न बन गया होता। पाकिस्तान चले जाने के कई वर्षों बाद पिछले दिनों वे बंबई आई थीं। उनके सम्मान में आयोजित समारोह में तब अभिनेता दिलीप कुमार ने सही ही कहा था कि नूरजहाँजी, जितने वर्षों बाद आप आई हैं, यकीन कीजिए कि उतने ही वर्षों तक हम सभी ने आपका इंतजार किया है।

नूरजहाँ की अभिनय क्षमता की धुँधली यादें ही अब शेष हैं किंतु उनके द्वारा गाए हुए गीत आज भी तरोताजा हैं। मेरी याददाश्त में उनकी जुगनू फिल्म ही है। तब नूरजहाँ एक परिपक्व अभिनेत्री थीं और दिलीप कुमार नवोदित। इसके बाद भी अभिनय में दिलीप कुमार ने अभिनेत्री नूरजहाँ को मीलों पीछे छोड़ दिया था। हाँ, गायिका नूरजहाँ तब अन्य सभी के मुकाबले मीलों आगे थीं। जुगनू के अलावा अनमोल घड़ी, खानदान, गाँव की गोरी, बड़ी माँ, दोस्त, जीनत, नादान, मिर्जा साहिबाँ उनकी अन्य फिल्में थीं। इन फिल्मों में नूरजहाँ के अभिनय को उनके प्रशंसक आज शायद भूल गए होंगे, पर इन फिल्मों में उनके द्वारा गाए हुए गीतों को अब भी याद किया जाता है और आगे भी याद किया जाता रहेगा। सच में मलिका-ए-तरन्नुम नूरजहाँ की आवाज गजब की जालिम थी। उस आवाज से प्रभावित होकर बर्बाद होने वालों की सूची बताया जाता है कि बहुत लंबी थी। सुरीली आवाज के साथ सुरीली शक्ल प्रायः नहीं होती किंतु नूरजहाँ को ये दोनों ही दैवी वरदान प्राप्त थे।

कुछ कहने वाली बड़ी-बड़ी आँखें, नुकीली नाक, शक्ल पर मादक मिठास और साथ में दिलकश आवाज। नूरजहाँ में इन तमाम खूबियों का अद्‌भुत मिश्रण था। पुरानी बात है। नूरजहाँ द्वारा गाया हुआ 'किस तरह टूटेगा दिल' गीत की पंक्तियों को मैं बाजे (हारमोनियम) पर दोहरा रहा था। बाजा सुन रहे मेरे पिताजी ने कहा, तुम क्या बजा रहे हो, तुम्हें मालूम है? मैंने कहा-नहीं!

तुम जो बजा रहे हो, उसमें राग शिवरंजनी की तमाम खूबियाँ हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि नूरजहाँ द्वारा गाई हुई रचनाएँ शुद्ध रागदारियों पर आधारित हुआ करती थीं।

खानदान फिल्म का एक गीत है आँख मिचौली खेलेंगे, जिसमें नूरजहाँ ने बढ़िया धैवत लगाया था। इसे सुनकर संगीतकार के. दत्ता (दत्ता कोरगाँवकर) को प्रेरणा मिली और बड़ी माँ

यदि नूरजहाँ आज भारत में होती तो भी लता, लता ही रहती



फिल्म के लिए उन्होंने एक गीत की खास रचना की; जिसमें तीव्र कोमलता, अति कोमल, गंधार और दो धैवत थे। फिल्म प्रदर्शित हुई और उस गीत से पूरा देश जैसे सुलग गया। पता है कौनसा गीत है वह? वह गीत है- दिया जलाकर आप बुझाया। के. दत्ता के अलावा नूरजहाँ के एक और गीत ने तब बेहद धूम मचाई थी। नौशाद द्वारा अनमोल घड़ी फिल्म के उस गीत में नूरजहाँ का साथ दिया था; गायक अभिनेता सुरेन्द्र ने और गीत था **आवाज दे कहाँ है**। अच्छे गीत कभी पुराने नहीं पड़ते। यह गीत भी संगीत प्रेमियों के जेहन में अब भी तरोताजा है। खैर, उनके ऐसे गीतों की फेहरिस्त यों लंबी भले ही ना हो, है भी नहीं। क्योंकि नूरजहाँ के गीत गिनने के लिए नहीं गाने के लिए ही हुआ करते थे। जैसे साँवरिया तोहे, आ इंतजार है तेरा, ये कौन हँसा दिल में, क्या यही तेरा प्यार था, किसी तरह से मुहब्बत में चैन पा न सके, हमें तो शामे गम में काटनी है जिंदगी अपनी, तुम भी भुला दो मैं भी भुला दूँ, बदनाम मुहब्बत कौन करे, आँधियाँ गम की यूँ चलीं, एक अनोखा गम, अनोखी सी मुसीबत हो गई, आदि एक से एक लाजवाब। स्वरों को आंदोलित कर इतराकर गाना नूरजहाँ की विशेषता थी। खनखनाता सुर और तान बंदूक की गोली जैसी दिल कँपा देने वाली। उदाहरण के लिए 'किसी तरह मोहब्बत में चैन पा न सके' गीत में 'पा न सके' शब्दों पर नूरजहाँ ने जो मुरकी ली, जो करामात की है, वह लिखने की बात नहीं, सुनने की है। शब्दों की फेंक (प्रस्तुति) और इठलाकर गाने को आज भी नूरजहाँ शैली या नूरजहाँ टच कहा जाता है। चूँकि वे अभिनेत्री भी थीं इसलिए गीतों के आशय को सही अंदाज में प्रस्तुत करना वे अच्छी तरह से जानती थीं और यही कारण है कि उनके गीत सुनने वालों पर विशिष्ट प्रभाव छोड़ जाते थे।

संगीतकार नौशाद ने सही कहा है कि लता के मुकाबले नूरजहाँ की आवाज में वजन था, वॉल्यूम बड़ा था। इसे पाठक लता-नूरजहाँ की तुलना नहीं समझें, दो दिव्य आवाजों का यह फर्क मात्र है। जो भी हो, फिल्मी पर्दे पर नूरजहाँ जैसी गायिका-अभिनेत्री अब नहीं होने वाली है। और यदि होती है तो, तो मैं क्या कहूँ? ■



क्रांति करने वाली शांता आप्टे

शांता आप्टे ने परदे पर रोल करते हुए प्रभात की क्लासिक फिल्म 'दुनिया न माने' में अपने बूढ़े पति पर छड़ी उठा ली थी। असली जिन्दगी में एक फिल्म पत्रिका ने उल्टा-सीधा छापा तो उसके दफ्तर में जाकर सम्पादक की पिटाई कर दी। फिल्म अमृत मंथन, दुनिया न माने तथा स्वयं सिद्धा फिल्म में उसने लड़ाकू नारी के चरित्र को इस तरह जिया है कि शांता आप्टे के कारण सम्पूर्ण नारी समाज गौरवान्वित अनुभव करता है अपने आपको।

शान्ता आप्टे के पिता स्टेशन मास्टर थे और संगीत के प्रति उनका रुझान बहुत था। इस तरह संगीतमय वातावरण में जन्मी और पली-बढ़ी शांता एक गायिका के रूप में बचपन से ही ख्याति प्राप्त करने लगी थी। पूना में होने वाले गणेशोत्सव कार्यक्रमों में शांता की मीठी स्वर लहरियों की धूम रहा करती थी। जब भारतीय सिनेमा को आवाज मिली तब पूना के फिल्म निर्माताओं को ऐसे कलाकारों की जरूरत महसूस हुई जो गाना गा सके। किशोरी शांता उन दिनों संगीत सीखने के लिए लालायित थी तथा इसी कारण उसने सरस्वती सिनेटोन की धार्मिक फिल्म **'श्याम सुंदर'** में राधा की भूमिका स्वीकार कर ली। फिल्म में राधा के पति की भूमिका उसके भाई बाबूराव आप्टे ने की थी तथा श्याम सुंदर बने थे शाहूमोडक। फिल्म का हिन्दी संस्करण तो व्यावसायिक रूप से असफल रहा मगर मराठी संस्करण ने सफलता का कीर्तिमान स्थापित कर दिया। यह पहली बोलती फ़िल्म थी जो बंबई के एक थिएटर में २५ हफ्ते चली। फिल्म की इस अपार सफलता के बावजूद शांता आप्टे को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। नई फिल्मों में काम के प्रस्ताव मिलना तो दूर रहा, यह तक कहा गया कि शांता को अभिनय का ककहरा भी नहीं आता। यद्यपि 'श्यामसुंदर' में अभिनय करते समय शांता के मन में नायिका के रूप में केरियर बनाने की कोई चाह नहीं थी, किन्तु व्यापक आलोचनाओं ने उसे अभिनय को अपनाने तथा अभिनेत्री के रूप में स्वयं को स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। उसने वर्षों श्रम किया तथा बाद में **'प्रभात'** के साथ लंबे समय का अनुबंध कर लिया। यहाँ उसकी पहली फिल्म **'अमृत मंथन'** थी जो एन.एच. आप्टे की कथा पर आधारित थी। बौद्धकालीन पृष्ठभूमि पर निर्मित यह फिल्म बलिप्रथा के विरोध में बनाई गई थी। फिल्म में नायक की बहन के रूप में शांता ने अत्यंत भावपूर्ण अभिनय किया तथा यह सिद्ध कर दिया कि उसमें कुशल अभिनेत्री बनने की सारी क्षमताएँ मौजूद हैं। उसका गाया गीत **'रात आई है नया रंग जमाने के लिए'** उस जमाने में हिट हो गया। 'अमृत मंथन' पहली हिन्दी फिल्म थी जिसने बंबई में सिल्वर जुबली मनाई। यद्यपि इस फिल्म में शांता की मुख्य भूमिका नही थी, किन्तु भावपूर्ण अभिनय तथा मीठी आवाज के कारण वह चर्चा का विषय बन गई। प्रभात के साथ हुए अनुबंध के दौरान उसने **'राजपूत रमणी'**, **'दुनिया ना माने'**, **'वाहन'**, **'अमर ज्योति'**, **'गोपालकृष्ण'** आदि फिल्मों में काम किया। 'दुनिया ना माने' तथा 'अमर ज्योति' का निर्देशन वी. शांताराम ने किया था। अमर ज्योति में उसने पुरुषों से घृणा करने वाली रोमांटिक नारी की भूमिका की थी



तथा 'दुनिया ना माने' में वह पिता की आयु के वृद्ध की पत्नी थी। स्थितियों से समझौता करने की बजाए यहाँ नायिका विद्रोह करती है तथा पति से शारीरिक संबंध जोड़ने की बजाए उसे अपनी भूल का एहसास कराने में कामयाब होती है। फिल्म में वह अपने सौतेले बेटे को छड़ी से मारती है।

पिटाई का लगभग यही दृश्य शांता आप्टे ने यथार्थ जीवन में सनसनीखेज तरीके से दुहराया। बंबई की एक फिल्मी पत्रिका ने जब उसके बारे में 'स्कैण्डल' छापा तब वह छड़ी लेकर पत्रिका के सम्पादक के कमरे में घुस गई और उसे धुन डाला। अपने उग्र स्वभाव एवं विद्रोही प्रकृति के कारण उसके विवाद अक्सर प्रभात के प्रबंधकों से होते रहते थे। 'दुनिया ना माने' ने शांता को नायिका के रूप में यश दिया। 'राजपूत रमणी' में वह एक वीरांगना के रूप में आई तथा 'वाहन' में आदिवासी कन्या बनी जो आजादी की दीवानी थी। 'गोपालकृष्ण' में वह एक बार फिर राधा की भूमिका में आई। सात वर्ष पूर्व 'श्यामसुंदर'

बहु आयामी : प्रोतिमा दासगुप्ता

प्रोतिमा के पिताजी भावनगर स्टेट रेलवे में जनरल मैनेजर थे और माँ शिक्षा मंत्री। गुरुदेव टैगोर के सान्निध्य में शिक्षित प्रोतिमा ने गोरा उपन्यास की लोलिता को ऐसा सजीव किया कि वे प्रसन्न हो गए। बंबई राज्य के गृहमंत्री मोरारजी भाई ने प्रोतिमा की फ़िल्म 'झरना' को बैन कर दिया, तो उसने फिल्मों से संन्यास ही ले लिया।

बहुमुखी प्रतिभा की धनी **प्रोतिमा दासगुप्ता** एक कुशल अभिनेत्री होने के अलावा निर्माता-निर्देशक के रूप में भारतीय फिल्म उद्योग की पहली महिला भी हैं। उन्होंने जितनी भी फिल्में बनाई, निर्देशन किया या अभिनय किया वे सभी हिट हुई। सिर्फ **झरना** ही अपवाद है, जिसे बंबई के तात्कालिक गृहमंत्री मोरारजी देसाई ने 'सेक्सी फिल्म' मानकर रोक लगा दी थी।

प्रोतिमा के पिताश्री मिशिकांतो दासगुप्ता भावनगर स्टेट रेलवे के जनरल मैनेज़र थे। उनकी माँ भी उच्च शिक्षित थीं और भावनगर स्टेट की शिक्षा मंत्री थीं। इस प्रकार एक अच्छे वातावरण में प्रोतिमा की शिक्षा हुई। जब प्रोतिमा पाँच साल की थीं, तब उन्हें पढ़ने के लिए इंग्लैंड भेजा गया, लेकिन नन्हीं प्रोतिमा को वहाँ अच्छा नहीं लगा, इसलिए वे लौट आईं। उन्हें कलकत्ता की प्रसिद्ध डायसन हाईस्कूल में भर्ती कराया गया, जहाँ वह मैट्रिक तक पढ़ीं। इसके आगे की शिक्षा प्रोतिमा की कविवर टैगोर के सान्निध्य में शांति निकेतन में हुई। उच्च शिक्षित परिवार में जन्म लेने के बावजूद प्रोतिमा का फिल्मों में प्रवेश का विरोध किया गया। प्रोतिमा ने कविवर टैगोर से वादा किया था कि वह उनके प्रसिद्ध उपन्यास **गोरा** पर आधारित फिल्म में अभिनय करेंगी। अंततः वह 'गोरा' की लोलिता बनने में सफल हुई। फिल्म देखकर टैगोर के मुँह से भी प्रशंसा के शब्द निकल पड़े और उन्होंने कहा तुम मेरी लोलिता हो। फिल्म के निर्देशक नरेश मित्र थे। प्रोतिमा ने इसके बाद अलेक्जेंडर कोर्डा की 'डॉट्टर ऑफ इंडिया' में भी अभिनय किया। इस फिल्म में काम करने के लिए उन्हें लंदन में स्क्रीन टेस्ट देना पड़ा। अपने फिल्म जीवन के प्रारंभिक दिनों में प्रोतिमा ने बंगाली फिल्म 'पथ भूले' में भी काम किया। इसके निर्माता व निर्देशक थे धीरेंद्रनाथ गांगुली। मशहूर कलाकार छबि विश्वास फिल्म के नायक थे। ये सभी फिल्में बंगाली में बनी थीं। अन्य भाषाओं की फिल्मों में काम करने का मौका उन्हें फिल्म 'राज नर्तकी' में मिला। फिल्म के निर्माता जे.बी.एच. वाडिया तथा निर्देशक मधु बोस थे। यह फिल्म तीन भाषाओं-हिंदी, अँगरेजी और बंगाली में बनाई गई। फिल्म की नायिका निर्देशक की पत्नी **साधना बोस** थीं। फिल्म के नायक पृथ्वीराज-कपूर थे। साधना फिल्म की तीसरी महत्वपूर्ण कलाकार थीं। फिल्म सुपर-हिट हुई। ए.आर. कारदार की **'नमस्ते'** में भी प्रोतिमा ने बेहतरीन भूमिका निभाई। प्रोतिमा ने एन.आर. आचार्य की तीन फिल्मों 'कुँवारा बाप', 'राजा' और 'शरारत' में काम किया। इन तीनों फिल्मों के निर्देशक व नायक किशोर साहू थे।



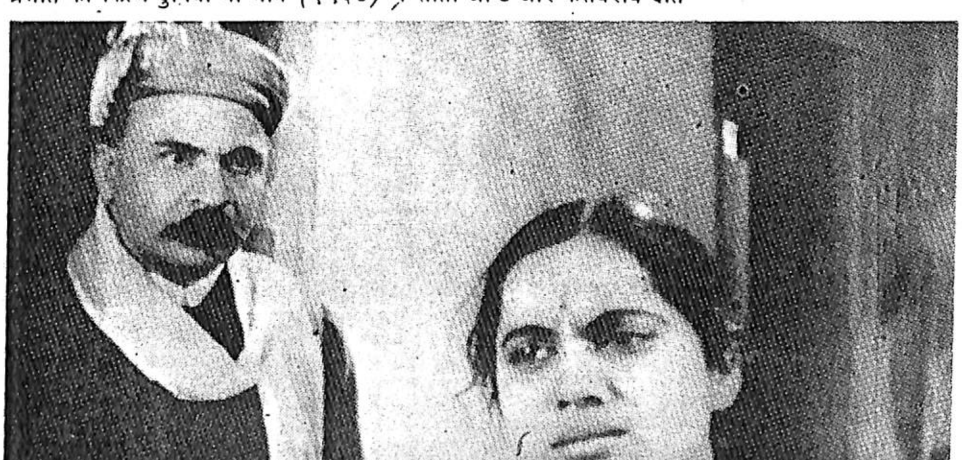
फिल्म 'राजा' में बेहतरीन भूमिका के लिए प्रोतिमा को बंगाल फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन का अवार्ड मिला।

प्रोतिमा ने इसके बाद फिल्म निर्देशन शुरू किया। अपनी रिश्तेदार बेगम पारा को लेकर उन्होंने **छमिया** निर्देशित की। फिल्म के नायक डेविड थे। फिल्म को काफी सफलता मिली। उन्होंने हास्य फिल्म **पगले** भी निर्देशित की। इस फिल्म में भी बेगम पारा और डेविड ने अभिनय किया। फिल्म सुपर हिट हुई। फिल्म 'झरना' भी उन्होंने निर्देशित की थी। फिल्म पर जब मोरारजी ने बैन लगा दी तो हताश प्रोतिमा ने फिल्मों से संन्यास ले लिया। प्रोतिमा को इस फिल्म से काफी आर्थिक क्षति हुई थी। प्रोतिमा जब तक फिल्म जगत में रहीं, उन्हें काफी सम्मान मिला। वे अखिल भारतीय फिल्म तकनीकियों के संगठन की पहली महिला अध्यक्ष रह चुकी हैं। भारतीय फिल्म उद्योग में उनके योगदान को भुलाना मुश्किल है।

में राधा के रूप में असफल अभिनेत्री घोषित की जाने वाली शांता ने 'गोपालकृष्ण' में राधा का इतना स्वाभाविक अभिनय किया कि उसकी गिनती शीर्षस्थ अभिनेत्रियों में होने लगी।

प्रबंधकों से होने वाले विवादों के कारण उसने १९३८ में 'प्रभात' से नाता तोड़ लिया तथा भारत में 'फ्री लांस' नायिकाओं की परिपाटी शुरू करने वाली पहली अभिनेत्री बन गई। तमिल, तेलुगु, गुजराती तथा बंगाली भाषाएँ वह सीख चुकी थी। तमिल फिल्म **'सावित्री'** में उसे मुख्य

प्रभात की फिल्म दुनिया ना माने (१९३७) में शांता आप्टे और केशवराव दाते



भूमिका मिली। इस फिल्म में दक्षिण भारत की विख्यात गायिका **एम. एस. सुब्बालक्ष्मी** ने नारद की भूमिका की थी। दो गायिकाओं वाली इस फ़िल्म के गीत मशहूर हुए।

मद्रास से शांता आप्टे पंचोली की फिल्म जमींदार में नायिका की भूमिका करने लाहौर आई। नायक एस.डी. नारंग थे। शांता के उग्र स्वभाव के कारण कई विवाद खड़े हुए मगर फिल्म पूरी हो गई। शांता का गाया हुआ गीत 'छोटा सा संसार' एक यादगार गीत के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। शांता स्वयं को प्रमुख रूप से गायिका ही मानती थी तथा पार्श्वगायन की कट्टर विरोधी थी। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जब पर्दे पर कोई कलाकार सिर्फ ओंठ हिलाता है तथा आवाज दूसरों की होती है तब ऐसा गीत दर्शकों के साथ पक्की धोखाधड़ी का प्रमाण हो जाता है।

लाहौर से बंबई लौटकर शांता ने देवकी बोस की फिल्म **अपना घर** में एक युवती मीरा की भूमिका की। आजाद ख्यालों की मीरा का विवाह जंगलात महकमे के विधुर अफसर से हो जाता है। एक गृहिणी के रूप में उसकी सारी जरूरतें पूरी होती हैं मगर वह सिर्फ माँ और घरवाली होकर नारीत्व को पूर्ण नहीं मानती। वह वनवासियों के साथ काम करना चाहती है। पति दकियानूसी

फ्री-फ्रेंक-फिअरलेस : स्टंट-क्वीन नादिया

गिरीश कर्नाड

हमारे स्कूल में जो लड़का वह खबर लाता था, वह उस दिन का हीरो बन जाता था। बल्कि कक्षा में उसके प्रवेश करते ही माहौल में सनसनी दौड़ जाती थी। सब समझ जाते थे कि शहर में कोई स्टंट फिल्म लगने वाली है और उसी समय हम भगवान से प्रार्थना करने लगते थे कि काश यह फिल्म **नादिया** या **वाडिया** की हो। हम लोगों के लिए ये दोनों शब्द एक ही मतलब रखते थे। जैसे-जैसे फिल्म के बारे में और विवरण मिलते जाते, हम लोग पूरी योजना बनाते कि कैसे तीन आने वाली श्रेणी की अंतिम कतार में जगह प्राप्त कर ली जाए।

सन् १९२८ में कोहिनूर स्टूडियो के कंपाउंड में स्थित देवारे फिल्म लेबोरेटरी में जमशेद (जे.बी.एच.) तथा होमी वाडिया काम करते थे और यहीं उन्हें अपनी फिल्में बनाने की धुन सवार हुई। इसी वर्ष जमशेद ने **वसंत लीला** फिल्म बनाई, मगर उसी वर्ष अमेरिकी स्टंट फिल्म जोरो देखकर उन्होंने सोचा कि वे भी उसी तरह की कोई फिल्म बनाएँ। लगभग उन्हीं दिनों स्टूडियो में यशवंत दवे नामक एक युवक अभिनेता बनने की इच्छा से आया करता था। उसने वाडिया से कहा, "आप मुझे 'हीरो' बनाइए, मैं भी एक छत से दूसरी छत पर कूद कर दिखला दूँगा" दवे ने यह असंभव कारनामा कर दिखलाया और वाडिया बंधुओं ने अपनी पहली स्टंट फिल्म **'थंडरबोल्ट'** उर्फ 'दिलदार डाकू' बनानी शुरू कर दी। यह समय १९३१ का था। इसके बाद तो वाडियाओं ने मारधाड़ वाली अपनी स्टंट फिल्मों की कतार लगा दी। मगर उनकी सबसे बड़ी सफलता सन् १९३४ में बनी फिल्म **हंटरवाली** थी, जिसकी नायिका नादिया थीं। फिल्म के नायक बोमन श्रॉफ असली जाँबाज़, ईरानी थे और किसी भी तरह का जोखिम भरा काम करने को हमेशा तैयार रहते थे। एक दृश्य के लिए टाटा पैलेस की छत से उन्होंने चलती मोटर कार में छलाँग लगाई थी। मगर, 'हंटरवाली' के सबसे बढ़िया करतब नायिका नादिया ने ही किए थे।

उन दिनों हमें छह हफ्तों में एक फिल्म देखने दी जाती थी। मेरे पिता पूरे सिनेमा माध्यम को ही वक्त और पैसे की बरबादी मानते थे, लेकिन नादिया की फिल्मों को वे भी अपवाद मानते थे। वे स्वयं तो ऐसी फिल्में नहीं देखते थे, मगर वाडिया या नादिया के नाम पर वे हमेशा हमें बगैर आनाकानी किए साढ़े तीन-तीन आने निकाल कर दे देते थे। आधा आना इंटरवल में



भुनी हुई मूमफली खाने के लिए दिया जाता था। एक अच्छी स्टंट फिल्म देखने के साथ मूमफली खाना एक पवित्र अनुष्ठान समझा जाता था। इंटरवल के बाद के पहले पाँच मिनट मूमफली चटखाने तथा चबाने के समवेत स्वर में डूब जाते थे। 'हंटरवाली' ने न केवल होमी वाडिया को सबसे कम उम्र (तब वे मात्र २४ वर्ष के थे) निर्देशक के रूप में स्थापित कर दिया, बल्कि स्टंट फिल्मों की उस नई विधा को भी जन्म दिया, जिसमें बदला लेने वाली एक नकाबपोश जाँबाज नायिका होती थी। एक घोड़ा होता था। एक कुत्ता होता था और एक से बढ़कर एक हैरत अंगेज करतब होते थे। प्रकाश और मोहन स्टूडियो भी अपने ढंग की स्टंट फिल्में बनाते थे। उनकी **साइकलवाली** तथा **मोटरवाली** जैसी फिल्मों में भी बहादुर घोड़ा तथा टाइगर कुत्ता होता था और नायिका रमोला नेकी की खातिर बदी से टक्कर लेती थी। शंकरराव पहलवान तथा मास्टर विट्ठल ने भी स्टंट फिल्में बनाई, लेकिन "हम लोगों का कोई सानी नहीं था" विनम्र मुस्कान के साथ होमी वाडिया कहते हैं।

"भले राजा को शैतान वजीर गिरफ्तार कर लेता है। प्रजा के ईमानदार लोगों पर जुल्म होते हैं। लाचार राजकुमारी मजबूर होकर सब कुछ ठीक कर देने की जिम्मेदारी अपने नाजुक कंधों पर उठा लेती है और एक ही क्षण में ऊँची-पूरी, गोरी-चिट्टी नायिका, जिसके लिए साड़ी पहनना राजनीतिक लफड़ों से निपटने से ज्यादा मुश्किल होता था, नकाब लगाकर, तंग काली पोशाक पहनने वाली उस औरत में बदल जाती थी, जो घुड़सवारी, कुश्ती, तैराकी, तलवारबाजी और जमीन से बालकनी पर उलटी छलाँग लगाने में भी माहिर होती थी। यह वह क्षण होता था, जिसका इंतजार तीन आने वाले सारे दर्शक दम साधकर करते थे। और यह नायिका होती थी नादिया।

नादिया का जन्म पर्थ (ऑस्ट्रेलिया) में सन् १९१० में मेरी इवान्स के रूप में हुआ था। उनकी माता यूनानी और पिता वेल्श थे। उनके कैरियर की शुरूआत स्टेनो टाइपिस्ट के रूप में हुई थी, मगर अपना मोटापा कम करने के लिए उन्होंने नृत्य सीखना शुरू किया। यहाँ से वे कुछ दिनों के लिए जेको के रशियन सर्कस में चली गईं और बाद में मदाम एस्ट्रोवा के बैले ग्रुप की सदस्या बन गईं। इस ग्रुप के साथ वे पूरा भारत घूमीं। उन दिनों सिनेमाघरों में फिल्म के साथ-साथ जीवंत नाच-गाने (डबल प्रोग्राम) के कार्यक्रम भी होते थे। नृत्य के सिलसिले में वे रंगून तक पहुँचीं, मगर उन्हें लाहौर ज्यादा पसंद आया। इन्हीं दिनों उन्होंने अपना नाम बदलने का विचार किया। एक आर्मेनियाई नजूमी ने उन्हें सलाह दी कि वे ऐसा नाम रखें जो **न** से शुरू हो और उसमें चार अक्षर हों। शुरू में **नादा** नाम पसंद किया गया, मगर बाद में **नादिया** को पसंद किया गया, क्योंकि उसमें भारतीयता तथा विदेशीपन दोनों थे। यह नाम उनके लिए वाकई भाग्यशाली साबित हुआ।

"अपने बचपन की जो ध्वनि मुझे सबसे ज्यादा याद रहती है वह है जोर से हेsss" का युद्ध घोष, जिसके साथ घोड़े पर सवार नादिया दुष्टों पर टूट पड़ती थी। चालीस के दशक में हम सभी स्कूली बच्चों के लिए नादिया साहस, बहादुरी, शक्ति और आदर्शवादिता की प्रतीक थीं। नादिया की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि बहादुरी के ये कारनामे वे खुद करती थीं। डुप्लिकेट स्टंट-मैन उन दिनों नहीं मिलते थे। आजकल की तरह फाइट कंपोजर भी तब नहीं होते थे। सारा काम निर्देशक और कैमरामैन की सहायता से

◆◆◆

भले राजा को शैतान वजीर गिरफ्तार कर लेता है। ईमानदार लोगों पर जुल्म होते हैं। लाचार राजकुमारी सब कुछ ठीक कर लेने की जिम्मेदारी अपने नाजुक कंधों पर उठा लेती है। पलक झपकते ही ऊँची-पूरी, गोरी-चिट्टी नायिका नकाब लगाकर तंग काली पोशाक पहनकर उस औरत में बदल जाती थी, जो कुश्ती, तैराकी, घुड़सवारी, तलवारबाजी और जमीन से बालकनी पर उलटी छलाँग लगाने में माहिर होती थी। यह सब वह क्षण होता था, जिसका इंतजार तीन आने वाले दर्जे के दर्शक दम साधकर करते थे। और वह नायिका होती थी नादिया!



वनमाला

वसंत सेना का आधुनिक संस्करण

एक बार शशिकपूर ने बताया कि संसार की सबसे सुंदर महिला वनमाला थी। जब पृथ्वीराज वनमाला के साथ 'सिकंदर' फिल्म की शूटिंग करते थे, शशिकपूर बहुत छोटे थे, परन्तु वे मंत्रमुग्ध होकर एकटक वनमाला की ओर देखा करते थे। जब शशिकपूर ने वनमाला की '**वसंत सेना**' देखी, तो वे मंत्रमुग्ध हो गए। बाल मन पर सौंदर्य की छाप ऐसी पड़ी कि जब शशि के सामने गिरीश कर्नाड ने 'वसंत सेना' को 'उत्सव' के नाम से बनाने का प्रस्ताव रखा, तो शशि ने स्वीकृति दे दी। रेखा को लेकर 'उत्सव' प्रारंभ हुई। पर्दे से पटाक्षेप के बाद भी वनमाला के प्रभाव ने शशि से एक महँगी फ़िल्म बनवा ली।

वनमाला का जन्म उज्जैन में हुआ था–कालिदास का उज्जैन। वनमाला का लालन-पालन ग्वालियर में हुआ। उनके पिता सरदार राव बहादुर बापूराव पवांर थे। ग्वालियर राजघराने से जुड़े इस परिवार की कन्या वनमाला देवी अत्यंत सुसंस्कृत एवं पढ़ी-लिखी विदुषी महिला थी, जो बी.ए.बी.टी. थी। वनमाला एक अत्यंत अशांत आत्मा थी, जो अपने विचारों के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम खोज रही थी। उसने इक्कीस वर्ष की आयु में प्रगतिवादी आगरकर हाईस्कूल पूना में अध्यापन का कार्य प्रारंभ किया। वह स्वभाव से ही विद्रोहिणी थी। एक परम्परावादी मराठी घराने में जन्मी विद्रोहिणी। आचार्य अत्रे के घर वी. शांताराम ने सुझाव दिया कि वनमाला उनकी कम्पनी में दिग्दर्शन और लेखन का कार्य करें। शांतारामजी यह साहस तो नहीं कर सकते थे कि ग्वालियर घराने की कन्या को अभिनेत्री बनने का कहें। उस जमाने में फिल्मों को अनादर की दृष्टि से देखा जाता था। वनमाला को माध्यम की तलाश थी और परम्परा तोड़ने का साहस था। '**लपंडाव**' (आँखमिचौली) उनकी पहली मराठी फिल्म थी।

वनमाला के व्यक्तित्व में सबसे अनोखी चीज थी, उनकी आँखें–समुद्र के रंग और गहराई वाली आँखें, जिनके कारण उन्हें 'सिकंदर' में रुखसाना की भूमिका मिली। शशिकपूर ने अपनी फिल्म 'अजूबा' की नायिका का नाम भी रुखसाना इसी प्रभाव में रखा है। पठान पृथ्वीराज और मराठा सरदार पुत्री वनमाला ने पूरे भारत में तहलका मचा दिया। 'सिकंदर' उस समय की 'शोले' थी।

वनमाला ने अनुभूति की इतनी तीव्रता के साथ अंधी लड़की की भूमिका फिल्म 'पर्वत पे अपना डेरा' में निभाई कि उन्हें शूटिंग के समय कई बार दिखना बंद हो जाता था। अभिनय का शायद प्रथम मेथड स्कूल वनमाला थी। वनमाला ने 'शरबती आँखों', 'बीते दिन', 'मुस्कराहट' आदि सफल फिल्मों में काम करने के बाद आचार्य अत्रे के साथ भागीदारी में 'वसंत सेना' का निर्माण किया। वसंत सेना एक राजनर्तकी की गरीब कवि से प्रेम की कहानी है। वनमाला की प्रिय भूमिका थी और फिल्म भी खूब सफल रही।

यह वनमाला का ही स्वभाव था कि उन्होंने फिल्म अभिनय की चोटी पर पहुँचने के बाद मराठी नाटकों में काम करने के लिए फिल्में छोड़ दीं। धन कमाना वनमाला का उद्देश्य कभी नहीं रहा। फिल्मों से निवृत्ति के पहले वनमाला ने '**श्यामची आई**' में कार्य कर अभिनय का स्वर्ण पदक भारत के राष्ट्रपति से ग्रहण किया था।

जब वनमाला को पिता की बीमारी की खबर मिली, तो उन्होंने मराठी स्टेज भी छोड़ दिया और ग्वालियर जाकर अपने पिता की सेवा की। वनमाला ने अपने फिल्मी जीवन में अनेक विद्वानों और कला के पारंगत लोगों की निकटता पाई। गुलामी के दिनों में वनमाला ने अरुणा आसफ अली और अच्युत पटवर्धन जैसे क्रांतिकारियों को अपने घर में शरण दी।

यह भारतीय फिल्मों का सौभाग्य है कि उसे वनमाला जैसी विदुषी महिला का योगदान मिला।

प्रमुख फिल्में तथा नाटक: * घर जवांई * चरणों की दासी * सिकन्दर * कादम्बरी * राजा रानी * वसंत सेना * पर्वत पे अपना डेरा * दूसरा पेशवा (रेडियो नाटक) * हेमिंग ऑव द श्रू * संशय कल्लोल।

अभिनेताओं को ही करना पड़ता था। वास्तव में इस काम में मशक्कत बहुत थी। यहाँ मतलब शूटिंग से नहीं है। असली मेहनत कलाकार जिम्नेशियम में दृश्य का अभ्यास करते हुए करते थे।'' घोड़े से गिरना, खलनायक को कंधे पर उठाना आदि सब करना पड़ता था। पुराने जमाने की यादों को ताजा करते हुए नादिया खुद बतलाती हैं-''दुर्घटनाएँ भी होती थीं। जॉन कावस और मैं अमावस को अशुभ दिन मानते थे। ऐसे ही एक दिन 'हंटरवाली' की शूटिंग के दौरान लटकते हुए लाइट के सहारे झूलकर मुझे हॉल के उस पार जॉन कावस तक पहुँचना था। रिहर्सल के दौरान तो सब ठीक-ठाक रहा, लेकिन असली 'टेक' के समय जॉन चूक गए और मैं चारों खाने चित्त जमीन पर आ गिरी। वह तो अच्छा हुआ कि सेट पर मौजूद लोग मुझे संभालने को दौड़ पड़े और मुझे चोटें कुछ कम आईं। एक बार मुझे कॉमेडियन भगवान के भाई सदाशिव को अपने कंधों पर उठाए चलती रेलगाड़ी की छत पर दौड़ना था। दो डिब्बों के बीच एक चपटी पट्टी पर दौड़ते हुए मुझे कैमरे की तरफ भी देखना था और अपना संतुलन भी बनाए रखना था। सदाशिव बदस्तूर 'हमको मत छोड़ो' चिल्लाए जा रहे थे।'' अपने खतरनाक दृश्यों में नादिया **डायमंड क्वीन** के विलसन बाँध के तेज बहाव में फिसलने तथा **जंगल प्रिंसेस** में बबर शेर के साथ उनकी लड़ाई को नहीं भूल पाती हैं। मगर नादिया की असली समस्या स्टंट न होकर भाषा थी। हिंदुस्तानी संवाद बोलने में उन्हें सबसे ज्यादा दिक्कत आती थी। **पहाड़ी कन्या** में उन्हें दो पृष्ठ का एक संवाद दिया गया था, जिसे याद करने में उन्हें पूरा महीना भर लगा। बसंत की **मौज** फिल्म में उन्होंने एक भावुक दृश्य भी किया था। मगर लगातार रोने के इस दृश्य को बाद में वितरक के सुझाव पर यह कहते हुए काट दिया गया कि 'नादिया रो नहीं सकती।'

नादिया की फिल्मों का असली असर हम लोगों के घरों तक पहुँचता था। देखी हुई फिल्म के एक-एक दृश्य को 'डिशुम' और 'ठोंऽऽ' के साथ हमारी मित्र मंडली फिर से अभिनीत करती थी।

स्टंट फिल्मों का सर्वश्रेष्ठ युग १९३५-४० के बीच था। उसके बाद भी स्टंट फिल्में बनती रहीं, लेकिन लोगों की पसंद बदल रही थी। **हंटरवाली की बेटी** सफल रही और कोई दस ऐसी स्टंट फिल्में करने के बाद नादिया ने हेयर ड्रेसर के रूप में प्रशिक्षण लेना शुरू कर दिया। नादिया की अंतिम स्टंट फिल्म **सर्कस क्वीन** (१९५९) थी। इसके बाद १९६० में होमी वाडिया के साथ उनकी शादी हुई। सन् १९६८ में बनी वाडिया की **खिलाड़ी** में उन्होंने आखिरी बार एक छोटी सी भूमिका की थी। (सिनेमा विजन से) ■



लीला चिटणीस की चंदेरी दुनिया

पुरानी फिल्मों के दौर में ज्यादातर अभिनेत्रियों ने विवाह के पश्चात् फिल्मों में काम करना शुरू किया था, जिसमें एक नाम लीला चिटणीस का भी है। लीला नगरकर (चिटणीस) का विवाह डॉ. चिटणीस से हुआ था। लीला ने जब अपनी पढ़ाई खत्म कर ली तो उनके पति ने उन्हें स्टेज पर कार्यक्रम देने हेतु प्रोत्साहित किया। जब टॉकीज का प्रारंभ हो गया तो कुछ बुद्धिजीवियों जैसे के. नारायणन् काले, अनंत कानेकर, केशवराव भोले ने मिलकर मराठी स्टेज को विभिन्नताओं के साथ प्रारंभ किया। केशवराव दाते मराठी स्टेज के प्रसिद्ध अभिनेता थे। वे 'नाट्यमनवांतर' के साथ अभिनेता और निर्माता के रूप में जुड़े। डॉ. चिटणीस भी इसके साथ संबंधित थे, इसलिए जब इनके नाटक 'बेबी' का निर्माण हुआ तो लीला चिटणीस ने उसमें काम किया।

इसके पश्चात लीला को एक फिल्म का प्रस्ताव मिला। जबलपुर के सेठ गोविन्ददास और द्वारकाप्रसाद मिश्र, जो कांग्रेस के प्रमुख नेता थे, वे इस फिल्म के लेखक और संवाद लेखक थे। फिल्म का नाम **धुआँधार** था, जो जबलपुर की संगमरमरी चट्टानों पर शूट की गई थी। नाना पलसीकर, लीला के साथ थे। परंतु यह फिल्म फ्लॉप हो गई।

मास्टर विनायक ने लीला को अपनी सामाजिक फिल्म **छाया** के लिए शीर्ष भूमिका के लिए चुना। इसमें उन्होंने अमीर लड़की की भूमिका अभिनीत की। फिल्म की नायिका को गरीब- बेरोजगार कवि से प्यार हो जाता है। कवि की कविता से वह इस कदर प्रभावित हो जाती है कि एक डॉक्टर से अपनी सगाई तोड़ देती है। 'छाया' में लीला की भूमिका काफी सराही गई और तब उन्हें विभिन्न भूमिकाओं के कई प्रस्ताव मिले। निर्माता के. नारायणन् काले की फिल्म वाहन में उन्होंने एक आर्य लड़की की भूमिका की। इसमें शांता आप्टे भी थीं। सोहराब मोदी की फिल्म जेलर में लीला ने एक गुस्सैल जेलर की पत्नी की भूमिका निभाई। इसकी पटकथा कमाल अमरोही ने लिखी थी।

उन्हें सबसे बड़ा ब्रेक बाम्बे टॉकीज की **'कंगन'** फिल्म में मिला। इसमें देविका रानी और अशोक कुमार उनके साथ थे। दुबली पतली, घुँघराले बाल, दिखने में सुंदर लीला और अशोक कुमार की रोमांटिक जोड़ी का लोगों में काफी क्रेज था। 'आजाद' फिल्म में भी यही जोड़ी थी। इसे एन.आर. आचार्या ने बनाया था। परंतु लीला को इसमें खास सफलता नहीं मिली। 'तुलसीदास' फिल्म लीला के लिए मील का पत्थर साबित हुई। इसमें वे संत कवि की पत्नी बनी थी। इसे जयंत देसाई ने बनाया था। सन् १९४० लीला के लिए भाग्यशाली सिद्ध हुआ। उनकी तीन फिल्में तुलसीदास, अर्धांगिनी और बंधन जुबिली हिट हुई। इन तीनों फिल्मों में उनकी अलग-अलग किस्म की भूमिकाएँ थीं।

जब वे सफलता के शिखर पर थीं, तब ही उनका व्यक्तिगत जीवन तनावग्रस्त हो गया। डॉ. चिटणीस से उनकी नहीं जमी। अंततः उन्होंने तलाक ले लिया। एक फिल्म निर्माता सी.आर. ग्वालानी से लीला ने शादी कर ली। दूसरे विवाह के पश्चात लीला प्रोडक्शन में भी रुचि लेने लगीं। ग्वालानी की दूसरी फिल्म 'किसी से न कहना' में लीला ने प्रोडक्शन के साथ-साथ पटकथा लेखन में भी योगदान दिया। यह फिल्म कृष्णगोपाल के साथ मिलकर बनाई गई थी। इसमें लीला के साथ केशवराव दाते थे। जल्दी ही ग्वालानी और लीला चिटणीस में भी तनाव बढ़ने लगा। ग्वालानी 'प्रतिज्ञा' फिल्म बनाने के बाद 'लाहौर' चले गए। लीला पूर्ववत् स्वतंत्र रूप से अपने कैरियर को बनाने में लग गई। बाम्बे टॉकीज में उनकी वापसी हुई 'चार आँखें' से। इसे सुशील मजूमदार ने बनाया था और जयराज, लीला के साथ थे। एक अन्य फिल्म 'छोटी सी दुनिया' में भी जयराज उनके साथ थे। जयंत देसाई की 'मनोरमा' फिल्म से लीला को काफी सफलता मिली। बाद की कुछ फिल्में जैसे गजल, भक्त प्रहलाद, शतरंज, घर-घर की कहानी, अंधों की दुनिया से कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। १९४८ में बनी 'शहीद' फिल्म से लीला के केरियर में नया मोड़ आया। इस फिल्म में दिलीपकुमार, कामिनी कौशल और चंद्रमोहन उनके साथ थे।

'आवारा' फिल्म में राजकपूर ने पृथ्वीराज कपूर के साथ उन्हें लिया। इसमें वे युवा और वृद्ध दोनों भूमिकाओं में थीं। इसमें उन्होंने एक ऐसी पत्नी की भूमिका की, जो परिस्थितिवश अपने पति का घर छोड़ देती है और उसके बच्चे का जन्म निचले तबके में होता है। इस भूमिका को लीला ने काफी गंभीरतापूर्वक निभाया था। इसके पश्चात विमल रॉय की माँ फिल्म में उन्होंने अभिनय किया, जिसमें भारतभूषण और श्यामा भी थे। आवारा और माँ फिल्मों में उनकी भावनात्मक अभिनयक्षमता के कारण कई फिल्मों में माँ की भूमिका के प्रस्ताव मिले। फिल्मों के साथ-साथ लीला स्टेज का मोह न छोड़ पाई। राजकपूर की एक और फिल्म **'सत्यं शिवं सुंदरम'** में डेविड के साथ काम किया। यों वे अमेरिका में स्थायी रूप से बस चुकी हैं और चुनिंदा फिल्मों में ही अभिनय करने की इच्छुक हैं। ■

◆◆◆

मध्यप्रदेश के स्वर्गीय मुख्यमंत्री पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र तथा नाटककार सेठ गोविन्ददास ने मिलकर फिल्म धुआँधार के संवाद और कथा लिखी थी। जबलपुर की संगमरमरी चट्टानों के बीच लीला चिटणीस तथा नाना पलसीकर को लेकर फिल्माई यह फिल्म तो फ्लॉप हो गई, मगर लीला चिटणीस का नाम कई फिल्मकारों की स्मृति में दर्ज हो गया। अशोक कुमार के साथ लीला चिटणीस की जोड़ी खूब जमी और कंगन, बंधन फिल्मों ने देशभर में धूम मचा दी। आमतौर पर फिल्मों में काम कर अभिनेत्रियाँ शादी करती हैं, लेकिन लीला चिटणीस ने पहले शादी की, फिर फिल्मों की चौखट में कदम रखे।

ग्लोरियस गौहर मामाजीवाला

फिल्म जगत में **गौहर मामाजीवाला** का नाम काफी सम्मान के साथ लिया जाता है। वे न केवल अभिनेत्री थीं, अपितु निर्माता और एक स्टुडियो की मालकिन भी थीं। गौहर अभिनेत्री होने के अलावा काफी मेधावी थीं। उनकी तार्किक क्षमता जबर्दस्त थी। एक सम्पन्न बोहरा परिवार में गौहर का जन्म हुआ। उन्हें बचपन में किसी भी चीज की कमी महसूस नहीं हुई। लेकिन किस्मत का खेल ही कुछ ऐसा है कि गौहर के परिवार पर एकाएक विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। उनके पिताजी का व्यापार चौपट हो गया। हालत यह हो गई कि घर चलाना मुश्किल हो गया। ऐसी नाजुक घड़ी में उनके पारिवारिक मित्र होमी मास्टर ने गौहर के पिता को सुझाव दिया कि गौहर को अभिनय को पेशे के रूप में अपनाना चाहिए। इस प्रकार गौहर का फिल्म जगत में पदार्पण हुआ।

गौहर का जब फिल्मी प्रवेश हुआ, तब वे १६ साल की नाजुक कली-सी थीं। उनकी पहली फिल्म कोहिनूर फिल्म की **'फारचून एंड द फूल्स' थी।** यह फिल्म सुपरहिट हुई। इस फिल्म के निर्देशक कान्जीभाई राठौर और नायक खलील थे। मूक फिल्मों के उस दौर में जबकि पौराणिक, मारधाड़ और रोमांचक फिल्में दर्शक पसंद करते थे, गौहर की सामाजिक फिल्म काफी सराही गई। पहली ही फिल्म में गौहर ने करिश्मा कर दिखलाया। उनकी दूसरी फिल्म थी **'फेयरी ऑफ सिलोन'।** इस फिल्म की भी काफी प्रशंसा हुई। इस फंतासी फिल्म के निर्देशक होमी मास्टर तथा नायक खलील थे। कोहिनूर फिल्म की 'शीरी फरहाद' (नायक खलील), ऐतिहासिक जस्मा ओडन (नायक खलील) तथा 'एजुकेटेड वाइफ' काफी चर्चित हुई। 'एजुकेटेड वाइफ' में उन्होंने एक ऐसी पत्नी की भूमिका निभाई जो कि डॉक्टर है तथा जिसकी नई-नई शादी हुई है। डॉक्टर होने के कारण वह (गौहर) समझ जाती है कि जिससे उनकी शादी हुई है, वह 'सिफलिस' का शिकार है। फिल्म की नायिका (गौहर) इससे हताश नहीं होती है और वह अपने प्यार, आपसी समझ-बूझ और परस्पर आकर्षण के जरिए उसे स्वस्थ होने में सहयोग देती है। फिल्म के नायक वैद्य थे, जो अधिकांशतः खलनायक की भूमिका निभाते थे। गौहर की प्रतिभा से उस समय के मशहूर निर्देशक **चंदूलाल शाह** भी प्रभावित हुए। उन्होंने कोहिनूर फिल्म की 'टाइपिस्ट गर्ल' के लिए गौहर को अनुबंधित किया। हालाँकि फिल्म की अभिनेत्री सुलोचना थी, लेकिन गौहर की ख्याति रातोंरात फैल गई। इस फिल्म ने गौहर को स्थापित कर दिया। फिल्म में गौहर ने एक शराबी की पत्नी की भूमिका निभाई थी। गौहर ने कोहिनूर फिल्म की कई अन्य फिल्मों में भी काम किया। इन सभी फिल्मों के निर्देशक चंदूलाल शाह थे। जबकि नायक की भूमिका खलील या राजा सेंडो निभाते थे। कोहिनूर फिल्म्स के लिए वे दो सालों तक अनुबंधित रहीं। १९२७ में वे कोहिनूर फिल्म्स से अलग हुईं। गौहर व चंदूलाल शाह के संयुक्त मित्र जगदीश पास्ता इस शर्त पर फिल्म निर्माण संस्था खोलने के लिए तैयार हो गए कि उन्हें उन दोनों से तकनीकी सहयोग प्राप्त होगा। इस प्रकार इन तीनों के अलावा राजा सेंडो और कैमरामैन पांडुरंग नाइक ने मिलकर श्रीसाउंड स्टूडियो की स्थापना की। इस स्टूडियो को चंदूलाल शाह ने पास्ता की जमीन पर बनाया था। इस स्टूडियो में दस फिल्मों का निर्माण किया गया, जिसमें 'चंद्रमुखी' और 'विश्व मोहिनी' शामिल है। १९२९ में चंदूलाल शाह और गौहर, पास्ता से अलग हो गए और रणजीत स्टूडियो की स्थापना की।

इस स्टूडियो में पहली सवाक फिल्म **पति-पत्नी** का निर्माण किया गया। यह स्टूडियो आधुनिक सुविधाओं से युक्त था। लगभग बीस सालों तक शाह और गौहर के संयुक्त मार्गदर्शन में इस स्टूडियो में फिल्में बनती रहीं। गौहर न केवल अभिनेत्री थी, अपितु वह स्टूडियो की पार्टनर तथा फिल्मों की निर्मात्री भी थी। उन्होंने रणजीत स्टूडियो की प्रगति के लिए काफी परिश्रम किया। गौहर जब तक अभिनेत्री रहीं, वे फिल्मों में अपना गाना खुद ही गाती थीं। फिल्मों से संन्यास के बाद उन्होंने स्टूडियो की ओर भरपूर ध्यान दिया। फिल्मों के अलावा उन्हें किताबें पढ़ने का भी शौक था। वे अँगरेजी, उर्दू, हिंदी, गुजराती और मराठी भाषा की अच्छी जानकार थीं। गौहर की फिल्मों की संख्या बहुत कम हो सकती है, लेकिन फिल्म माध्यम के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ■



माचिस बॉक्स पर मुद्रित गौहर मामाजीवाला

जमुना देवी बनाम
देवदास की पारो



जमुना बरुआ का फिल्म केरियर प्रमथेश बरुआ के साथ प्रारंभ हुआ और उनके साथ ही अंत। पी.सी. बरुआ की पहली फिल्म **रूपलेखा** (१९३४) से जमुना का फिल्मी जीवन आरंभ हुआ। यह वह फिल्म थी, जिसमें सबसे पहले फ्लेश बेक तकनीक का प्रयोग प्रारंभ किया गया था। उसी वर्ष जमुना और बरुआ ने शादी कर ली। बरुआ की फिल्म 'देवदास' (१९३६) से वे बतौर नायिका का रोल निभाने लगीं। यह फिल्म बंगाली के साथ हिंदी में भी बनी थी। बंगाली फिल्म में उनके साथ उनके पति बरुआ और हिंदी संस्करण में के.एल. सहगल नायक थे।

फिल्म 'भिखारी' में पराए मर्द के लिए- "मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकती"- संवाद बोलने के बजाए लीला मिश्रा ने फिल्म छोड़ दी थी।

मास्को फिल्म समारोह में बाल-फिल्म 'नानी माँ' को डिप्लोमा अवार्ड मिला। प्रतिक्रिया में लीला मौसी बोली- "काहे की खुशी रे, अगर मिठाई का डिब्बा देते तो पड़ोसियों को खिलाती, इस मुँए डिप्लोमा को क्या करूँ।"

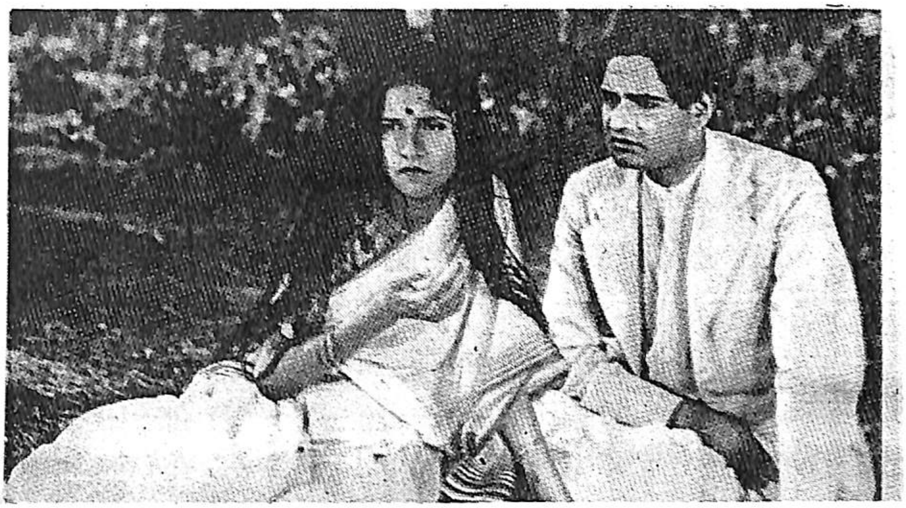
लीला मिश्रा सिनेमा के परदे की परी तो कभी नहीं रही। लेकिन सत्रह की उम्र से सत्तर साल तक परियों की नानी, दादी, माँ और मौसी की भूमिका में वे सदैव याद की जाती रहेंगी। वे फिल्म जगत में मौसी के नाम से मशहूर थीं और अभिनय का स्कूल मानी जाती थीं। पाँच दशक के फिल्मी जीवन में उन्होंने पाँच सौ से अधिक फिल्मों में चरित्र भूमिकाएँ बखूबी निभाई।

जमुनादेवी की अंतिम फिल्म फुलवारी थी, जो बंगाली में 'मालञ्चा' नाम से बनी थी। यह टैगोर की एक कहानी पर आधारित थी। १९५१ में बनी इस फिल्म के निर्देशक प्रफुल्ल राय थे। प्रभात मुखर्जी फिल्म के नायक थे। इसी वर्ष बरुआ साहब की मृत्यु हो गई और जमुनादेवी के फिल्मी जीवन का अंत हो गया।

जमुनादेवी कलकत्ता में पैदा हुई और वहीं बड़ी हुई। उनके माता- पिता उत्तरप्रदेश के थे, इसलिए वे हिंदी व बंगाली भाषा अच्छी तरह से बोल लेती थीं। उन्होंने फिल्मों में काम कर थोड़ी उर्दू बोलना-लिखना भी सीख लिया था। देवदास फिल्म भारतीय सिनेमा के इतिहास में क्लासिक फिल्म है। आज के नजरिए से यह फिल्म उस दौर की कलात्मक फिल्म थी। जमुनादेवी की जिंदगी का सर्वाधिक सौभाग्यशाली क्षण था, जब उन्हें पार्वती की भूमिका के लिए लिया गया। इसके पहले बरुआ साहब ने काननदेवी को यह प्रस्ताव भेजा था, परंतु कानन देवी उस वक्त राधा फिल्म्स के साथ अनुबंधित थी। वे इसमें काम नहीं कर सकती थीं। इसलिए शायद भाग्य ने यह अमूल्य अवसर जमुनादेवी के लिए रख छोड़ा था। यह फिल्म सिनेमा वालों के लिए जैसे प्रेरणा का स्रोत बन गई। इस फिल्म ने उस समय जबरदस्त लोकप्रियता हासिल की। उसी वर्ष मंजिल ने भी उनके केरियर को स्थापित करने में मदद की। बरुआ की एक और हिट फिल्म 'गृहदाह' शरतचन्द्र की कहानी पर आधारित थी। उस समय कलाकार एक साल में ज्यादा से ज्यादा तीन फिल्में ही करते थे। 'गृहदाह' के अलावा एक और फिल्म 'माया' भारतीय फिल्म इतिहास में अविस्मरणीय मानी जाती है। पहाड़ी सान्याल के साथ जमुना देवी ने कुछ और फिल्में भी कीं। 'माया' में सान्याल के साथ दूसरे हीरो बरुआ थे। सन् १९३८ में फिल्म 'अधिकार' ने भी सफलता अर्जित की। बरुआ की फिल्म 'जिंदगी', जिसमें सहगल उनके साथ थे, वह उनके दिल को छू गई। कुछ सालों बाद अर्थात् १९७५ में सुचित्रा सेन ने इसी प्रकार की भूमिका 'प्रियबांधवी' में की और सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के अलावा चार फिल्म फ़ेअर अवार्ड प्राप्त किए।

'जिंदगी' के पश्चात् जमुना ने न्यू थिएटर के तहत् एस.वी. प्रॉडक्शन स्टूडियो को ज्वाइन कर लिया। जहाँ उनकी दो फिल्में उत्तरायण (बरुआ के साथ) और शेष उत्तर (हिन्दी फिल्म जवाब) काफी हिट हुई। जवाब फिल्म ने तो बहुत ज्यादा सफलता हासिल की थी। बॉक्स ऑफिस पर उस फिल्म ने २८ लाख रु. का व्यवसाय किया था, जबकि हिंदी व बंगाली भाषा में उसकी कुल लागत पाँच लाख रुपए आई थी। जवाब में उन्होंने एक ऐसी औरत की भूमिका की थी, जो अपने प्यार को दूसरी औरत के लिए कुरबान कर देती है।

अमीरी, पहचान और रानी तीनों फिल्में बरुआ ने बनाई थीं, वे इनमें स्वयं नायक बने थे। हिंदी में बनी सुलह फिल्म में भी जमुना काफी सफल रहीं। बाद में बंगाली में यह फिल्म **संधि** नाम से बनी थी। १९४८-४९ तक जमुनादेवी



फिल्म देवदास (१९३६) में जमुना तथा सहगल

काफी लोकप्रिय व स्थापित कलाकार बन चुकी थीं। उसी समय राम दरियानी और बी.एस. व्यास बंबई से कलकत्ता आए और जमुना देवी को साथ लेकर फिल्म बनाई। दरियानी की 'हिंदुस्तान हमारा' और व्यास की 'घर' फिल्म ने जमुना देवी को काफी सफलता प्रदान की। 'हिंदुस्तान हमारा' में वे बरुआ के साथ थी, जबकि 'घर' में हीरो इफ्तिखार थे। दोनों फिल्में हिट हुई। १९५१ में बरुआ की मौत ने जमुना को भी फिल्मों से अलग कर दिया।

जिंदगी और देवदास में उनके अभिनय ने उच्च आयामों को स्पर्श किया, जबकि देवदास की पारो की गहरी पीड़ा को उन्होंने अपने अंतस में महसूस किया था। दिलीपकुमार के प्रति उनके मन में काफी सम्मान की भावना है। किन्तु वे बरुआ की देवदास और विमल रॉय की देवदास की तुलना नहीं करना चाहती। फिल्में छोड़ देने के बाद भी लंबे समय तक फिल्मकारों के प्रस्ताव उनके पास आते रहे, किन्तु वे सदैव नम्रतापूर्वक उन्हें इन्कार करती रहीं। ■

परियों की नानी : लीला मिश्रा

एक जैसी भूमिकाएँ करते-करते हर कलाकार की परदे पर एक छवि बन जाती है जिससे वह चाहते हुए भी मुक्त नहीं हो पाता। लीला मिश्रा को दर्शक फिल्मी मौसी के रूप में अच्छी तरह जानते हैं। उनके जीवन की इससे बड़ी त्रासदी और क्या होगी कि बालपन में विवाह होने के कारण १४ वर्ष की उम्र में वे माँ बन गई और सिर्फ १७ वर्ष की उम्र में उन्हें परदे पर भी माँ की भूमिका करनी पड़ी। गजानन जागीरदार की 'होनहार' में उन्हें शाहू मोडक की माँ का रोल मिला। मजे की बात यह कि बेटा माँ से उम्र में बड़ा था, लेकिन लीलाजी सदैव माँ या मौसी ही नहीं बनीं भाभी, जेठानी, देवरानी या चाची की भूमिकाएँ भी उन्हें मिलती रहीं।

वैसे नायिका की भूमिका नहीं मिलने के लिए लीला मौसी स्वयं को ही दोषी मानती थीं। इसका किस्सा एक बार उन्होंने सुनाया था। १९३६ की बात है-उन्हें मास्टर विनायक के साथ 'भिखारी फिल्म में नायिका का रोल सौंपा गया। यह एक प्रेम त्रिकोण वाली फिल्म थी। फिल्म के पहले दृश्य में ही नायक को बाँहों में भर कर उन्हें यह संवाद बोलना था- **"मैं तुम्हारे बिना जिंदा नहीं रह सकती।"** शाट की तैयारी पूरी हो गई मगर जैसे ही यह दृश्य फिल्माया जाने लगा लीलाजी नर्वस हो गई और उन्हें बुखार चढ़ गया। कुछ दिनों बाद दुबारा इस दृश्य की शूटिंग शुरू हुई और इस बार भी वैसा ही हुआ। आखिर लीलाजी ने इंकार कर दिया। उन्होंने कहा- मैं विवाहित हूँ और अपने पति के अलावा किसी पराए मर्द के आगे ये लफ्ज नहीं बोल सकती। फिर भले ही वह अभिनय क्यों न हो।

लीलाजी की पहली फिल्म थी दादा फालके द्वारा निर्मित **'गंगावतरण'** जो १९३५ में रीलिज हुई। १९३५ से १९४० के बीच लीलाजी को काफी भागमभाग करनी पड़ी। कभी शूटिंग के लिए कोल्हापुर तो कभी कलकत्ता। १९४२ में वे बंबई आ गई और फिर यहीं बस गई। बंबई आने के बाद उनके पास अनुबंधों की बाढ़-सी आ गई।

▷



एक बार की बात है वाडियां स्टूडियो में शूटिंग के दौरान ही लीलाजी ने छः फिल्में साइन कीं।

फिल्मों की सफलता-असफलता से लीलाजी निर्लिप्त रहती थी। वे कहती थीं फिल्म अगर सफल होगी तो निर्माता को फायदा होगा और पिट गई तो उसका नुकसान। मेरा कुछ नहीं बिगड़ता मेरी भूमिका वैसी ही रहती है और मुझे काम मिलने में कमी भी नहीं आती। मास्को फिल्मोत्सव में बाल फिल्म 'नानी माँ' में श्रेष्ठ भूमिका के लिए मौसी को 'डिप्लोमा' अवार्ड प्रदान किया गया था। जब उनसे इस पर प्रतिक्रिया पूछी गई कि क्या आप 'डिप्लोमा' पाकर खुश हैं, तो उन्होंने कहा था- 'काहे की खुशी रे, वे अगर मिठाई का डिब्बा देते तो अड़ोसी-पड़ोसियों को खिलाती इस मुँए डिप्लोमा को क्या करूँ।'

लीलाजी को फिल्मों में एक बार अभिनय शुरू करने के बाद कभी किसी के पास काम माँगने नहीं जाना पड़ा। निर्माता खुद चलकर उनके घर आते थे। उनके बारे में कहा जाता था कि मौसी बहुत पैसे की लालची हैं, शूटिंग से पहले ही हिसाब चुकता कराती हैं, फिर काम करती हैं, लेकिन मौसी का कहना था कि मेरे साथ कुछ कड़ुए अनुभव हुए इसलिए बाध्य होकर मुझे यह तरीका अपनाना पड़ा। लोग अनुबंध कर लेते और शूटिंग हो जाने पर मुँह ही नहीं दिखाते।

इतना पैसा और प्रसिद्धि पाने के बाद भी लीला मौसी बड़ा सादगीपूर्ण जीवन जीती थीं। वे ज्यादा ऐशो आराम में विश्वास नहीं करती थीं। यहाँ तक कि उनके पास स्वयं की कार भी नहीं थी। वे कहती, यह जो मन है बच्चे के समान है। इसे जैसे रखो रह जाता है। मैं मन के वश में नहीं रहती, मन मेरे वश में रहता है। उनका यही दर्शन उनके अभिनय में झलकता है। लीला मौसी को अभिनय में इतनी महारत हासिल थीं कि वे एक बार में शॉट ओके कर देतीं। निर्देशक को उन्हें कुछ समझाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। वासु चटर्जी और गुलजार जैसे निर्देशक भी अपनी फिल्म में उन्हें लेना जरूर पसंद करते थे।

१७ से ७० बरस की उम्र तक मौसी ने इतनी फिल्मों में काम किया कि नाम गिनाएँ तो उनकी फेहरिस्त काफी लंबी हो सकती है। पिछले साल यह फिल्मी मौसी हमेशा-हमेशा के लिए बिदा हो गई।

उनकी कुछ उल्लेखनीय फिल्में हैं- छोटी छोटी बातें, एक थी लड़की, नवबहार, प्यासा, संजोग, दीवाना, आवारा, आखिरी दाव, बंधन, सवेरा, चाँद, प्यार का सागर, शिकस्त, जिंदगी, बावरे नयन, ताजा अतीत में राम और श्याम, बैराग, बालिका वधू, गीत गाता चल, सावन को आने दो, कथा, चश्मेबद्दूर, मेरा घर मेरे बच्चे। छोटे परदे पर दादा दादी की कहानी व बुनियाद में वे दिखाई दी थीं। उनकी कुछ विज्ञापन फिल्में तो मरणोपरांत भी टीवी पर दिखाई गई।

फिल्म जीवन ज्योति के निर्देशक महेश कौल से जब अभिनेत्री चाँद उस्मानी ने अभिनय की बारीकियाँ सिखाने को कहा तो महेशजी बोले- जो मौसी के अभिनय की बारीकियों को देख ले उसे कहीं अभिनय सीखने की जरूरत नहीं है। मौसी तो एक्टिंग का स्कूल है। ■

नसीम

असीम सौन्दर्य की स्वामिनी

हार्डी लेमार, एवा गार्डनर, विवियन ली तथा एलिजाबेथ टेलर को विश्व भर में फिल्मी दुनिया की रूपवती नायिकाओं में शुमार किया जाता है। इस श्रेणी में आने का दावा रखने की रूपराशि यदि किसी भारतीय नायिका को नसीब हुई है तो वह नसीम है। नसीम के पास रूप सौंदर्य का प्राकृतिक कोष था। उसे अपने रूप को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने के लिए न तो सौंदर्य प्रसाधनों की आवश्यकता पड़ती थी और न ही सुन्दर कीमती कपड़ों की। उसकी गोलाकार आँखों में एक खास आकर्षण और कशिश थी। सौंदर्य के साथ-साथ नसीम के पास व्यक्तित्व की गरिमा थी। चेहरे पर ताजगी और तेज था।

◆◆◆

नसीम की खोज फिल्मकार सोहराब मोदी ने की थी। हेमलेट के हिन्दी संस्करण 'खून का खून' की वह षोडशी नायिका था। ओफेलिया के चरित्र के बजाए दर्शक नसीम की सुंदरता पर मोहित थे। १९३९ में निर्मित 'पुकार' नसीम-चंद्रमोहन की जोड़ी की यादगार फिल्म है। भारत की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक फिल्म भी इसे ही माना जाता है। पृथ्वीराजकपूर, अशोककुमार तथा श्याम के साथ 'ब्यूटी-क्वीन' कही जाने वाली इस तारिका की सायरा बानो बिटिया है।

उस काल की अधिकांश नायिकाएँ समाज के निर्धन वर्ग की थीं तथा अधिकांश प्राथमिक स्तर तक ही शिक्षित थी। ऐसे में समृद्ध परिवार की इस शिक्षित और सुसंस्कृत महिला द्वारा फिल्मी दुनिया में विशिष्ट स्थान बना लेना स्वाभाविक ही था। उसकी सुरुचि, कलात्मक रहन-सहन, बातचीत का तरीका, दिखावे की प्रवृत्ति से मुक्ति आदि गुणों ने समकालीन नायिकाओं में उसे सर्वोच्च क्रम पर पहुँचा दिया।

नसीम का फिल्मों में प्रवेश एक संयोग ही था। स्कूलों की छुट्टियाँ होने पर वह माँ के साथ बंबई घूमने आई थी। बंबई भ्रमण के दौरान वह जब फिल्म स्टूडियो देखने गई तब वहाँ 'सिल्वर किंग' नामक फिल्म की शूटिंग चल रही थी। फिल्म के नायक **मोतीलाल** तथा नायिका **सबिता देवी** थीं। घर लौटने पर उसे लगा कि फिल्म अभिनेत्री बनना कोई कठिन काम नहीं है। इसके बाद उसने स्टूडियो आना-जाना जारी रखा। कुछ निर्माताओं ने उसके सामने अभिनय के प्रस्ताव भी रखे। नसीम की माँ बेटी को अभिनेत्री नहीं बनाना चाहती थी बल्कि उसकी इच्छा थी कि उसे डॉक्टर बनाया जाए।

परिवार के साथ वह वापस दिल्ली आ गई तथा स्कूली शिक्षा फिर शुरू हो गई। नसीम मन ही मन फिल्मों में काम करने का इरादा पक्का कर चुकी थी। इसीदौरान उसे सोहराब मोदी के **'हेमलेट'** में काम करने का प्रस्ताव मिला। नसीम ने भूख हड़ताल कर माँ को राजी किया। तय यह

फिल्म पुकार (१९३९) में नसीम और चन्द्र मोहन





हुआ कि स्कूली पढ़ाई खत्म करके वह बंबई जाएगी तथा फिल्म में काम करके वापस आकर कॉलेज की पढ़ाई जारी रखेगी। जब नसीम वापस लौटी तब किसी भी कॉलेज में उसे प्रवेश नहीं मिला। कारण था उसका फिल्म अभिनेत्री बनना। अतः नसीम फिर से फिल्मी दुनिया में चली गई। **खान बहादुर, मीठा जहर** तथा **वासन्ती** के बाद आई मिनर्वा मूवीटोन की 'पुकार'। इस ऐतिहासिक रोमांटिक फिल्म का जादू आज भी बरकरार है। चंद्रमोहन ने इस फिल्म में जहाँगीर की भूमिका की थी तथा नसीम बनी थी नूरजहाँ।

'पुकार' में नसीम ने अपने गीतों को स्वयं गाया था और इसके लिए उसे दो वर्ष तक सतत् अभ्यास करना पड़ा था। इस फिल्म का गीत **'जिंदगी का साज भी क्या साज है'** आज भी श्रोताओं का मन मोह लेता है। मिनर्वा मूवीटोन की एक अन्य फिल्म **शीशमहल** में अपनी अभिनय क्षमता का तराशा हुआ रूप पेश किया। वक्त के हाथों बर्बाद हुए जमींदार की लड़की की भूमिका उसने बेहद भावपूर्ण तरीके से अदा की। स्वाभिमानी बेटी बनकर उसने गैरों की दया पर जीने की बजाए खुद नौकरी कर गृहस्थी की गाड़ी खींचना बेहतर समझा। नसीम बिना मेकअप के निहायत सादी वेशभूषा में फिल्म में आई। इसी फिल्म में निगार सुलताना एक समृद्ध जमींदार की सुंदर बिगड़ैल भूमिका में थी। नसीम और निगार के क्लोज अप सादगी और तड़क-भड़क दोनों पहलुओं को दर्शकों के सपने साकार करने में कामयाब रहे।

मिनर्वा मूवीटोन की महारानी के रूप में स्थापित होने के बाद नसीम ने फिल्मिस्तान की ओर रुख किया। यहाँ उसे अशोककुमार, बीना राय, नलिनी जयवन्त जैसे जमे हुए कलाकारों के साथ काम करना था। पहली फिल्म **चल चल रे नौजवान** में वह अशोक कुमार के साथ नायिका के रूप में आई। यह फिल्म सफलता की चोटियों को छू गई तथा यहीं से नसीम को 'ब्यूटी क्वीन' का टाइटल मिला।

फिल्मिस्तान की अगली हिट 'शबिस्तान' थी इसमें नसीम लम्बा गाउन पहने स्पेनिश राजकुमारी की तरह नजर आती थी। इसी फिल्म की शूटिंग के दौरान युवा नायक श्याम की मृत्यु घोड़े से गिर जाने के कारण हो गई थी। श्याम, नसीम से उम्र में काफी छोटा था। इस सिलसिले में नसीम को यदि सदाबहार नायिका कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। उम्र का तीसवाँ मोड़ पार कर चुकने के बावजूद वह श्याम (शबिस्तान), रहमान (अजीब लड़की), अनीस (तरंग) के साथ नायिका के रूप में आई। ये सभी सितारे उससे करीब दस साल छोटे थे।

नसीम के पति एहसान एक फिल्म निर्माता बन गए तथा 'ताजमहल पिक्चर्स' के बेनर में 'उजाला', 'मुलाकातें', 'बेगम', 'चाँदनी रात' तथा 'अजीब लड़की' का निर्माण किया। बाद में नसीम सात वर्षों तक ब्रिटेन में रही तथा इस दौरान उसने सारे योरप का भ्रमण किया।

फिल्मी दुनिया में नई नायिकाओं के आने का दौर जारी रहा, नरगिस, सुरैया, मधुबाला, खुर्शीद, नूरजहाँ, स्वर्णलता, रागिनी, मुमताज शांति तथा सरदार अख्तर को पृष्ठभूमि में डाल दिया। नसीम, निगार सुलताना तथा मुनव्वर सुलताना तीन नायिकाएँ ही ऐसी थीं जो नयों के आने के बावजूद अपनी लोकप्रियता कायम रखे हुए थीं। नसीम की सबसे बड़ी भूल 'सी' ग्रेड फिल्मों में भूमिकाएँ स्वीकार करना था। 'बागी' और 'सिन्दबाद' जैसी फिल्मों में काम करने से उसकी प्रतिष्ठा को काफी आघात लगा। अतः नसीम को सक्रिय अभिनय से लगभग संन्यास ही लेना पड़ा। मिनर्वा की नौशेरवाने आदिल में उसकी छोटी सी भूमिका थी, गुरुदत्त उसे 'प्यासा' में एक महत्वपूर्ण भूमिका देना चाहते थे, मगर कहा जाता है कि नसीम ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

पुत्री सायरा जब नायिका के रूप में हिन्दी फिल्मों में स्थापित हो गई तब विख्यात निर्माता के. आसिफ ने 'नूरजहाँ' पर फिल्म बनाने का विचार किया। मुख्य भूमिका के लिए वे नसीम को चाहते थे पर उसने इंकार कर दिया। इस प्रकार ढेरों प्रस्ताव आए जो नसीम ने ठुकरा दिए। जब एक पत्रकार ने अभिनय से इस विरक्ति का कारण उससे पूछा तो नसीम का जवाब था कि वह किसी भी क्षेत्र में खुद की बेटी से अपनी तुलना नहीं करवाना चाहती।

अभिनय से पूरी तरह संन्यास लेकर नसीम ने ड्रेस डिजाइनर के रूप में काम शुरू किया। 'आई मिलन की बेला' में सायरा द्वारा पहनी गई चर्चित और बेहद लोकप्रिय हुई साड़ी का डिजाइन उसी ने तैयार किया था।

'पुकार' और 'शीशमहल' की यह असामान्य रूपवती नायिका जब बंबई के राजभवन में गुलाब की प्रदर्शनी देखने जाती थी तब फूलों का सौंदर्य देखने आए दर्शक उसे देखकर कह उठते थे कि सबसे खूबसूरत फूल यही है। ■

एक किंवदंती : साधना बोस

फिल्मों में आने के पहले ही **साधना बोस** ने शास्त्रीय नृत्य के मंच पर धूम मचा दी थी। पारंपरिक भारतीय नृत्य की सभी शाखाओं के कलाकार उसके सामने फीके पड़ गए थे। बावजूद शास्त्रीय नृत्य पेश करने के, उसने बेहिसाब पैसा और बेमिसाल लोकप्रियता अर्जित की। बाद में वह फिल्मों में आई और वहाँ भी छा गई। मगर प्रतिभा की धनी साधना बोस का अंत बड़ा दर्दनाक रहा। वह अपनी प्रतिभा के शिखर पर पहुँचकर शराब के जाम में डूब गई। फिर वह उसमें से अपनी मौत तक न निकल पाई।

यह बड़ी अजीब बात है कि इस नायिका का जीवन ब्रह्मो-समाज की नींव रखने वाले प्रसिद्ध समाज सुधारक के जीवन से सीधे प्रभावित हुआ। उसे ख्याति भी उन्हीं के कारण मिली और उनसे प्रभावित विचारों के कारण ही उसे पुरातन किस्म के दकियानूसी लोगों की आलोचना का शिकार होना पड़ा। ब्रह्मानंद केशवचंद्र सेन, जिन्होंने १९ वीं शताब्दी में अपने सुधारवादी आंदोलन से बंगाल में और बाद में बाकी देश में भूचाल सा ला दिया था, यही हस्ती साधना के दादा थे। जहाँ तक वक्त का ताल्लुक है, वे एक-दूसरे से बड़े दूर थे। उनके बीच कोई पचास बरस का फासला था, मगर साधना विचारों के धरातल पर अपने दादा से सीधे जुड़ी हुई थी।

साधना बोस कुशल नृत्यांगना थीं। उन्होंने अपनी नृत्य-कला का सामाजिक सुधार एवं बदलाव के लिए जबर्दस्त उपयोग किया। उन्होंने दक्षिण भारत के शास्त्रीय नृत्य के गढ़ में क्रांति लाने के बाद एक विशाल सभागृह में अपनी बात दोहराई। वहाँ उन्हें देखने-सुनने के लिए इतनी भीड़ जमा हुई कि सभी कुर्सियाँ हटवा दी गई और सभी दर्शकों ने खड़े होकर कलात्मक चमत्कार के दर्शन किए। साधना का कहना था कि मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि मैं नृत्य की इन शाखाओं में से किसी एक का चुनाव क्यों नहीं करती, उसमें पारंगत क्यों नहीं होती? मेरा



सब की तरह साधना बोस ने भी सपने बुने थे। एक कुशल नर्तकी और अभिनेत्री के अलावा वह भावुक स्त्री ज्यादा थी। ब्रह्मो समाज के सूत्रधार केशबचंद्र सेन की पुत्री और फिल्म निर्माता-निर्देशक मधु बोस की पत्नी। मधु बोस उससे उम्र में इतने बड़े थे कि साथ खड़े रहने पर 'अंकल' लगते थे। साधना उनके प्यार में इतनी दीवानी हो गई कि बीमार पड़ गई। शादी से पहले जितना प्यार साधना ने मधु से किया, शादी के बाद उतनी ही हिंसक नफरत उसके मन में भर गई। सन् १९४७ में कानूनन दोनों अलग हो गए। अपने खालीपन को साधना ने शराब के जाम में ऐसा डुबोया कि उसकी शेष जिंदगी गलकर तार-तार हो गई। साठ के दशक में मधु-साधना फिर से मिले-हमेशा बिछुड़ जाने के लिए। १९६९ में जब मधु बोस की मृत्यु हुई तो साधना उनके साथ अकेली थी। अक्टूबर १९७३ में वह भी चल बसी, लेकिन एक किंवदंती की तरह माहौल में वह आज भी मौजूद है।

जवाब यह रहता है कि भारतीय शास्त्रीय नृत्य की गहराई इतनी असीम है कि उसमें पारंगत होने के लिए एक जीवन काफी नहीं है। यह संभव नहीं है। इसलिए हमें सिर्फ नृत्य की तकनीक में उलझकर नहीं रहना चाहिए।

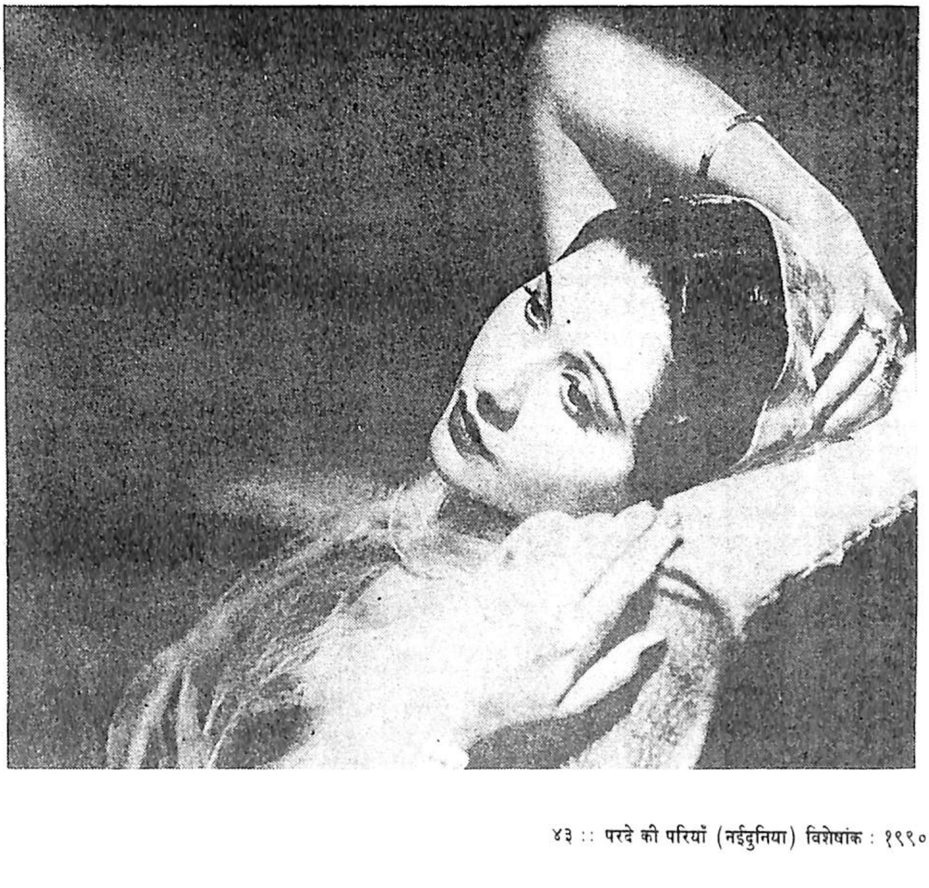
साधना के ऐसे क्रांतिकारी और मौलिक विचार पारंपरिक पंडितों को रास नहीं आए। उन्होंने उसकी बड़ी कड़वी आलोचना की। एक ने तो इसे वेश्यावृत्ति ही ठहरा दिया। मगर साधना जानती थी कि घिसे-घिसाए विचारों वाले कलाकार और गुरु इससे और ज्यादा दुःखी थे कि उसके कार्यक्रमों में शास्त्रीयता और स्तर के बावजूद पैसों की वर्षा हो रही थी। साधना ने अपना प्रयोग जारी रखा। उदाहरण के लिए पश्चिम बंगाल के भयंकर अकाल के समय सिर्फ वही एक ऐसी कलाकार थी, जिसने पारंपरिक कथानकों को छोड़कर 'भूख' नामक बैले का प्रदर्शन करके लोगों का दिल छू लिया। कत्थक में राधा और कृष्ण के प्रेम की कथा बयान की जाती है। साधना को नए जमाने में इस रासलीला तक सीमित रहना रास नहीं आया। उसने बला के साहस के साथ अपने नृत्य में उमर खय्याम की रूबाइयों को पेश किया। इस तरह साधना की प्रसिद्धि देश की सीमाओं को भी लांघने लगी। उसकी कला में कत्थकली की भावनात्मकता होती थी, कत्थक की नाटकीयता, मणिपुरी का तितली समान सूक्ष्म लालित्य और **भरतनाट्यम** की कविता। मगर उसकी हर मुद्रा शास्त्रीय होती थी और शास्त्रीयता के साथ हम-आपकी, आज की कहानी कहती थी।

साधना कला को कला के लिए ही रखने की उतनी कायल न थी। उसका कहना था कि कला लोगों के लिए ही है, जीवन के लिए ही है। उसकी पहली हिंदी फिल्म **कुमकुम** में यह कथन देखा जा सकता है। यहाँ उसकी मुद्राओं ने जब कमल खिलाया तो कैमरे ने वाकई फूल को सजीव कर दिया। साधना ने बाद में **अलीबाबा** फिल्म में जिप्सी लड़की का रोल अदा किया जो बेहद लोकप्रिय रहा। यह फिल्म उसके पति मधु बोस ने बनाई थी। साधना पहले ही उनकी नृत्य मंडली में शामिल थी। जब इस बेजोड़ कलाकार ने रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी **डालिया** में टीनी की भूमिका अदा की तो सौंदर्य बोध के महारथी टैगोर खुद इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने साधना को शांति निकेतन बुलवाया। बरसों बाद साधना ने उनकी रचना **अभिसार** को पेश किया, जिसमें राजनर्तकी वासवदत्ता और बुद्ध के युवा शिष्य उपगुप्त के प्रेम की कहानी कही गई है। साधना का फिल्मी जीवन अधिक लंबा न रहा। १९४१ में उसने राजनर्तकी फिल्म बनाई, जिसका निर्माण हिंदी, बंगाली और अँगरेजी तीन भाषाओं में हुआ। इस फिल्म को पारखी लोग आज भी श्रेष्ठ कला के नमूने के रूप में पेश करते हैं। उदाहरण के लिए शास्त्रीय नृत्य के दौरान देवदासी का इशारा देने के लिए साधना ने सिर्फ एक बार अपनी कमर लचकाई। इस क्रिया ने सभी कला-पारखियों का दिल जीत लिया।

अपनी जगह अफसोस की बात है कि इस पाए के कलाकार को बाद में सिर्फ पेट भरने के लिए **फॉर लेडिज ओनली** और शिन शिनाकी बूबलाबू जैसी फिल्मों में काम करना पड़ा।

दरअसल साधना की तकदीर उसे बर्बादी के रास्ते पर डाल चुकी थी। उसके पति मधु बोस भी मौलिक विचार रखते थे, पर शायद साधना की कला उनके लिए भी बाढ़ आई नदी जैसी बे-लगाम साबित हुई। अपनी तरफ से इस नर्तकी को अपनी कला में किसी भी किस्म का समझौता मंजूर नहीं था। उनके बीच जो कुछ गुजरा हो, वह पहले उनकी नृत्य मंडली से दूर हुई और बाद में जीवन से भी। उस खाली जगह को अनजाने में ही शराब ने भरना शुरू कर दिया। पहले उसने थकान मिटाने के लिए जाम थामा, फिर वह उससे बोरियत दूर करने लगी और बाद में वही उसके शरीर का ईंधन बन गया। काफी समय तक आम दर्शक यह न भाँप सके कि इस बेजोड़ नर्तकी की मुद्रा और गति की कसावट में नामालूम तरीके से ढिलाई आ गई है। वह नृत्य के साथ इतनी जीवंतता से जुड़ी थी कि काफी समय तक उसके कहीं-कहीं ताल-बेताल होने को लोगों ने एक नई व्याख्या की तरह लिया। मगर तब तक वह जहरीला पानी सिर के ऊपर पहुँच गया था। शायद अपने जीवन में आए शून्य का सामना करने के लिए पोलो खेलने वाले एक खूबसूरत राजकुमार के साथ उसके संबंध हुए। और बाद में, आज के एक चोटी के उद्योगपति के पिता के साथ। एक की मौत हो गई और दूसरा साधना को न झेल सका। साधना ने नए-नए नृत्य कार्यक्रम जारी रखने की कोशिश की, पर वह एक ठंडी आग साबित हुई। १९७३ के अक्टूबर महीने में उसकी मौत हो गई। साधना के पुराने प्रशंसकों के पास आज भी उसका वह चित्र मिल जाएगा, जिसमें उसके बड़े-बड़े धूप के चमकीले चश्मे में फोटोग्राफर की छाया दिखाई दे रही है और खुद साधना उसके लिए जड़ तरीके से मुस्करा नहीं रही है, बल्कि मुस्कराने ही वाली है। यह कली सी अधखिली मुस्कान कई आलोचकों को मोनालिसा की याद दिलाती है।

[वीकली में प्रकाशित पार्थ बसु के आलेख पर आधारित]



आ इंतजार है तेरा...

सुरेश गावड़े



पाँचवें दशक की शुरूआत में लता मंगेशकर नामक दिव्य आवाज की गूँज शुरू हो चुकी थी किंतु लता सहित सभी पार्श्व गायिकाओं के लिए तब आदर्श हुआ करती थीं **मलिका-ए-तरन्नुम नूरजहाँ**, जिस तरह से पुरुष गायकों के आदर्श **कुंदनलाल सहगल** हुआ करते थे। भारतीय फिल्मों में नूरजहाँ और सुरैया दो ऐसी अभिनेत्रियाँ रहीं जो अभिनय के साथ-साथ गायन में भी सिद्धहस्त थीं। खासकर नूरजहाँ। लता मंगेशकर के शुरूआत के वर्षों के पार्श्व गायन का विश्लेषण किया जाए तो बेहिचक कहा जा सकता है कि नूरजहाँ की गानशैली का उन पर जबर्दस्त प्रभाव था। बानगी के लिए लाहौर फिल्म में श्याम सुंदर की सदाबहार रचना 'बहारें फिर भी आएँगी' और बाजार फिल्म की 'ऐ दिल उनको याद न करना' इन गीतों को लता ने सीधे नूरजहाँ शैली में गाया है। विभाजन के बाद किसी रात अपने पति शौकत हुसैन के साथ नूरजहाँ पाकिस्तान चली गईं और उनकी गायकी से हम एक तरह से मोहताज हो गए। आज भी जानकारों में यह विवाद का विषय है कि नूरजहाँ की उपस्थिति में लता मंगेशकर किस मुकाम पर होती। मेरी राय में यह विवाद एकदम अनावश्यक है। निश्चित ही लता जहाँ आज हैं, वे नहीं होतीं, पर नूरजहाँ की जीवंत उपस्थिति से भारतीय सिने संगीत जरूर संपन्न से अति संपन्न बन गया होता। पाकिस्तान चले जाने के कई वर्षों बाद पिछले दिनों वे बंबई आई थीं। उनके सम्मान में आयोजित समारोह में तब अभिनेता दिलीप कुमार ने सही ही कहा था कि नूरजहाँजी, जितने वर्षों बाद आप आई हैं, यकीन कीजिए कि उतने ही वर्षों तक हम सभी ने आपका इंतजार किया है।

नूरजहाँ की अभिनय क्षमता की धुँधली यादें ही अब शेष हैं किंतु उनके द्वारा गाए हुए गीत आज भी तरोताजा हैं। मेरी याददाश्त में उनकी जुगनू फिल्म ही है। तब नूरजहाँ एक परिपक्व अभिनेत्री थीं और दिलीप कुमार नवोदित। इसके बाद भी अभिनय में दिलीप कुमार ने अभिनेत्री नूरजहाँ को मीलों पीछे छोड़ दिया था। हाँ, गायिका नूरजहाँ तब अन्य सभी के मुकाबले मीलों आगे थीं। जुगनू के अलावा अनमोल घड़ी, खानदान, गाँव की गोरी, बड़ी माँ, दोस्त, जीनत, नादान, मिर्जा साहिबाँ उनकी अन्य फिल्में थीं। इन फिल्मों में नूरजहाँ के अभिनय को उनके प्रशंसक आज शायद भूल गए होंगे, पर इन फिल्मों में उनके द्वारा गाए हुए गीतों को अब भी याद किया जाता है और आगे भी याद किया जाता रहेगा। सच में मलिका-ए-तरन्नुम नूरजहाँ की आवाज गजब की जालिम थी। उस आवाज से प्रभावित होकर बर्बाद होने वालों की सूची बताया जाता है कि बहुत लंबी थीं। सुरीली आवाज के साथ सुरीली शक्ल प्रायः नहीं होती किंतु नूरजहाँ को ये दोनों ही दैवी वरदान प्राप्त थे।

कुछ कहने वाली बड़ी-बड़ी आँखें, नुकीली नाक, शक्ल पर मादक मिठास और साथ में दिलकश आवाज। नूरजहाँ में इन तमाम खूबियों का अद्‌भुत मिश्रण था। पुरानी बात है। नूरजहाँ द्वारा गाया हुआ 'किस तरह टूटेगा दिल' गीत की पंक्तियों को मैं बाजे (हारमोनियम) पर दोहरा रहा था। बाजा सुन रहे मेरे पिताजी ने कहा, तुम क्या बजा रहे हो, तुम्हें मालूम है? मैंने कहा नहीं!

तुम जो बजा रहे हो, उसमें राग शिवरंजनी की तमाम खूबियाँ हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि नूरजहाँ द्वारा गाई हुई रचनाएँ शुद्ध रागदारियों पर आधारित हुआ करती थीं।

खानदान फिल्म का एक गीत है आँख मिचौली खेलेंगे, जिसमें नूरजहाँ ने बढ़िया धैवत लगाया था। इसे सुनकर संगीतकार के. दत्ता (दत्ता कोरगाँवकर) को प्रेरणा मिली और बड़ी मा

यदि नूरजहाँ आज भारत में होती तो भी लता, लता ही रहती



फिल्म के लिए उन्होंने एक गीत की खास रचना की; जिसमें तीव्र कोमलता, अति कोमल, गंधार और दो धैवत थे। फिल्म प्रदर्शित हुई और उस गीत से पूरा देश जैसे सुलग गया। पता है कौनसा गीत है वह? वह गीत है- दिया जलाकर आप बुझाया। के. दत्ता के अलावा नूरजहाँ के एक और गीत ने तब बेहद धूम मचाई थी। नौशाद द्वारा अनमोल घड़ी फिल्म के उस गीत में नूरजहाँ का साथ दिया था; गायक अभिनेता सुरेन्द्र ने और गीत था **आवाज दे कहाँ है।** अच्छे गीत कभी पुराने नहीं पड़ते। यह गीत भी संगीत प्रेमियों के जेहन में अब भी तरोताजा है। खैर, उनके ऐसे गीतों की फेहरिस्त यों लंबी भले ही ना हो, है भी नहीं। क्योंकि नूरजहाँ के गीत गिनने के लिए नहीं गाने के लिए ही हुआ करते थे। जैसे साँवरिया तोहे, आ इंतजार है तेरा, ये कौन हँसा दिल में, क्या यही तेरा प्यार था, किसी तरह से मुहब्बत में चैन पा न सके, हमें तो शामे गम में काटनी है जिंदगी अपनी, तुम भी भुला दो मैं भी भुला दूँ, बदनाम मुहब्बत कौन करे, आँधियाँ गम की यूँ चलीं, एक अनोखा गम, अनोखी सी मुसीबत हो गई, आदि एक से एक लाजवाब। स्वरों को आंदोलित कर इतराकर गाना नूरजहाँ की विशेषता थी। खनखनाता सुर और तान बंदूक की गोली जैसी दिल कँपा देने वाली। उदाहरण के लिए 'किसी तरह मोहब्बत में चैन पा न सके' गीत में 'पा न सके' शब्दों पर नूरजहाँ ने जो मुरकी ली, जो करामात की है, वह लिखने की बात नहीं, सुनने की है। शब्दों की फेंक (प्रस्तुति) और इठलाकर गाने को आज भी नूरजहाँ शैली या नूरजहाँ टच कहा जाता है। चूँकि वे अभिनेत्री भी थीं इसलिए गीतों के आशय को सही अंदाज में प्रस्तुत करना वे अच्छी तरह से जानती थीं और यही कारण है कि उनके गीत सुनने वालों पर विशिष्ट प्रभाव छोड़ जाते थे।

संगीतकार नौशाद ने सही कहा है कि लता के मुकाबले नूरजहाँ की आवाज में वजन था, वॉल्यूम बड़ा था। इसे पाठक लता-नूरजहाँ की तुलना नहीं समझें, दो दिव्य आवाजों का यह फर्क मात्र है। जो भी हो, फिल्मी पर्दे पर नूरजहाँ जैसी गायिका-अभिनेत्री अब नहीं होने वाली है। और यदि होती है तो, तो मैं क्या कहूँ? ■



क्रांति करने वाली शांता आप्टे

शांता आप्टे ने परदे पर रोल करते हुए प्रभात की क्लासिक फिल्म 'दुनिया न माने' में अपने बूढ़े पति पर छड़ी उठा ली थी। असली जिन्दगी में एक फिल्म पत्रिका ने उल्टा-सीधा छापा तो उसके दफ्तर में जाकर सम्पादक की पिटाई कर दी। फिल्म अमृत मंथन, दुनिया न माने तथा स्वयं सिद्धा फिल्म में उसने लड़ाकू नारी के चरित्र को इस तरह जिया है कि शांता आप्टे के कारण सम्पूर्ण नारी समाज गौरवान्वित अनुभव करता है अपने आपको।

शान्ता आप्टे के पिता स्टेशन मास्टर थे और संगीत के प्रति उनका रुझान बहुत था। इस तरह संगीतमय वातावरण में जन्मी और पली-बढ़ी शांता एक गायिका के रूप में बचपन से ही ख्याति प्राप्त करने लगी थी। पूना में होने वाले गणेशोत्सव कार्यक्रमों में शांता की मीठी स्वर लहरियों की धूम रहा करती थी। जब भारतीय सिनेमा को आवाज मिली तब पूना के फिल्म निर्माताओं को ऐसे कलाकारों की जरूरत महसूस हुई जो गाना गा सके। किशोरी शांता उन दिनों संगीत सीखने के लिए लालायित थी तथा इसी कारण उसने सरस्वती सिनेटोन की धार्मिक फिल्म **'श्याम सुंदर'** में राधा की भूमिका स्वीकार कर ली। फिल्म में राधा के पति की भूमिका उसके भाई बाबूराव आप्टे ने की थी तथा श्याम सुंदर बने थे शाहूमोडक। फिल्म का हिन्दी संस्करण तो व्यावसायिक रूप से असफल रहा मगर मराठी संस्करण ने सफलता का कीर्तिमान स्थापित कर दिया। यह पहली बोलती फिल्म थी जो बंबई के एक थिएटर में २५ हफ्ते चली। फिल्म की इस अपार सफलता के बावजूद शांता आप्टे को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। नई फिल्मों में काम के प्रस्ताव मिलना तो दूर रहा, यह तक कहा गया कि शांता को अभिनय का ककहरा भी नहीं आता। यद्यपि 'श्यामसुंदर' में अभिनय करते समय शांता के मन में नायिका के रूप में केरियर बनाने की कोई चाह नहीं थी, किन्तु व्यापक आलोचनाओं ने उसे अभिनय को अपनाने तथा अभिनेत्री के रूप में स्वयं को स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। उसने वर्षों श्रम किया तथा बाद में **'प्रभात'** के साथ लंबे समय का अनुबंध कर लिया। यहाँ उसकी पहली फिल्म **'अमृत मंथन'** थी जो एन.एच. आप्टे की कथा पर आधारित थी। बौद्धकालीन पृष्ठभूमि पर निर्मित यह फिल्म बलिप्रथा के विरोध में बनाई गई थी। फिल्म में नायक की बहन के रूप में शांता ने अत्यंत भावपूर्ण अभिनय किया तथा यह सिद्ध कर दिया कि उसमें कुशल अभिनेत्री बनने की सारी क्षमताएँ मौजूद हैं। उसका गाया गीत **'रात आई है नया रंग जमाने के लिए'** उस जमाने में हिट हो गया। 'अमृत मंथन' पहली हिन्दी फिल्म थी जिसने बंबई में सिल्वर जुबली मनाई। यद्यपि इस फिल्म में शांता की मुख्य भूमिका नहीं थी, किन्तु भावपूर्ण अभिनय तथा मीठी आवाज के कारण वह चर्चा का विषय बन गई। प्रभात के साथ हुए अनुबंध के दौरान उसने **'राजपूत रमणी'**, **'दुनिया ना माने'**, **'वाहन'**, **'अमर ज्योति'**, **'गोपालकृष्ण'** आदि फिल्मों में काम किया। 'दुनिया ना माने' तथा 'अमर ज्योति' का निर्देशन वी. शांताराम ने किया था। अमर ज्योति में उसने पुरुषों से घृणा करने वाली रोमांटिक नारी की भूमिका की थी



तथा 'दुनिया ना माने' में वह पिता की आयु के वृद्ध की पत्नी थी। स्थितियों से समझौता करने की बजाए यहाँ नायिका विद्रोह करती है तथा पति से शारीरिक संबंध जोड़ने की बजाए उसे अपनी भूल का एहसास कराने में कामयाब होती है। फिल्म में वह अपने सौतेले बेटे को छड़ी से मारती है।

पिटाई का लगभग यही दृश्य शांता आप्टे ने यथार्थ जीवन में सनसनीखेज तरीके से दुहराया। बंबई की एक फिल्मी पत्रिका ने जब उसके बारे में 'स्केण्डल' छापा तब वह छड़ी लेकर पत्रिका के सम्पादक के कमरे में घुस गई और उसे धुन डाला। अपने उग्र स्वभाव एवं विद्रोही प्रकृति के कारण उसके विवाद अक्सर प्रभात के प्रबंधकों से होते रहते थे। 'दुनिया ना माने' ने शांता को नायिका के रूप में यश दिया। 'राजपूत रमणी' में वह एक वीरांगना के रूप में आई तथा 'वाहन' में आदिवासी कन्या बनी जो आजादी की दीवानी थी। 'गोपालकृष्ण' में वह एक बार फिर राधा की भूमिका में आई। सात वर्ष पूर्व 'श्यामसुंदर'

विचारों के हैं तथा नारी का स्थान घर की चार दीवारों तक ही सीमित रखना चाहते हैं। अन्ततः वह पति का घर छोड़कर सेवा की राह पर चल पड़ती है। उस युग में यह भूमिका **'मदर इंडिया'** का प्रतीक मानी गई जो अपनी बेड़ियाँ तोड़ना चाहती है। शांता आप्टे ने अपने जीवंत अभिनय से भूमिका को प्राणवान बना दिया। संस्कृत के महान नाटक कादम्बरी पर आधारित इसी नाम की फिल्म में शांता आप्टे ने महाश्वेता की भूमिका करके स्वयं को 'ग्लेमर सुंदरी' के रूप में स्थापित कर दिया। इसके बाद 'मोहब्बत', 'भाग्य लक्ष्मी', 'सावन', 'पनिहारी', 'सुभद्रा', 'उत्तरा-अभिमन्यु' तथा 'वाल्मीकि' में शांता आप्टे स्टार के रूप में आई। महायुद्ध के बाद तथा स्वाधीनता के पूर्व वाले काल में उसकी लोकप्रियता घटने लगी। 'मंदिर', 'मैं अबला नहीं हूँ' तथा 'स्वयंसिद्धा' उसकी इस काल की हिन्दी फिल्में थीं।

स्वयंसिद्धा में शांता आप्टे एक बार फिर अभिनय की ऊँचाइयों पर जा पहुँची। मानसिक रूप से अविकसित पति को चंगा करने एवं देवर के अत्याचारों का विरोध करके परिवार को सुखी करने वाली बहू की भूमिका वाली यह फिल्म कलकत्ते में १९५० में बनी थी। इस फिल्म को कोई भी वितरक खरीदने के लिए उत्सुक नहीं था। ताराचंद बड़जात्या नें इसे लिया तथा बंबई के एक्सलेयर सिनेमा में प्रदर्शित किया। शुरूआत तो खराब रही मगर बाद में जब फिल्म की तारीफ सभी अखबारों में छपी तो वह हिट फिल्म सिद्ध हुई। बाद में इसी कहानी पर मद्रास में 'बहुरानी' बनी जिसमें शांता आप्टे वाली भूमिका माला सिन्हा ने की थी। 'स्वयंसिद्धा' के बाद शांता आप्टे गुजराती की एक फिल्म में और आई तथा बाद में उसने सिर्फ रंगमंच तक ही खुद को सीमित कर लिया। आचार्य अत्रे के मराठी नाटक 'लग्नाची बेड़ी' तथा मान–अपमान, एकच प्याला आदि में उसका अभिनय काफी सराहा गया।

धीरे–धीरे अकेलापन उसे घेरता गया तथा शराब उसे निगलने लगी। अंततः ४६ वर्ष की आयु में फरवरी १९६४ में उसकी मृत्यु हो गई। शांता आप्टे पहली सिने स्टार थी जिसने पुस्तक लिखी। मराठी में लिखी उसकी पुस्तक 'जाऊँ मी सिनेमा' फिल्मी दुनिया के सपने देखने वाले किशोर-किशोरियों के लिए मार्गदर्शिका का काम करती है।

अपने उग्र स्वभाव, विलक्षण प्रतिभा तथा विद्रोही प्रकृति के कारण सदैव विवादों का केंद्र बनी रहने वाली शांता आप्टे अपनी मृत्यु के एक दशक बाद भी अचानक सुर्खियों में आ गई। मराठी साप्ताहिक के १९७६ के दीपावली अंक में रंगमंच कलाकार नयना आप्टे ने एक पत्र छपवाया जिसमें उसने दावा किया था कि वह शांता आप्टे की बेटी है तथा उसकी माँ ने एक समृद्ध जमींदार आप्टे से विवाह कर उसे अँधेरी में जन्म दिया था। नयना आप्टे के अनुसार पति से उसकी पटी नहीं तथा तीन माह के वैवाहिक जीवन के बाद उसने पति का घर छोड़ दिया तथा अँधेरी में नयना को जन्म दिया। ■

स्नेह प्रभा प्रधान

शेर और कुत्ते को पालतू बनाने वाली

विट्ठल राव प्रधान अपने जमाने के बेहद उत्साही समाज सुधारक थे। उन्होंने ताराबाई नामक विजातीय बाल विधवा से विवाह कर तत्कालीन दकियानूसी समाज में हलचल मचा दी थी, यद्यपि ताराबाई उनसे उम्र में २५ वर्ष छोटी थी तथा अपनी सौतेली बेटी की हम उम्र थी। मगर वैचारिक स्तर पर वह पति की सच्ची सहधर्मिणी थी। पूना के फर्ग्यूसन कॉलेज की पहली महिला स्नातक ताराबाई की आकांक्षा थी कि पति के साथ मिलकर पूरे देश में साक्षरता का प्रसार करे। ऐसे समाजसेवी एवं क्रांतिकारी विचारों वाले दम्पति के यहाँ एक बिटिया जन्मी। माँ अपनी बेटी को नाम भी नए ढंग का देना चाहती थी। स्नेहलता या प्रभावती जैसे पारम्परिक नामों को मिलाकर उसने बिटिया का नामकरण किया **स्नेह प्रभा।**



स्नेह प्रभा ने अपना बचपन देश के विभिन्न हिस्सों में बिताया। नागपुर, मुरादाबाद, सूरत, लाहौर आदि स्थानों पर रहने के कारण भारत की विभिन्न जीवन शैलियों से उसका परिचय हुआ तथा उर्दू, हिंदी, गुजराती तथा मराठी भाषाओं पर उसका अच्छा अधिकार हो गया। बाद में उसने स्वयं ही बंगला भी सीख ली। उसे जानवर पालने का बेहद शौक था। कुत्ते, बिल्ली तथा चिड़ियाएँ पालते-पालते एक बार वह बाघ शावकों को अपने घर ले आई। दस साल की उम्र में वह समझ नहीं पाई थी कि कुत्ते के बच्चों तथा बाघ के बच्चों को पालतू बनाने में क्या अंतर है।

जानवरों को स्नेह बाँटने वाली स्नेह के पास सिर्फ माँ का प्यार ही अपार था। सौतेली बहन आयु में उससे बहुत बड़ी थी तथा हिलमिल कर रहने की बजाए अपनी सारी शक्ति पारिवारिक शांति को भंग करने में लगाती थी। इस सौतेली बेटी से तंग आकर ताराबाई ने अलग मकान ले लिया। बूढ़े पिता कभी–कभी अपनी इस नई गृहस्थी में बतौर मेहमान आ जाया करते थे। बेचारी स्नेह डॉक्टर बनने का सपना संजोए जिंदगी के टेढ़े–मेढ़े रास्तों पर चलने लगी। इसके बाद १९३९ का साल स्नेह प्रभा के जीवन में दर्दनाक मोड़ लेकर आया। परिवार के लिए रोटी का जुगाड़ करने वाली माँ गठिया के तीव्र हमले से बिस्तर तक सीमित हो गई। उस जमाने में इस बीमारी का कोई पक्का इलाज नहीं था। केवल पीड़ा निरोधक दवाइयों से फौरी आराम मिलता था। माँ की बीमारी तथा उस पर आश्रित मामा तथा मौसी का भार स्नेह के कंधों पर आ पड़ा। प्रतिभाशाली छात्रा स्नेह को डॉक्टर बनने के स्वप्न को दफन कर काम की तलाश में जुटना पड़ा।

इसी दौरान उसे फिल्मों में काम करने के प्रस्ताव मिलने शुरू हुए। 'बाम्बे टॉकीज' के चिमनभाई देसाई के प्रोत्साहन एवं आश्वासन उसके लिए सम्बल थे तथा इसी सहारे के कारण उसने सागर मूवीटोन की **'सिविल मैरिज'** में मिस प्रधान के नाम से भूमिका स्वीकार कर ली। उसे १५ सौ रुपए प्रतिमाह के निश्चित वेतन पर एक साल का अनुबंध मिल गया। इसके बाद आई एक विचित्र और असामान्य समस्या। स्नेह प्रभा की त्वचा फिल्मी मेकअप को सहन नहीं कर पाई। उसके बाल भी टायफाइड के कारण काफी गिर चुके थे। इस कमी ने एक विशेषता के रूप में उसे भारतीय नारी की नई ताजी छवि प्रदान की। 'सिविल मैरिज' 'सौभाग्य' तथा सजनी में उसे नायक अथवा नायिका की बहन की भूमिकाएँ मिली। उसका नाजुक चेहरा मासूमियत के कारण नायिका की भूमिका हेतु ठीक नहीं समझा गया। इन तीनों फिल्मों में उसके अभिनय की सर्वत्र सराहना हुई। इसके बाद आई उसकी चौथी फिल्म **'पुनर्मिलन'**। अपने जमाने की यह संगीत प्रधान फिल्म कई अर्थों में मिलन सिद्ध हुई। फिल्म ने स्नेह प्रभा को 'स्टार' तो बनाया, साथ ही फिल्म के नायक किशोर साहू के साथ उसकी प्रेम कहानी का सिलसिला भी शुरू हुआ। फिल्म में कोयली और कुमार की रोमांटिक भूमिका अदा करने वाले दोनों कलाकार असली जिन्दगी में भी पहले प्रेमी बने बाद में विवाह सूत्र में बंध गए। यह विवाह सिर्फ एक वर्ष ही चल पाया। तलाक के किस्से उस जमाने में काफी चर्चित हुए। बाक्स ऑफिस पर हिट सिद्ध होने वाली फिल्म पुनर्मिलन से उसे सिर्फ नौ सौ रु. मिले। इसके बाद ख्वाजा अहमद अब्बास की लिखी फिल्म 'नया तराना' में उसने कलावती की भूमिका की। समाजवादी विचारों का प्रचार करने वाली इस फिल्म में जयराज तथा डेविड उसके साथी कलाकार थे। 'कालिदास' में वह पहाड़ी सान्याल

के साथ आई। पहाड़ी सान्याल उस युग में काफी 'पढ़े-लिखे तथा बुद्धिजीवी नायक माने जाते थे। स्नेह प्रभा को भी लिखने-पढ़ने का शौक था। इस शौक का अमली इस्तेमाल उसने 'लड़की के बाद' नामक फिल्म की पटकथा लिखकर किया। रूप के शोरी की फिल्म 'दिन रात' में उसे डॉक्टर की भूमिका मिली। जिन्दगी में डॉक्टर बन पाने की अधूरी चाह को उसने डॉक्टर की भूमिका कर पूरा किया।

देवानंद और नरगिस के साथ वह 'बिरहा की रात' में आई। यही उसकी आखिरी हिन्दी फिल्म थी। इसके बाद पूना की मराठी फिल्म निर्मात्री संस्था नवयुग के साथ लंबी अवधि का अनुबंध कर वह स्थाई रूप से पूना बसने का इरादा लेकर वहाँ पहुँच गई। उसकी पहली फिल्म नवयुग के साथ थी 'पहिले मंगला गौर' स्नेह प्रभा तथा शाहू मोडक के साथ **लता मंगेशकर** भी बाल भूमिका में इस फिल्म में पर्दे पर आई थी। इसमें स्नेह प्रभा ने लता के साथ एक युगल गीत भी गाया था। इस फिल्म में एक प्रणय दृश्य काफी चर्चित एवं विवादास्पद हो गया था! **अँधेरे कमरे में धुँधके नजर आने वाले प्रेमी और प्रेमिका की उत्तेजक फुसफुसाहट ने दर्शकों को इतना दीवाना बना दिया कि वे शक्तिशाली टार्च लेकर थिएटर में आते तथा इस दृश्य के परदे पर आते ही टार्च की रोशनी डाल कर और ज्यादा देखने की कोशिश करते।**

इसके बाद 'तुझाच' तथा 'वर पाहिजे' नामक मराठी फिल्मों में काम कर उसने नवयुग का अनुबंध पूरा किया तथा बाद में गुजराती फिल्म में भी काम किया। सन् १९४६ के क्रिसमस पर स्नेह प्रभा की माँ का निधन हो गया। इस तरह वह माँ, मार्गदर्शिका तथा सच्ची सहेली से वंचित हो गई। धीरे-धीरे उसने ठोस वास्तविकताओं से समझौता कर लिया तथा समाज सेवा एवं रंगमंच को अपना कार्य क्षेत्र बनाकर फिल्मी दुनिया को त्यागने का फैसला किया। शेक्सपीयर के 'आथेलो' नामक नाटक में उसने डेस्डीमोना के किरदार को जितनी वास्तविकता से अभिनीत किया वह अपने आप में एक मिसाल बन गई। 'जुन्जारू' नामक यह नाटक बंबई के ओवल मैदान में सात हजार दर्शकों के बीच अत्यंत सफलतापूर्वक मंचित हुआ।

इसके बाद उसने स्वयं को पूर्णतः मराठी रंगमंच में डुबो दिया। १९५० में वह पूना छोड़कर फिर बंबई आ गई। यहाँ उसने अत्रे के प्रहसन, लग्नाची बेड़ी जैसे नाटकों में काम किया। एक मराठी नाटक में उसने निर्देशक के रूप में भी अपनी प्रतिभा का परिचय देने का प्रयास किया। इस महान संघर्षमय केरियर वाली अभिनेत्री का आखिरी काल दुखभरा है। अकेलेपन से घबराकर उसने आत्महत्या तक करने की कोशिश की मगर सौभाग्यवश बच गई। कुछ स्वार्थी लोगों ने अकेलेपन का नाजायज फायदा उठाकर उसे काफी आर्थिक क्षति भी पहुँचाई। एक विख्यात शल्य चिकित्सक डॉ. शिरोढ़कर के साथ गुजरे उसके कुछ वर्ष जिंदगी के सबसे खुशनुमा साल रहे। दोनों में आयु का अंतर था मगर रुचियों में समानता। अन्ततः मृत्यु ने उससे यह सुख भी छीन लिया। एक लेखिका के रूप में उसने अपनी जिंदगी की तल्खियाँ स्नेहांकिता नाम से कागज पर दर्द भरे शब्दों में उतारने की कोशिश भी की है। ■

एक तूफान का नाम है- सितारा



कत्थक नृत्यांगना **सितारा देवी** जैसी प्रतिभावान नर्तकी बहुत कम होती हैं। नृत्यकला के सहारे उन्होंने विश्व ख्याति अर्जित की है। दूध के दाँत भी ठीक से नहीं निकल पाए थे कि पाँच साल की कच्ची उम्र में उन्होंने नृत्य करना शुरू कर दिया था। सोलह साल की उम्र में उन्हें कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने **कत्थक क्वीन** खिताब से विभूषित किया। १९७१ में सितारा ने लगातार बारह घंटे नृत्य कर दर्शकों को मोह लिया। नृत्य के प्रति उनकी साधना, त्याग और समर्पण के कारण ही वे लोकप्रिय हो सकीं। १९७१ में उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया गया तथा खैरागढ़ विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टरेट की उपाधि दी। उन्होंने विद्यापीठ से नृत्य विलास खिताब प्राप्त किया।

बनारस घराने की इस नृत्यांगना के पिताजी पंडित सुखदेव महाराज वाराणसी दरबार के राजगुरु थे। वे संगीतकार भी थे। उनकी माँ मत्स्यकुमारी नेपाल की थीं। सितारा ने अट्ठुन, शंभू और बिरजू महाराज से नृत्य की शिक्षा ली। सितारा के पिता को इस बात से चिढ़ थी कि नृत्य को नवाब और महाराजा के मनोरंजन का साधन समझा जाता है। उनके पिता ने निर्णय कर लिया कि वे नृत्य कला को सम्मानजनक बनाएँगे। जब उन्होंने पाँच साल की नन्हीं सितारा को नृत्य कला सिखाना शुरू किया तो उनका तीव्र विरोध हुआ। उनके पिता विरोध से घबराए नहीं। दस साल की उम्र तक आते-आते सितारा नृत्य में काफी निपुण हो चुकी थी। इसके बाद उसके पिता ने उसे पेशेवर स्टेज तक पहुँचाया।

धीरे-धीरे सितारा की तारीफ बंबई में होने लगी। निर्माता-निर्देशक निरंजन शर्मा ने उन्हें फिल्म **उषा हरण** के लिए चार सौ रुपए माह पर अनुबंधित किया। सितारा को तीन माह के लिए बारह सौ रुपए मिले। सितारा ने स्टेज प्रोग्राम देना जारी रखा, लेकिन यह नया माध्यम उन्हें ज्यादा रोमांचक एवं विस्तृत लगा। १९३९ में बनी **नदी किनारे** में सितारा ने अभिनय के साथ-साथ गायिका की भूमिका भी निभाई। फिल्म के निर्देशक मणिभाई व्यास तथा नायक कुमार थे। सितारा ने १९३३ में जयंत देसाई द्वारा निर्देशित 'औरत का दिल' में भी काम किया। इसके अलावा उन्होंने महबूब खान की 'अलहिलाल' में काम किया। उनकी अन्य फिल्में थीं-रणजीत स्टूडियो की धीरज, गुडलक, पागल, अछूत, नदी किनारे, इंडिया टूडे और वतन। सितारा को फिल्मों से अच्छी खासी आमदनी होने लगी थी। सितारा ने 'चंदूलाल' शाह, चतुर्भुज दोषी, मणिभाई व्यास, बादामी तथा रमणीक लाल देसाई जैसे वरिष्ठ निर्देशकों के साथ काम किया। सितारा ने ए.आर. कारदार द्वारा निर्देशित स्वामी तथा 'पूजा' में भी काम किया। वीणा तथा अशोक कुमार द्वारा अभिनीत 'नजमा' में सितारा ने परित्यक्ता पत्नी की यादगार भूमिका निभाई है।

स्टेज प्रोग्राम के साथ-साथ सितारा का फिल्मों में काम करना भी जारी रहा। उन्होंने नजीर और के. आसिफ के साथ कई फिल्मों का निर्माण किया। उनकी यादगार फिल्में थीं-सोसायटी, सलमा, काजल, होली, फूल और हलचल। फिल्म 'मुगल-ए-आजम' में उन्होंने स्मरणीय नृत्य प्रदर्शन किया। सितारा ने कई मशहूर अभिनेताओं याकूब, ईश्वरलाल, दिलीप कुमार, नासिर खान, बलरा साहनी, मोतीलाल आदि के साथ काम कि सितारा द्वारा अभिनीत **नजमा** ही एकमात्र ऐ फिल्म थी, जिसमें उन्होंने नृत्य नहीं कि सितारा ने भले ही फिल्मों में अभिनय किया लेकिन वे नृत्यों के कारण पहचानी जाती उनकी यही सफलता उन्हें दूसरों से अलग क है।









परदे की परियाँ

खण्ड : दो

१९४१-१९६५

☐ मधुबाला ☐ नूतन
☐ सुरैया ☐ रेहाना
☐ निरूपारॉय
☐ नादिरा ☐ रागिनी
☐ अनिता गुहा
☐ हेलन
☐ नरगिस ☐ निम्मी
☐ मीना कुमारी ☐ गीताबाली ☐ नलिनी जयवंत
☐ कामिनी कौशल ☐ निगार सुल्ताना ☐ राजश्री
☐ नंदा ☐ साधना ☐ बबीता ☐ बिंदु ☐ बेगम पारा
☐ पद्‌मिनी ☐ वहीदा रहमान ☐ वैजयंती माला







सुरैया

गम का फसाना किसको सुनाएँ

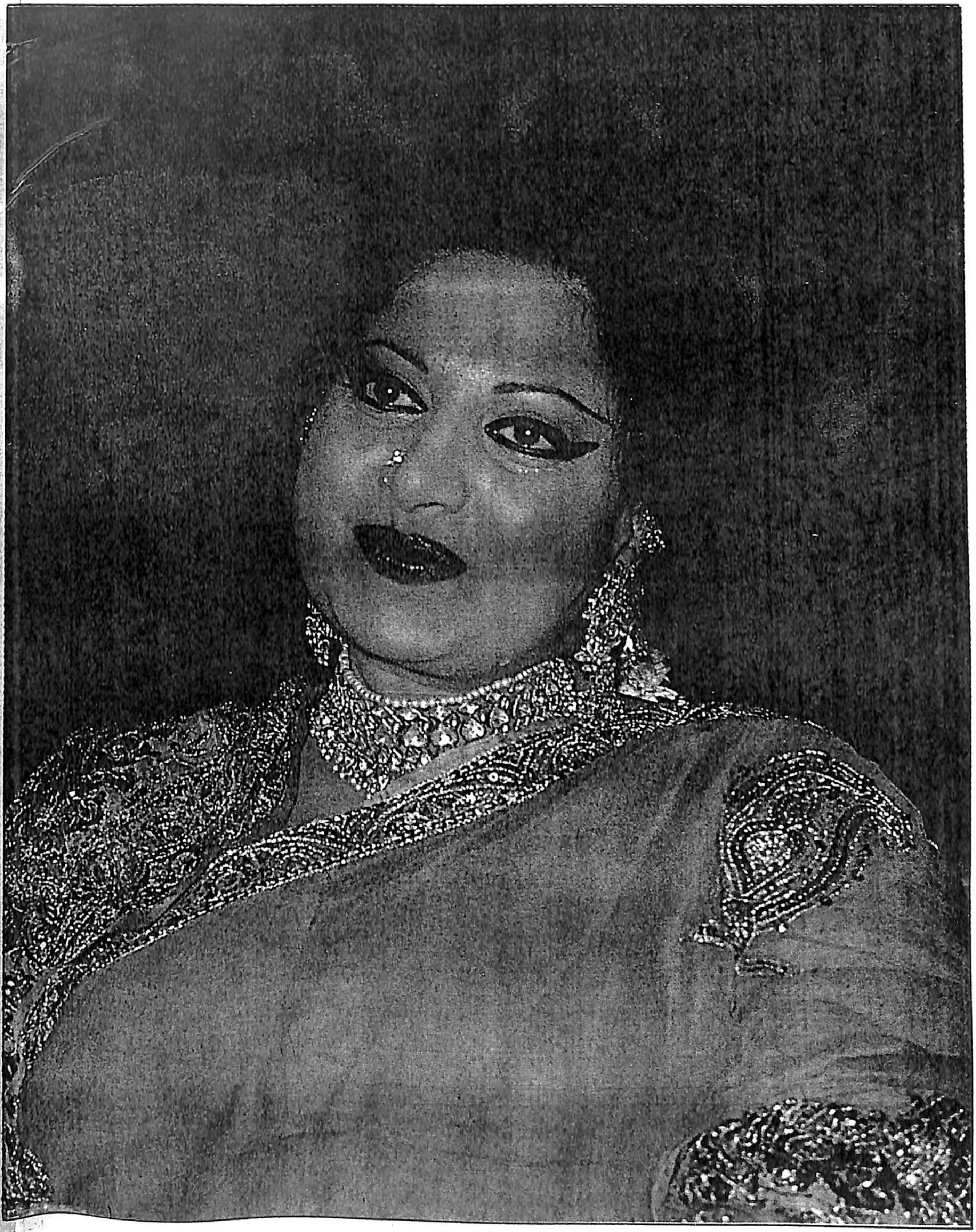
अपनी समकालीन नरगिस से पंद्रह दिन छोटी सुरैया का जन्म १५ जून १९२९ को लाहौर में हुआ था। जीवन के सत्रहवें बसंत में उसने फिल्मी दुनिया में गायिका-नायिका के रूप में प्रवेश किया तथा भारतीय नायिकाओं में पहली 'ग्लेमर गर्ल' के रूप में प्रतिष्ठित हुई। ग्लेमर के मामले में सुरैया की तुलना अपने जमाने की विख्यात हॉलीवुड अभिनेत्रियों यथा, लाना टर्नर, एवा गार्डनर, लिज टेलर तथा रीटा हैवर्थ से की जाती है। उस जमाने में सर्वाधिक पारिश्रमिक पाने वाली सुरैया सौंदर्य और रूप के मामले में अपनी कई समकालीन नायिकाओं से उन्नीस ही थी। मधुबाला, निगार, मीना, नलिनी जयवंत उससे कहीं ज्यादा रूपवती थीं। अभिनय प्रतिभा में भी नरगिस, मुनव्वर सुलताना, और नूतन उससे बेहतर थीं। मगर सुरैया के पास जो कंठ था, जो अदाएँ थीं, सजने-सँवरने का जो अंदाज था, चाल-ढाल में जो शोखी थी, रहन सहन में जो नजाकत थी, बातचीत में जो नफासत थी वह किसी अन्य नायिका के पास नहीं थी। गरारा-कमीज वाली उसकी पोशाक, चूड़ियों तथा गहनों से लदा बदन, काजल की रेखाओं से झाँकती मदहोश निगाहें और शायराना अंदाज में बोलने का उसका ढब, किसी भी मिलने वाले को पहली मुलाकात में दीवाना बना देने की ताकत रखता था।

विभाजन के बाद भारत में रह जाने वाली वह अकेली ही गायिका-नायिका थी। नूरजहाँ तथा खुर्शीद पाकिस्तान जा चुकी थीं। नलिनी जयवंत, जयश्री, नसीम, नूतन और माला सिन्हा सुरीला कंठ होने के बावजूद गायिका-नायिका के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो पाईं क्योंकि उन दिनों पार्श्वगायन का चलन था। सुरैया नायिका होते हुए भी जब गायिका के रूप में आती थी तब उस जमाने की कोई भी पार्श्वगायिका उससे बेहतर प्रस्तुति का दावा नहीं कर सकती थी। 'लिखने वाले ने' (बड़ी बहन), ये न थी हमारी किस्मत (मिर्जा गालिब) आज भी अपनी मिठास और सुरैया के विशिष्ठ कंठ कीर्ति के प्रमाण बने हुए हैं। सुरैया ने धन के लोभ में कभी नहीं गाया। 'सुरैया निशा' का आयोजन कहीं नहीं हुआ। यही उनकी आवाज की विशेषता थी कि वह जब भी गाती थीं

◆◆◆

अपने जीवन के सत्रहवें बसंत में फिल्मी दुनिया में नायिका-गायिका के रूप में प्रतिष्ठित सुरैया पहली ग्लेमर-गर्ल है। सूरत शक्ल और अभिनय प्रतिभा में मधुबाला, मीना, नलिनी जयवंत से उन्नीस सुरैया के पास अदाएँ थीं। सजने-सँवरने का अंदाज था। चाल-ढाल में शोखी थी। रहन-सहन में नजाकत और बातचीत में नफासत उसकी दौलत थी। सुरैया को न कभी संगीत की शिक्षा मिली और न अभिनय का प्रशिक्षण। नौ साल की उम्र में वह कैमरे के सामने [illegible] लालची नानी द्वारा खड़ी कर दी गई। सुरैया को जितनी दौलत और शोहरत मिली, उतनी उसकी समकालीन नायिकाओं को नहीं मिली। उसके दरवाजे पर प्रशंसकों की भीड़ पर पुलिस लाठी चलाती थी। दीवाने बारात लेकर पहुँच जाते थे और आत्महत्या की धमकी देते थे। सुरैया के नाज-नखरे इतने होते थे कि दूध-स्नान का दृश्य असली दूध के साथ शूट किया जाता था। आज सुरैया मैरिन ड्राइव के अपने बंगले में बैठकर बिरयानी खाती रहती है और खुले समुद्र की लहरें पर सवार बीते दिन उसे रोमांटिक-युग में ले जाते हैं।







दिल की गहराइयों से गाती थीं।

सुरैया याने सुरैया जमाल शेख भरे पूरे माँसल बदन की मालकिन रही। देव आनंद के साथ नायिका के रूप में उसके प्रेम दृश्य अल्हड़ कैशोर्य के आवेग से भरपूर रहते थे। जबकि दिलीप और कामिनी का रोमांस शायराना था तथा राज और नरगिस प्रेम दृश्यों में उत्तेजक हो जाते थे। 'सनम', 'अफसर', 'शायर', 'दो सितारे', 'जीत आदि में देव आनंद के साथ उसकी जोड़ी तत्कालीन किशोर वय के दर्शकों को लगातार आंदोलित करती रही।

सत्रहवें साल में नायिका के रूप में फिल्मी दुनिया में हलचल मचाने के लिए प्रवेश करने वाली सुरैया ने बाल कलाकार के रूप में सबसे पहले **ताजमहल** में काम किया। इस भूमिका को बेहतर ढंग से अंजाम देने के लिए उसने बड़ी मेहनत से नाचना सीखा। 'शारदा', 'स्टेशन मास्टर', 'संजोग' तथा 'कानून' में वह पार्श्वगायिका के रूप में प्रतिष्ठित हुई। बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'हमारी बात' में अपने नृत्य और कंठ के साथ जुड़े शोख अभिनय की वजह से सुरैया 'सितारा' बन गई। 'घर हमने ले लिया है तेरे घर के सामने' उस जमाने का हिट गीत था। 'इशारा' में वह अपने जमाने के प्रतिष्ठित नायक पृथ्वीराज कपूर के साथ नायिका के रूप में आई। इसके बाद मेहबूब की 'अनमोल घड़ी' में तीन गायक सितारे एक साथ आए। नूरजहाँ, सुरेंद्र और सुरैया की तिकड़ी ने नौशाद के संगीत के साथ इस फिल्म को इतिहास का एक टुकड़ा बना दिया। यह फिल्म हिंदी सिनेमा की सर्वाधिक हिट फिल्म के रूप में चर्चित रही।

सुरैया की अन्य सफल फिल्मों में 'फूल', 'आज की रात', 'दर्द', 'नाटक', 'हीर रांझा', 'काजल', 'विद्या', 'चार दिन', 'दिल्लगी', 'दीवाना', 'खयाल', और 'विल्बमंगल' हैं। व्यावसायिक रूप से हिट फिल्मों में 'बड़ी बहन', 'प्यार की जीत' और 'दास्तान' है। स्वर्गीय मुकेश ने अपनी फिल्म 'माशूका' में नायक की भूमिका के लिए खुद को तथा नायिका के रूप में सुरैया को लिया था।



दोनों की गाई एक लोरी आज भी माताओं को बच्चों के सुलाने में सहायक होती है। दूसरे पार्श्वगायक तलत के साथ सुरैया को नायिका के रूप में नितिन बोस ने 'वारिस' में लिया। इस फिल्म के युगल गीत 'राही मतवाले' सदाबहार गीतों की कतार में शामिल हैं। सुरैया के प्रिय गायक सहगल थे। सहगल के साथ काम करने की उसकी तमन्ना 'तदबीर' में पूरी हुई। बाद में दोनों 'उमर खय्याम' तथा 'परवाना' में साथ-साथ आए।

सुरैया में छिपी सेक्स अपील को पहचानने और फिल्मों में उसे खुलकर इस्तेमाल किया केदार शर्मा ने। उनकी फिल्म 'शोखियाँ' में सुरैया प्रेमनाथ की नायिका के रूप में आई तथा उसके एक खानाबदोश लड़की की भूमिका की। रक्तचाप के कारण सुरैया को कुछ दिनों तक फिल्मों से दूर रहना पड़ा। उसकी वापसी शानदार तरीके से 'शमा परवाना' के जरिए हुई। इस फिल्म में सुरैया ने असफल प्यार की पीड़ा झेलते हुए मौन रहने को विवश नायिका की भूमिका इतने सशक्त ढंग से निभाई कि उसे 'ट्रेजेडी क्वीन' कहा जाने लगा। इस फिल्म के नायक शम्मीकपूर थे। इस तरह सुरैया पिता पृथ्वीराज के साथ उसके दो बेटों राज (दास्तान) तथा शम्मी की नायिका भी बनी।

'शमा परवाना' के बाद आई 'मिर्जा गालिब', राष्ट्रपति के स्वर्ण पदक से १९५४ में सम्मानित होने वाली इस फिल्म में सुरैया के अभिनय तथा उसके द्वारा पेश की गई गालिब की गजलों ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध भी किया तथा रुलाया। यह फिल्म क्लिष्ट उर्दू में संवादों के कारण व्यावसायिक दृष्टि से असफल रही।

इस असफलता ने सुरैया को कुछ गलत फैसलों की ओर मोड़ लिया। उसने 'मालिक' और 'मिलम्बू' जैसी 'सी' ग्रेड फिल्मों में काम करके अपनी प्रतिष्ठा को गिराया। वैसे यह काल पुरानी लोकप्रिय नायिकाओं के उतार का ही समय था। नरगिस रिटायर हो चुकी थी। कामिनी और निम्मी का आना फिल्मों में घट रहा था। मधुबाला अस्वस्थ थी। पुराने युग की वैजयन्तीमाला और नूतन ही लोकप्रियता को कायम रखे हुए थीं। नई पीढ़ी की आशा पारेख, सायरा बानो तथा साधना अपनी जगह बनाने में लगी थी। दरअसल नायिकाओं का युग ही समाप्त हो रहा था। भोंडी कॉमेडी तथा उछलकूद करने वाले नायकों का जमाना आने लगा था। सुरैया इस माहौल में 'अनफिट' थी, इसलिए उसे भूमिकाएँ नहीं मिल रही थीं।

संक्रमण के इस दौर में तस्वीरिस्तान की 'शमा' (१९६१) जली। गुलाम मुहम्मद के संगीत में गुंथी इस मुस्लिम प्रेम कहानी में सुरैया की आवाज लाजवाब मिठास का संदेश लेकर आई, "मस्त आँखों में शरारत" जैसे गानों ने लोकप्रियता के नए कीर्तिमान कायम किए। रामसे प्रोडक्शन की 'रुस्तम- सोहराब' (१९६३) में सुरैया ने एक बार फिर पापा पृथ्वीराज के साथ नायिका की भूमिका निभाई। रुस्तम की प्रिया

हॉलीवुड स्टार फ्रेंक काप्रा को अपने घर पर खाना खिलाते हुए सुरैया और अम्मा मलिका बेगम (१९५२)



राजकुमारी तहमीना के रूप में सुरैया का सौन्दर्य राजसी पोशाक में खिल उठा था। तकनीकी दृष्टि से यह फिल्म निहायत रद्दी थी और पूरी तरह से फ्लॉप हुई, मगर सुरैया फिर छा गई। फिल्म में उसने सिर्फ एक ही गीत गाया, 'यह कैसी अजब दास्तान हो गई' इस गीत ने सिद्ध कर दिया कि वक्त की सान पर सुरैया की आवाज की धार और भी तेज हो गई है। इसके बाद 'याद बनी अफसाना' में उसे मुख्य भूमिका मिली, मगर यह फिल्म पूरी न हो सकी। इसके साथ ही सुरैया ने अभिनय से संन्यास ले लिया।

भारतीय रजतपट की इस महानतम ग्लेमरस अभिनेत्री ने लोकप्रियता के शिखर को छुआ ही, साथ ही कई दिलचस्प परम्पराएँ भी डालीं। माताओं से रक्षित नायिकाओं में भी वह पहली थी। उसकी माँ तो आसपास मँडराया ही करती थी, अक्सर उसकी माँ की माँ याने नानी भी साथ ही नजर आती थी। हॉलीवुड के नायक ग्रेगरी पेक के साथ भी सुरैया की मुलाकात काफी चर्चित रही। फिल्म फेयर के १६ अप्रैल १९५४ के अंक में प्रकाशित एक साक्षात्कार में सुरैया ने बताया कि फिल्म फेयर अवार्ड के सिलसिले में भारत आए पेक ने उसके सामने हॉलीवुड चलने का प्रस्ताव रखा तथा वह मैरिन ड्राइव स्थित उसके फ्लेट में भी मुलाकात के लिए आया। रात को डिनर के दौरान दोनों एक-दूसरे के काफी नजदीक रहे। पेक के हॉलीवुड आमंत्रण पर टिप्पणी करते हुए सुरैया की माँ मलिका बेगम ने कहा, "ठीक है पेक साहब अपने मुल्क के फिल्मी सितारे होंगे, मगर मेरी बेबी तो यहाँ की सबसे बड़ी सितारा है। इसलिए वहाँ जाने में कौनसी खूबी है।"

सुरैया ने नायिकाओं को शान और शौकत के साथ जीने के तरीके सिखलाए। गर्मियों में वह राजकुमारियों की तरह आराम करने लोनावाला के अपने बंगले में चली जाया करती थी। बाद में उस सड़क को जिस पर सुरैया का बंगला था, 'सुरैया रोड' नाम दिया गया। ऐसा सम्मान पाने वाली वह पहली भारतीय नायिका थी। ■



देव आनंद से पहला और आखरी प्यार

सुरैया की आपबीती

सुरैया के सहपाठी राजू भारतन द्वारा

देव आनंद ने उस दिन शरारती हरकत की। वे आकाशवाणी पर विशेष जयमाला कार्यक्रम पेश कर रहे थे। जब बात उनके साथ काम करने वाली नायिकाओं की छिड़ी तो उन्होंने दर्जनों हीरोइनों के नाम गिना दिए। उनमें एक महत्वपूर्ण नाम गायब था। श्रोता शुरू से ही उस नाम की उम्मीद लगाए थे। मगर तभी देव आनंद ने नायिकाओं की लिस्ट सुनानी बंद कर दी और वे गुनगुनाने लगे: ले के पहला-पहला प्यार, भर के आँखों में खुमार, जादू नगरी से आया है कोई जादूगर।

इसके बाद एक नन्हीं-सी खामोशी चली फिर अचानक उन्होंने कहा: अरे मैं एक नाम गिनाना तो भूल ही गया। वह है **सुरैया।** *यह देव आनंद का अपना पहला प्यार कबूलने का शिष्ट और सभ्य तरीका था। उनकी शरारत यहीं खत्म न हुई। उन्होंने फिल्म अफसर का यह गाना बजाया: नैन दीवाने इक नहीं माने, करें मनमानी, माने ना।*

अब हम दोनों के अलावा शायद ही किसी को यह याद रहा होगा कि इसी गाने को फिल्माने के साथ ही हम बिछुड़ गए थे। दरअसल इसकी रेकार्डिंग के समय सचिन देव बर्मन ने हम दोनों को भाग जाने की प्रेरणा दी थी। लेकिन तकदीर में कुछ और ही लिखा था। आज मैं इत्मीनान के साथ मजे लेकर किस्सागोई कर सकती हूँ। मगर सत्रह-अठारह साल की कच्ची उम्र में मुझे पहली बार कैसा सुख नसीब हुआ और फिर दिल किस तरह रोया, यह मैं जानती हूँ। चलो, जैसा आप चाहते हैं, कहानी शुरू से सुनाती हूँ। १९४८ में मैं विद्या फिल्म में काम कर रही थी। विद्या सिन्हा के पिता, प्रतापराणा उसके प्रोड्यूसर थे। मैं कई दिनों से देख रही थी कि जब मैं कैमरे के सामने होती थी तो एक अजनबी युवक बैठे-बैठे लगातार मुझे निहारता रहता था। शूटिंग में यह कोई नई बात नहीं थी। यूनिट के लोग अक्सर अपने यार-दोस्तों को ले आते थे।

जब पाँचवें दिन भी मैंने उसे लगातार एकटक अपनी और ताकते देखा तो मुझसे न रहा गया। मैंने पूछा कि ये कौन साहब हैं, और इनकी दिलचस्पी की वजह क्या है। तब मालूम पड़ा कि ये मेरी फिल्म के नए हीरो हैं। हीरो साहब का शर्मिलापन देखिए कि वे इतने दिनों से अपनी हीरोइन से बातें करने की हिम्मत जुटाने की कोशिश में डूबे हुए थे।

पहली बार देव आनंद को देखकर मुझे लगा कि नौजवान बेहद तमीजदार, पढ़ा-लिखा और नफीज किस्म का आदमी है। बाकी तमाम नायकों से बिल्कुल अलग। दूसरे दिन हमें साथ शूटिंग करनी थी। हीरो साहब के छक्के छूट रहे थे, वे इस कदर अनाड़ीपन के साथ अचकचा रहे थे कि मुझे रोमांटिक सीन कॉमेडी का मजा दे रहा था। मैंने मजाक को और पुख्ता करते हुए हीरो को छेड़ा, "तुम्हारा चेहरा कुछ-कुछ ग्रेगरी पेक की याद दिलाता है।" असल में उसी रात अचानक ग्रेगरी पेक मुझसे मिलने आ धमके थे और शायद यही बात दिमाग में घूम रही थी।

देव आनंद पर इस फिकरे का असर देखने लायक था। वे चलने-फिरने, उठने-बैठने और बोलने-सुनने यानी हर हरकत में ग्रेगरी पेक की बंदर-नकल मारने लगे। मगर जल्द ही मुझे संजीदा होना पड़ेगा, इसकी मुझे खबर न थी।

दूसरे दिन आउटडोर शूटिंग में मुझे उनके कंधे पर सिर रखना था। यह नाटक मैं अगिनत बार कर चुकी थी। मगर उस दिन की बात ही कुछ और थी। जैसे ही मैंने अपना सिर रखा, पूरे बदन में एक बिजली-सी दौड़ गई। यह मेरे लिए नया अनुभव था। सामने वाली पार्टी की हालत और खस्ता थी। जब हमारी आँखें मिली तो हम सब कुछ समझ गए। किसी को कुछ कहने की जरूरत न रही।

हो सकता है आपको लगे कि मैं बढ़ा-चढ़ा कर तिल का ताड़ बना रही हूँ। मैं मानती हूँ कि मैं तब तक कई एक नायकों के साथ काम कर चुकी

◆◆◆

प्यार की कोपलें फूटने के डेढ़ साल तक सुरैया-देव आनंद पाँच मिनट के लिए भी अकेले में नहीं मिल पाए। सुरैया की दादी की गिद्ध जैसी निगाहें उन पर गड़ी रहती थीं। दुर्गा खोटे और कामिनी कौशल ने भरपूर कोशिश की कि देव-सुरैया की शादी हो जाए। जब दादी को पता चला, तो उन्होंने देव आनंद द्वारा दी गई हीरे की अँगूठी को समुद्र में फेंक दिया और तमाम प्रेम-पत्रों को सुरैया के सामने आग लगा दी। दादी के सिपहसालार अक्सर कहते थे कि सुरैया ने यदि हिन्दू से शादी की तो हिन्दुस्तान में ही नहीं पाकिस्तान में भी दंगे हो जाएँगे।



फिल्म जीत के सेट पर सुरैया-देवआनंदः यहीं पर उन्होंने किया था प्यार का इजहार

थी। उनमें से या तो ज्यादातर शादीशुदा थे या उनमें ऐसी कोई बात न थी कि हम एक-दूसरे पर ध्यान देते। बहरहाल एक बड़ी स्टार के सामने झिझकने वाले देव आनंद का संकोच गायब हो गया था। मैंने महसूस किया कि यह आदमी पैदाइशी रोमांटिक है और सोने पर सुहागा यह कि बेहद शरीफ भी। जज्बात जाहिर करने का उनका अपना शालीन तरीका था। सबसे बड़ी खूबी यह कि बड़े ही नपे-तुले और पश्चिमी किस्म के सुसंस्कृत तरीके से वे जो कुछ कहते थे, उस पर भरोसा होता था। वे शेरो-शायरी नहीं करते थे, पर उनके सहज अंदाज में अपनी कविता थी। बाद में उन्होंने कई बार मुझे बताया, कहा कि जिस चीज ने मुझे सबसे ज्यादा आकर्षित किया, वह यह कि तुम इतनी बड़ी स्टार होकर भी अपनी मासूमियत बरकरार रखे हुए हो। हर किसी के साथ इतनी तमीज से पेश आती हो।

शायद हम दोनों का प्रेम विरोधी तत्वों का आकर्षण था। वे बड़े आधुनिक और पश्चिमी तौर-तरीके और सोच-समझ वाले इंसान थे। मैं समझती हूँ मुझे ठेठ भारतीय कहा जा सकता था। मेरे घर में दादी की तानाशाही चलती थी। वे स्टूडियो और घर के अन्दर-बाहर हर वक्त मेरे साथ चिपकी रहती थीं। मेरी उम्र भी सत्रह बरस थी। इस हालात में स्टार होने का मेरे लिए कोई खास मतलब नहीं निकलता था। घर से स्टूडियो और स्टूडियो से घर लगातार दादी की पहरेदारी में। ऐसे में मैं अपने-आप में सीमित होकर रह गई थी।

आपको यकीन नहीं होगा प्रेम की कोपलें फूटने के बाद डेढ़ साल तक हमें अकेले में मिलने के पाँच मिनट भी नसीब नहीं हुए। दादी की गिद्ध जैसी निगाहें मुझ पर गड़ी रहती थीं। तभी एक दिन शूटिंग के दौरान वह नायाब मौका हाथ लगा। दादी घर से एक कीमती हार लाना भूल गई थी, जिसे मुझे अगले सीन के लिए पहनना था। उसे लाना यों जरूरी था कि पिछले सीन में मैं उसे पहने थी और कन्टीन्युटी के लिए उसे पहने रखना था। हम अंधेरी में शूटिंग कर रहे थे और हार मैरिन ड्राइव पर बीस किलोमीटर दूर था। पहले मुझे यह बता देना चाहिए कि इस बीच हम दोनों की जोड़ी मिलाने के लिए कई शुभचिंतक साथी और दोस्त आगे आ गए थे। फिल्म के डायरेक्टर चावला साहब थे। वे फौरन दादी के पास लपककर पहुँचे और उनके उनसे कहने लगे कि "मैं बिना हार के सुरैया से रिहर्सल करवाता हूँ। इस बीच आप घर जाकर हार ले आइए।" दादी को मुझे अकेला छोड़ना अखरा, पर वे हार कर चली गई।

उनके जाते ही देव आनंद भड़भड़ाते हुए मेरे मेकअप रूम में दाखिल हुए। किसी शुभचिंतक ने बाहर से साँकल लगा दी। हम पहली बार अकेले में एक-दूसरे से मुखातिब थे। वे ४५ मिनट मेरी जिन्दगी की सबसे सुहानी घड़ियाँ थीं। कब वक्त गुजर गया, पता ही न चला। किसी ने अचानक दरवाजा खटखटाकर दादी के लौटने की चेतावनी दी। हम अपने को संभाल कर किसी तरह जुदा हुए। मैं जानती थी कि अब सामान्य दिखने के लिए हम दोनों को दादी की तेज निगाहों के सामने अपनी जिन्दगी की सबसे अच्छी एक्टिंग करनी पड़ेगी।

इसके बाद देव आनंद के खतों की झड़ी लग गई। हर खत में वे फौरन से पेश्तर शादी करने पर जोर दे रहे थे। मैं यह सोचकर ही काँप जाती थी कि दादी सुनेंगी तो मेरा क्या हाल बना देंगी। कैमरामेन द्वारिका दिवेचा, दुर्गा खोटे और कामिनी कौशल जैसे दोस्त इस फिक्र में रहते थे कि किस तरह हम दोनों की मुलाकात हो सके। दिवेचा साहब और उनकी बीवी ने दुश्मन के किले में ही सेंध लगाने की चाल चली। वे हमारी इमारत की अगली लिफ्ट से मुझे हवाखोरी के बहाने छत पर भेज देते थे। देव आनंद पिछवाड़े की ओर लगी लिफ्ट से छत पर पहुँच जाते थे। सामने अरब सागर में सूरज डूब रहा होता था और हम दोनों अकेले होते थे। मैंने किसी भी फिल्म में किसी सीन को इतना रोमांटिक नहीं पाया। मुझे कामिनी कौशल का खासतौर से जिक्र करना चाहिए।' वे चोरी-छिपे दिलीपकुमार के साथ इश्क फरमा रही थी। कहाँ, कैसे मिला जाए इस बारे में उनके पास हमेशा ताजा सुझाव होते थे।

मैं यह बताना भूल ही गई कि फिल्म जीत के सेट पर देव आनंद ने औपचारिक रूप से शादी का प्रस्ताव रख दिया था। तभी बी.के. करंजिया ने अपनी पत्रिका 'मूवी टाइम्स' में हम दोनों की फोटो छाप दी। दादी की छोटी-सी गैर हाजिरी के दौरान हम दोनों शायद एक स्टूडियो के बगीचे में बतिया रहे थे। इस बीच देव आनंद ने मुझे एक हीरे की अँगूठी पहना दी। उसकी कीमत तीन हजार रुपए थी, जो उस जमाने में देव आनंद जैसे नए स्टार के लिए बहुत बड़ी रकम थी। उनके कैरियर की उठान शुरू हो चुकी थी। उन्होंने हिम्मत करके एक हिलमैन गाड़ी खरीद ली थी। मेरे पास कैडिलक गाड़ी थी। देव आनंद हमेशा कहते थे किसी दिन मैं तुम्हें अपनी कैडिलिक में घुमाऊँगा। मगर मेरे लिए उनकी छोटी सी हिलमैन ही जन्नत मालूम पड़ती थी। उस फोटो के

अपने नाम से ही

टुनटुन शब्द आज मोटी महिला का पर्यायवाची बन चुका है। कोई मोटी हो तो उसे टुनटु[n] कहकर चिढ़ाया जाता है। हिंदी फिल्मों में टुनटु[n] की भारी भरकम देह का इस्तेमाल कॉमेडी के लिए किया जाता रहा है। नई पीढ़ी भले ही उसे इस रूप में जानती हो, लेकिन टुनटुन का एक और भी रूप है और वह है गायिका का। उमादेवी के नाम से टुनटुन ने फिल्मों में गीत भी गाए हैं। उनका गाया गीत **अफसाना लिख रही हूँ, दिले बेकरार का** तो अक्सर विविध भारती पर बजता रहता है। टुनटुन की काया भी किसी जमाने में छरहरी थी। पहले बच्चे के जन्म के बाद वे यकायक मोटी बन गई। और यह मोटापा उनके लिए अभिशाप नहीं, वरदान हो गया। टुनटुन के चार बच्चे हैं-दो लड़कियाँ और दो लड़के। चारों दुबले-पतले हैं। परदे पर जिस तरह से टुनटुन को खाते-पीते दिखाया जाता है, वास्तविक जीवन में ठीक इसके विपरीत स्थिति है। कम खाने के बाद भी अगर चर्बी चढ़ती जाए तो कोई क्या करे। टुनटुन की इच्छा गायिका बनने की थी, लेकिन नियति ने उन्हें कॉमेडियन बना दिया।

टुनटुन के फिल्मों में प्रवेश की भी लंबी कहानी

छपते ही दादी ने भूचाल ला दिया। उन्होंने मुझसे अँगूठी छीन कर सामने समुद्र में उछाल दी। मुझ पर सख्त पहरेदारी होने लगी। किसी शरीफ मुसलमान के साथ मेरा रिश्ता करने की कोशिश जोरों से चल पड़ी। कहने की जरूरत नहीं कि मेरी तमाम पेटियों और अलमारियों की तलाशी ली गई, जिनमें देव आनंद के प्रेम पत्र बरामद हुए। दादी ने मेरी आँखों के सामने मुझे जली-कटी सुनाते हुए उनमें आग लगा दी।

तब मैं समझती थी कि देव आनंद का सबसे बड़ा जुर्म उनका हिन्दू होना था। बाद में समझ आने पर मुझे पता चला कि मैं उनके लिए सोने की अंडे देने वाली मुर्गी थी। देव आनंद ने यह ऐलान कर रखा था कि किसी अभिनेता की बीवी को फिल्म में काम नहीं करना चाहिए। हालाँकि तब मैंने अपना कैरियर खत्म करने की बात पर उतना ध्यान नहीं दिया था। इस बीच और भी कई लोग शादी का प्रस्ताव रख चुके थे। रहमान प्यार की जीत और बड़ी बहन में मेरे हीरो रह चुके थे। उन्होंने एक पार्टी में मस्त होकर खासा तमाशा करते हुए सभी को सुना दिया था कि सुरैया पर उनका हक है। चाहे देव आनंद कितनी भी चोंच लड़ाते रहें। घर वाले एम. सादिक के साथ शादी के चक्कर में थे। उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता था कि अव्वल तो मैं उन्हें नापसंद करती थी और इसके अलावा वे शादीशुदा थे। आखिर मुसलमान तो चार बीवियाँ रख सकता था।

जैसा मैंने बताया, मुझे शोरगुल और धूम-धड़ाके के साथ नाटक करने वाले पसंद न थे। शमा परवाना में शम्मी कपूर का साथ रहा, पर उन पर यही बात लागू होती थी। के. आसिफ ने जानवर में दिलीपकुमार के साथ मुझे लिया। भले ही बाकी दुनिया दिलीपकुमार के साथ काम करने के लिए कुछ भी करने को तैयार रही हो, मेरा अनुभव ठीक उल्टा रहा। मैंने उन्हें सरासर बनावटी किस्म का आदमी पाया। उनकी हर बात में, उनकी लच्छेदार उर्दू के बावजूद, मिलावट की बू आती थी। डायरेक्टर के कट कह देने के बाद भी वे अपनी एक्टिंग जारी रखते थे। सादिक साहब के डायरेक्शन की मैं कद्र करती हूँ पर मैंने भी जगबीती, काजल और चार दिन को हिट बनाया था। वे बूढ़े और शादीशुदा थे, पर उन्होंने मुझ पर जासूसी करना शुरू कर दिया।

एक दिन देव आनंद ने सादिक को मेरे मेकअप रूम में जमे हुए देख लिया। बाद में उन्होंने इस बारे में पूछताछ की। मैं यूँ ही जली-भुनी बैठी थी। गर्मा-गर्मी में उन्होंने मुझे कस कर चाँटा जड़ दिया। जिन्दगी में पहली बार किसी ने मुझ पर हाथ उठाया था। खैर यह तो आपने ही सोच लिया होगा कि गुस्सा उतरते ही देव आनंद शर्म से पानी-पानी हो गए और मुझसे हजार बार माफी माँगने लगे।

एक लम्बे ऊँचे पूरे कद के खुबसूरत नौजवान मुसलमान ने जरूर मेरी मदद की। श्याम और उनकी बीवी लगातार हम दोनों का हौसला बढ़ाते थे। उन्होंने अपनी पार्टी में मुझे बुलाया। कुछ ऐसी चाल चली कि दादी की बजाए माँ मेरे साथ जाए। माँ मेरे खिलाफ न थी, पर घर में उनकी जरा भी नहीं चलती थी। कुल मिलाकर तमाम अखबार वालों ने देखा कि श्याम की पार्टी में पहली बार हम दोनों हाथ में हाथ डाले एक साथ पहुँचे थे। यह हमारी नादानी थी। पार्टी में



बदकिस्मती से सादिक भी मौजूद थे। दादी को जैसे ही खबर लगी, वे ज्वालामुखी जैसी फूट पड़ीं। उन्होंने एक हिन्दू से संबंध रखने के लिए मुझे सभी परिचित मुसलमानों के बीच बेहद कोसा। महबूब खान जैसे फिल्म इंडस्ट्री के बड़े से बड़े मुस्लिम लोग मुझ पर दबाव डालने लगे। मैं कुछ भी सोचने-समझने की हालत में न रही। बस किसी तरह दादी के जुल्मों से छुटकारा पाना चाहती थी। दादी और उनके सिपहसालारों ने इस नुक्ते का फायदा उठाया कि देव आनंद से शादी का मतलब इतनी मेहनत के साथ बने अपने कैरियर को खत्म करना होगा। शायद मुझ पर इसका कुछ असर पड़ा। शायद मैं उस दम घोंटू दबावों से मुक्ति चाहती थी। एक मोड़ पर आकर मुझे वाकई आशंका हुई कि कहीं ये लोग देव आनंद के साथ कुछ कर न गुजरें। वे लोग कहा करते थे कि अगर सुरैया ने किसी हिन्दू से शादी की तो पूरे हिन्दुस्तान में ही नहीं, पाकिस्तान में भी हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो जाएँगे। दंगे होते या नहीं यह बात अलग है, इतना जरूर हुआ कि मेरी हिम्मत जवाब दे गई। मैंने हथियार डाल दिए। (वीकली से साभार) ■

हँसाती है-टुनटुन

है। उन दिनों वे मुफलिसी में थीं। पैसों की जरूरत के लिए उन्होंने फिल्मों में गाने का काम स्वीकार किया। लेकिन एक शर्त पर कि गाएँगी तो सिर्फ **नौशाद** साहब के लिए। वे नौशाद साहब को अच्छा संगीतकार मानती थीं। तब नौशाद सा. कारदार प्रोडक्शन में थे और बहुधा लखनऊ आते जाते रहते थे। उमादेवी ने एक दिन लखनऊ में उनके समक्ष अपनी व्यथा रखी। नौशाद सा. ने कहा कि कारदार साहब अगर आपका गाना पसंद कर लेंगे, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। कारदार सा. ने उमादेवी को सुना और तीन वर्ष के लिए अनुबंधित कर लिया। पहली बार में ही उन्हें उस समय की मशहूर गायिका सुरैया के साथ एक दो-गाना रिकॉर्ड कराने का अवसर मिला। इसका मुखड़ा है **बेताब है दिल**। रिकॉर्डिंग अच्छा रहा और गीत भी चल पड़ा। इस गीत को सुनकर कोई भी सुरैया और उमादेवी की आवाज में अंतर मुश्किल से कर पाता है। इसके बाद उन्होंने नाटक, दिल्लगी, अनोखी अदा जैसी कई फिल्मों में गीत गाए। बाद में लता, शमशाद और आशा भोसले जैसी गायिकाओं के मैदान में आने से उमादेवी के अवसर कम हो गए।



एक दिन नौशाद सा. ने ही प्रस्ताव किया कि आप फिल्मों में अभिनय क्यों नहीं करतीं? पहली भूमिका ही **बाबुल** में दिलीप कुमार के साथ मिल गई। फिल्म हिट हो गई और टुनटुन भी। उनका 'टुनटुन' नामकरण दिलीप कुमार और नौशाद सा. ने किया था। तीनों एक दिन बैठकर सोचते रहे कि कोई ऐसा नाम रखा जाए जिसे सुनकर ही हँसी आए।

टुनटुन कहती हैं-जीवन कोई हँसी खेल नहीं है। रोतों को हँसाना बहुत मुश्किल काम है। लोग जब मुझे देखकर हँसते हैं तो मुझे बड़े सुख की अनुभूति होती है। मुझे इसका जरा भी मलाल नहीं है कि मैं लोगों की हँसी का पात्र हूँ। बल्कि मुझे गर्व होता है कि मैं लोगों को हँसा सकती हूँ। जिस दिन लोग मुझे देखकर हँसना छोड़ देंगे, मैं समझूँगी मेरी लोकप्रियता खत्म हो गई।

टुनटुन को याद नहीं है कि उन्होंने कितनी फिल्मों में काम किया। वे कहती हैं कि सही-सही आँकड़ा तो आय कर वाले ही बता सकते हैं। मेरे पास कोई रिकॉर्ड नहीं है। हाँ आजकल टीवी पर जितनी भी फिल्में आ रही हैं, लगभग हर दूसरी फिल्म में आप मुझे देख सकते हैं। टुनटुन को किसी भी कलाकार के साथ काम करने में एतराज नहीं होता। वे कहती हैं लगभग सभी हीरो मेरे दोस्त हैं। लेकिन, फिर मजाक करते हुए कहती हैं, 'मेरी दोस्ती बड़ी भारी होती है।'

गायन से आज भी टुनटुन को प्यार है। परदे पर न सही वे स्टेज पर गाती हैं। गायन से जो पैसा मिलता है, उसे किसी धर्मार्थ काम में लगा देती हैं। दरअसल गाने से उन्हें एक प्रकार की खुशी मिलती है।

टुनटुन चाहती हैं कि लोग इसी तरह, उन पर हँसते रहें, उनकी हँसी में ही मेरी खुशी है।



राह देखा करेंगे लोग सदियों तक, छोड़ गई मीना यह जहाँ तनहा

विनोद मेहता

'मीना कुमारी एक महान अभिनेत्री और नारी की त्रासदी का प्रतीक थीं।' ये शब्द किसी बंबईया फिल्म की प्रचार सामग्री से उद्धृत पंक्तियाँ लगती हैं। लेकिन कई बार ऐसा भी होता है कि हम निहायत ही सादा शब्दों में किसी अजीम शख्सियत को अभिव्यक्त कर देते हैं। लगभग दो दशकों तक हिन्दी सिनेमा की चोटी की अभिनेत्री रही मीना कुमारी की निजी जिंदगी, उनकी वैवाहिक त्रासदी, रिश्तेदारों द्वारा किया गया शोषण, प्यार की अबुझ प्यास, आत्मघाती मदिरापान तथा एक शायरा के रूप में उनके मूल्यांकन आदि के बारे में विवादों की कमी नहीं रही। लेकिन इस बारे में कोई दो राय नहीं है कि "मीना कुमारी जैसी बेमिसाल और बेहतरीन फनकार आनेवाले कई दशकों में देखने में नहीं आएगी।"

मीना कुमारी जैसी प्राए की अभिनेत्री की कला का आकलन करने के पूर्व 'महान अभिनय' को थोड़ा परिभाषित करना जरूरी है। यों तो परिभाषाएँ बनाना भी सरल नहीं है लेकिन ख्वाजा अहमद अब्बास के इस कथन में काफी दम है कि 'सच्चा अभिनय वह है जब आपको लगे कि व्यक्ति अभिनय कर ही नहीं रहा है।' प्रसिद्ध अँगरेजी समीक्षक सी.ई. मांटेग्यू ने महान अभिनय के तीन तत्व बतलाए हैं; सुनम्य (प्लास्टिक) भौतिक माध्यम, परिष्कृत तकनीकी चालाकी और जिस पात्र का अभिनय किया जा रहा है उसके भीतर उतरने का आनंद। पहले के अंतर्गत हम शरीर को या किन्हीं विशिष्ट अंगों के उपयोग को लेते हैं।

चार्ली चैप्लिन की तरह अपने समस्त शरीर का उपयोग करने वाले अभिनेता तो कम ही होते लेकिन मीना कुमारी ने अपने अभिनय के दौरान अपनी आँखों और आवाज का भरपूर फायदा उठाया। अपनी आँखों से ही वे करुणा, दर्द, पाकीजगी, प्यार, नाराजगी तथा मदहोशी भी इतनी सहजता से व्यक्त कर जाती थीं कि उनके साथ अभिनय करते हुए कई तपे हुए कलाकार तक डगमगा जाते थे। एक निर्देशक के अनुसार तो 'उनकी आँखों की ताकत के सामने दिलीप कुमार तक विचलित हो जाते थे।'

'फूल और पत्थर' के अंतिम 'कोर्ट-सीन' में जो आँखें कुछ ही फ्रेमों पहले अपने प्रेमी को किए गए प्यार तथा उसके बदले में मिले प्यार के अहसास से विचलित नजर आ रही थीं, वे अचानक अपने उद्धत और दुष्ट रिश्तेदारों के प्रति व्यंग्य और तिरस्कार उगलने लगती हैं। **'दुश्मन'** में सारा गाँव अपराधी राजेश खन्ना को माफ कर चुका है, लेकिन मीना अपने पति के हत्यारे को माफ नहीं कर सकी है। अपने झोपड़े में बैठे-बैठे ही वह गाँववालों को अपनी भीतर तक चुभ जाने वाली एक निगाह से, बिना एक शब्द बोले भी, बतला देती है कि उसके पति के हत्यारे को क्षमा करके वे कितना बड़ा अन्याय कर रहे हैं। **'साहब बीबी गुलाम'** में 'न जाओ सैंया' गाते हुए जिस संयम के साथ उन्होंने अपने जाते हुए पति को रोकने की कोशिश बगैर जरा-से भी अंग प्रदर्शन का फूहड़ हाव-भाव दिखलाए की है, वह गरिमापूर्ण अभिनय की मिसाल बन चुका है और फिर एक बारगी आँखों के जरिए ही वे इस दृश्य में मदहोशी और कामुकता जैसी जटिल भावनाओं को भी व्यक्त कर जाती है।

मीना कुमारी की आवाज उनके लिए तुरुप का पत्ता थी। मुस्लिम परिवेश में परवरिश होने के



साहब, बीबी और गुलाम (१९६२) फिल्म की छोटी बहू—मीना कुमारी

कारण उनका हिन्दुस्तानी उच्चारण साफ-सुथरा, लहजा परिष्कृत और विराम तथा आघात सही बैठते थे। 'साहब, बीबी गुलाम' में भूतनाथ (गुरुदत्त) पहली बार छोटी बहू से मिलने आया है। मीना सिर्फ तीन शब्द बोलती हैं, 'आओ,' 'इधर आओ' यह उनकी गहरी, मखमली तथा पुरदर्द आवाज का ही असर था कि उन्हें सुनते ही भूतनाथ की जिंदगी ही बदल गई। जहाँ तक तकनीकी चालाकी के दूसरे तत्व का सवाल है, मीना कुमारी चार वर्ष की उम्र से अभिनय करने लगी थीं और वयस्क भूमिकाएँ भी उन्होंने बीस वर्ष तक कीं। इस दौरान उन्होंने अभिनय के सारे तकनीकी पहलुओं को आत्मसात कर लिया था। कैमरे का किस कोण से सामना करना, किसी सीन में 'एन्ट्री' कैसे लेना, कोई खास अदा या आदत अपनाना, तथा सबसे ऊपर चाहे जब इच्छानुसार आँखों से आँसू बहाने लगना उनके लिए बाएँ हाथ का खेल हो गया था। आँसुओं के लिए उन्हें ग्लीसरीन की जरूरत कभी नहीं पड़ी। उनका पहला 'टेक' ही सबसे अच्छा 'टेक' होता था। ख्वाजा अहमद अब्बास के अनुसार 'जिस दृश्य को अन्य हीरोइनें चार घंटे में करती थीं, उसे मीना दस मिनट में निपटा देती थीं।' अब्बास की **'चार दिल चार राहें'** में उन्होंने अपना सारा काम पन्द्रह दिन में पूरा कर दिया था।

तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण चीज थी पात्र को पूरी तरह से जीने का आनंद। यह चीज सच्चे कलाकार में जन्मजात होती है। वह न तो कहीं से उधार ली जा सकती और न उसे बनावटी तौर पर पैदा किया जा सकता है। मीना कुमारी शायद अपने आपको एक दुःखी, सताई हुए नारी ही मानती थीं और इसलिए वे ऐसी ही भूमिकाओं की तरफ स्वाभाविक ही खिंचती रहीं। वैसे भी भारतीय सिनेमा में कलाकार एक साँचे में ढाल दिए जाते हैं। मगर खुद मीना कुमारी मानती थीं कि "जब तक कोई कलाकार किसी पात्र या भूमिका को पूरी तरह महसूस नहीं करता तथा अपनी जगह उस पात्र को नहीं रख देता वह उसे प्रभावी ढंग से आकार नहीं दे सकता। अपने आप विकसित की गई कोई और होने की चेतना ही महान अभिनय की बुनियाद है।" एक अभिनेत्री के रूप में मीना कुमारी का क्षेत्र सीमित ही था। कॉमेडी- भूमिकाएँ उन्होंने **'कोहिनूर'** और **'इल्जाम'** में ही कीं लेकिन ट्रेजेडी के विभिन्न रंगो को उन्होंने अपने विभिन्न पात्रों द्वारा खूब उभारा। दरअसल एक महान अभिनेता (या अभिनेत्री) में एक साथ कई व्यक्ति छुपे होते हैं। मीना कुमारी में भी एक हिन्दू पत्नी, माँ, नर्स, नर्तकी, वेश्या, बड़ी बहन, वारांगना, (चित्रलेखा) छुपी हुई थीं और वे उन्हें बगैर मेकअप के साकार कर देती थीं। **'मेरे अपने'** की शहर में चमत्कृत बुढ़िया की भूमिका करते हुए मीना कुमारी को सौ से अधिक डिग्री बुखार रहा करता था। उन्हें दो आदमी पकड़कर सेट पर लाते थे। वे शॉट तैयार होने तक उनकी निर्धारित कुर्सी पर निढाल बैठी रहती थीं। लेकिन 'शॉट' रेडी होते ही, उनमें एकदम परिवर्तन आता था। निर्देशक गुलजार कहते हैं: 'जो औरत कैमरे के सामने जाती थी वह एक अलग ही औरत होती थी। उसमें बीमारी का कहीं नामो-निशान नहीं होता था।" तो इस पात्र को जीने, अपने आपको उसमें डुबो देने की कला ने ही मीना कुमारी को मीना कुमारी बनाया।

मीना कुमारी मास्टर अलीबख्श तथा इकबाल बेगम की बेटी थीं। अलीबख्श थोड़ी सी शायरी करते थे और हारमोनियम बजाते थे। तत्कालीन सिंध-पंजाब में अपनी पहली बीवी और तीन बेटियों को छोड़ वे १९२४ में अपनी तकदीर आजमाने बंबई आ गए। यहाँ उन्होंने एक बंगाली-ईसाई नर्तकी प्रभावती के साथ हारमोनियम बजाना शुरू किया। प्रभावती की माता टैगोर परिवार से संबंधित थीं। महाकवि के एक छोटे भाई की पुत्री ही प्रभावती की माता थीं। अलीबख्श ने प्रभावती से शादी की। उसे इकबाल नाम दिया और उससे भी उन्हें तीन बेटियाँ प्राप्त हुईं। मंझली बेटी महाज़बीन (घर का नाम मुन्ना) को अलीबख्श ने चार वर्ष की उम्र में ही विजय भट्ट के सामने खड़ा कर दिया। विजय भट्ट ने इस बाल कलाकार को बेबी मीना नाम देकर **'लॅदर फेस'** फिल्म में काम दे दिया। यह सन् १९३५ का वाकया था। इसके बाद बेबी मीना ने बाल कलाकार के रूप में विजय भट्ट की कई फिल्मों में काम किया। सन् १९३८ में सोहराब मोदी को अपनी 'जेलर' फिल्म के लिए एक बाल कलाकार की जरूरत हुई। उन्होंने अलीबख्श की तीन बेटियों को देखकर उनमें से एक को पसंद करने के लिए जिसे भेजा वह उनका लेखक कमाल अमरोही था। बेबी मीना को पसंद नहीं किया गया। लेकिन उन्होंने विजय भट्ट की फिल्मों में काम करना जारी रखा।

अक्सर देखा गया है कि बाल-कलाकार वयस्क

कहाँ शुरू हुए कहाँ टूटे...

थका-थका सा बदन
आह! रूह बोझिल बोझिल
कहाँ पे हाथ से
कुछ छूट गया याद नहीं
न जाने किसके चटखने की
ये आवाज आई
और अहसास दरारों में
कैसे जा पहुँचा
नगर वीरान,
झरोखे खामोश,
मुँडेरें चुप
खामोशी, उफ्फ!
कि खलाओं का दम भी घुटने लगा
अचानक आ गई हो मौत
वक्त को जैसे
हाय! रफ्तार की नब्जें रुकी,
दिल बैठ गया
कहाँ शुरू हुए
ये सिलसिले कहाँ टूटे
न इस सिरे का पता है
न उस सिरे का पता।

□ **मीना कुमारी**



भूमिकाओं में ज्यादा सफल नहीं हो पाते। बेबी मीना भी सन् १९४६ में चौदह वर्ष की उम्र में रमणीक फिल्म्स की **'बच्चों के खेल'** में नायिका के रूप में कैमरे के सामने खड़ी हुई। उनका अभिनय इन फिल्म में ठीक-ठाक रहा और दो निर्देशकों किदार शर्मा और होमी वाडिया का ध्यान उनकी तरफ गया। मीना की माँ इकबाल ने किदार शर्मा से बेटी को परिपूर्ण अभिनेत्री बनाने की गुजारिश की। 'दादाजी' नामक एक फिल्म बनी भी मगर उसका प्रिंट जल गया। होमी वाडिया मीना कुमारी से एक अदाकारा के रूप में ज्यादा प्रभावित थे। उन्होंने मीना के साथ पहली फिल्म **'लक्ष्मी नारायण'** बनाई जिसमें वे देवी लक्ष्मी बनीं। **'हनुमान पाताल विजय', श्री गणेश महिमा'** जैसी धार्मिक फिल्मों में वे इतनी सफल हुई कि लोग यह मानते ही नहीं थे कि वे हिन्दू न होकर सुन्नी मुसलमान थीं। अलीबख्श परिवार के दिन भी फिरे। १९४८ में इकबाल की मौत तो फेंफड़े के कैंसर से हो गई मगर जहाँ वाडिया की पहली फिल्म के लिए मीना को चार हजार रुपए मिले थे, वहीं 'अल्लादीन' और जादुई चिराग' के उन्हें दस हजार रुपए मिले और वे लोग दादर की चाल से निकल कर बांद्रा के एक बंगले में आ गए।

इस बीच मीना ने एक पत्रिका में कमाल अमरोही की तस्वीर देखी और वे इस 'शायर' तथा 'महल' नामक सफल फिल्म के निर्देशक को अपना दिल दे बैठीं। बहरहाल, जल्दी ही कमाल से मिलने का मौका भी उन्हें मिल गया। उन दिनों कमाल अपनी 'अनारकली' शुरू कर रहे थे। किसी कारणवश मधुबाला ने वह भूमिका स्वीकार करने से इंकार कर दिया इस पर मीना कुमारी को इस भूमिका के लिए चुना गया। लेकिन मजे की बात यह थी कि इसके पूर्व 'तमाशा' (अशोक कुमार-देव आनंद) के सेट पर कमाल, मीना के साथ एक बार फिर ठंडा बर्ताव कर चुके थे। लेकिन 'अनारकली' के प्रारंभ होने के पूर्व ही महाबलेश्वर से बंबई आते हुए एक मोटर दुर्घटना में मीना घायल हो गई। पूना के ससून अस्पताल में कमाल ने उनकी जो सेवा की वहीं से दोनों की मोहब्बत परवान चढ़ी और दोनों ने गुप्त रूप से शादी भी कर ली। कमाल साहब ने महसूस किया कि उनकी बीबी न केवल एक बेहतरीन अदाकारा है बल्कि संवेदनशील, समझदार, परिष्कृत रुचि संपन्न एक परिपूर्ण नारी भी है। लगभग एक वर्ष तक पिता से अपनी शादी की बात छुपाए रखने के बाद आखिरकार मीना को कमाल साहब के फ्लैट रेंनब्रों में रहने आना पड़ा। यहाँ इस 'एक दूजे के लिए बने' दंपति ने अपने विवाहित जीवन के बारह वर्ष गुजारे। पहले दो वर्ष जहाँ जन्नत जैसे थे वहीं अंतिम दो वर्ष मीना के शब्दों में ही 'दोजख' जैसे थे। मगर इसकी चर्चा बाद में।

कमाल साहब के उनकी जिंदगी में आने के साथ ही अभिनेत्री मीना कुमारी की सफलता के शिखर की तरफ यात्रा की शुरूआत हो गई। 'तमाशा' रिलीज हुई मगर चली नहीं। 'अनारकली' की दो रीलें बनीं और वह निर्माता का दिवाला पिट जाने से रुक गई। मगर इन फिल्मों ने उनकी अभिनय प्रतिभा का संकेत दे दिया था। विजय भट्ट ने **'बैजू बावरा'** में उन्हें गौरी की भूमिका प्रदान की तथा जिया सरहदी ने **'फुटपाथ'** बनाना शुरू की। तीसरी फिल्म 'दायरा' खुद अमरोही ने अपनी बेगम के लिए बनानी शुरू की। 'बैजू बावरा' ने अपने संगीत के बल पर सफलता के सारे रिकॉर्ड तोड़े। मीना कुमारी को १९५३ की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का फिल्म फेयर पुरस्कार मिला। 'फुटपाथ' और 'दायरा' बॉक्स ऑफिस पर तो पिट गई लेकिन मीना ने अपनी प्रतिभा के झंडे उनमें भी गाड़ दिए। वैसे 'बैजू बावरा' में उनका अभिनय कुछ खास नहीं था।



फिल्म चित्रलेखा (१९६४) में मीना कुमारी

इस बीच जहाँ 'देवदास' और 'उड़न खटोला' की भूमिकाएँ उनके हाथ से निकल गई वहीं बिमल रॉय की 'परिणीता' उनकी झोली में आ गई। 'परिणिता' के लिए फिर उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिला। इसके बाद मीना को फिर मुड़कर पीछे देखने की जरूरत नहीं पड़ी। कमाल अमरोही के साथ ज्यों-ज्यों उनके संबंध बिगड़ते गए, त्यों-त्यों वे अपने कैरियर पर ऊँचा उठती गई । अशोक कुमार के साथ उन्होंने 'शतरंज', 'बंदिश', 'एक ही रास्ता' जैसी फिल्में कीं। सन् पचपन में ही दिलीप के साथ 'आजाद' बनी। राजकपूर की प्रेमिका और माँ की भूमिका उन्होंने १९५६ में **'शारदा** में की और फिर अभिनय का पुरस्कार जीता। सफल नायिका प्रधान फिल्मों का यह सिलसिला जारी रहा। 'दिल अपना प्रीत पराई', 'कोहिनूर', 'चिराग कहाँ रोशनी कहाँ', से होते हुए मीना सन् १९६२ में अपने कैरियर के चरम बिंदु पर पहुँची। उस वर्ष सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के फिल्म फेयर पुरस्कार के लिए जो तीन नामजदगियाँ हुईं उन तीनों में एक ही नाम था– मीना कुमारी और वे फिल्में थीं– 'साहब,बीबी और गुलाम', 'मैं चुप रहूँगी' तथा 'आरती'। जीत विमल मित्र और गुरुदत्त की 'छोटी बहू' की हुई।

'छोटी बहू' का पात्र मीना कुमारी के निजी जीवन पर भी जैसे असर कर गया। पति से मनमुटाव होने के बाद उन्होंने अपने आपको पूरी तरह काम में झोंक दिया था। स्वास्थ्य पर उसका बुरा असर हुआ। और उन्हें नींद आनी तक बंद हो गई। डॉक्टर की सलाह पर उन्होंने रात को थोड़ी सी ब्रांडी पीना शुरू की। सन् चौंसठ में कमाल अमरोही का घर छोड़ने के बाद जब वे 'जानकी कुटीर' में अपनी बहन के साथ रहने लगीं तो यह चीज जानलेवा आदत में बदल गई। विवेकहीन स्वार्थी रिश्तेदारों ने उन्हें ब्रांडी के नाम पर 'ठर्रा' तक पिलाना शुरू कर दिया। फिल्मवालों में आम 'सिरोसिस ऑव द लीवर' बीमारी ने उन्हें भी जकड़ लिया। लंदन में इलाज हुआ मगर धीरे-धीरे मीना का शरीर जवाब देने लगा। कैरियर के ढलान पर भी उन्होंने 'चित्रलेखा', 'पिंजरे के पंछी', 'मेरे अपने' 'नूरजहाँ' तथा 'चंदन का पलना जैसी फिल्में दीं। मीना और कमाल का सपना 'पाकीजा' दोनों के संबंध विच्छेद के बाद से बंद पड़ा था, हालाँकि उस पर अमरोही चालीस लाख रुपए खर्च कर चुके थे। दरअसल **'पाकीजा'** को पूर्ण होते कमाल और मीना दोनों देखना चाहते थे। मीना काम शुरू करने के लिए इस शर्त पर राजी हुई कि कमाल उन्हें तलाक दे देंगे। किस्मत की विडंबना देखिए कि १९६८ में 'पाकीजा' की शूटिंग फिर से शुरू हुई और फरवरी १९७२ में वह पूर्ण हुई। जिन दो लोगों की यह शाहकार फिल्म थी, यानी संगीतकार गुलाम मोहम्मद तथा मीना कुमारी, वे

दोनों उसकी सफलता को देखने के लिए जीवित नहीं रहे। इकत्तीस मार्च १९७२ को मंजू ने पाली हिल के सेंट एलिजाबेथ नर्सिंग होम में अपने चंदन (कमाल को वे इसी नाम से बुलाती थीं, बदले में वे उसे मंजू कहते थे) की गोद में अंतिम साँस ली और इसी के साथ सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्रियों के सन् ५० से ७० तक के युग का भी अंत हो गया। जिन दिनों मीना कुमारी अभिनय के क्षेत्र में उभरीं उस समय मैदान में नर्गिस, मधुबाला तथा नलिनी जयवंत थीं। बाद में वहीदा रहमान तथा नूतन जैसी अभिनेत्रियाँ भी आईं मगर उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यही रही कि जमाने की अव्वल नंबर अभिनेत्री का खिताब लगातार बीस साल तक उन्हीं के पास रहा और भारतीय परदे की सबसे बड़ी ट्रेजेडी क्वीन तो शायद वे हमेशा-हमेशा के लिए बन गईं।

मीना कुमारी की निजी त्रासदी उनके लाखों प्रशंसकों के लिए मीना की अभिनय क्षेत्र की उनकी उपलब्धियों से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण थी। मगर उनकी त्रासदी के लिए कौन जिम्मेदार था? उनके प्रशंसक मानते हैं कि कमाल अमरोही एक खराब शौहर थे। अमरोही मानते हैं कि मीना एक खराब बीवी थीं, पुरुषों से उनकी उम्मीदें कभी खत्म नहीं होती थीं इसीलिए उनकी जिंदगी में कमाल के बाद, धर्मेन्द्र, गुलजार, राहुल, किशोर शर्मा और अंत में सावन कुमार जैसे इंसान भी आते और चले जाते रहे।

वैसे परदे पर और प्रशंसकों के बीच भी उनकी यह छवि उनको रास आती रही। लेकिन मीना कुमारी को नजदीक से जानने वाले ऐसे सैकड़ों लोग हैं जो उनकी मिलनसारिता, दरियादिली, करुणा तथा जहनीयत के कायल थे।



दर्द की देवी : मीना कुमारी

जयप्रकाश चौकसे

हारमोनियम वादक मास्टर अलीबक्श अपनी पत्नी और तीन लड़कियों को ग्राम भेरा (अब पाकिस्तान) में छोड़कर सन् १९२४ में संगीतकार बनने के लिए बंबई पहुँचे थे।

रवींद्रनाथ टैगोर के छोटे भाई की बाल विधवा पुत्री ने ईसाई धर्म अपनाकर मेरठ के प्यारेलाल से शादी की थी और इनकी पहली संतान प्रभावती ने फिल्मों में काम करने के लिए १९२५ में बंबई प्रवेश किया था। उसे कई मूक फिल्मों में काम मिला और इसी दौर में वह अलीबक्श से मिलीं और शीघ्र ही दोनों ने शादी कर ली। अलीबक्श और प्रभावती की दूसरी संतान महजबीं १ अगस्त १९३२ को जन्मी। महजबीं का जन्म जिस जगह हुआ, उसे आजकल दादा फालके रोड कहते हैं। यह जगह उस जमाने के रूपतारा स्टूडियो के ठीक सामने है। महजबीं का बचपन रूपतारा स्टूडियो के आँगन में खेलते हुए और बाल कलाकार के रूप में काम करते हुए गुजरा। दिग्दर्शक विजय भट्ट ने महजबीं को मीनाकुमारी का नाम दिया और बैजू बावरा में बतौर नायिका के पेश किया।

◆◆◆

मीनाकुमारी की त्रासदी यह थी कि उसके लिए हकीकत और फसाने में अंतर कर पाना मुश्किल था। फिल्म साहिब, बीवी और गुलाम की छोटी बहू के चरित्र को उसने निजी जिंदगी में इतना अपना लिया कि छोटी बहू अगर शराब थी, तो मीना नशा बन गई। ऐसा परकीया-प्रवेश भारतीय सिनेमा में पहली बार हुआ, शायद आखरी बार भी!

मीना कुमारी जब बेबी मुमताज थी

खेलने की उम्र में महजबीं को बाल कलाकार के रूप में काम करना पड़ा, क्योंकि अलीबक्श और प्रभावती के पास काम नहीं था। इन बातों का अमिट प्रभाव महजबीं के बाल मन पर पड़ा।

सफल फिल्म 'महल' के प्रदर्शन के बाद कमाल अमरोही "अनारकली" बनाने के लिए मीनाकुमारी से मिले। फिल्म तो बनी नहीं, परंतु दोनों ने १९५३ में शादी कर ली। अलीबक्श के हाथ से कमाऊ पुत्री निकल गई और मीना एक पिंजरे से दूसरे पिंजरे में चली गई, जहाँ से १९६४ को आजाद हुई और देह के अंतिम पिंजरे से आजाद हुई ३१ मार्च १९७२ को, जब बकौल गुलजार के **"४० साल लंबी दर्द की कविता खत्म हुई।"**

मीनाकुमारी उर्फ महजबीं के रहस्यमय व्यक्तित्व को समझना बहुत कठिन है, क्योंकि उसके बारे में अनेक बातें प्रचारित हैं और सभी बातों के सच होने के दावे भी ठोस प्रमाणों के साथ लोगों ने प्रस्तुत किए हैं। उसकी शराबखोरी और दानशीलता के अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं। अशोक कुमार जैसे नजदीकी दोस्त और जिम्मेदार आदमी ने मीनाकुमारी को 'निम्फोमेनियक' कहा है। अपने जीवनकाल में ही किंवदंती बन चुकी मीना का सच कथाओं, उपकथाओं और अफवाहों के कुहरे में छुपा है। मीना के सच तक पहुँचने के लिए बहुत से परदों को हटाना होगा।

मीना नामक तिलस्म को तोड़ने की चाबी उसके अधूरे बचपन में छुपी है और बचपन की पटकथा पर ही सभी की जीवन-फिल्म आधारित होती है। पाँच साल की उम्र में हाथ से खिलौना छीनकर उस नन्हीं-मुन्नी लड़की के हाथ में नकली आँसुओं को बहाने के लिए ग्लीसरीन की शीशी थमा दी गई और रोने-धोने के दृश्यों को उसने सारी जिंदगी अत्यंत आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किया, जिसके कारण उसे पर्दे पर दर्द की देवी कहा जाने लगा। पाँच वर्ष की उम्र में पहले अच्छे दृश्य के लिए उसे २५ रुपए दिए गए थे, जिससे घर का चूल्हा जला था, क्योंकि बीमारी के कारण

राष्ट्रपति ने मीना कुमारी से बॉय-फ्रेंड के बारे में पूछा

फिल्मी सितारों के छायाकार राम औरंगाबादकर मीना कुमारी के बहुत नजदीक रहे हैं। उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है कि-"उसके चेहरे पे एक ऐसी मासूमियत थी कि दिल करता था इसे प्यार करो।" पंडित जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के बाद औरंगाबाद में राम, पंडितजी की मूर्ति लगाना चाहते थे। पैसे उनके पास थे नहीं। एक दिन दिल की बात मीना कुमारी को बताई। मीना ने छूटते ही पूछा-"उसके लिए कितने पैसे चाहिए?" उसे बताया गया कि 'बस्ट' बनाने में दस से पंद्रह हजार रुपए का खर्च आएगा। मीना को यह बात रास नहीं आई कि इतने महान व्यक्ति का 'बस्ट' लगाया जाए, पूरी आदमकद मूर्ति नहीं। वह राम के साथ पूरे बंबई में घूमीं। अंत में चौपाटी पर लगी एक मूर्ति पसंद आई। मूर्तिकार वाघ ने आदमकद पंडितजी, जो शांतिदूत कपोत उड़ा रहे हैं, की मूर्ति के लिए ७५ हजार रुपए माँगे। दूसरे ही दिन मीनाकुमारी ने ७५ हजार रुपए नकद ले जाकर मूर्तिकार को एडवांस में दे दिए। मूर्ति का आधा निर्माण हो गया, तो पता चला कि पंडितजी की अंतिम इच्छा अनुसार उनकी मूर्ति लगाने की अनुमति नहीं मिलेगी। श्रीमती इंदिरा गाँधी से मुलाकात की गई। उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् से संपर्क के लिए कहा। राम औरंगाबादकर और मीना कुमारी डॉ. राधाकृष्णन् के सम्मुख गए। राष्ट्रपति ने पहला सवाल यह किया कि-'तुम्हारा बॉय-फ्रेंड धर्मेंद्र कैसा है?' यह सुनकर राम और मीना को विस्मय हुआ कि अफवाहें उड़कर राष्ट्रपति भवन में भी प्रवेश कर गई हैं। राष्ट्रपति बाद में मीना कुमारी की माँ के जन्म दिन पर उसके घर गए थे। लेकिन, अपनी उदारता की कीमत मीना कुमारी को एक लाख रुपए चुकाना पड़ी।

माता प्रभावती ने काम बंद कर दिया था। उस दिन से लेकर ३१ मार्च १९७२ तक मीनाकुमारी दूसरों के लिए धनोपार्जन करती रहीं और त्रासदी यह है कि उसी मीना की अंतिम बीमारी का बिल न अदा होने के कारण उसके शव को दो घंटे तक अस्पताल में बतौर बंधक रखा गया। मीना अपने रिश्तेदारों और तथाकथित चाहने वालों की ताउम्र बँधुआ मजदूर रही। मीना की जिंदगी शोषण की जिंदगी थी और मीना ने इसकी कभी शिकायत नहीं की, क्योंकि "दर्द की देवी" को शोषित होने में भी आनंद आता था। मीना के जीवन से कई लोगों को लाभ हुआ। उसकी मृत्यु ने भी कुछ लोगों को लाभ पहुँचाया। उसकी मृत्यु के पूर्व उसकी अंतिम फिल्म **पाकीजा** टिकट खिड़की पर अंतिम साँसें ले रही थी, पर मीना के मरते ही इस असफल फिल्म ने उस वर्ष की सफलतम फिल्म होने का गौरव अर्जित किया। बचपन से मृत्यु के बाद तक मीना दूसरों का भला करती रहीं। विजय भट्ट की **बैजू-बावरा** ने मीना को स्टार बना दिया। १९५४ में "दाना-पानी", "परिणीता", "दायरा" और "फुटपाथ" से पर्दे पर "दर्द की देवी" की छवि जम गई। मीना की यह छवि उसके जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि "दर्द की देवी" की इस छवि ने ही उसके बाकी जीवन को नियंत्रित किया। परदे के लिए गढ़ी गई इस नकली छवि को ही मीना ने सत्य समझ लिया। एक फिल्म में इस छवि को तोड़ने के लिए मीना को स्वीमिंग सूट पहनाया गया और कुछ फूहड़ हास्य दृश्य भी दिए गए। फिल्म असफल हो गई और मीना को हजारों पत्र आए, जिसमें इस तरह की भूमिका करने के लिए उसे बहुत कोसा गया। कुछ दर्शकों ने तो घर पर पत्थर भी फेंके। सिने-उद्योग में कलाकार की छवि कितनी सशक्त होती, मीना इसका प्रमाण है। मीना कभी मदरसे नहीं गई थी। उसका बचपन तो फिल्म स्टूडियो के अहाते में ही बीता था। अतः उसने अपने दर्द की देवी की छवि को एक अटल सत्य के रूप में ग्रहण किया और कालांतर में रोने-धोने के दृश्यों के लिए उसे ग्लीसरीन की आवश्यकता भी नहीं पड़ती थी। यही था उसके जीवन का निर्णायक मोड़। जीवन में आनंद को नकारकर झूठे दर्द को सच समझने की गंभीर भूल हो चुकी थी।

मीना की दूसरी समस्या यह थी कि उसने अपने चारों ओर लोभी लोगों को देखा था, इसलिए पैसा फूँकने में उसे आनंद आने लगा और सच्चे प्यार की मृगतृष्णा ने उसे बहुत कष्ट दिया। पैसे को फूँकना और प्यार की तलाश में निकलना यह मानकर कि प्यार मिल ही नहीं सकता, मीना की आदत बन गई। उम्र के एक दौर में उसने आध्यात्मिक प्यास को भौतिक स्तर पर संतुष्ट करना चाहा। इस माने में वह भगवतीचरण की रेखा की तरह हो गई। सच तो यह है कि यथार्थ जीवन में मीना 'चित्रलेखा' के दो पात्रों का अभिनय कर रही थी। मीना चित्रलेखा भी थी, जो शरीर के स्थूल स्तर से उठकर आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहती है और मीना वह संत भी थी, जो चित्रलेखा को उचित मार्ग दिखाने के प्रयास में स्वयं उसके मोहपाश में फँस जाता है। मीना माया भी थी, मीना विद्या भी थी। जार्ज सी. स्कॉट ने सच ही कहा है कि एक महान अभिनेता एक साथ तीन भूमिकाएँ निभाता है-मनुष्य, चरित्र और दर्शक। मीना शायरा नाज भी थी, बिमल मित्र की छोटी बहू (फिल्म साहब, बीवी और गुलाम) भी थी और मीना दर्शक भी थी। दर्द को अपना दर्शन मानने वाली मीना को कलाकार और पात्र के बीच में आने वाली हर चीज बुरी लगती थी-चाहे वह स्वयं का व्यक्तित्व ही क्यों न हो। इसलिए छोटी बहू ने जब पर्दे पर शराब पी तो असली जीवन में मीना ने भी जमकर पीना शुरू किया। मानो मीना छोटी बहू का चरित्र अभिनीत करने के लिए ही पैदा हुई हो। उसने चरित्र को इस तरह आत्मसात किया कि मीना और छोटी बहू में कोई अंतर नहीं रहा। छोटी बहू अगर शराब थी तो मीना नशा बन गई। मीना की त्रासदी यही थी कि उसके लिए हकीकत और फसाने में अंतर कर पाना मुश्किल था। दर्शक मीना के आँखों के सामने मनुष्य मीना और चरित्र

फिल्म साहब बीवी और गुलाम में मीनाकुमारी के लिए गीतादत्त ने पार्श्वगायन किया और सभी गीत कलात्मक होते हुए भी अत्यंत लोकप्रिय हुए। 'न जाओ सैया, छुड़ाके बैया' सर्वप्रसिद्ध हुआ। यह अजीब इत्तफाक है कि मीना की तरह गीतादत्त की मृत्यु भी 'सिरोसिस ऑफ लीवर' से हुई। मीना और गीता १२ महीने के भीतर ही मरीं और दोनों अपनी शराबखोरी के लिए बदनाम रहीं तथा दोनों की जिंदगी का कुछ साम्य बिमल मित्र की छोटी बहू से था।

'मेरे अपने' में मीना कुमारी



प्रमुख फिल्में : * लक्ष्मीनारायण (१९५१) * बैजू-बावरा (१९५२) * दायरा (१९५३) * परिणीता (१९५३) * चांदनी चौक (१९५४) * बंदिश (१९५५) * एक ही रास्ता (१९५५) * मिस मेरी (१९५७) * शारदा (१९५७) * चार दिल चार राहें (१९५९) * शरारत (१९५९) * दिल अपना और प्रीत पराई (१९६०) * भाभी की चूड़ियां (१९६१) * आरती (१९६१) * मैं चुप रहूंगी (१९६२) * साहिब बीवी और गुलाम (१९६२) * दिल एक मंदिर (१९६३) * चित्रलेखा (१९६४) * काजल (१९६५) * फूल और पत्थर (१९६६) * बहू-बेगम (१९६७) * मंझली दीदी (१९६७) * मेरे अपने (१९७१) * पाकीजा (१९७१)।

मीना एकाकार हो गए, ऐसा परकीया प्रवेश भारतीय सिनेमा में पहली और आखिरी बार हुआ।

मीना के रक्त में बंगाली प्रभाव को लोगों ने मीना के शायरा होने में सार्थक होते देखा, परंतु यह सच नहीं है। मीना तीसरे दर्जे की शायरा थी। उसका बंगालीपन तो उन भूमिकाओं में सार्थक हुआ है, जो उसने 'परिणीता', 'साहब बीवी और गुलाम' और 'मंझली बहू' आदि बंगाली उपन्यासों पर आधारित फिल्मों में की है। मीना का अभिनेत्री स्वरूप ही सबसे सशक्त है। उसने कमाल अमरोही को भी इसीलिए छोड़ा था कि वह अभिनेत्री मीना की राह में रोड़े अटका रहे थे और व्यक्तिगत नाराजगी के बावजूद भी मीना ने "पाकीजा" पूरी की, क्योंकि मीना को उसके मनपसंद चरित्रों से अलग रखना संभव नहीं था। मीना के शराबी होने या अनेक पुरुषों से संबंध रखने की बातें सच होते हुए भी मीना के असली स्वरूप को प्रकट नहीं करतीं। मीना वह अभिनेत्री थी, जिसे उसकी ही छवि ने भ्रमित किया और इसे उसने परम सत्य मान लिया। संवेदना की इतनी तीव्रता से मीना ने इस सच को जिया कि भारतीय दर्शक के मन में वह अनंत काल के लिए छोटी बहू के रूप में स्थापित हो गई। ■



मधुबाला

खट्टे-मीठे अनुभव

बी. के. करंजिया

मधुबाला 'स्टार' शब्द को एक नई और जादुई सार्थकता प्रदान करती थी। फिल्म इतिहासकारों के अनुसार तो अभिनेत्रियों में पहली स्टार सुलोचना (रुबी मेयर्स) थीं लेकिन मधुबाला का केरियर ही उस स्टार सिस्टम का असली पूर्वाभास देता है जो आगे चलकर अपनी ज्यादतियों के कारण इतनी बदनाम हुई। प्रेस पर बंदिश लगाने की अग्रदूत मधुबाला ही थी गो कि बाद में दिलीप, अमिताभ, शबाना तथा धर्मेंद्र जैसे सितारों की भी प्रेस के साथ काफी खींचतान चली और वह आज भी जारी है।

एक दिन चायना ब्रिज पर फिल्म **निराला** की शूटिंग के दौरान निर्देशक संतोषी ने नायिका मधुबाला से पानी में डुबकी लगाने को कहा। मधुबाला ने इंकार कर दिया। जब निर्देशक ने ज्यादा आग्रह किया तो उसने जुकाम होने का बहाना बनाया। स्पष्ट ही संतोषी काफी परेशान हो गए और उन्होंने 'पैक-अप' का आदेश दे दिया। अगले दिन उन्होंने यह बात उस जमाने के प्रसिद्ध फिल्मी अखबार **मूवी टाइम्स** को कही जिसने खबर अपने मुखपृष्ठ पर छाप दी। इससे मधुबाला को काफी नाराजी हुई और **उनसे भी ज्यादा गुस्सा उनके पिता खान साहब अता उल्ला खाँ** को आया। उन्होंने बदले की कार्रवाई करते हुए उन सभी फिल्मों के सेट पर पत्रकारों के आने पर बंदिश लगा दी जिनकी नायिका मधुबाला थीं।



मूवी टाइम्स के नेतृत्व में सारे पत्रकारों ने इस बंदिश का मुकाबला करने का फैसला किया। वातावरण काफी गर्मा गया था और पत्रकारों की प्रतिक्रिया भी कुछ ज्यादा ही तीखी हो गई। "हमें पता नहीं था लेकिन मधुबाला के पहले भी कुछ स्टार प्रेस पर बंदिश लगा चुके थे। हॉलीवुड की ग्रेटा गार्बो सेट पर मौजूद ४०० लोगों की भीड़ में से अवांछित पत्रकार को भाँपकर निकाल बाहर करवा देती थी।" बहरहाल, मधुबाला तो ग्रेटा गार्बो से भी कई कदम आगे निकल गई। उन्होंने फिल्म के निर्माता के सेट पर आने पर भी रोक लगा दी। बाद में यह जानते हुए कि वे चाहे जो कुछ करें कोई निर्माता चूँ भी नहीं करेगा, उन्होंने अपने अनुबंध में एक और भी धारा जुड़वा दी- उनके साथ नायक की भूमिका कौन करेगा, इसका फैसला भी वही करेंगी। नक्शा पूरा जमाने की गरज से **मधुबाला शूटिंग के समय अपने साथ एक अंगरक्षक रखती थीं जो अपना पिस्तौल खुलेआम दिखलाता रहता था।** नाद्धन में उनके सह अभिनेता देव आनंद अक्सर इस अंगरक्षक के बारे में उनसे मजाक करते रहते थे। मधुबाला का कहना था कि वह सिर्फ जानवरों के लिए रखा गया है।

प्रेम की बंदिश के खिलाफ एक एक्शन कमेटी बनी जिसके अध्यक्ष पारस के संपादक लाला करमचंद तथा सचिव फिल्म क्रिटिक के बी. के. नय्यर थे। मूवी टाइम्स के करंजिया तो इस आंदोलन के अगुवाओं में थे ही, आगे चलकर सारे देश के फिल्मी पत्रकार इस जंग में शामिल हो गए। अपवाद सिर्फ फिल्म इंडिया के बाबूराव पटेल थे। उनके मधुबाला के साथ पारिवारिक संबंध थे। वे अपने पत्र में उन्हें **भारतीय परदे की वीनस** (सौंदर्य की देवी) कह चुके थे। उनका बंगला गिरनार भी मधुबाला से खरीदी हुई जमीन पर बना था। बाद में एक ऐसी घटना के बारे में पता चला जिसे सुनकर प्रेस ने मधुबाला के खिलाफ अपना अभियान और भी तेज कर दिया।

● शूटिंग के समय मधुबाला एक अंगरक्षक रखती थी जो अपना पिस्तौल खुलेआम दिखलाता रहता था।
● दिलीप कुमार से शादी की इजाजत मधुबाला के पिता ने इसलिए नहीं दी कि उसे पाँच ननदों के कपड़े धोना पड़ते।
● फ्रेंक काप्रा के न्यौते को मधुबाला ने ठुकरा दिया क्योंकि उसे काँटे-छुरी से खाते नहीं आता था।
● किशोर कुमार को खान साहब अता उल्ला खाँ 'बनिया-दामाद' कहते थे।

मधुबाला के व्यवहार से क्षुब्ध संतोषी चार दिन तक शूटिंग पर ही नहीं गए और उनके सहायकों ने किसी तरह काम चलाया। चौथे दिन जब वे घर जा रहे थे, उनकी कार मधुबाला की कार के पास से गुजरी। उस कार में खान साहब बैठे थे। उन्होंने अपने ड्राइवर से कहा कि वह गाड़ी संतोषी की कार के आगे ले जाए। आगे निकलते ही खान साहब ने सड़क के बीचों-बीच खड़े होकर संतोषी की कार रोकी और निर्देशक महोदय से कहा कि मधुबाला अपने किए पर बहुत पछता रही है और उसने खाना-पीना छोड़ दिया है। वह आपसे माफी माँगना चाहती है और बड़ी मेहरबानी होगी अगर आप इसके लिए घर तक चलें। संतोषी तैयार हो गए। मधुबाला ने क्षमा-याचना की, संतोषी के साथ ही अपना लंघन तोड़ा और अगले दिन से शूटिंग शुरू हो गई।

अधिकांश निर्माता, जिनके पत्रकारों के साथ अच्छे संबंध थे, पत्रकारों के पक्ष को समझ रहे थे लेकिन वे टॉप स्टार के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते थे और मजबूरन बंदिश का पालन कर रहे थे। उनमें से कुछ मधुबाला को इसे हटाने की सलाह भी दे रहे थे। किदार शर्मा ने तो उन्हें स्पष्ट कहा कि यह उनकी पत्रकारों के साथ दादागिरी थी और यह नसीहत दी कि सफलता के जिस मुकाम पर वे पहुँच गई हैं वहाँ उनमें थोड़ी सी विनम्रता उन्हें ज्यादा शोभा देगी। मधुबाला इससे काफी परेशान हुई तथा लगभग रुआँसी हो, वहाँ से हट गई।

एक बार बाबूराव पटेल मधुबाला और उनके पिता को तत्कालीन मुख्यमंत्री मोरारजी देसाई के पास ले गए और उन्हें बिहार राहत कोष के लिए चालीस हजार रुपए का एक चैक उनकी तरफ से भेंट किया। इस अवसर पर मधुबाला ने घोषणा की कि वह राशि उनके पूरे जीवन की सारी कमाई है। इसके एक हफ्ते बाद ही मूवी टाइम्स ने खबर छापी कि उनके पिता ने हैदराबाद में एक लाख रुपए की जमीन खरीदी। राम औरंगाबादकर, जो कि हैदराबाद के ही थे, को पता था कि एक स्थानीय कानून के अनुसार कोई भी बाहरी व्यक्ति उस राज्य में जमीन नहीं खरीद सकता। मूवी टाइम्स में यह खबर छपने के एक पखवाड़े बाद ही वह जमीन जब्त कर ली गई और खान साहब बेचारे कुछ न कर पाए।

लगभग एक वर्ष तक पत्रकारों और खान साहब के बीच यह जंग चली। आखिर खान साहब को लगा कि अब काफी हो चुका है। उन्होंने एक रोज राम औरंगाबादकर के सामने सुलह का प्रस्ताव रखा। एक्शन कमेटी ने बैठक की जिसमें खान साहब ने बंदिश हटाने का ऐलान करते हुए क्षमा याचना करने की भी इच्छा प्रकट की। कमेटी ने कहा कि इसकी जरूरत नहीं है। सारा मामला सुलट जाने के बाद खान साहब ने अपने बांद्रा स्थित अरेबियन विला में पत्रकारों को चाय पर आमंत्रित किया। यहाँ मधुबाला ने स्वयं उनकी खातिर की और पहली बार लेखक को पता चला कि वे कितनी शालीन मेजबान भी थीं।

मधुबाला किस पाए की स्टार मटेरियल थीं, इसका बयान करते हुए करंजिया कहते हैं- 'मैं पहली मुलाकात में ही मधुबाला के गुलाबी गौर वर्ण, बादामी आँखों तथा घने सुनहरे बालों से अभिभूत हो गया। मुझे लगा कि उनकी एक भी प्रकाशित तस्वीर उनके असाधारण सौंदर्य के प्रति पूरा न्याय नहीं करती थी। परदे पर भी उनका सौंदर्य पूरी तरह से नहीं उभरता था। उनके जैसे



अप्रतिम सौंदर्य के साथ पूरा न्याय रंगी[n] फोटोग्राफी ही कर सकती थी और वह चीज उ[स] समय तक भारतीय सिनेमा में आई नहीं थी।'

इस पार्टी के बाद करंजिया और मधुबाला [के] बीच जो आत्मीय मित्रता स्थापित हुई व[ह] मधुबाला के असामयिक निधन तक जारी रही। [वे] लिखते हैं- 'पढ़ी-लिखी न होने के बावजूद उन[में] जो जन्मजात बुद्धिमत्ता तथा समझ थी वह उन[की] उम्र से कहीं बहुत ज्यादा थी। मगर उनमें ए[क] शिशु जैसी निश्छलता तथा जिद दोनों थी। उन[के] बारे में सबसे मार्के की बात यह थी कि वे बहु[त] ही अनुशासित स्टार थीं। इस मामले में वे आज [के] सुपर स्टार अमिताभ बच्चन से कम नहीं थ[ीं]। आजकल के सितारे जिस तरह अपने घर से बा[हर] निकलते ही पेट्रोल, खाना, चमचे तथा रिश्तेदा[रों] के सारे खर्चे निर्माता के मत्थे ही करते हैं, वैसा [वे] कभी नहीं करती थीं। वे हर चीज का भुगतान [खुद] करती थीं। वे वक्त की भी पाबंद थीं। वे पूरे मे[...]

गुरुदत्त–मधुबाला 'श्री एवं श्रीमती ५५५ (१९५५) में



अप के साथ शूटिंग के लिए सुबह ठीक नौ बजे उपस्थित हो जाया करती थीं। यहाँ तक कि एक बार बंबई में भयानक तूफान आने पर भी वे सही वक्त पर स्टुडियो पहुँच गई थीं। उस रोज उनके अलावा कोई भी शूटिंग के लिए नहीं पहुँचा था।'

खान सहब यों दिल से अच्छे होने के बावजूद कई बार गैर वाजिब ढंग से जिद पकड़ जाते थे। सन् १९५१ में बंबई में अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह हुआ जिसमें हॉलीवुड के प्रसिद्ध निर्देशक फ्रेंक काप्रा भी पधारे थे। मूवी टाइम्स के लिए उनका साक्षात्कार लेने जब करंजिया पहुँचे तो उसी पत्रिका में छपी मधुबाला की एक तस्वीर देख काप्रा इस तरह प्रभावित हुए कि उन्होंने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। यह इशारा भी किया कि मधुबाला को हॉलीवुड में प्रवेश का मौका भी दिया जा सकता है। काप्रा ने सुझाव दिया कि वे ताजमहल होटल में लंच पर उनसे मिलें। मैंने खान साहब को फोन पर खुशी-खुशी इसकी सूचना दी। मगर मेरे सारे उत्साह पर खान साहब ने यह कहते हुए पानी फेर दिया कि मधुबाला नहीं जा सकेगी क्योंकि वे छुरी-काँटे की मदद से खाना नहीं खा सकतीं। एक बार निर्देशक के. आसिफ ने उनसे कहा कि वे मधुबाला को फिल्म की कहानी सुनने के लिए बुलाएँ, तथा वही तय करेंगे कि उन्हें फिल्म करनी है या नहीं। खान साहब को यह बात बहुत नागवार गुजरी क्योंकि कहानी वे स्वयं सुनते थे और वही उस पर फैसला करते थे। एक बार वर्मा बंधुओं के साथ पैसे के बारे में कुछ मतभेद होने पर (निर्माता एक लाख दे रहे थे जबकि खान साहब डेढ़ लाख चाहते थे) उन्होंने अपना यह अजीबो-गरीब फलसफा बतलाया- 'मात्र पाँच आने खर्च करके पब्लिक मेरी बेटी को प्यार करती और कम कपड़ों में नाचते देखती है। हमारी बदनामी तो होती ही है, तो फिर उसके चलते हम क्यों न अच्छा पैसा भी बनाएँ?' मधुबाला और दिलीप कुमार के प्रेम की अफवाहें उन दिनों फैल रही थीं और दोनों के शादी कर लेने की संभावना भी थी। जब खान साहब से पूछा गया तो वे बोले- 'मैं एक शर्त पर इसकी इजाजत दे सकता हूँ। पहले दिलीप को अपनी पाँचों बहनों की शादी करनी होगी। मैं नहीं चाहूँगा कि मेरी बेटी को कोई उन सबके कपड़े धोने को कहे।' बाद में मधुबाला ने अभिनेता, गायक, निर्देशक, निर्माता किशोर कुमार से शादी की। मुगले-आजम की शूटिंग के दौरान मधुबाला को भारी-भारी जंजीरें खींचनी पड़ी थीं। खान साहब के मुताबिक इसी वजह से मधुबाला को दिल की बीमारी हुई जो कि अंततः उनकी मौत का कारण बनी। इसका कुछ दोष खान साहब किशोर कुमार को भी देते हैं जिन्हें वे अपना **'बनिया दामाद'** कहते थे। वैसे भी मधुबाला की यह शादी बहुत सफल नहीं रही थी। दिल के ऑपरेशन के लिए वे इंग्लैंड भी गईं लेकिन वे फिर परदे पर नहीं आ सकीं। जल्दी ही महान मधुबाला को भी दर्शकों और फिल्म बिरादरी ने भुला दिया। उनकी अंतिम साल-गिरह के दिन उन्हें सिर्फ एक गुलदस्ता मिला। ■

(बी. के. करंजिया की पुस्तक 'ब्लंडरिंग इन वांडरलैंड' से साभार)



मुगल-ए-आजम (१९६०) में मधुबाला

भारतीय रजतपट की वीनस

अंतरराष्ट्रीय प्रेम दिवस यानी १४ फरवरी १९३३ को दिल्ली में जन्मीं **मधुबाला** का वास्तविक नाम था मुमताज जहाँ बेगम। यह कहा जाता है कि उसे मधुबाला नाम इंदौर के प्रसिद्ध कवि हरिकृष्ण प्रेमी ने दिया था। नरगिस और मीना कुमारी की तरह मधुबाला ने बाल कलाकार के रूप में फिल्मों में प्रवेश किया। अमिय चक्रवर्ती ने बॉम्बे टॉकीज की फिल्म **बसंत** में मुमताज को पेश किया। इस फिल्म में मुमताज द्वारा गाया गीत **तुमको मुबारक हो ऊँचे महल ये, हमको हैं प्यारी हमारी गलियाँ** हिट रहा। इसके बाद वह बाल कलाकार के रूप में मुमताज महल, धन्ना भगत, पुजारी तथा फुलवारी में आई।

बाल कलाकार से वयस्क भूमिका में आने का काम निराशा और असफलता के थपेड़ों के कारण डगमगाता रहा। इस डगमगाहट की समाप्ति किदार शर्मा की फिल्म **नीलकमल** के साथ हुई। इस फिल्म में उसे राजकपूर के साथ नायिका की भूमिका मिली। राजकपूर बतौर नायक पहली बार इसी फिल्म में आए थे। राज-मधु की रोमांटिक जोड़ी को दर्शकों ने पसंद किया। इसके बाद वे दोनों राधाकृष्ण तथा दिल की रानी में साथ-साथ आए। फिल्म लाल दुपट्टा में अपने परिपक्व अभिनय के कारण वह नायिका के रूप में स्थापित हो गई।

बॉम्बे टॉकीज की फिल्म महल ने उसके केरियर को नया मोड़ दिया। यह पुनर्जन्म की रहस्यात्मक गुत्थी वाली अर्ध हॉरर फिल्म थी। महल के नायक अशोक कुमार थे। मधुबाला ने माली की लड़की की भूमिका की है जो महल की दीवार पर टँगी मर्द की तस्वीर से प्यार करने लगती है। जब इस तस्वीर से मिलता-जुलता मर्द एक तूफानी रात महल में आता है तब वह खुद को आत्मा के रूप में पेश करती है। चमगादड़, साँप, तूफान, अँधेरी रात में आने वाली आवाजों ने महल को अलौकिक वातावरण वाली फिल्म बना दिया। यह फिल्म हिट हुई तथा मधुबाला

◆◆◆

मधुबाला भारतीय रजतपट तारिकाओं में 'क्लासिक-ब्यूटी' मानी जाती है। न भूतो न भविष्यति। इतने बरसों बाद भी दर्शक मधुबाला के अलौकिक सौंदर्य के मोहपाश से मुक्त नहीं हो पाए हैं। वैसे मधुबाला ने अभिनय के कोई कीर्तिमान कायम नहीं किए थे लेकिन अपनी नजरें उठाकर जिसे देख लेती थी, वह उसके जादू में दीवाना हो जाता था। अक्सर यह सवाल उठाया जाता है कि रजतपट की सबसे सुंदर तारिका कौन? दसों दिशाओं से एक ही आवाज आती है- मधुबाला! बेजोड़ और कभी न भुलाई जा सकने वाली तारिका।





किशोर कुमार—मधुबाला: चलती का नाम गाड़ी (१९५८)

मधुबाला ने अपने दुःखों को चेहरे के उतार-चढ़ाव द्वारा निहायत स्वाभाविक तरीके से दर्शाया।

नया दौर में भी दिलीप के साथ पहले मधुबाला का ही नाम था। बाद में विवाद के कारण उसे हटाकर वैजयंती माला को लिया गया। दिलीप के साथ उसकी प्रेम कथा की भी काफी चर्चा रही। साकी, सैंया, बहुत दिन हुए, ढाके की मलमल तथा गेट-वे ऑफ इंडिया के बाद उसने कुछ सी ग्रेड की फिल्में भी स्वीकार की। प्रदीप कुमार के साथ वह पुलिस तथा राजहठ में आई और फिर भारत भूषण के साथ फागुन और मीनार में आई। दो उस्ताद में राजकपूर के साथ एक तेजतर्रार युवती के रूप में उसने कैबरा भी प्रस्तुत किया। इंसान जाग उठा में उसके साथ नायक के रूप में सुनीलदत्त थे।

स्टार बन गई।

मधुबाला का नाम सफलता की गारंटी समझा जाने लगा। मधुबाला को फिल्मों में लेने के बाद निर्माता अन्य पक्षों की गुणवत्ता पर ध्यान नहीं देते थे। उन्हें विश्वास था कि जो भी वे परोसेंगे मधुबाला के नाम के कारण दर्शकों को स्वादिष्ट लगेगा। हँसते आँसू तथा परदेस ऐसी ही फिल्में थीं। इस नायिका ने भी चमत्कारी ढंग से दो दशकों तक दर्शकों को अपने आकर्षण की डोर में बाँधे रखा। मधुबाला से पहले की हिंदी नायिकाओं के चेहरों पर गम और गंभीरता ही ज्यादा छाई रहती थी। उनकी अभिनय शैली से कृत्रिमता टपकती थी। मधुबाला ने अपने संपूर्ण व्यक्तित्व से मुस्कान बिखेरी। उसका चेहरा, आँखें, कुल मिलाकर शरीर का हर अंग खिलखिलाता और मुस्कुराता नजर आता था। चेहरे की कोमलता और मासूमियत के कारण उसे भारतीय रजत-पट की मेडोना कहा जाता था।

सिर्फ चेहरा ही नहीं, उसके शरीर का अंग प्रत्यंग साँचे में ढला नजर आता था। उसकी निहायत खूबसूरत टाँगों को कई फिल्मों में निर्माताओं ने दिखाया। उसके हाथ और अँगुलियाँ नजाकत और खूबसूरती में बेमिसाल थे। फिल्मों में अक्सर वह राजस्थानी चोली और घाघरा पहनती थी। इस पोशाक में उसकी सेक्स अपील किसी भी पिन-अप सुंदरी से ज्यादा रहती थी। फिल्मी नायिकाओं में सिर्फ मधुबाला और नरगिस ही ऐसी थी जो काजल नहीं लगाती थी। दरअसल उन्हें इसकी जरूरत ही नहीं थी। लंबे घने बाल, हाथी दाँत जैसी बदन की रंगत वाली यह सुंदरी भारतीय तो लगती ही नहीं थी। वह ईरानी या तुर्क दोशीजा नजर आती है। जब वह मुस्कुराती थी तो खूबसूरत के साथ जमे हुए दाँतों की पाँत भी मुस्कुराती दिखाई पड़ती थी। उसकी चाल में रूप गर्विता की गरिमा थी।

खूबसूरत नायक देवानंद के साथ उसकी जोड़ी ने कई फिल्मों में दर्शकों को लुभाया। निराला, अरमान, नादान, जाली नोट, काला पानी आदि में उसने लोकप्रियता की ऊँचाइयों को छू लिया। उसकी इस लोकप्रियता को भुनाने के लिए रंजीत मूवीटोन ने मधुबाला नामक फिल्म ही बना डाली जिसके नायक थे देवानंद।

बादल में वह प्रेमनाथ के साथ नायिका बनी तथा नजराना में नासिर खान के साथ आई। खजाना में वह दिलीप के साथ भावुक रोमांटिक प्रेमिका के रूप में आई। दिलीप के साथ संगदिल में उसने अभिनय की ऊँचाइयों को छू लिया। इस फिल्म में दिलीप की शादी एक पगली (कुलदीप कौर) से हो जाती है जिसे वह टॉवर में कैद रखता है। इस तथ्य को छिपाकर वह नायिका को प्रेमजाल में फँसाता है। मधुबाला के कैरियर की उम्दा फिल्मों में एक **संगदिल** है।

मेहबूब ने **अमर** के निर्माण की जब घोषणा की तब दिलीप के साथ नायिका के तौर पर मीना कुमारी को लिया। बाद में मतभेद के कारण यह भूमिका मधुबाला को मिली। इस फिल्म में बलात्कार के एक नाजुक पहलू को खूबसूरती के साथ पेश करने की कोशिश मेहबूब साहब ने की थी। दिलीप और मधु प्रेमी थे तथा उनकी शादी तय हो चुकी है। दिलीप क्षणिक आवेग में आकर एक किसान कन्या (निम्मी) के साथ बलात्कार करते हैं। उसे गर्भ रह जाता है। नायिका के रूप में

गंभीर तथा शोख भूमिकाओं में अपनी अभिनय क्षमता का सिक्का जमाने वाली मधुबाला एक कुशल हास्य कलाकार भी थी। गांगुली बंधुओं के साथ **चलती का नाम गाड़ी** में अपनी संवाद अदायगी तथा परिपक्व अभिनय से हास्य की अद्भुत सृष्टि की। इसी फिल्म की शूटिंग के दौरान उसका रोमांस किशोर कुमार से हुआ तथा बाद में शादी हो गई। हास्य अभिनेत्री के रूप में वह 'मिस्टर एंड मिसेज फिफ्टी फाइव' तथा 'हाफ टिकट' में भी सफल रही। 'हावड़ा ब्रिज' में वह अशोक कुमार के साथ ग्लेमरयुक्त भूमिका में आई।

इसके बाद आई हिंदी फिल्म उद्योग की महान फिल्म **'मुगल-ए-आजम'**। इस फिल्म ने सफलता के बेजोड़ कीर्तिमान कायम किए। मधुबाला का सौंदर्य इस फिल्म में पूरे शबाब के साथ पेश किया गया। जब वह खुद को संगमरमर के बुत की तरह प्रस्तुत कर छिपती है तथा प्यार किया तो डरना क्या की अदायगी के वक्त उसका अंग प्रत्यंग सौंदर्य को परिभाषित करता नजर आता है। इस गीत पर फिल्माए गए नृत्य के लिए उसने लगातार दो वर्ष तक अभ्यास किया था। इसके बाद उसे बीमारी ने घेर लिया तथा धीरे-धीरे वह मौत की ओर बढ़ने लगी। निजी जीवन में वह बहुत धार्मिक तथा समय की पाबंद थी। यह पाबंदी १९६४ में प्रदर्शित हुई फिल्म शराबी की शूटिंग के दौरान महसूस की गई। बीमारी के बावजूद वह फिल्म को पूरा करने के लिए वक्त पर पहुँच जाती थी। असाध्य बीमारी के कारण वह ३६ वर्ष की अल्पायु में ही चल बसी। पति किशोर कुमार ने मधुबाला की जो सेवा की है, उसकी मिसाल सिर्फ नरगिस-सुनील दत्त से की जा सकती है। ■

नरगिस

फिल्म तारिकाओं की मदर-इंडिया

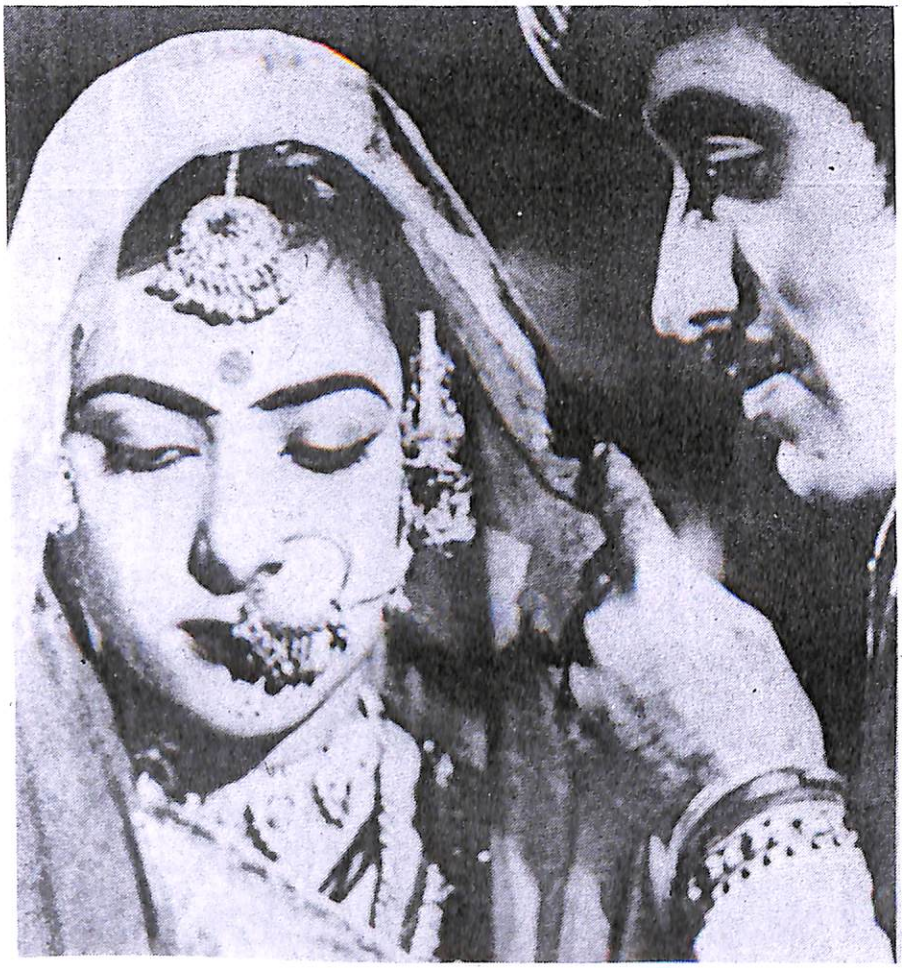
जयप्रकाश चौकसे

जद्दनबाई की फिल्म कंपनी का नाम 'संगीत' था। उनकी पुत्री कनीज फातिमा ने पाँच वर्ष की आयु में 'तलाशे-हक' नामक फिल्म में छोटा-सा रोल किया था। १९४३ में मेहबूब खान ने 'तकदीर' में कनीज को नरगिस के नाम से प्रस्तुत किया। एक स्वतंत्र निर्माता के रूप में **तकदीर** मेहबूब खान की पहली फिल्म थी। १९५७ में मेहबूब खान और नरगिस की **मदर-इंडिया** प्रदर्शित हुई, जो भारतीय चित्रपट का पहला महाकाव्य है। १९६७ में नरगिस ने अपने भाई की फिल्म 'रात और दिन' को पूरा करने के लिए कुछ दिन काम किया परंतु 'मदर-इंडिया' को उस यात्रा की मंजिल मानना चाहिए जो 'तकदीर' से प्रारंभ हुई थी। नरगिस का अभिनय जीवन मात्र पंद्रह साल का था परंतु अभिनय छोड़ने के बाद तेईस साल तक वह फिल्मों से जुड़ी रही, अपने पति और बच्चों के माध्यम से। नरगिस ने पंद्रह साल में जो लोकप्रियता अर्जित की थी-निवृत्ति के २३ वर्षों में वह कायम रही। छठे और सातवें दशक की पीढ़ी ने नरगिस की फिल्में नहीं देखी थी परंतु वे नरगिस की महानता के कायल थे।

मदर इंडिया (१९५७) नरगिस

नरगिस ने अपनी छवि इतनी कुशलता से गढ़ी थी कि उसकी लोकप्रियता में कभी कमी नहीं आई। इसीलिए दक्षिण भारत के वासन ने सातवें दशक में पूरी फिल्म के बजट के बराबर धनराशि का प्रलोभन नरगिस को दिया जिसे उसने विनम्रता-पूर्वक अस्वीकार कर दिया।

नरगिस की पहली फिल्म में दो नायक थे-मोतीलाल और चंद्रमोहन। उस समय नायिकाएँ अभिनय में अतिरेक करतीं थीं और घोर नाटकीय थीं। पारसी थिएटर का अंदाज सबके अभिनय पर छाया था। नरगिस ने स्वाभाविकता पर जोर दिया, जो उसने मोतीलाल से सीखा। अत: वे भारतीय सिनेमा की पहली स्वाभाविक अभिनेत्री रहीं। नरगिस ने परंपरागत रोल के बदले आधुनिक पाश्चात्य असरवाली भूमिकाओं को चुना जिसके स्वच्छंद हाव-भाव युवा वर्ग के दर्शकों को बहुत पसंद आए। अँगरेजों से आजाद होने की प्रक्रिया के वर्षों में नरगिस की भूमिकाओं के उन्मुक्त रूप को लोगों ने बहुत पसंद किया। आजादी के बाद बदलते हुए समाज ने नरगिस की भूमिकाओं में अपने अंतर्मन को देखा और इतना पसंद किया कि निर्माता नरगिस का नाम नायक के पहले देने लगे-यहाँ तक कि 'मदर इंडिया' में तो फिल्म के नाम के पहले ही नरगिस का नाम आया और एक निर्माता ने तो फिल्म का नाम ही 'नरगिस' रखा। नरगिस ने परंपरागत भूमिकाओं को भी नए स्वाभाविक अंदाज में प्रस्तुत किया। उन्हें अपनी जादुई आँखों के प्रभाव की पूरी जानकारी थी और उसका भरपूर प्रयोग भी उसने किया। उसने अपनी समवर्ती नायिकाओं की तरह हाथ-पैर हिलाने के बदले आँखों से भावों को अभिव्यक्त किया। इस तरह अपने नाम को सार्थक किया।

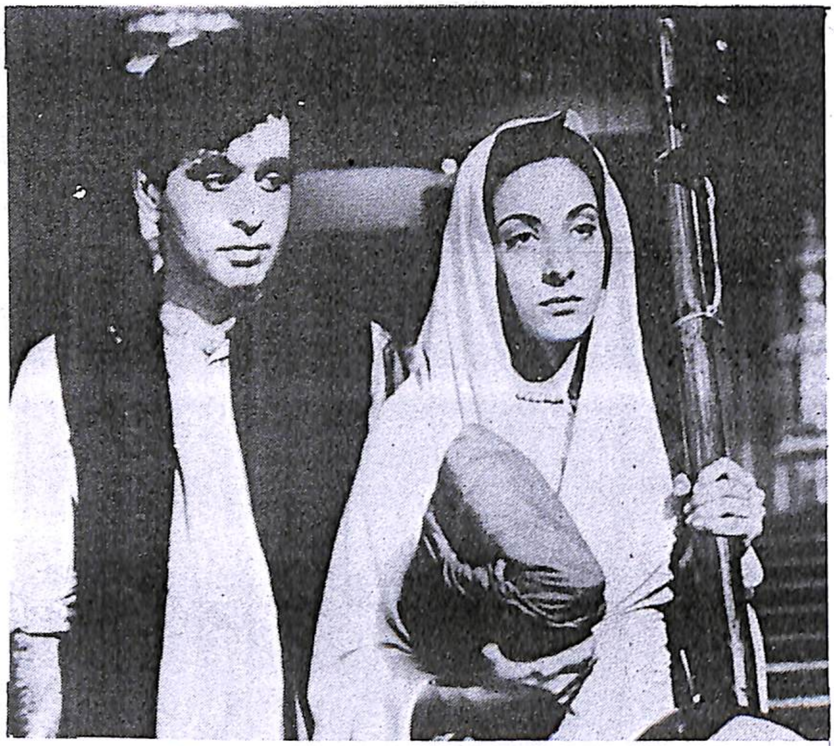


नरगिस ने भारतीय सिनेमा के तीन महारथियों के साथ काम किया। उसने दिलीप के साथ सात फिल्में कीं जिसमें अंदाज, मेला, हलचल, दीदार और जोगन अत्यंत प्रभावशाली रहीं। नरगिस ने राजकपूर के साथ पंद्रह फिल्में कीं जिनमें अंदाज, आवारा, श्री ४२०, अनहोनी, चोरी-चोरी, अंबर महत्वपूर्ण फिल्में रहीं। महबूब खान के साथ ४ फिल्में कीं जिनमें 'तकदीर', 'हुमायूँ' और 'मदर-इंडिया' महान फिल्में सिद्ध हुईं। दिलीप और राजकपूर में नरगिस को लेकर व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा थी परंतु महबूब खान के साथ एक अनाम सृजनात्मक रिश्ता था। महबूब खान को उस समय भारी ठेस लगी जब नरगिस ने 'आन' में काम करने से इंकार किया। महबूब, दिलीप और राजकपूर नरगिस के आभा मंडल से मंत्रमुग्ध थे और अगर मध्य-काल के युग में होते तो नरगिस के लिए तलवारें चल जातीं और सिर कट जाते। ऐसे मनमोहक व्यक्तित्व की धनी थीं नरगिस।

◆◆◆

नरगिस अभिनेत्री के बजाए डॉक्टर बनना चाहती थी। लेकिन सुनहरे संसार के रूपहले परदे पर जब वह आ गई, तो उसने अभिनय के व्यवसाय को प्रतिष्ठा दिलाई। १९५७ में 'मदर-इंडिया' के समय जब वह अपने जीवन की सफलता के शीर्ष पर थी, उसने सफेद साड़ी बदलकर दुल्हन की लाल साड़ी पहन ली। सुनील दत्त से शादी के बाद सामाजिक कार्यों में संलग्न नरगिस ने 'अभिनेत्री' को और महत्वपूर्ण बनाया क्योंकि वह राज्यसभा की सदस्य मनोनीत की गई थी। नरगिस पहली भारतीय तारिका है जिसे कार्लोवी वारी के अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में पुरस्कार मिला था।





सफ़ेद साड़ी, नरगिस और नेहरूजी

नरगिस हमेशा सफेद साड़ी पहनती थी। इसके पीछे फिल्मी दुनिया में यह कहानी मशहूर रही है कि राजकपूर को सफेद साड़ी पहनी स्त्री बहुत अच्छी लगती थी। उनकी किशोर-वय में जीवन में पहले प्यार के समान आई स्त्री भी सफेद साड़ी पहने थी। उन्होंने अपनी तमाम नायिकाओं को सफेद साड़ी पहनाई है। लेकिन पत्रकार बी.के. करंजिया की पिछले दिनों प्रकाशित पुस्तक 'ब्लंडरिंग इन वांडरलैंड' में यह नया तथ्य उजागर हुआ है कि नरगिस सफेद साड़ी इसलिए पहनती थी कि उसे पंडित जवाहरलाल नेहरू से प्रेरणा मिली थी। बंबई के राज्यपाल द्वारा आयोजित एक चाय-पार्टी में नरगिस ने जैसे-तैसे निमंत्रण पत्र प्राप्त किया और शामिल हुई। खद्दर की सफेद साड़ी में नरगिस बला की ख़ूबसूरत लग रही थी। पंडितजी चलकर उसके पास गए और आटोग्राफ पुस्तक पर दस्तखत किए। इसके बाद वे जब कभी बंबई जाते, नरगिस को लंच पर बुलाना नहीं भुलते थे। नरगिस हर बार सफेद साड़ी पहनकर जाती। एक बार नरगिस ने हँसते हुए पंडितजी से कहा—'आप जानते हैं कि आप कितने सुंदर हैं।' नेहरूजी ने जवाब में गालिब का शेर पढ़ा था-'उनको देखने से जो आती है मुँह पर रौनक, वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।'

नरगिस, मधुबाला की तरह सुंदर नहीं थी और न ही मीनाकुमारी की तरह भूमिका में रम जाती थीं। परंतु अभिनय और प्रस्तुतीकरण की तकनीक में इतनी निपुण थीं कि अपनी कमजोरियों को छुपाकर, अपनी शक्तिशाली आँखों के प्रयोग से भारतीय दर्शक के अंतर्मन में पैठ गई। कैमरे और कोण की समझ के कारण नरगिस ने अपने 'प्रोफाइल' को ब्रह्मास्त्र की तरह प्रयोग किया। भाग्य ने भी साथ दिया कि फरदून ईरानी, जाल मिस्त्री और राधू करमरकर जैसे निष्णात कैमरामेन उन्हें मिले। राजकपूर, महबूब खान और किदार शर्मा जैसे दिग्गज निर्देशकों के सृजन की धुरी थी नरगिस।

अभिनय छोड़ने के बाद नरगिस ने कई सामाजिक कार्य किए और इस क्षेत्र में भी उन्हें इंदिरा गाँधी जैसे व्यक्तित्व का साथ रहा। सामाजिक कार्यक्रमों में सफेद साड़ी और मोगरे के फूलों के प्रयोग से नरगिस ने नवधनाढ्यों की गहनों से लदी और बनारसी साड़ियों में लिपटी औरतों को परास्त कर दिया। नरगिस के बहुआयामी व्यक्तित्व में कुछ ऐसा पारसनुमा जादू था कि जहाँ भी गई वहाँ सृजन का वातावरण ही बनाया। विवाह के पश्चात सुनीलदत्त को प्रेरित किया और **'मुझे जीने दो'** तथा **'रेशमा और शेरा'** जैसी फिल्में बनीं।

नरगिस की माँ मुसलमान थी और पिता हिंदू थे तथा पति भी हिंदू ही थे। उनके दो प्रेमियों में दिलीप मुसलमान थे और राजकपूर हिंदू थे। नरगिस कभी भी संकीर्ण सांप्रदायिकता की शिकार नहीं थी, बल्कि उसने हिंदू-मुस्लिम सद्भाव बढ़ाने के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नेहरूजी की वह अनन्य भक्त थी और स्वयं नेहरूजी उसे बहुत स्नेह करते थे। आधुनिक भारत की प्रतिनिधि भूमिकाओं के प्रति विशेष मोह था और दूसरी अभिनेत्रियों की तरह संकीर्ण दायरे से ऊपर उठकर बदलते हुए समाज के प्रति वे सजग भी थीं। व्यक्तिगत जीवन में आधुनिकता के प्रति इतना मोह होने के बावजूद नरगिस ने 'मदर-इंडिया' की पारंपरिक स्त्री भूमिका में जान डाल दी। 'मदर-इंडिया' में सोलह साल की नवयुवती से सत्तर साल की दादी मां तक विशाल कैनवास था और नरगिस ने अपने अभिनय से मदर-इंडिया को महानतम भारतीय फिल्म बना दिया। महबूब खान ने इसी कथा को 'औरत' के नाम से १९३९ में सरदार अख्तर (उनकी पत्नी) के साथ बनाया था। वे चाहते तो 'मदर-इंडिया' का नाम भी 'औरत' ही रखते परंतु नरगिस के सुझाव और प्रभाव के कारण महबूब ख़ान ने 'मदर-इंडिया' जैसा विशुद्ध अँगरेजी नाम एक सौ प्रतिशत शुद्ध भारतीय कथा का रखा। नरगिस के दोनों प्रिय फिल्मकार-महबूब खान और राजकपूर ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे जबकि नरगिस सीनियर केंब्रिज पास थीं। इन बातों का यह अर्थ नहीं कि नरगिस के बिना महबूब और राजकपूर कुछ नहीं थे क्योंकि दोनों ही फिल्मकारों ने बिना नरगिस के भी कई महत्वपूर्ण फिल्में बनाई हैं। तात्पर्य सिर्फ इतना है कि नरगिस दूसरी अभिनेत्रियों की तरह नहीं होकर फिल्म निर्माण में सृजनात्मक भूमिका का निर्वाह करती थीं। इस चिंतन और सहयोग के कारण ही वे अपनी समकालीन अभिनेत्रियों में विशिष्ट स्थान रखती हैं।

प्रमुख फिल्में *पर्दानशीं (१९४२) *तकदीर (१९४३) *आनबान (१९४४) *नरगिस (१९४६) *रोमियो-जूलिएट (१९४७) *आ... (१९४८) *मेला (१९४८) *बरसात, अंदाज (१९४९) *आधी रात, जोगन (१९५०) *आवारा, दीदार (१९५१) *अंबर, आशियाना (१९५२) *आह (१९५३) *श्री ४२० (१९५५) *चोरी-चोरी (१९५६) *मिस इंडिया, मदर-इंडिया (१९५७) *परदेसी (१९५७) *अदालत, घर संसार, लाजवंती (१९५८) *रात और दिन (१९६७)।



आखिरी फिल्म रात और दिन (१९६७) में नरगिस के दो रूप

बेगम पारा

लाइफ की पिनअप गर्ल

१२६ पौंड वजनी ५ फुट ४ इंच ऊँचाई वाली बेगम पारा सिनेमा के मध्य युग की सेक्सी हीरोइन मानी जाती है। फिल्मी सितारों के क्रिकेट मैच में वह पुरुषों को आसानी से हरा देती थी। हमेशा कुर्ते-शरारे में रहने वाली बेगम पारा को उन दिनों 'कोरियन पिनअप गर्ल' कहा जाता था। उसके सुंदर चेहरे के कारण कई दर्शक घायल होकर महीनों तक कराहते रहते थे।

बेगम पारा अपने भड़कीले सौंदर्य के कारण ग्लेमर का पर्याय बन गई थीं। अपने समय की वे एकमात्र भारतीय नायिका थीं जिनकी तस्वीर विश्व विख्यात अमेरिकन साप्ताहिक **'लाइफ'** में छपी थी। अमेरिकन तथा ब्रिटिश फिल्म उद्योग के लोग भी इस भारतीय रूपसी के हुस्न की चकाचौंध से चकित हो गए थे। 'लाइफ' में तस्वीर शाया होने के बाद तो वे पूरी दुनिया के शीर्षस्थ 'पिन अप मॉडलों' में गिनी जाने लगीं। रूप और सौंदर्य की अगाध राशि की स्वामिनी बेगम पारा के पास कुलीन पृष्ठभूमि, शिक्षा तथा पश्चिमी शैली की व्यवहारकुशलता भी थी। उनका जन्म एक सुसंस्कृत मुस्लिम परिवार में हुआ था। भरे-पूरे परिवार में सेशन जज हक के यहाँ जन्मी पारा माता-पिता की तीसरी पुत्री थीं। पंजाब में पदस्थ हक तहजीब और अदब-कायदों की पाबंदी पर काफी जोर दिया करते थे। पारा ने माँ से सौंदर्य तथा पिता से विवेक पाया तथा प्रारंभिक धार्मिक शिक्षा घर पर पाने



के बाद भाई-बहनों के साथ अलीगढ़ में पढ़ने के लिए गई। स्कूल और कॉलेज के दिनों में वह खेलों में बेहद रुचि लिया करती थी। घुड़सवारी, शिकार निशानेबाजी, तैराकी के साथ बेडमिंटन और क्रिकेट उसके प्रिय शौक थे। क्रिकेट खिलाड़ी के रूप में तो वह नायिका बनने के बाद भी यश बटोरती रही। फिल्मी सितारों के बीच खेले गए पहले चैरिटी मैच में उसने सर्वाधिक रन बनाकर नायकों को भी शर्मिन्दा कर दिया था।

कॉलेज की पढ़ाई समाप्त होने तक पारा के परिवार में काफी क्रांतिकारी परिवर्तन आने शुरू हो गए थे। पारा की बड़ी बहन जरीना एक संपन्न हिन्दू जमींदार के बेटे के प्रेम में दीवानी हो गई थी। छोटा भाई पुन्नू वायुसेना में जाना चाहता था। मगर माता-पिता इसके लिए राजी नहीं थे। पारा के भाई मंसूर ने बंबई और कलकत्ता में तहलका मचा देने वाली रूपसी अभिनेत्री प्रोतिमा दासगुप्ता से विवाह कर लिया था। पारा खुद भी फिल्मों में अभिनय करने को लालायित थी।

पारा, जरीना और पुन्नू ने मिलकर गुपचुप घर छोड़कर बंबई में आने तथा भाई मंसूर तथा भाभी प्रोतिमा की मदद से अपनी समस्याएँ हल करने का फैसला किया। अब्बाजान और अम्मा की हुकूमत की हदों को पार कर तीनों बंबई पहुँचे। जरीना ने अपने हिंदू प्रेमी से विवाह कर लिया। पुन्नू वायुसेना में भर्ती हो गया तथा पारा ने फिल्मी दुनिया से रिश्ता जोड़ लिया। पारा गोरी तो थी ही साथ ही बढ़िया नाक-नक्शे तथा खूबसूरत आँखों के कारण बहुत आर्कषक लगती थीं। प्रोतिमा दासगुप्ता विदेश से लौटी थी तथा भारतीय फिल्म जगत में धूमकेतु की तरह प्रकट होकर हलचल मचा रही थी। उन्होंने बेगम पारा को अपनी फिल्म **चाँद** में शोले की तरह धधकती सौंदर्य राशि के रूप में पेश किया। इसके बाद पारा छमिया, झरना, मेहंदी, शहनाज, जुगनू आदि फिल्मों में आई तथा चमकती चली गई।

उस जमाने में फिल्म निर्माता पढ़ी-लिखी समझदार नायिकाओं की नई नस्ल को शंका की दृष्टि से देखते थे। उनके अनुसार यह नस्ल मेहनती तथा ईमानदार नहीं थी। इसीलिए पढ़ी-लिखी लड़कियों को घमंडी, जिद्दी तथा बिगड़ैल पात्रों की भूमिका के लिए ही चुना जाता था। पारा को भी ऐसे रोल करने पड़े तथा नौकरों पर सामान फेंकना यहाँ तक कि पिता को तमाचा जड़ना भी उसकी भूमिका का अंग हो गया। पारा को यह सब अच्छा नहीं लगता था। उसे समझ में नहीं आता था कि फिल्म वाले कैसे काल्पनिक कॉलेजों की सृष्टि कर देते हैं जहाँ की छात्राएँ इतनी बदतमीज हो सकती हैं। इस अभिनेत्री की उन दिनों कितनी माँग थी इसका अंदाज उसके द्वारा स्वयं के लिए निर्धारित पारिश्रमिक की दर से लगाया जा सकता है। उन दिनों जबकि रुपया आज के चालीस रुपयों के बराबर था, बेगम पारा एक लाख रुपए पारिश्रमिक माँगती थीं। जब एक निर्माता ने इतनी राशि देने में थोड़ी हिचकिचाहट की तो पारा ने फौरन दस हजार रुपए बढ़ा दिए। निर्माता को बढ़ी हुई रकम देनी पड़ी।

सवा छह फुट के कद्दावर ऊबड़-खाबड़ चेहरे वाले शेख मुख्तार तथा उसके नाटे नटखट साथी मुकरी के साथ बेगम पारा की कई बेहतरीन फिल्में आई। इसके बाद पारा की जिंदगी में प्यार आया। दिलीप कुमार के भाई नासिर खान के साथ उसका रोमांस काफी चर्चित रहा। दिलीप साहब व्यावहारिक व्यक्ति थे तथा रहन-सहन के उस स्तर को जानते थे, पारा जिसकी आदी थी। अतः भाई के वैवाहिक जीवन के आर्थिक पक्ष को मजबूत करने के लिए उन्होंने **'गंगा जमुना'** की शुरूआत की। नासिर निर्माता थे फिल्म सफल रही तथा पारा और नासिर का विवाह हो गया। सागर तट पर बढ़िया मकान लेकर दोनों सुखी गृहस्थ के रूप में दिन बिताने लगे। 'लुब्ना' का बेटी के रूप में प्रवेश पारा को पूर्ण बना गया। बाद में लुब्ना के दो भाई और हो गए। नासिर ने गलत लोगों की राय मानकर जिस व्यापार में धन लगाया था उसमें घाटा हो गया। एक फिल्म निर्माता के रूप में रोजमर्रा आने वाले तनाव झेलना भी उसके लिए मुश्किल हो गया। अंततः घर से दूर रहते हुए दिल का दौरा पड़ने से नासिर खान का निधन हो गया। पारा के ऊपर परिवार, स्टूडियो तथा एक अधूरी फिल्म को पूरा करने की जिम्मेदारी आ पड़ी। प्रोतिमा तथा नरगिस ने संकट की इन घड़ियों में उसे ठोस मदद की। बाद में पारा अपना परिवार और कारोबार समेट कर पाकिस्तान जाकर अपने परिवार के साथ रहने लगी। १९५५ में बनी **सितारा** उनकी आखिरी फिल्म थी।



रोशनी को पल्लू में बाँधने वाली वीना

बीते जमाने की ज्यादातर नायिकाओं का पारिवारिक जीवन सुखी नहीं रहा। उनका बुढ़ापा या तो गुमनामी के अँधेरे या फिर आर्थिक उलझनों की उमस में कटा। वीना इसका अपवाद हैं। भरी जवानी में वैधव्य की पीड़ा झेलने वाली इस सलोनी सुंदर नायिका ने अपने परिवार तथा बच्चों की जिन्दगी को इस तरह सँवारा कि आज वे भरे पूरे संतुष्ट घर में दादी की भूमिका निभा रही हैं।

अपने जमाने की सबसे ज्यादा पढ़ी-लिखी नायिकाओं में से एक मानी जाने वाली वीना की पहली फिल्म पंजाबी भाषा की '**गांवदी**' थी। लाहौर में बनी इस फिल्म की सफलता के बाद वीना ने अभिनय को व्यवसाय बनाने का फैसला किया। उस जमाने में लाहौर के बाद बंबई ही फिल्म निर्माण का मुख्य केंद्र था। वे अपने भाई **इफ्तेखार** के साथ बंबई आ गईं। नरगिस और सुरैया के स्वर्णकाल में उन्होंने महबूब खान की '**नजमा**', मजहर खान की 'याद' तथा के. आसिफ की '**फूल**' में अपनी अभिनय प्रतिभा का चमत्कार दिखाया।

जब देश का विभाजन हुआ, तो वीना ने भारत में ही रहने का फैसला किया। इन्हीं दिनों उनका विवाह मर्दाने, खूबसूरत, कद्दावर, नायक अलनासिर से हो गया। दोनों ने कई फिल्मों में एक साथ मुख्य भूमिकाएँ कीं मगर ये फिल्में चलीं नहीं। वैसे अलग-अलग उन्होंने जब भी फिल्मों में काम किया तब फिल्म हिट हुई। अलनासिर के पौरुषेय दंभ को यह स्वीकार नहीं हुआ कि उनकी पत्नी किसी अन्य नायक के साथ रोमांटिक भूमिका करे। इसलिए उन्होंने ए. आर. कारदार की **दास्तान** (१९४९) में वीना को राजकपूर के साथ नायिका बनने से रोक दिया। बाद में सुरैया ने यह भूमिका अदा की और वीना ने राजकपूर की बहन का रोल अदा किया। यह भूमिका सराही गई। इसके बाद २५-३० फिल्मों में नायिका की सफल भूमिका करने वाली यह अदाकार चरित्र अभिनेत्री बन गई। पति का 'अहं' कायम रखने के लिए उसने अपना केरियर तबाह कर लिया था। वह भी उसे मझधार में छोड़कर तैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही जन्नत नशीन हो गया। वीना के पास बचा था टूटा हुआ दिल, बिगड़ा हुआ केरियर तथा दो संतानें—एक बेटा, एक बेटी। अपनी जमा पूंजी ,को उसने होशियारी के साथ 'जमीन' के व्यवसाय में लगाया तथा बच्चों का भविष्य सँवारने में जुट गई। गुरुदत्त की **कागज के फूल** (१९५७) में चरित्र अभिनेता रहमान के जरिए उसे सास की भूमिका मिली। इसके बाद 'ताज महल', 'दो रास्ते', 'बनारसी बाबू', 'छुपा रुस्तम' आदि फिल्मों में चरित्र अभिनेत्री के रूप में उसने काम किया।

इसके बाद उसे **शतरंज के खिलाड़ी** में अहम भूमिका मिली। सत्यजीत राय की इस फिल्म में उसके अभिनय को बेहद सराहा गया। वीना 'रजिया सुल्तान' में अपने अभिनय को सर्वोत्कृष्ट मानती है। इस फिल्म में उन्होंने प्रदीपकुमार की पत्नी की भूमिका की थी।

आजकल वे परिवार में व्यस्त रहती हैं तथा फिल्मों से सिर्फ दर्शक के रूप में रिश्ता रखना चाहती हैं। उनका बेटा वकील है। बहू स्कूल में अध्यापिका हैं। बेटी और दामाद अमेरिका में लेक्चरर हैं। वे कहती हैं कि फिल्मी दुनिया की चकाचौंध से ज्यादा मजा उन्हें घर की नरम रोशनी में मिलता है। ■

उषा किरण

संवेदनशील तारिका

गुजरे जमाने की मशहूर अभिनेत्री **उषा किरण** ने अपनी अभिनय प्रतिभा के सहारे काफी लोकप्रियता अर्जित की। मध्यमवर्गीय नारी की भूमिका को उन्होंने बखूबी निभाया। आज की जया भादुड़ी की तुलना उषा किरण से की जा सकती है। भावनात्मक भूमिकाओं को निभाने का उनका अलग ही ढंग था।

उषा का जन्म एक मध्यमवर्गीय परिवार में अप्रैल १९२९ में हुआ था। स्कूली जीवन से ही उषा को नृत्य का शौक था इसलिए उन्होंने कत्थक, मणिपुरी और भरत नाट्यम की शिक्षा ली। स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद उषा ने स्टेज कार्यक्रमों में भाग लेना शुरू किया। उनकी नृत्य प्रतिभा से प्रभावित होकर मशहूर नर्तक उदयशंकर ने 'बैले' पर आधारित फिल्म '**कल्पना**' में उन्हें नर्तकी की भूमिका दी। उषा के फिल्मी जीवन की शुरूआत १९४२ में हुई थी। सबसे पहले उन्होंने मराठी फिल्म **आशीर्वाद** में बाल भूमिका निभाई। फिल्मी जीवन के शुरूआती दिनों में उषा ने मराठी, गुजराती और हिन्दी फिल्मों में छोटी-छोटी भूमिकाएँ की हैं। उषा ने सबसे पहले नायिका की भूमिका गुजराती फिल्म 'बेमिसाल' में की है। गुजराती या किसी भी क्षेत्रीय भाषा की फिल्म में नायिका की भूमिका निभाने के बाद हिन्दी फिल्म में काम करना बहुत मुश्किल समझा जाता था क्योंकि हिन्दी फिल्म निर्माता इसे अपनी तौहीन समझते थे। प्रयास करने के बाद उषा को अमिय चक्रवर्ती की फिल्म '**गौना**' में काम करने का अवसर

रमोला

रमोला फिल्मों में आने से पहले अपनी दो बहनों के साथ रंगमंच पर काम करती थी। उस समय उसने यह नहीं सोचा था कि आगे चलकर इतनी शोहरत और दौलत उसे मिलेगी। १९१७ में एक जेविश परिवार में जन्मी रमोला के पिता स्कूल अध्यापक थे। उसका बचपन बंबई में बीता और स्कूली शिक्षा कलकत्ता में हुई। अभिनय तो मानो उसके खून में था। पहली बार बंगला फिल्म **प्रहेर फेर** में उसे छोटा सा रोल मिला था। लेकिन, दलसुख पंचोली की फिल्म **खजांची** ने उसे रातो-रात स्टार बना दिया। इस फिल्म में गाए गीत-**सावन के नजारे हैं,** को दर्शक आज तक नहीं भूले हैं। मासूम, खामोशी, मनचली और शुक्रिया उसकी उल्लेखनीय फिल्में हैं।

असुरक्षा की शिकार : दुलारी

फिल्मों में काम करना **दुलारी** का उद्देश्य नहीं था। अचानक ही उनका फिल्मों में प्रवेश हुआ। हुआ यह कि उनके पिता सख्त बीमार हुए। आर्थिक खतरा आ गया और पिताजी की इच्छा थी कि दुलारी अपनी पढ़ाई पूरी करे। एक साउंड रिकॉर्डिस्ट उनके पिता के मित्र थे सो उन्होंने बाम्बे टॉकीज के साथ उनको जोड़ दिया। इस प्रकार सन् १९४३ में **हमारी बात** फिल्म से उनका पदार्पण हुआ। इसमें जब उन्हें सफलता मिली तो आगे और काम करने लगीं। फिल्मों मे काम करते-करते उनकी मुलाकात साउंड रिकॉर्डिस्ट जगताप से हुई। प्यार हुआ और शादी हो गई।

पति की मृत्यु के पश्चात वे काफी एकाकी हो गईं। उन्हें ऐसा लगता जैसे सब कुछ खत्म हो गया। एक समय था, जब वे भूमिकाओं के बारे में काफी 'चूजी' थीं, परंतु पति के न रहने पर वे सभी तरह की भूमिकाओं के साथ समझौते कर लेतीं। व्यस्त रहने और आर्थिक सुरक्षा के लिए ऐसा दुलारी ने किया। एक कारण यह भी था कि शादी के बाद उन्होंने फिल्मों में काम करना छोड़ दिया था। काफी लंबा अंतराल भी आ गया था।

चारित्रिक भूमिकाएँ करना काफी कठिन है, ऐसा दुलारी का मानना है। इसमें कुछ कर दिखाने का अधिक अवसर मिलता है। उन्होंने बहन, माँ, दोस्त की कई भूमिकाएँ बखूबी निभाईं। १९५३ में बनी 'जीवन ज्योति' फिल्म की भूमिका एक यादगार भूमिका है। 'पति सेवा' में भी उनकी प्रमुख भूमिका थी। कुछ गुजराती फिल्मों में भी उन्होंने काम किया, जैसे 'मंगल भेरा।'

दुलारी फिल्मों की वर्तमान स्थिति से काफी असंतुष्ट हैं। आज लोग प्रचार, पैसा, स्वार्थ के मारे पागल हुए जा रहे हैं। अब न इज्जत होती है और न भूमिकाओं पर गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श होता है। पहले निर्माता तक हीरोइनों या अन्य कलाकारों के सामने ड्रिंक नहीं करते थे। आज तो सब चलता है। इन दिनों वे कुछ फिल्मों में काम कर रही हैं। अधिकतर भूमिकाएँ माँ या दादी की हैं। 'आँख का तारा', 'आखिरी डाकू', 'दरिंदा', 'आहुति', 'नास्तिक', 'दिल्लगी', 'आन मिलो सजना', 'दरवाजा' उनकी प्रमुख फिल्में हैं। उन्हें इस बात पर काफी अफसोस होता है कि हिंदी सिनेमा किसी कलाकार को सुरक्षा नहीं देता है। खासकर जब वह फिल्म में काम करना बंद कर देता है।

मिला। उषा ने उसे बखूबी अंजाम दिया। इस फिल्म के साथ उषा ने अपना फिल्मी नाम उषा किरण रख लिया। उषा की अगली फिल्म 'वासुदेव बलवंत' मराठी में बनी जो सुपर हिट हुई। इसके बाद उनकी तीन और मराठी फिल्में काफी चर्चित हुईं। ये फिल्में थीं दत्ता धर्माधिकारी की 'बाला जो जो रे' और 'स्त्री जन्मा ही तूझी कहानी' तथा राम गबाले की 'दूध-भात'। इन फिल्मों के जरिए उषा भावनात्मक भूमिकाओं की चर्चित सितारा बन गईं।

हिन्दी फिल्मों में भी वे समानांतर रूप से अभिनय करती रहीं और बेहद चर्चित रहीं। हिन्दी में 'पतिता', बादबान, औलाद और 'धोबी डॉक्टर'। बादबान में उषा को अशोक कुमार, देवानंद तथा मीना कुमारी के साथ काम करने का मौका मिला। उषा को इस फिल्म में सर्वश्रेष्ठ सहनायिका की भूमिका निभाने के लिए १९५४ का फिल्म फेयर अवार्ड मिला। फिल्म 'धुआँ' में भी उषा ने एम. राजन और आशा माथुर के साथ अच्छी भूमिका निभाई। अमिय चक्रवर्ती की फिल्म 'पतिता' नायिका प्रधान थी। उषा के लिए यह भूमिका निभाना काफी चुनौतीपूर्ण था। देवानंद के विरुद्ध उषा ने फिल्म में भावनात्मक भूमिका में जान फूँक दी। अमिय चक्रवर्ती की ही फिल्म 'दाग' में उषा ने दिलीप और निम्मी के साथ काम किया। फिल्म 'दोस्त' में भी वे चर्चित रहीं। सच तो यह है कि उषा ने सभी फिल्मों में बेहतरीन रोल किए हैं। उषा की अन्य चर्चित फिल्में थीं 'औलाद', 'समाज' तथा 'अधिकारा।' मराठी फिल्म 'बाला जो-जो रे' में उन्होंने नारी जीवन की तीन भूमिकाएँ स्कूली छात्रा, पत्नी और माँ की निभाकर दर्शकों पर अमिट छाप छोड़ी।

इतनी प्रतिभावान एवं नृत्य में पारंगत होने के बावजूद उषा को नृत्य के क्षेत्र में लोकप्रियता नहीं मिली। हिन्दी फिल्मों के साथ- साथ उषा ने गुजराती फिल्मों में काम करना जारी रखा। गुजराती फिल्में मदहोश और नसीबदार की काफी चर्चा हुई। हिन्दी फिल्म आवाज, अनबन, जीवन साथी, दुश्मन तथा मराठी फिल्म 'सिखलेली बाइको' तथा 'कन्यादान' ने उषा को सफलता की ऊँचाइयों पर पहुँचाया। नायिका की भूमिका निभाते हुए उन्होंने सहनायिका की भूमिकाएँ भी की हैं। हिन्दी फिल्म 'नजराना', 'दिल भी तेरा हम भी तेरे' 'अमृत मंथन' तथा 'काबुलीवाला' में वे सहनायिका थीं। गुजराती फिल्म 'मेहँदी रंग लाग्यो' तथा 'जमाना' में भी उषा ने अभिनय की अमिट छाप छोड़ी है।

उषा को हिन्दी, मराठी, तमिल, अँगरेजी और बंगाली भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। १९५४ में उन्होंने डॉ. मनोहर खेर से विवाह किया। शादी के बाद भी उषा की अभिनय यात्रा जारी रही। ढलती उम्र में उनकी दो फिल्में चर्चित रहीं 'बावर्ची' और चुपके- चुपके। दोनों ही फिल्मों के निर्देशक ऋषिकेश मुखर्जी थे। उनकी बिटिया तन्वी है, जिसने शबाना आजमी के छायाकार भाई बाबा आजमी से शादी की है। तन्वी भी माँ की तरह कुशल अभिनेत्री है। ■





सरोजा देवी ने कभी...

बिना बाँह का ब्लाउज नहीं पहना

हो सकता है उन चमकीली काली आँखों में अब वो धार न रही हो। धनुषाकार होठों का वह तनाव कुछ ढीला पड़ गया हो। मगर वह कशिश अभी भी कायम है जिसके रहते वे दस साल तक दक्षिण भारतीय दर्शकों का मन मोहती रहीं। जब कभी **बी. सरोजा देवी** ने हिन्दी फिल्म में काम किया लोग उनको और अधिक देखने के लिए तरसते रह गए।

सरोजा देवी उन दिनों की बात छेड़ती हैं जब शिवाजी, एम.जी. आर. और वे एक स्टूडियो से दूसरे स्टूडियो में जाकर बाकायदा पूरी शिफ्ट काम करते थे। 'मैं सुनती हूँ इन दिनों डायरेक्टर-प्रोड्यूसर स्टार के पीछे- पीछे एक फिल्म के सेट से दूसरी फिल्म के सेट पर जाते हैं। हमारे जमाने में जब हम किसी एक सेट पर पहुँचते थे तो उस दिन की शूटिंग खत्म न होने तक वहीं बने रहते थे।'

वे कहती हैं– 'उन दिनों लगभग पूरी फिल्म की शूटिंग स्टूडियो में ही होती थी। केवल गानों की शूटिंग के लिए आउटडोर जाते थे। कभी-कभी काश्मीर भी। इन दिनों लोकेशन पर ही ज्यादातर शूटिंग करने का चलन है। इससे जो फर्क पडता है वह आपके सामने है। कुछ-कुछ वैसा ही फर्क जैसा स्कूल में पढ़ाई करने और सड़क पर क्लास लेने के बीच होता है। जब हजारों की भीड़ धक्का-मुक्की करते हुए आपकी ओर टुकर- टुकर देख रही हो तो कोई आदमी अभिनय की बारीकियों पर कैसे ध्यान लगा सकता है?'

पुलिस अफसर की इस बेटी ने गायकी के जरिए फिल्मों में प्रवेश किया। एक संगीत सभा में दक्षिण के जाने माने निर्माता होनप्पा भागवतर की उन पर निगाह पड़ी। उन्हें फिल्म **महाकवि कालिदास** में प्लेबेक सिंगर का मौका मिला। यह स्कूल के जमाने की बात थी। स्कूल वहीं छूट गया और धीरे-धीरे तरक्की करते हुए उन्होंने एक कन्नड़ फिल्म में नायिका का काम किया। वे कहती हैं, 'मेरे लिए फिल्म में प्रवेश कोई सनसनीखेज अनुभव न रहा। न ही मैंने कभी हीरोइन बनने का सोचा था। बस संयोगवश इस लाइन में चली आई।' उनकी दूसरी फिल्म **कचदेवयानी** के, रिलीज होने के बाद उनके आगे प्रोड्यूसरों की लाइन लगने लगी। डायरेक्टर चक्कर खाने लगे। वैसे उनके माता-पिता फिल्म लाइन में बेटी के जाने को उतना पसंद नहीं करते थे। मगर उनकी लगन देखकर उन्होंने बात मान ली। पचास और साठ के दशक में सरोजा देवी दक्षिण भारतीय परदे पर चोटी की नायिका बन गईं। उन्होंने पूरी अस्सी फिल्मों में एम.जी. रामचन्द्रन के साथ काम किया। मनथिरी कुमारी फिल्म से उन्होंने तमिल दर्शकों के दिल में हमेशा के लिए जगह बना ली। उन्होंने कई किस्म के रोल अदा किए। किसी फिल्म में वे शरीर से लाचार पति की दुःखी पत्नी बनीं तो किसी में चुलबुली छात्रा। जेमिनी गणेशन के साथ एक फिल्म में जब वे आई तो उन्हें १९५९ में राजकीय पुरस्कार मिला। तमिल फिल्मों में जड़ जमाने के साथ ही वे कन्नड़ और तेलगु फिल्मों में भी काम करती रहीं। डॉक्टर राजकुमार के साथ उन्होंने दो फिल्मों में काम किया। इन दोनों कन्नड़ फिल्मों को साठ के दशक में पुरस्कार मिले।

जैसा कि होता आया है, दक्षिण में जमने के बाद उन्हें हिन्दी फिल्मों के ऑफर मिलने लगे। पहली फिल्म **'पैगाम'** रही। इसमें दिलीप कुमार और वैजयंतीमाला के साथ उन्होंने काम किया। बाद में **बेटी-बेटे** और **ससुराल** फिल्म बनी। पहली में उन्होंने सुनील दत्त के साथ काम किया। **'प्यार किया तो डरना क्या'** में उन्हें शम्मी कपूर के सामने अपनी प्रतिभा दिखाने का मौका मिला। **'प्रीत ना जाने रीत'** खासी लोकप्रिय हुई।

इन फिल्मों में काम करने के लिए सरोजा देवी अस्थाई रूप से बंबई रहीं। उनके पास हिन्दी फिल्मों के प्रस्तावों के ढेर लग गए लेकिन उन्हें स्थाई रूप से बंबई में बसने का कभी ख्याल न आया। 'मैं दक्षिण भारत की नंबर एक हीरोइन थी, मैं उसे क्यों छोड़ने लगी।' वे मानती हैं कि उनका दखल व्यावसायिक सिनेमा में रहा है।



उनकी ज्यादातर लोकप्रिय फिल्मों में वे नाजुक कदमों से आँखें झपकाते हुए चली हैं। क्या वे ऐसा मानती हैं कि उस जमाने की नायिकाओं में नारीत्व अधिक था? सवाल के जवाब में वह कहती है 'हो सकता है, यह बात सही हो।' इन दिनों अभिनेत्रियों का चुनाव कोई खास फिल्म में किसी विशेष प्रकार की भूमिका के लिए ही होता है। पहली फिल्म में वे सहजता के साथ काम कर लेती हैं, मगर उसके बाद उनका कहीं पता नहीं चलता। हमारे जमाने में लड़कियों का चुनाव उनकी खूबसूरत आँखों, उनके अच्छे कद और आकर्षक व्यक्तित्व के कारण होता था। उन्हें किसी भी किस्म का रोल दिया जा सकता था। चाहें कहानी पारिवारिक हो, ऐतिहासिक या प्रेम कहानी। अगर निर्माता ऐसी अभिनेत्री चाहते हैं जो एकाध फिल्म के बाद ही न चूक जाए तो उन्हें अच्छी प्रतिभा के कलाकार चुनने चाहिए। अब तक वे खुद कोई १६० से अधिक फिल्मों में काम कर चुकी हैं।

कॉमेडियन थंकावेलू ने एक बार मजाक में कहा था कि सरोजा देवी अकेली ऐसी ग्लैमर गर्ल है जिन्होंने कभी कैमरे के सामने अपने घुटनों या बाँहों का प्रदर्शन नहीं किया। 'मैंने आज तक किसी फिल्म या अपने जीवन में स्लीवलेस ब्लाउज नही पहना।' वे कहती हैं आपको तड़क-भड़क दिखानी हो तो उसके लिए शरीर को नंगा करना जरूरी नहीं है। जो अभिनेत्रियाँ कैमरे के सामने नग्नता का प्रदर्शन करती हैं उन्हें अपने सहयोगियों और दर्शकों का सम्मान खोने में समय नहीं लगता।'

अपनी लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचने के कुछ ही समय बाद उन्होंने सभी को आश्चर्यचकित करते हुए एक सामान्य इंजीनियर के साथ शादी करने का फैसला किया। वे कहती हैं, 'मैं हमेशा से मानती रही हूँ कि एक औरत को

जयललिता

फिल्म और राजनीति में समान चर्चित

फिल्म उद्योग की यदि किसी सर्वाधिक विवादास्पद नायिका का नाम लेने को कहा जाए तो अनायास ही **जयललिता** का नाम जुबान पर आ जाएगा। राजनीति और फिल्म में अपनी धाक और पहचान को डंके की चोट स्थापित करने का सामर्थ्य रखने वाली जयललिता का इरादा फिल्मी दुनिया में आने का कतई नहीं था। तमिल और तेलुगु फिल्मों की चरित्र अभिनेत्री संध्या की इस बेटी का शैक्षणिक कैरियर निहायत उम्दा था। मद्रास के कान्वेंट स्कूल में अपनी बढ़िया अँगरेजी तथा बेहतरीन लेखन क्षमता के कारण उसकी गिनती स्कूल की प्रतिभाशाली छात्राओं में होती थी। मैट्रिक की परीक्षा में गणित में शत-प्रतिशत अंक लाने के बावजूद कुछ ही अंकों से वह प्रावीण्य सूची में प्रथम स्थान प्राप्त करने से वंचित रह गई।

कॉलेज में प्रवेश की पूरी तैयारियाँ करने के बाद सोलह साल की जयललिता पहली बार साड़ी पहन कर माँ के साथ एक पार्टी में गई। वहाँ फिल्मी दुनिया की मशहूर हस्तियों ने इस हीरे को पहचाना तथा काम करने के कई प्रस्ताव एक साथ मिले। बी.आर. पांटुला की कन्नड़ फिल्म के बाद आई डाइरेक्टर श्रीधर की पहली तमिल फिल्म **वेनिराडाई**। इसके बाद तो गिनती जारी रही। तमिल, तेलुगु और कन्नड़ की सवा सैकड़ा फिल्में जयललिता के खाते में लिखी जा चुकी हैं।

इस तरह फिल्मों में प्रवेश का कोई इरादा न रखने वाली यह विदुषी शीर्षस्थ नायिका बन गई। ऐसा ही कुछ चमत्कार राजनीति के क्षेत्र में हुआ। एम.जी.आर. यानी तमिलनाडु के चोटी के नायक तथा ए.आई.ए.डी.एम.के. के नेता एम.जी.आर. की मित्रता ने उसे राजनीति में खींच लिया। पिता की उम्र के एम.जी.आर. से उनके रिश्ते को लेकर क्या कुछ नहीं कहा गया। इन सारे आरोपों का जवाब देते हुए जयललिता का कहना है कि एम.जी.आर. उसके माता-पिता, मित्र और मार्गदर्शक सभी कुछ थे। निजी, फिल्मी तथा राजनीतिक जीवन में वे ही उसकी नैया के खिवैया थे। इतने करीबी रिश्तों में मांसल प्यार नहीं था, बल्कि भावनाओं का आकर्षण था।

जयललिता भारत की एकमात्र ऐसी नायिका है जो अभिनय तथा राजनीति के साथ-साथ लेखन के क्षेत्र में भी नाम कमा चुकी है। उनकी कहानियाँ तमिल पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। जब खुशवंतसिंह वीकली के संपादक थे, तब उन्होंने जयललिता से आग्रह कर अँगरेजी में भी लिखवाया था, "हिंदुत्व का मेरे लिए अर्थ" इस शीर्षक का लेख काफी चर्चित हुआ था।

अकेले जीवन काटने का फैसला करने वाली यह नायिका मद्रास स्थित अपनी आलीशान कोठी में चार कुत्तों तथा १५ नौकरों के साथ जिंदगी गुजार रही है। इन दिनों फिल्मों में अभिनय तो नहीं कर रही है, मगर राजनीतिक उथल-पुथल में न चाहते हुए भी पार्टी के लोग खींच लेते हैं।



शादी के पहले अपनी माँ के कहे अनुसार चलना चाहिए और बाद में पति की बात माननी चाहिए। मेरी माँ मेरी ही जाति के युवक से मेरी शादी कराना चाहती थीं। मुझे बड़ा डर था कि कहीं वे मेरे फिल्म में काम करने पर एतराज न करें। मगर वे उदार विचारों के व्यक्ति साबित हुए।'

सरोजा देवी ने अपने फिल्मी काम को घटा लिया। एक व्यस्त अभिनेत्री अपनी गृहस्थी को नहीं संभाल सकती हैं। 'मैंने कई फिल्में छोड़कर समझौते से काम लिया।'

एम.जी.आर. और एन.टी. रामाराव दो ऐसे नायक थे जिनके साथ उन्होंने बहुतेरी फिल्मों में काम किया है। उनके मुख्यमंत्री बनने पर 'नहीं, मुझे उन पर गर्व था और रहेगा। आखिर फिल्मों के अभिनेता भी इंसान हैं। वे भी बाकी लोगों की तरह सार्वजनिक जीवन में कुछ कर सकते हैं। अमेरिका में भी अभिनेता के राष्ट्रपति बनने की मिसाल कायम हुई है।'

सरोजा देवी के पति चाहते थे कि वह भी राजनीति में भाग ले। 'लेकिन मेरी समस्या यह थी कि मेरे सभी मित्र प्रमुख राजनीतिक बन गए। खुद रामकृष्ण हेगड़े भी मेरे मित्रों में से एक हैं। अगर मैं एक राजनीतिक दल में शामिल होती तो मुझे बाकी दलों के मित्रों की आलोचना करनी पड़ती। मैं कभी उसके बारे में सोच भी नहीं सकती।'

पति की मृत्यु के बाद सरोजा देवी की भविष्य में और उसके लिए योजनाएँ बनाने में कोई दिलचस्पी नहीं रही है। **(वीकली से साभार)** ■

वह माधुरी से माधवी बनी और सत्यजीत राय की फिल्म 'चारूलता' की चारू बनने के बाद दुनिया भर के लिए 'चारूलता' हो गई। साहित्यिक कृतियों के जटिल महिला चरित्रों को जीवंत बनाकर विविध रंग भरने के लिए माधवी के अलावा और किसी के बारे में सोचा भी नहीं जाता था।

दर्शकों के अथाह स्नेह के सहारे प्रतिभाशाली अभिनेत्री **माधवी चक्रवर्ती** ने अपने अभिनय के ४२ साल पूरे कर लिए हैं। यानी स्वाधीन भारत और माधवी हमउम्र हैं। १९४७ में अभिनेत्री प्रभा देवी का हाथ थामकर मिनर्वा थिएटर में पहली बार माधवी ने कदम रखा था। तब उनकी उम्र थी मात्र सात वर्ष। नाटक का नाम था **दुई पुरुष** और इसके निर्देशक थे छवि विश्वास। इसके बाद शिशिर कुमार भादुड़ी के नाटक 'सीता' में आत्रेयी के डुप्लीकेट चरित्र में कई बार अभिनय किया। तब उनका नाम माधवी नहीं, माधुरी था। १९५६ में तपन सिन्हा की फिल्म 'टोंसिल' में पहली बार माधुरी मुखोपाध्याय के नाम से नजर आई थीं। माधुरी से माधवी तक आने में उन्हें चार साल का वक्त लगा। १९६० में मृणाल सेन की 'बाइशे श्रावण' में उन्होंने अपना नाम माधुरी से बदलकर माधवी रख लिया था। इसके साथ एक दिलचस्प प्रसंग जुड़ा हुआ है। 'बाइशे श्रावण' के निर्माता विजय चट्टोपाध्याय पहले इस भूमिका के लिए एक नई लड़की को साइन करना चाहते थे, पर मृणाल दा ने इस भूमिका के लिए माधुरी का नाम सुझाया। विजय दा ने माधुरी को साइन तो कर लिया, पर वे इस अभिनेत्री को नवोदित नायिका के रूप में पेश करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने माधुरी का नाम बदल दिया। उन दिनों को याद करके माधवी कहती है, "विजय दा एक दिलचस्प इंसान थे। हमेशा मुझसे कहते थे तुम इतनी कैलेस (बुद्धू) क्यों हो? तुम्हारे अंदर भरपूर टैलेंट मौजूद है। तुम्हारी स्क्रिन पर्सनालिटी अद्भुत है। विजय दा के मुँह से निकले ये दो अपरिचित शब्द 'स्क्रिन' और 'पर्सनालिटी' ने मुझे काफी उत्प्रेरित किया था। मेरे बारे में उनकी धारणा को मैं कितना सार्थक कर पाई हूँ, यह बताना मुश्किल है। पर उनके दिए नाम को मैंने अब तक बचा रखा है। इसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ।"

नाटकों में माधवी ने अपनी शुरूआत बाल कलाकार के रूप में की थी। लगातार दस वर्ष तक मिनर्वा थिएटर के कई नाटकों में उन्होंने काम किया था। अधिकांश नाटकों में ही वे लड़के की भूमिका में दिखाई पड़ती थी। लड़की होकर उन्हें सिर्फ इसलिए लड़का सजना पड़ता था, क्योंकि उन दिनों शिशु अभिनेता नाटकों के लिए नहीं मिलते थे। उस समय नाटकों में की गई उनकी कुछ उल्लेखनीय भूमिकाएँ थीं-अहिंद्र चौधरी की 'भोला मास्टर' में भोला के बेटे की भूमिका, छवि

हासिल करने में कोई खास रुचि नहीं ले रही हैं। इस संबंध में उनका दो टूक जवाब है-"अभिनय जीवन के पचास साल पूरे करने में मेरी कोई खास रुचि नहीं है। सच तो यह है कि मैं बहुत थक गई हूँ। शारीरिक रूप से नहीं, मानसिक रूप से। शायद मैं 'बैक डेटेड' हो चली हूँ। सिनेमा का यह दौर अच्छा नहीं लग रहा है। मैंने कलाकारों की दो पीढ़ी देखी हैं। दोनों में कितना फर्क है। पहले काम के प्रति निष्ठा और नया कुछ सीखने का आग्रह भरपूर देखने को मिलता था। पर आज सब कुछ किसी तरह एडजस्ट किया जा रहा है। परपेक्शन नहीं है।"

माधवी की सरलता और विनम्रता ही उनके व्यक्तित्व का सबसे बड़ा माधुर्य है। कभी महान् साहित्यिक कृतियों के जटिल महिला किरदारों को जीवंत रंग भरने के लिए माधवी के अलावा किसी दूसरी अभिनेत्री की बात सोची ही नहीं जाती थी। वहीं माधवी इन दिनों पति और दो पुत्रियों के बीच रहकर पूरी तरह से घर-गृहस्थी में व्यस्त हैं। उनकी फिल्मी व्यस्तता अब नहीं के बराबर है। बस साल में तीन-चार फिल्मों में माँ, भाभी की संक्षिप्त भूमिका में वो दिखाई पड़ जाती हैं। अब उनके ढेर सारे प्रशंसक चाहते हैं कि इस गति से ही सही, वे अपने अभिनय जीवन के पचास साल अवश्य पूरे करें।

माधवी मुखर्जी

एक विशेष अध्याय परियों के संसार का

विश्वास की 'दुई पुरुष' में श्यामा, 'प्रफुल्ल' में जादव, 'रीतिमत नाटक' में मधुमय, 'शाहजहाँ' में सिपार जैसे बालकों के पात्र। तब सिर्फ मिनर्वा थिएटर से ही नहीं दूसरे अन्य थिएटरों से भी माधवी के पास लड़का सजने के लिए प्रस्ताव आते थे। मिनर्वा बंद हो जाने के बाद करिंथियान थिएटर वाले उसे अपने पास ले आए। वहाँ एक ही नाटक को अलग-अलग दो भाषाओं में पेश किया जाता था। शाम को बंगला नाटक होता था और रात को हिंदी नाटक। माधवी ने हिंदी नाटकों में भी काम किया है।

माधवी को फिल्मों में लाने का श्रेय श्याम लाहा को जाता है। श्याम लाहा ही सर्वप्रथम माधवी को प्रेमेंद्र मित्र के पास ले गए थे। यह १९५० की बात है। तब मित्र की तीन फिल्में 'दुई रिहाई', 'कांकनलता लाइट रेलवे' और 'सेतु' में नायिका के बचपन की भूमिका में माधवी दिखाई पड़ी थीं। इसी तरह १९५२ में प्रदर्शित प्रणव राय की फिल्म 'प्रार्थना' में सुप्रिया देवी के बचपन की भूमिका माधवी ने ही निभाई थी। इस हिसाब से देखें तो फिल्मों में माधवी ने चालीस साल गुजार लिए हैं। वैसे रंगमंच और फिल्म के अलावा बहुत दिनों तक यहाँ के बंगाली जात्रा में भी माधवी ने काम किया है। इतने सालों से मंच और फिल्मों में लगातार काम करने वाली शायद ही कोई दूसरी अभिनेत्री होगी। कुछ साल पहले विश्वरूपा थिएटर में बंगाली फिल्मों के विख्यात नायक सौमित्र चटर्जी के साथ 'फेरा' नाटक में माधवी ने अद्भुत भाव-अभिव्यक्ति से दर्शकों का मन जीत लिया था। इसके विपरीत, फिल्मों में उनकी स्मरणीय भूमिकाओं की संख्या ज्यादा है। इनमें सत्यजीत राय की **चारूलता, महानगर** और **का पुरुष ओ महापुरुष,** ऋत्विक घटक की **सुवर्ण रेखा,** मृणाल सेन की **बाइशे श्रावण,** तपन सिन्हा की **आंधार पेरिये, बाँछारामेर बागान,** हरिसाधन दासगुप्त की **एकइ अंगे एतो रूप,** नारायण चक्रवर्ती तथा विमल भौमिक की **दिवारात्रिर कावा,** पूर्णेंद पत्रा की **स्वप्न निये, मालंच** और **स्त्रीरपत्र,** अग्रदूत की **छद्मवेशी,** अग्रगामी की **शंखबेला, बिराज बहू** आदि प्रमुख हैं।

इतनी सारी भूमिकाओं में खुद माधवी को किस फिल्म में की गई अपनी भूमिका सर्वाधिक पसंद है, यह सवाल उनके ढेर सारे प्रशंसकों ने जब-जब उनसे पूछा, उनका जवाब एक ही मिला-"चारूलता में की गई भूमिका मुझे आज भी सबसे ज्यादा आकर्षित करती है। पच्चीस साल से अधिक हो गए हैं, पर आज भी मैं 'चारूलता' को भूल नहीं पाई हूँ। भूल भी कैसे सकती हूँ। विश्व के फिल्माकाश में इसी 'चारूलता' ने मुझे स्थापित किया है। सच तो यह है कि मृणाल दा की 'बाइशे श्रावण' से मुझे जो संघर्ष करना पड़ा था, उसका पहला और सुखद परिणाम मैंने 'चारूलता' में देखा था। पारिश्रमिक के मामले में मैं शुरू से ही काफी उदासीन रही हूँ। कई फिल्मों में काम करने का पैसा मुझे पूरा नहीं मिला है। चारूलता के निर्माता आर.डी. बंसल से पारिश्रमिक के मामले में कोई शिकायत नहीं थी। उनकी पिछली फिल्म 'महानगर' में काम करने का पूरा पारिश्रमिक मुझे मिला था। 'चारूलता' में उन्होंने मेरा पारिश्रमिक कुछ बढ़ा ही कर दिया था। इस हिसाब से 'चारूलता' ने मुझे यश और सम्मान दोनों ही दिया।"



जैसा कि आपको ज्ञात ही होगा कि देश की आजादी और माधवी का अभिनय जीवन हम-उम्र हैं और सात साल बाद माधवी अपने अभिनय जीवन के पचास साल पूरे कर लेंगी। यह किसी भी कलाकार के लिए अत्यंत गौरव की बात होती है। पर खुद माधवी ऐसा कोई गौरव

बंगला फिल्मों में अच्छी कहानी का जो अभाव देखने को मिला है, क्या उस संकट से बंगला फिल्मोद्योग कुछ उबरा है?

बस कुछ हद तक ही। इसकी रफ्तार बहुत मंद है। इसमें अभी भी काफी समय लगेगा। इधर काफी संभावनाशील निर्देशक और कलाकार आ रहे हैं। यही लोग इस संकट को खत्म करने के मूल कारीगर हैं। फिर दर्शक जीवन से जुड़ी कुछ

जवाब नहीं है।

आपने कई विख्यात अभिनेताओं के साथ काम किया है, उनके बारे में आपकी स्मृति कैसी है? क्या आपका कोई प्रिय अभिनेता भी है?

उत्तम कुमार एक अत्यंत अच्छे अभिनेता थे। अपने महत्व के बारे में वे किसी को कुछ नहीं जानने देते थे। उनकी मृत्यु के बाद मैंने भी इस बात को समझा। मुझे 'उर्वशी' पुरस्कार मिलने पर कलाकारों द्वारा आयोजित एक अभिनंदन समारोह में उन्होंने आपको मेरा 'फैन' कहा। मैं तो एकदम रोमांचित हो उठी। इससे अधिक मैं सोच भी नहीं सकती थी। मैंने सौमित्र चटर्जी के साथ काम किया है। वे काफी गंभीर इंसान हैं। विश्वजीत बहुत बड़े दिल के व्यक्ति हैं। सच तो यह है कि हर कोई उनके साथ काम करने का मजा लूटना चाहेगा। अनिल चटर्जी के साथ मैंने 'महानगर' से 'रुद्रवीणा' तक कई फिल्में की हैं। अभी तक वे मेरे अच्छे दोस्त हैं। वैसे कभी भी मेरा कोई खास पसंदीदा अभिनेता नहीं हुआ।

इन दिनों आप फिर कई फिल्मों में शूटिंग कर रही हैं। ये कैसी फिल्में हैं? क्या आप नाटकों में पुनः काम करेंगी?

इधर ज्यादातर फिल्मों में मैं माँ की भूमिका कर रही हूँ। कुछ नई फिल्में शीघ्र प्रदर्शित भी होंगी। फिलहाल तो किसी नाटक में काम नहीं कर रही हूँ। पर एक नाटक सौमित्र के साथ शीघ्र करूँगी। उसके बाद नाटकों में काम करने का कोई इरादा नहीं है।

आपकी तीन यादगार फिल्मों के निर्देशक सत्यजीत राय हैं। उनकी फिल्म 'महानगर', 'चारूलता' और 'कापुरुष ओ महापुरुष' में आपकी भूमिका बिल्कुल अलग-अलग ढंग की थी। यह सब फिल्म के प्रति आपके प्रतिबद्धता के कारण संभव हुआ या राय जैसे विख्यात निर्देशक के साथ काम करने के कारण?

मैं तो यह सोच भी नहीं सकी थी कि उन्होंने मेरा चयन कैसे किया। 'महानगर' में मैं सिर्फ अपनी भूमिका के साथ जीती रही। राय के साथ काम करना बड़ा आसान एवं तनावरहित है। सारी चीजें वे आपके लिए व्यवस्थित कर देते हैं। उनका तर्क काटना मुश्किल हो जाता है। 'चारूलता' में मेरी भूमिका में एक चुनौती थी, 'कापुरुष ओ महापुरुष' में तो मेरी भूमिका एकदम अलग-थलग एवं भिन्न थी। इसे करने में भी बहुत मजा आया। बहरहाल इन सारी फिल्मों में अपने सशक्त अभिनय के लिए मैं सारी क्रेडिट सत्यजीत राय को ही दूँगी। उनकी फिल्में सिर्फ उनकी होती हैं।

आपने एक फिल्म का निर्माण भी तो किया था?

हाँ, बहुत साल पहले एक फिल्म बनाई थी। जिसके निर्देशक विजोय बोस थे। अब तो उस फिल्म का नाम भी भूल गई हूँ। (कुछ हँसते हुए) इसके बाद और फिल्म बनाने की इच्छा नहीं हुई। यह मुझे ज्यादा सुविधाजनक नहीं लगा।

एक संस्था गरीब और पुराने कलाकारों को मदद करती है। हम इस संस्था को और भी विस्तृत बना रहे हैं, ताकि बीमार और असहाय कलाकारों को ज्यादा मदद मिल सके। ■



फिल्म पगड़ी (१९४८) में शशिकला और कामिनी कौशल

पर्दे की सबसे दुष्ट औरत

जहर भरी आँखों वाली कुलदीप कौर ने एक जमाने में अपना डंका बजाया था। दिल में जहर सहेजने वाली बिंदु ने भी नायक-नायिका के प्रेम-मार्ग में जहरीले काँटे बोए हैं। प्रमिला, सोफिया, मनोरमा ने भी अपने-अपने समय में अपने-अपने ढंग से दुष्टता निभाई है। फिर भी खलनायिका कहने पर सबसे पहले आँखों के सामने जो चेहरा आता है, वह शशिकला का है।

'आरती' में उसने घर की दीवारों को ग्रसने वाली और घर के लोगों के दिलों को मुरझा देने वाली भूमिका साकार की है। वह जबान मीना कुमारी पर चलाती है और उन कोड़ों के निशान दर्शकों पर देखे जा सकते हैं। 'हमराही' में शशिकला की हत्या होती है। उसके पाप कर्म इतने बढ़े हुए होते हैं और दर्शकों से उसकी इतनी दुश्मनी हो चुकी होती है कि उसका वह अंत बुरा नहीं लगता। अभिनय-सामर्थ्य की इससे बड़ी जीत और क्या हो सकती है।

शशिकला ने एक्स्ट्रा के बतौर फिल्म जगत में प्रवेश किया। 'जीनत' की 'आहें न भरी, शिकवे न किए' कव्वाली में वह श्यामा के साथ चमकी। कुछ फिल्मों में हीरोइन का रोल भी अदा किया। बाद में उसे खलनायिका के रूप में किसी हीरोइन से भी अधिक लोकप्रियता मिली। बीच में फिल्मों से संन्यास लेने के बाद अब वह फिर दर्जनों फिल्मों में काम कर रही है। उसकी माँग अभी भी बनी हुई है।

शिरीष कणेकर

चीजें चाहते हैं। यह कई निर्देशकों को समझ में आ रहा है।

क्या आप यह कहना चाहती हैं कि दर्शक के मन की बात निर्देशकों को समझ में आ रही है?

हाँ, कुछ-कुछ तो ऐसा है ही। पिछले वर्षों में प्रदर्शित कई एक फिल्मों ने दर्शकों की मानसिकता को समझा है। उसी का परिणाम है कि इन दिनों पहले की अपेक्षा बंगला फिल्मों का मार्केट काफी अच्छा है।

एक अच्छी फिल्म के लिए सबसे ज्यादा किस बात का ध्यान रखना जरूरी है?

वैसे तो कई बातें हैं, जो एक अच्छी फिल्म में अपनी महत्वपूर्ण हिस्सेदारी निभाते हैं। पर मेरे खयाल से एक अच्छी फिल्म की प्राथमिक शर्त है उच्च स्तर की कहानी और पटकथा। इसके बाद निर्देशन और अभिनय की बारी आती है।

फिल्मों में राजनीतिक स्वर जिस तरह से मुखर हो रहा है, उसे आप किस दृष्टि से देखती हैं?

राजनीति तो हमारे सामाजिक जीवन में घुल-मिल गई है। इसे किसी भी तरह से अपने आपसे अलग नहीं किया जा सकता है। रोजमर्रा की जिंदगी में जिसके प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा रहा है, उसका सेल्यूलाइड में आना तो स्वाभाविक है। पर हाँ, इस बात का जरूर ध्यान रखना पड़ेगा कि फिल्म के साथ उसकी ट्यूनिंग अच्छी बनी रहे, कहीं से भी ऐसा नहीं लगे कि वह फिल्म के साथ बँधी हुई नहीं है।

आपने बंगला फिल्मों के लगभग सभी बड़े निर्देशकों के साथ काम किया है। उनकी कार्य शैली के बारे में कुछ बताएँगी?

मैंने तरुण मजूमदार के साथ 'गणदेवता' में काम किया है। वे काफी व्यवस्थित ढंग से काम करते हैं। तपन सिन्हा के 'आधार पेरिये' में मैंने एक लड़की की भूमिका अदा की थी। तपन दा अभी तक मेरे एक अच्छे दोस्त हैं, पर इसके अलावा वे एक बहुत अच्छे फिल्मकार भी हैं। उनमें बहुत सारे गुण हैं। उनकी सभी फिल्में हिट हुई हैं। वे बहुत अच्छे और सरल ढंग से अपने काम को अंजाम देते हैं। उनके साथ काम करने में एक आजादी का एहसास होता है। मृणाल सेन का व्यक्तित्व अनुपम है। यदि मैं उनको भगवान कहूँ तो वे चिढ़ बैठेंगे, क्योंकि वे सबको अपनी तरह मानते हैं। दूसरी ओर शूटिंग के समय वे बिल्कुल अलग तरह के इंसान बन जाते हैं। सत्यजीत राय के बारे में क्या कहूँ। सिर्फ इतना ही कहूँगी कि उनका कोई

कामिनी कौशल शहीद से शहीद तक

दुर्गा खोटे पहली पढ़ी-लिखी नायिका थी। कामिनी कौशल ने बी.ए. आनर्स किया था-अँगरेजी साहित्य में विशेष योग्यता के साथ। १९४६ में बुद्धिजीवी फिल्मकार चेतन आनंद ने **नीचा सागर** में कामिनी को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया। व्यावसायिक तौर पर इस असफल फिल्म ने कान फिल्म समारोह में प्रविष्टि पाकर भारत का नाम रोशन किया था।

१९४८ में रमेश सहगल की **शहीद** में दिलीप और कामिनी ने भारत के दर्शकों को मोह लिया। अभिनय के अति नाटकीय तौर-तरीकों को तिलांजलि देकर 'शहीद' में पहली बार 'अंडर प्ले' करने की पाश्चात्य विधा अपनाई गई थी और यह खूब सफल भी रही। स्वाभाविक अभिनय का स्वर्णकाल प्रारंभ हुआ नरगिस, कामिनी कौशल, गीताबाली, मीनाकुमारी, निम्मी के आगमन से और मज़ेदार बात यह है कि ये सारी प्रथम श्रेणी की प्रतिभाएँ लगभग एक साथ परदे पर आईं।

जब अभिनय में नाटकीयता का दौर था, तब कामिनी कौशल जैसी अभिनेत्री सहज, स्वाभाविक और ताजगी भरा अभिनय लेकर आई थी। वह बहु-आयामी तारिका है। दिलीप-कामिनी की जोड़ी 'शहीद' से शुरू होकर 'आरज़ू' पर खत्म होती है। इसके बाद कामिनी कौशल ने चरित्र भूमिकाएँ स्वीकार कीं। आज भी वह माँ और दादी के रोल में मौजूद मिलती है। अपना अधिकांश समय खिलौने तथा गुड़िया बनाने में गुजारती है कामिनी।

कामिनी कौशल का एक प्रेमिका के रूप में भारतीय फिल्मों में वही स्थान है, जो हमारे धर्म और साहित्य में राधा का है। राधा-कृष्ण से उम्र में बड़ी है और संरक्षण का अद्भुत भाव पैदा करके युवा कृष्ण को आकर्षित करती है। निकट होने पर अनन्य प्रेमिका का रूप धारण करती है। यह छवि विरह में और प्रखर हो उठती है। कामिनी ने नदिया के पार, आरजू और शबनम में यही किया। यह राधा वाला स्वरूप देवआनंद के साथ "जिद्दी" में बहुत उभरकर आया। कामिनी के अंतर्मन में राधा की ग्रंथि का प्रभाव इतना संपूर्ण था कि जब वे १९६५ में मनोज की माँ बनकर कई फिल्मों में आई तो कभी-कभी यह भ्रम होता था कि उन्हें अपने पुत्र से कुछ ज्यादा ही प्यार है। अभिनय की दृष्टि से यह एक खोट थी, परंतु शीघ्र ही कामिनी ने इसे दूर कर दिया।



जैसे मदर इंडिया नरगिस की प्रतिनिधि फिल्म है, उसी तरह कामिनी कौशल की प्रतिनिधि रचना **"बिराज बहू" है**, जो बिमल राय ने १९५५ में बनाई थी। इसी फिल्म के लिए कामिनी को फिल्मफेयर की श्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार भी मिला था। जिस उच्च स्तर का अभिनय कामिनी ने 'बिराज बहू' में किया, उतना ही अच्छा अभिनय उसने १९६३ में बनी **गोवान** में किया है। परंतु 'गोदान' के असफल होने के कारण उन्हें उचित ख्याति नहीं मिली। यह अजीब इत्तफाक है कि उच्च शिक्षा प्राप्त कामिनी ने साहित्यिक कृतियों पर आधारित 'बिराज बहू' और 'गोदान' में श्रेष्ठतम अभिनय किया।

कामिनी के पास बहुमुखी प्रतिभा है। उसने विविध प्रकार की भूमिकाएँ कीं, उदाहरण के लिए 'शहंशाह' जैसी ऐतिहासिक फिल्म, 'शबनम' और 'चालीस बाबा एक चोर' जैसी हास्य फिल्में झांझर जैसी फंतासी, 'पूनम', 'आस' और 'आँसू' जैसी परंपरागत रोने-धोने की भूमिकाएँ भी कीं, जो मीनाकुमारी के हिस्से में आती थीं। दिलीप के साथ की गई रोमांटिक फिल्में अपने समय की अति प्रसिद्ध फिल्में थीं। अभिनय के क्षेत्र में कामिनी एक सशक्त हस्ताक्षर रही हैं। बच्चों से उन्हें बेहद लगाव रहा है। टाइम्स ऑव इंडिया समूह की बाल-पत्रिका पराग में बरसों तक उन्होंने **चाट-पानी** कॉलम लिखा। बाल चल चित्र समिति की चेअर परसन रहीं। इन दिनों टी.वी. सीरियल बनाने में व्यस्त हैं। ■

डर ना, मुहब्बत कर ले...



वो भी एक जमाना था। कुक्कू का बंबई में आलीशान बंगला था। उस बंगले की दीवारों में बाहर की ओर से आल्मारियाँ बनी हुई थीं, जिनमें तरह-तरह की चप्पलें सलंग सजी हुई रहती थीं। मालकिन अपनी मर्जी के अनुसार पैरों में चप्पल डालती और गर्व के साथ घूमने जाती। उसके चरण-स्पर्श से स्टूडियो पवित्र हो जाते। उसके पद-संचालन से दर्शक पावन हो उठते। उसकी उपस्थिति से निर्माता की चाँदी हो जाती। कोई न कोई बहाना ढूँढकर उसका नाच डाला जाता। हिन्दी फिल्मों में जन्म दिन, विवाह-समारोह, चेरिटी शो जैसे बहुतायत से दिखाई देने वाले प्रसंगों की नींव **कुक्कू** के कारण पड़ी। कुक्कू का नाच होना मँगता। उसके लिए कोई भी कारण खोजा जाता। 'दिल्ली से आया टिंगू' (एक थी लड़की) शमशाद के इस नखरे भरे गाने पर कुक्कू उतना ही नखरे भरा नाच करती और दर्शक परदे पर पैसे फेंकते। दर्शकों को परदे पर पैसे फेंकने के लिए उत्तेजित करने वाली वह पहली नर्तकी थी। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि पूरी हो चुकी फिल्म में वितरकों की हठ के कारण कुक्कू का नाच डालना पड़ा।

सामान्य रूप, साँवला रंग और छरहरे बदन की यह एंग्लो इंडियन लड़की पहले बाल कलाकार के रूप में फिल्मों में आई। 'अंदाज' में उसका बड़ा रोल था। एकाध फिल्म में नायिका भी बनी। हिन्दी का दोषपूर्ण उच्चारण उसे नायिका या सहनायिका के रूप में स्थिरता नहीं दे सका। 'लैला मजनू' में वह नर्तकी के रूप में सामने आई और हेलन के हाथ में मुकुट सौंपने तक परदे की नृत्य-साम्राज्ञी बनी रही।

बाद में निर्माता उसे भूल गए। समय के अंतराल से प्रेक्षक भी भूल गए। कुक्कू का बंगला हाथ से निकल गया। दीवारों की आल्मारियों में रखी चप्पलें चली गईं। फैशनेबल चप्पलें पहनकर घूमने की उम्र निकल गई। औकात गई और पैरों का दम भी गया। कुक्कू को कैंसर हो गया। एक जमाने के नचैये पैर अस्पताल के दरवाजे पर लड़खड़ाते खड़े रहने लगे। आखिर एक दिन उसकी मौत हो गई।

शिरीष कणेकर

बरस चुकी बदली
बीना राय

जब अनारकली को जिन्दा दीवार में चुनवा दिया गया तो **बीना राय** ने जन्म लिया। इनके रूप का आकर्षण, संवेदनशीलता और शुद्ध प्रतिभा ने हमेशा के लिए दर्शकों के दिल में जगह बना ली। शहर-शहर में अनारकली के आखरी सीन में दर्शकों की आँखें गीली हो गई, पर बीना राय उनकी आँखों का तारा बन चुकी थी। अनारकली के जीवन की ट्रेजडी से बीना राय अछूती न रह सकी। वे दिमाग की बजाए भावुकता से काम लेती थीं और इसीलिए पतंगे की तरह लौ की ओर खिंची चली गईं। संवेदनशील बीना राय फिल्मी दुनिया की खुदगर्जी न झेल पाई। उन्हें अपने नजदीकी लोगों की हरकतों से गहरा धक्का लगा। आज वे अपनों के बीच अकेली हैं। उनके आँसू भी सूख चुके हैं। आखिर जुबली नायिका रही हैं। उनकी मुस्कान का तनाव, आवाज में खुसफुसाहट और आँखों में डर की हल्की छाया पूरा किस्सा बयान करती है। 'मैं बड़ी नर्वस सी हो गई हूँ।' वे खोखली हँसी हँसती हैं और अटपटे तरीके से अचानक खामोश होकर अगले सवाल का इंतजार करने लगती हैं।

बीना राय टुकड़ों में बोलती हैं, रुक-रुक कर। "मैं हमेशा फिक्र करती रहती हूँ। यह मेरी आदत हो गई है। मैं बार-बार अपने को समझाती हूँ कि छोटी-मोटी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, लेकिन मेरा दिल दुख जाता है। इसमें देर नहीं लगती। घर में सभी मेरा स्वभाव जानते हैं और मुझे नाराज नहीं करते। मगर लगता है, मेरी जरूरत से ज्यादा संवेदनशीलता मुझे नुकसान पहुँचा रही है।" उनकी आवाज दब जाती है और वे दूसरी ओर देखने लगती हैं।

आज भी उनके चेहरे पर दुख की मार नहीं है। आगे की ओर और कान के पास सफेद हुए बाल असली नहीं लगते। बदन में छरहरापन कायम है। वे उम्र की मार से बची हुई हैं। कई लोग उनमें अब और अधिक खूबसूरती और शालीनता पाएँगे। मगर आँखों का भाव बदल चुका है। उनके प्रशंसक मुस्कान में भी परिवर्तन महसूस करेंगे।

बीना राय का असली नाम कृष्णा सरीन था। मध्यमवर्गीय परिवार की कृष्णा को बचपन से फिल्में बेहद आकर्षित करती थी। उन्हें सपने में भी यह खबर न थी कि उनकी बेटी अपनी आदर्श अभिनेत्री खुर्शीद के पदचिह्नों पर चलना चाहती है। १९५०-१९५५ के बीच बीना राय के जीवन में कुछ ऐसा घटा जो अक्सर सिर्फ फिल्मों में देखने को मिलता है। वे लखनऊ में पढ़ रही थीं, तभी उन्होंने एक विज्ञापन देखा। उसमें किशोर साहू ने अभिनेत्री बनने की इच्छुक लड़कियों से आवेदन पत्र माँगे थे। वे कालीघटा में किसी नए चेहरे की नायिका को लेना चाहते थे। बीना राय बताती हैं, मैंने गुप्त रूप से आवेदन पत्र भरा। मुझे कतई उम्मीद न थी कि वे मुझे स्क्रीन टेस्ट के लिए भी बुलाएँगे। लेकिन किस्मत का करिश्मा देखिए, कुछ ही दिनों में मैं किशोर साहू के सामने खड़ी होकर उस जमाने की लोकप्रिय फिल्मों के डॉयलाग बोले जा रही थी।

उनका चुनाव होने पर खुशी तो हुई, पर वह उस डर के आगे फीकी पड़ गई कि घर वाले जब इस रहस्य को जानेंगे तो क्या गुजरेगी। जाहिर है, घर में विस्फोट हुआ, मगर बीना राय अपनी बात पर अड़ी रहीं। आखिर उनके माता-पिता ने इस शर्त पर इजाजत दे दी कि वह सिर्फ एक ही फिल्म में काम करेगी।

कालीघटा में जैसे ही वे छतरी लगाकर एक फ्रेंच गाना गुनगुनाते हुए परदे पर आई, दर्शकों ने उन्हें हाथों-हाथ ले लिया। उनकी इस सफलता को देखकर माता-पिता ने भी महसूस कर लिया कि उनकी बेटी सिर्फ एक फिल्म का करिश्मा होकर न रहेगी। उसे फिल्मी दुनिया में रुककर अपनी जीत सुनिश्चित करनी थी।

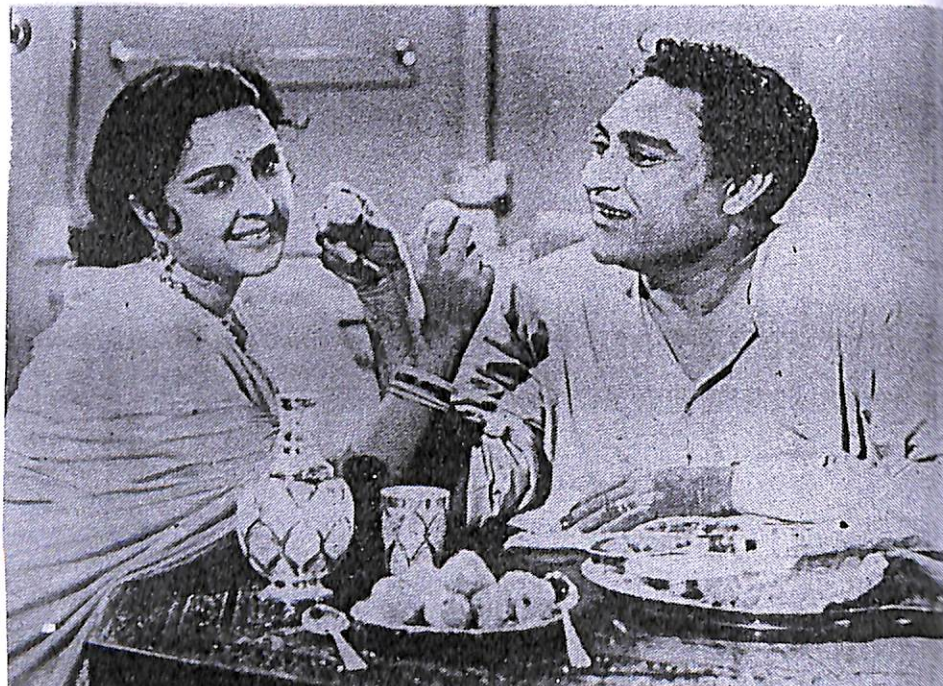
साल भर भी न बीता होगा कि बीना राय एक भड़कीले किस्म के बड़बोले आदमी को अपना दिल दे बैठी। बीना राय ने औरत फिल्म में प्रेमनाथ के साथ काम किया था। इसमें प्रेमनाथ को रिझाने का काम करना था। स्टूडियो में बीना राय, प्रेमनाथ को रिझाने की भूमिका अदा कर रही थी और स्टूडियो के बाहर प्रेमनाथ बाकायदा उन पर रीझ रहे थे। वे बताती हैं, "मुझे एक तेज-तर्रार, आक्रामक और चलती-पुर्जी औरत की भूमिका निभानी थी, जो बड़े बोल्ड तरीके से प्रेमनाथ को आकर्षित करने की कोशिश करती है। मैं वैसे ही प्रेमनाथजी के सामने बहुत शरमा रही थी और फिर वैसे सीन करने के बाद मारे शर्म के गड़ जाती थी।" कहने की जरूरत नहीं प्रेमनाथ, बीना राय की स्थिति का भरपूर मजा ले रहे थे।

कद्रदानों को शायद यह जानकर ताज्जुब होगा कि प्रेमनाथ को बीना राय के व्यक्तित्व ने चाहे जैसे आकर्षित किया हो, वह उसका अभिनय नहीं था। वे बताती हैं, "मुझे पहली बार परदे पर देखकर उन्होंने यह कहा था कि इस औरत को फिल्म लाइन छोड़कर बस अपना घर बसा लेना चाहिए। वह बस इसी के लायक है।" बीना राय ने फीकी मुस्कान के साथ यह सब याद किया।

◆ ◆ ◆

ग्यारह सौ लड़कियों में से आचार्य किशोर साहू ने लखनऊ की बीना राय को फिल्म 'काली घटा' की नायिका के लिए पसंद किया था। ईंट-दर-ईंट दीवार में चुनी जा रही अनारकली ने जब 'अलविदा' कहा, तो दर्शक रो पड़े। अनारकली की वही छबि संजोए दर्शक बीना राय को याद करते हैं। अपनी पहली फिल्म के दो साल बाद बीना राय ने फिल्म औरत के हीरो प्रेमनाथ से शादी कर ली। इस शादी ने 'अनारकली' को फिर से घरेलू-औरत बना दिया। ऐतिहासिक तथा पौराणिक भूमिकाओं को बीना राय ने उनकी पुरातनता के साथ जीवंत बनाया है।

फिल्म इंसानियत में अशोक कुमार-बीना राय



नाज को अपने पर नाज है

नाज भारत की पहली कलाकार हैं, जिन्हें कान के अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में पुरस्कार प्राप्त हुआ था। यह पुरस्कार उन्हें बाल-कलाकार के रूप में मात्र नौ वर्ष की उम्र में राजकपूर की **'बूट पॉलिश'** फिल्म के लिए मिला था। बाल-कलाकार के रूप में उनके नाम के साथ 'बेबी' शब्द काफी लंबे समय तक जुड़ा रहा। राजकपूर ने उनके परिवार से कहा था कि वे उन्हें पढ़ने के लिए स्विट्जरलैंड भेजें और पाँच छह वर्ष बाद पढ़ाई पूरी करने के बाद लौटने पर वे उन्हें नायिका की भूमिका देंगे तथा वही यह सारा खर्च उठाएँगे। यदि उनका परिवार इसके लिए तैयार हो जाता, तो वे निश्चय ही चोटी की अभिनेत्री बनी होतीं। लेकिन नाज की माँ इसके लिए तैयार नहीं हुई। वे यहीं रहीं और बाल-कलाकार के रूप में अभिनय करती रहीं। जब उनके नायिका बनने का मौका आया, तो उन्हें शुरू में बी श्रेणी की फिल्में मिलीं। कुछ दिनों बाद उन्हें **'कैसे कहूँ'** तथा **'बहू बेगम'** जैसी फिल्मों में सह-नायिका की भूमिकाएँ मिलीं। 'सच्चा-झूठा' में राजेश खन्ना की बहन की उनकी भूमिका भी काफी सराही गई। मगर यहीं से उन पर **'बहन'** का ठप्पा लग गया और उनके प्रशंसक भी उन्हें इसी रूप में 'इज्जत' देने लगे। बरसों वे इस उम्मीद के साथ राजकपूर से मिलती रहीं कि वे उन्हें कोई 'रोल' देंगे। नाज ने राजकपूर के चचेरे भाई सुबीराज के साथ विवाह किया है। राजकपूर उन्हें दिलासा देते रहे कि वक्त आने पर वे उन्हें कोई भूमिका देंगे।

बहरहाल, जिस समय नाज 'फर्स्ट लव' में नायिका के रूप में अपनी पहली भूमिका कर रही थीं, उन्हीं दिनों 'दिल अपना और प्रीत पराई' में वे बाल-भूमिका भी कर रही थीं। दोनों फिल्मों की शूटिंग एक ही स्टूडियो में चल रही थी और उन्हें बहुत ही थोड़े समय में बच्चे से वयस्क और वयस्क से बच्चा बन जाना पड़ता था।

"बेबी नाज ने नौ साल की उम्र में फिल्म बूट पॉलिश में अभिनय कर कान अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में पुरस्कार तो प्राप्त कर लिया, लेकिन 'बहन' का ठप्पा ऐसा लगा कि वे चाहते हुए भी नायिका नहीं बन सकीं। इस मामले में राजकपूर भी उसकी कोई मदद नहीं कर सके।"



नाज को सबसे बड़ी शिकायत यह है कि फिल्म उद्योग में प्रसिद्ध बाल-कलाकारों को वयस्क होने पर अच्छी भूमिकाएँ नहीं दी जातीं। तबस्सुम, डेजी ईरानी तथा हनी ईरानी, सभी के साथ कमोबेश यही हुआ। लेकिन इसके अलावा उन्हें अपनी जिंदगी से ज्यादा शिकायत नहीं है। उनके पति सुबीराज तथा एक बेटे और एक बेटी के साथ वे सुखी पारिवारिक जीवन बिता रही हैं। उनके पति सुबीराज का फिल्मी कैरियर मामूली-सा ही रहा। लेकिन दूरदर्शन पर उन्हें कुछ अच्छी भूमिकाएँ मिली हैं। स्वयं नाज भी यदा-कदा दूरदर्शन पर दिखलाई दे जाती हैं। उनकी कुछ उल्लेखनीय फिल्में हैं : 'भैरवी', 'काला आदमी', 'चक्कर पे चक्कर', 'कलियुग', 'रेत की दीवार', 'मेरा घर मेरे बच्चे' और 'रॉकेट गर्ल'।



१९५२ में प्रेमनाथ के साथ शादी करके उन्होंने अपना घर जरूर बसाया, मगर फिल्म लाइन नहीं छोड़ी।

बीना राय को मुगल-ए-आजम और अनारकली दोनों में नायिका का रोल देने की पहल की गई थी। उन्होंने अनारकली का चुनाव यों किया कि वहाँ उन्हें बेहतर टीम दिखाई दी। क्या जमाना था। वे स्टार बन चुकी थीं, पर फिर भी उन्हें नए सिरे से स्क्रीन टेस्ट देना पड़ा।

कुछ लोग रहस्यमय तरीके से विशिष्ट हुआ करते हैं। उनकी प्रतिभा गीताबाली या नूतन के स्तर की हो या उनके अभिनय में नरगिस या मीनाकुमारी जैसी गहराई हो, यह कहना संभव नहीं है। उनमें वहीदा रहमान जैसी विविधता भी न थी। मगर कुछ ऐसी कशिश थी कि सभी उन्हें जुबली स्टार मानते थे।

दक्षिण की जानी-मानी फिल्मी हस्ती, एस.एस. वासन तक ने फिल्म **इंसानियत** में उन्हें लेना जरूरी समझा। वह भी दिलीपकुमार के साथ। उस समय दिलीपकुमार अपनी लोकप्रियता की चोटी पर थे और बीना राय को फिल्म उद्योग में आए हुए बमुश्किल चार साल हुए थे।

यह अभिनेत्री अपनी तमाम खूबियों के साथ खुशनुमा गुजरे जमाने की याद दिलाती थी। नसीम और वीना की तरह वे भी सुन्दरता की मलिका थीं। उनका काम ऐतिहासिक चरित्रों को साकार करना था। शायद इसीलिए अनारकली के बाद १९६३ में बनी एम. सादिक की फिल्म ताजमहल सबसे अधिक लोकप्रिय रही। उन्हें भूमिका सजावटी किस्म की दी गई थी, मगर अपनी खूबसूरती, असहायता और भोलेपन के कारण उन्होंने उसी साधारण रोल में कमाल की कशिश पैदा की। मगर पुरस्कार के रूप में उन्हें सिर्फ १९६० में बनी फिल्म घूँघट के लिए फिल्म फेयर का पुरस्कार मिला। अजीब बात यह रही कि यहाँ वे कोई ऐतिहासिक चरित्र नहीं निभा रही थीं।

आश्चर्य की बात है कि बीना राय को केवल अंत में जाकर सती-सावित्री किस्म का रोल मिल पाया। हालाँकि उनके व्यक्तित्व में इसका पूरा सामान मौजूद था और १९६७ में जब उन्हें विजय भट्ट की फिल्म **रामराज्य** में इस किस्म की भूमिका दी गई, तब वे अपने जीवन में भी एक तरह से इसी रोल को निभा रही थीं। सत्रह बरस तक परदे की रौनक बढ़ाकर वे अचानक बरस चुकी बदली की तरह सीन से गायब हो गईं। वे कहती हैं, इसके लिए मुझ पर किसी ने कोई दबाव नहीं डाला, यह मेरा अपना फैसला था।

दिन और बरस बीतते गए, उन पर एक गहरी छाया आकर बैठ गई। नर्वस ब्रेकडाउन भी हुआ और उनकी आँखें बुझी-बुझी, सूनी-सूनी लगने लगीं। "हो सकता है, मेरे मन में फालतू की आशंकाएँ और डर यों समा गए हैं कि मैं बुढ़ाने लगी हूँ। आखिर अट्ठावन बरस की हो गई हूँ।" वे कहती हैं। मुझे ख्याल आया कहीं इसलिए तो नहीं कि वे इस कदर अकेली हैं?"नहीं- नहीं। मुझे अपने पति के लिए खासा वक्त निकालना पड़ता है। उनकी तबीयत ठीक नहीं रहती है... मगर फिर भी मैं उनके सामने अभी भी कितनी नर्वस हो जाती हूँ।" वे सप्रयास मुस्कराती हैं। "मैं घर से बाहर अधिक नहीं निकलती। पुराने दोस्तों से नाता टूट गया है। केवल निम्मी से मुलाकात हो जाती है। कुछ बुनाई, कुछ पढ़ाई करती हूँ, पर अब आँखें भी जवाब देने लगी हैं।" **(वीकली में प्रकाशित शिखा त्रिवेदी का आलेख, साभार)**

जमुना

दोनों नावों पर सफल सवारी

साक्षात्कार : शिखा परिहार

सस्ते किस्म के सिनेमा और नायिकाओं के शरीर प्रदर्शन-फिल्मों के इस दौर में यह बेहद प्रासंगिक है कि उस दौर की अभिनेत्रियों की याद ताजा करें, जो अपनी शर्तों पर बरसों तक फिल्मी दुनिया में टिकी रहीं। अपने लिए ऐसा दर्शक वर्ग तैयार किया जो तमाम आहों और वाहों के बावजूद उनकी देह से परे मन तक पहुँच पाया। ऐसी ही एक अभिनेत्री हैं **जमुना जुलुरी** जो लगभग ३० बरसों तक तेलुगु और हिन्दी फिल्मों में केंद्रीय भूमिकाएँ निभाती रहीं। फिल्मों के साथ-साथ ही जरूरतमंद लोगों की मदद करते प्रजानटी बन गई और आज आंध्रप्रदेश से चुनकर लोकसभा में कांग्रेस की सदस्या हैं। जमुना करीब दो सौ फिल्मों में काम कर चुकी हैं। नौ बार तेलुगु में सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री घोषित हुई और हिन्दी फिल्म **मिलन** के लिए फिल्म फेयर अवार्ड मिला है। हिन्दी फिल्मों में **मिस मेरी, हमराही, बेटी-बेटे, मिलन, दुल्हन, रिश्तेनाते, एक राज, यादगार, नौकर बीवी का** और **राज तिलक** तक एक सफल कैरियर रहा है।

पचपन पार करने के बाद भी पूरी सजगता और विनम्रता उनमें बरकरार हैं। अभी भी छरहरी देहयष्टिऔर खूबसूरत चेहरे की मालिक हैं। एक भरे पूरे अहसास से भरी वे मिलने वाले को भी बड़प्पन सौंप देने में माहिर हैं।

बातचीत के दौरान बहुत जल्दी ही अपनत्व से भर गई और बड़ी बहन जैसा रिश्ता बना लिया। लौटने में रात हो गई थी, कहने लगीं रात के आठ बजे इतनी दूर तुम्हें अकेली जाने नहीं दूँगी। अपने बेटे को ड्राइवर के साथ गाड़ी में घर तक छोड़ने भेजती हैं। दिल्ली की लम्बी दूरियाँ तब मुझे उनके और भी करीब ले आती है। घर आकर उनके पुराने फोटो निकाल कर देखती हूँ तो अचानक केसर में रंगे लाल चावलों का छोटा-सा पैकेट फोटो में से गिरता है। शायद कोई शुभ लक्षण हो या उनकी परंपरा। बहरहाल पेश है उनसे हुई बातचीत के प्रमुख अंश-

फिल्मों की शुरूआत कब और कैसे हुई, क्या संघर्ष करना पड़ा?

फिल्मों में १९५२ में आई। शौक से ही आई थी इसलिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। स्कूल में मंच पर अभिनय करती थी। तेरह-चौदह बरस की थी तब निर्देशक राजा राव ने देखा और एक फिल्म "पुट्टिलू" (मायका) में मुझे नायिका का रोल मिला। आपको आश्चर्य होगा कि आज से तीस बरस पहले नारी को लेकर ऐसी क्रांतिकारी फिल्म बनी थी जिसमें पुरुष की सत्ता और शोषण स्वीकारने से नायिका इंकार कर देती है। हालाँकि तब वह फिल्म फ्लॉप हो गई थी, क्योंकि पुरुष तो पुरुष, नारी समाज ने भी उस थीम को नकार दिया था क्योंकि उसमें भारतीय नारी की रोने-धोने वाली छवि नहीं थी।

हिन्दी फिल्मों में कब और कैसे आना हुआ?

जुपिटर फिल्म कंपनी में निर्देशक थे दीक्षित उन्होंने **"नया आदमी"** में काम दिया (यादों में खोते हुए वे उस फिल्म के गीत **"दिले बेताब ठहर"** गुनगुना भी देती हैं) नया आदमी के बाद तो जैसे हिन्दी फिल्मों की एक श्रृंखला ही बन गई 'मिस मेरी' में मीनाकुमारी की बहन बनी तो "हमराही" में राजेन्द्र कुमार की नायिका। हमराही का वह नशीला गीत **"मुझको अपने गले लगाले, ऐ मेरे हमराही"** तो बहुत ही प्रसिद्ध हुआ। सुनीलदत्त के साथ "बेटी बेटे" में भी मुख्य किरदार मिला और फिर आई बारी "मिलन" की। गाँव की अल्हड़ लड़की "गौरी" की भूमिका ने तो हिन्दी फिल्मों में मुझे बाकायदा स्थापित ही कर दिया। त्रिकोण के उस पात्र की बलिदानी भूमिका के लिए "फिल्म फेयर अवार्ड" भी मिला।

भाषा की समस्या नहीं आई?

नहीं, विशारद पास की हुई थी फिर फिल्मों में काम किया तो एक लखनवी मास्टर साहब से हिन्दी सीखी।

दक्षिण के कलाकारों की बंबइया फिल्मों में और बंबइया कलाकारों की दक्षिण की फिल्मों में आवाजाही लगी ही रहती है, आपको क्या फ[र्क] लगा दोनों में?

यह एक स्वस्थ्य परंपरा है, आवाजाही से दो[नों] तरफ की कलात्मकता का मेल होकर अभिनय [में] ज्यादा निखार आता है। इसीलिए दक्षिण से [आ]कई अभिनेत्रियों ने बंबइया फिल्मों में चोटी [का] स्थान बनाया। यों मसाला फिल्में तो दोनों जगह बनती हैं, लेकिन दक्षिण में कलात्मक फि[ल्में] भी उसीके समानांतर बनती हैं। वहाँ की फि[ल्मों] में (अच्छी) ऐसे ही किसी को नहीं लिया जा[ता] कुछ आधारभूत शर्तें होती हैं। नृत्य भी आ[ना] चाहिए। दूसरा जो फर्क है कि बंबई मार्केट ग्लैं[मर] से चलता है, यदि किसी की दो-तीन फि[ल्में] सुपरहिट हो जाएँ तो निर्माता निर्देशक ला[इन] लगाकर खड़े हो जाते हैं और एक भी फ्लॉप [हो] जाए तो सब दूर भागने लगते हैं, दक्षिण में ऐ[सा] नहीं है। यदि उन्हें लगता है कि यह जन्मजा[त] अभिनेत्री है तो फ्लॉप होने के बाद भी वे अप[नी] अगली फिल्मों में लेते हैं। "मिलन" हिट होने [के] बाद मुझे कई निर्माता-निर्देशकों ने बंबई में बसने की सलाह दी, लेकिन मैंने ऐसा नहीं कि[या]।

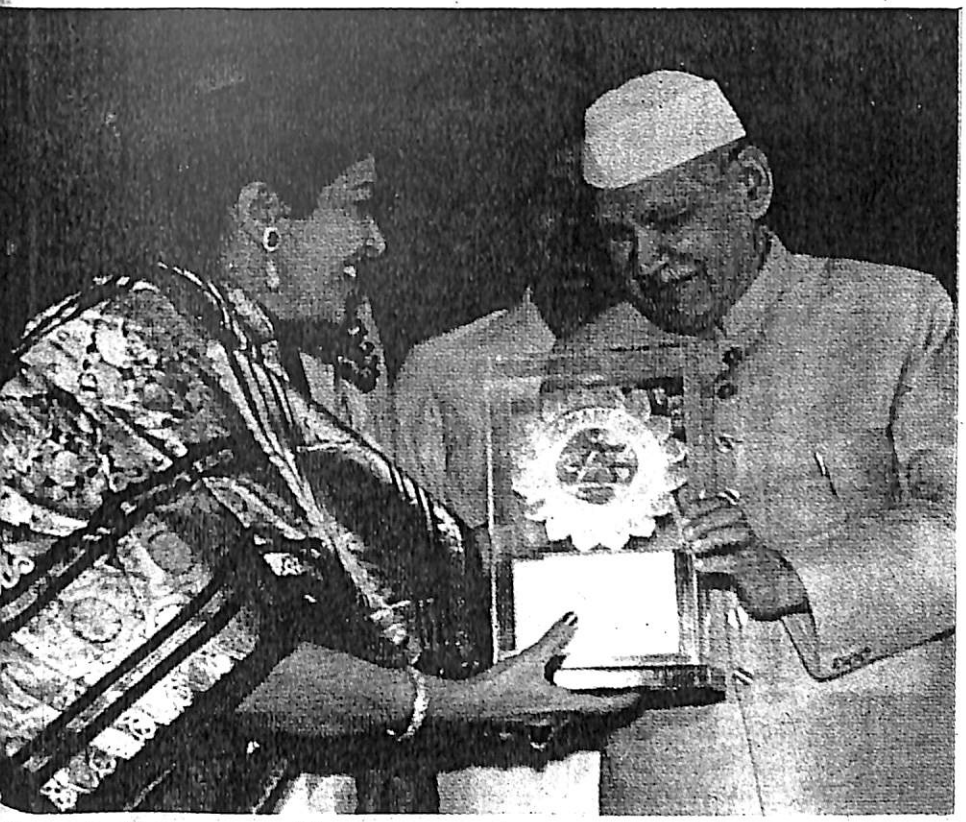
तेलुगु फिल्मों का कोई यादगार किरदार?

एक तो हिन्दी की "मदर इंडिया" के तेल[ुगु] रूपांतरण में नर्गिसजी वाली भूमिका मैंने की जो मुझे खास तौर से पसंद है। लेकिन दक्षिण [में] ज्यादातर मुझे दर्शक **"सत्यभामा"** के रूप [में] जानते हैं। एन.टी. रामाराव के साथ मैंने कर[ीब] पचास फिल्में कीं जिनमें से चार फिल्मों [में] रामाराव कृष्ण और मैं सत्यभामा बनी। सत्यभा[मा] कृष्ण की दूसरी पत्नी है, सुंदर [और] आत्माभिमानी। एक दृश्य में वह रूठ जाती है। कृ...

◆◆◆

घर और स्टूडियो दोनों मोर्चे पर जमुना सफल रही हैं। आज घर और राजनीति के मैदान में भी वह सफल है। दक्षिण भारत में सत्यभामा के रूप में मशहूर जमुना को हिंदी दर्शक इस गीत से बखूबी जानते हैं: मुझको अपने गले लगा ले, ओ मेरे हमराही। एक तारिका का जीवन सुख, शांति, समृद्धि और सार्थकता से भरपूर कैसे हो सकता है, इसकी मिसाल है जमुना।





उपराष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा से पुरस्कार प्राप्त करते हुए

खूब मान-मनौव्वल करते हैं। नहीं मानती तो पाँव पकड़ लेते हैं और सत्यभामा उन्हें जोर से ठोकर मारती है। बस इस सीन पर खूब तालियाँ बजती थीं। फिर जब राजनीति में आई और रामाराव के खिलाफ काम किया तो लोग यही कहते हैं कि फिल्मों में भी ठोकर मारी थी, राजनीति में भी मार दी।

व्यक्तिगत जिंदगी कैसी रही? फिल्मों, गृहस्थी और अब राजनीति में तालमेल कैसे कर पाईं?

(आँखों में संतुष्टि की एक विशेष चमक आ जाती है) वंडरफुल। व्यक्तिगत जिंदगी वाकई बहुत-बहुत सफल रही। जब फिल्मों में शिखर पर थी तभी शादी की। एक लड़का इंजीनियरिंग पढ़ रहा है बंगलोर में। एक लड़की स्कूल में है। पति जुलॉजी के प्रोफेसर थे, अभी ही रिटायर हुए हैं। बहुत शिक्षित परिवार है हमारे ससुराल का। मैं घर में हमेशा बहू बन कर ही रही। सब रस्मो-रिवाज निभाए। फिल्मों को गृहस्थी पर हावी नहीं होने दिया। पति ने फिल्मों के लिए भी उत्साहित किया और अब राजनीति में भी करते हैं। न तो वे बाधक बने और न ही कभी मेरी स्थिति का फायदा उठाया। मैं भी उनके काम में पूरी तरह रुचि लेती रही। जुलॉजी के प्रोफेसर वे हैं जानवरों से प्रेम मेरा बढ़ गया। घर में कई तरह के जीव-जन्तु मैंने पाल रखे हैं।

फिल्मों में रहते अभिनेत्रियों का नाम कई लोगों से जुड़ना और उनका शोषण आम बात है। आपके सामने ऐसी कोई स्थिति आई? कोई विवाद?

नहीं। असल में मैं फिल्मों में जरूरत के लिए नहीं आई थी इसलिए मैंने अपनी ही शर्तों पर काम किया। किसी का दबाव नहीं सहा। फिर सेट पर सिर्फ अपने काम से काम रखती थी। लोग मुझे घमंडी भी कहते थे, लेकिन विवादों से बचने का यही एक तरीका है। मुझे अपनी अभिनय क्षमता पर विश्वास था इसलिए कभी किसी के पास काम माँगने नहीं गई। उन दिनों रामाराव और नागेश्वरराव सुपरहिट हीरो थे। उनके आगे नहीं झुकने के कारण उन्होंने मेरा चार-पाँच साल तक बायकॉट किया। लेकिन मैं उनके आगे नहीं झुकी। मैंने उनसे यह भी नहीं पूछा कि मेरे साथ क्यों काम नहीं कर रहे हैं। मैंने नए हीरोज के साथ काम करना शुरू कर दिया और मेरी फिल्में हिट होने लगीं। हार कर उन लोगों ने अपनी जिद छोड़ दी।

क्या फर्क है, पहले और अब की फिल्मों में। उम्र के इस मोड़ पर अपने आप को कहाँ पाती हैं?

दक्षिण की फिल्में हों या बंबई की कोई मेहनत करना ही नहीं चाहता, न कलाकार न निर्देशक। आज निर्माता निर्देशक बड़े गर्व से कहते हैं कि हम बीस दिन में एक फिल्म बना लेते हैं। मैं कहती हूँ कि ऐसी फिल्में बीस दिनों में ही वापस भी तो आ जाती हैं। कलाकार भी पूरी कहानी नहीं जानते, सेट पर जाकर उस दिन का सीन सुन लिया और कर दिया। पहले तो पूरा माहौल तैयार होता था। एक पवित्रता का वातावरण होता था। स्टूडियो में जाने से पहले देहलीज छू कर अंदर जाते थे। टेक्नीशियन, कैमरामेन, स्पॉट बॉय सब का दर्जा बराबरी का रहता था। जहाँ तक आज अपनी स्थिति का सवाल है तो मैं बंबई के ज्यादातर कलाकारों को श्रेय देना चाहूँगी कि वे पुराने कलाकारों को इज्जत देना जानते हैं। राजतिलक के सेट पर हेमा मालिनी जैसे कलाकारों ने मेरे पैर छुए तो मन जैसे गद्‌गद्‌ हो गया। दूसरी तरफ दक्षिण के कलाकार आदर देना नहीं जानते। कभी मिलते भी हैं तो पहचानने से इंकार कर देते हैं।

फिल्में छोड़कर अचानक राजनीति में कैसे आ गईं?

तीस बरसों तक का लगातार सफल केरियर बहुत है। फिर वहाँ अब मेरे लिए माँ के रोल ही ज्यादा हैं। दूसरी तरफ मैं फिल्मों में रहते हुए भी आम लोगों से जुड़ी रही थी, पुराने छोटे-छोटे कलाकारों को चेरिटेबल कार्यक्रमों के जरिए मदद देती थी। उसी दौरान मुझे आंध्र में **प्रजानटी** का पुरस्कार मिला था, फिर १९८३ में **इंदिराजी** ने कांग्रेस में आने के लिए आमंत्रित किया। मैं इंदिराजी की शुरू से बड़ी प्रशंसक रही हूँ। उन्होंने रामाराव के खिलाफ मोर्चा लगाने को कहा और मैं जुट गई। रामाराव का जमकर मुकाबला किया और सफल हुई। वैसे मेरा परिवार स्वतंत्रता संग्राम से भी जुड़ा रहा है।

क्या फिल्मी सितारों को राजनीति में आना चाहिए?

जरूर आना चाहिए। यदि वे लोकप्रिय हैं और लोकप्रियता के जरिए लोगों की मदद और सेवा कर सकते हैं तो जरूर करना चाहिए। दूसरे उनके पास नाम, पैसा और प्रसिद्धि सब कुछ होती है इसलिए वे ज्यादा ईमानदारी से काम करते हैं। जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत सवाल है मुझे लगता है कि मैं राजनीति में आने से पहले ज्यादा काम कर पाती थी, अब कुछ नियम कायदों में बँधकर ही काम करना होता है। उतने लोगों से नहीं मिल पाती जितने लोगों से पहले मिल लेती थी।

जीवन से कोई शिकायत?

नहीं, सब कुछ मिला है। सफल फिल्मी जीवन, सफल वैवाहिक जीवन और अब राजनीति के द्वारा लोगों की सेवा कर रही हूँ। सच जीवन सार्थक लगता है, जब खोज कर पुराने बूढ़े कलाकारों, मंच पर, पर्दे की डोरी खींचने वालों और कठपुतली कलाकारों को उनका स्थान और एक पहचान दिलाने की कोशिश करती हूँ, तो उनके चेहरों की चमक जैसे जीवन के सारे शिकवे-गिले धो देती है। ■





गर्मियों में समर केप्स, बारिश में रेन कोट्स-छाते, सर्दियों में स्वेटर्स-शॉल्स एवं अन्य सौंदर्य प्रसाधनों के लिए प्रख्यात।

ऑल इण्डिया नॉवेल्टी स्टोर्स

90, म. गां. रोड, इन्दौर

* फोन : 38676

नईदुनिया प्रकाशन के तीसरे गौरवशाली फिल्म विशेषांक **"परदे की परियाँ"** का स्वागत करते हुए

सभी सिने प्रेमियों का **हार्दिक अभिनन्दन** करते हैं !

धार में मनोरंजन के क्षेत्र में सतत् प्रयत्नशील

(दिनेश बड़जात्या)	(कमल जायसवाल)	(बालकृष्ण झाम)	(विजयवर्गीय परिवार)
स्वप्निल सिनेमा	**मोहन सिनेमा**	**राधू सिनेमा**	**शेषनाग सिनेमा**
फोन : 2593	फोन : 2204	फोन : 2238	फोन : 2483, 2499, 2795

फिल्म विशेषांक "परदे की परियाँ" के लिए

हमारी **शुभ कामनाएँ !**

मेसर्स ए. एम. एस. के. ग्रुप

इंजीनियर्स एण्ड कांट्रेक्टर्स, भोपाल

शुभकामनाएँ

वर्षों से जन-जन की सेवा में सेवारत

भगवती बस सर्विस

सदर बाजार, बाग, जिला–धार, फोन : 35

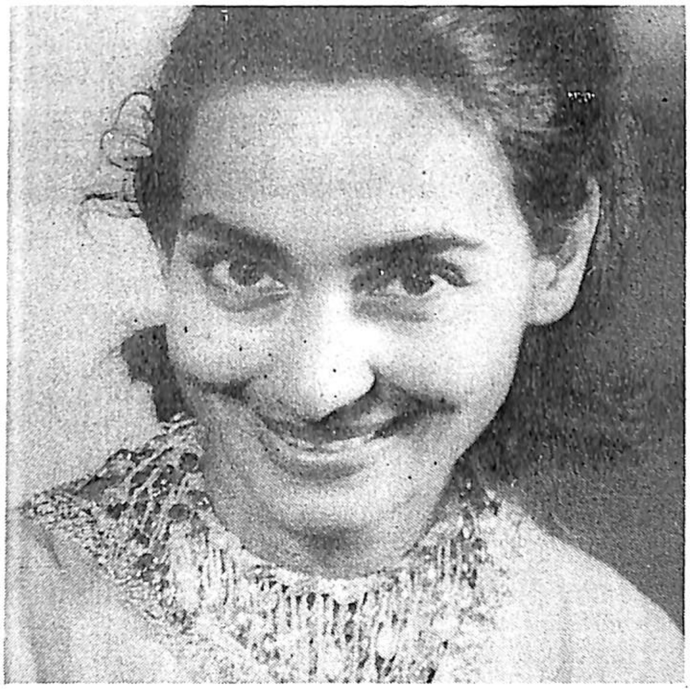
हार्दिक शुभकामनाएँ **-बॉक्स पेकर्स**

उज्जैन

नूतन

लम्बी और सशक्त पारी

शोभना समर्थ की बड़ी बेटी **नूतन** अखिल भारतीय सौंदर्य प्रतियोगिता में प्रथम आई परंतु उन दिनों यह प्रथा नहीं थी कि सौंदर्य प्रतियोगिता के विजेता को फिल्म में मौका दिया जाए। जीनत अमान और सोनू वालिया इत्यादि बहुत बाद की घटनाएँ हैं। अतः शोभना समर्थ और उनके परम मित्र मोतीलाल ने **हमारी बेटी** नामक फिल्म में नूतन को प्रस्तुत किया। फिल्म सफल रही और भारतीय सिनेमा में दूसरी पीढ़ी की प्रथम अभिनेत्री बनने का गौरव शोभना की पुत्री नूतन को मिला।



नूतन ने १९५५ में **सीमा** में काम किया। इसके पहले उसने 'निर्मोही', 'मालकिन', 'हंगामा', 'शबाब', 'नगीना' आदि कई फिल्मों में काम किया। परंतु 'सीमा' ही उनकी पहली सशक्त सफलता मानी जाएगी क्योंकि उन्हें इसी फिल्म से अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने का अवसर मिला। अमिय चक्रवर्ती की 'सीमा' (१९५५) में नूतन ने एक विद्रोहणी की भूमिका की है। उस पर चोरी का झूठा आरोप है और सुधारगृह में उसकी टक्कर बलराज साहनी से है जो सुधारगृह के अधिकारी हैं। हिंसावादी विद्रोहणी और गाँधीवादी अधिकारी की टक्कर देखने लायक थी। इस फिल्म में नूतन को फिल्म फेअर की अपनी पहली ट्रॉफी मिली और चौथी ट्रॉफी १९६७ में 'मिलन' के लिए मिली।

'हमलोग' में नूतन ने टी.बी. की मरीज लड़की की भूमिका को बहुत सशक्त ढंग से किया। शाहिद लतीफ की **सोने की चिड़िया'** में नूतन ने एक अभिनेत्री की भूमिका निबाही जिसे उसके रिश्तेदार अपने लोभ का शिकार बनाते हैं। 'सीमा' से 'सोने की चिड़िया' तक नूतन ने स्वयं को एक श्रेष्ठ अभिनेत्री के रूप में स्थापित कर लिया था। देवआनंद के साथ पेइंग गेस्ट, तेरे घर के सामने, में नूतन ने हल्के- फुल्के रोमांटिक रोल करके अपनी बहुआयामी प्रतिभा का परिचय दिया। 'मंजिल' और 'बारिश' के रोमांटिक दृश्य काफी 'बोल्ड' थे और 'दिल्ली का ठग' में तो नूतन ने तैरने की पोशाक भी पहनकर उस समय के समाज को चौंका दिया था। शीघ्र ही बिमलरॉय की 'सुजाता' और 'बंदिनी' में अत्यंत मर्मस्पर्शी अभिनय करके नूतन ने फिर अपनी छबि को बदल डाला। इस समय तक मधुबाला, नरगिस काम बंद कर चुकी थीं। अतः श्रेष्ठ गंभीर भूमिकाओं के लिए नूतन के अतिरिक्त मैदान में कोई था ही नहीं। 'छलिया', 'अनाड़ी', 'सूरत और सीरत' में नूतन ने फिर अपनी प्रतिभा का सिक्का जमा दिया।

१९६५ से १९६९ तक नूतन ने मद्रास के निर्माताओं के लिए 'खानदान', 'मिलन', 'मेहरबान', गौरी', 'भाई बहन', जैसी सुपर हिट फिल्मों में काम किया। १९६८ में सरस्वतीचंद्र, की अपार सफलता ने नूतन को नंबर एक की नायिका सिद्ध कर दिया। १९७३ में नूतन ने 'सौदागर' में अविस्मरणीय अभिनय किया। उस समय तक भारतीय फिल्मों में हिंसा का दौर आरंभ हो चुका था और नूतन भी अपने समवर्ती कलाकारों में अकेली ही बची थी। नूतन की पारी भी २२ वर्ष पुरानी हो चुकी थी। इन २२ वर्षों में नूतन तीन बार थोड़े समय के लिए परदे से हट गई थीं और हर बार लौटकर उन्होंने अविस्मरणीय अभिनय किया। सन् ७३ के बाद माँ की सशक्त भूमिकाएँ की जैसे 'मेरी जंग' और 'कर्मा' में। आज ३९ वर्ष बाद वे गंभीर रूप से बीमार हैं। पिछले वर्ष ही कालीगंज की बहू के रूप में मुजरिम हाजिर श्रृंखला में टेलीविजन पर नूतन ने एक यादगार भूमिका की है। किसी भी प्रथम श्रेणी की नायिका के लिए नूतन ने एक बहुत लंबी और सशक्त पारी खेली है।

◆◆◆

नूतन की सबसे बड़ी खूबी यह रही कि उसे कैसा भी रोल दे दिया जाए, अपने अभिनय से उसे असाधारण बनाने की क्षमता उसमें है। हल्के-फुल्के, चुलबुले अथवा धीर-गंभीर भूमिकाओं में नूतन ने साबित किया है कि बिना ग्लेमर के भी नंबर वन नायिका बना जा सकता है। सीमा, बंदिनी, सरस्वती चन्द्र और सुजाता फिल्में इसकी मिसाल हैं। नूतन ने पाँच बार सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के लिए फिल्म फेअर पुरस्कार प्राप्त किए हैं। आत्मविश्वास के साथ कैमरे का सामना करना नूतन की निजी पूँजी है।

प्रमुख फ़िल्में: * हमारी बेटी (१९५०) * हमलोग, नगीना (१९५१) * लैला मजनू (१९५३) * शबाब (१९५४) * सीमा (१९५५) * बारिश, पेइंग गेस्ट (१९५७) * दिल्ली का ठग, सोने की चिड़िया (१९५८) * अनाड़ी, कन्हैया, सुजाता (१९५९) * छबीली, छलिया (१९६०) * सूरत और सीरत (१९६२) बंदिनी, तेरे घर के सामने (१९६३) * खानदान (१९६५) * दुल्हन एक रात की (१९६६) * मिलन (१९६७) * गौरी, सरस्वतीचंद्र (१९६८) * यादगार (१९७०) * सौदागर (१९७३) * दुनियादारी (१९७७) * मैं तुलसी तेरे आँगन की, साजन बिना सुहागन (१९७८) * जीओ और जीने दो (१९८२)

गजल

उन्हें संग उठाने की आदत वही है
हमें सिर उठाने की आदत वही है।

सितमगर सितम कर चला दिल से खंजर
हमें जख्म खाने की आदत वही है।

नहीं डर कि दिल पर रहेगा न काबू
इसे टूट जाने की आदत वही है।

गिले-शिकवे होंठों पे आते भी कैसे
हमें चुप उगाने की आदत वही है।

हमें आ गया है संभलकर भी चलना
मगर लड़खड़ाने की आदत वही है।

गमों का ये बोझ अब बढ़े भी तो क्या गम
हमें मुस्कराने की आदत वही है।

अभी तक बुरे हैं, भले लोग "नूतन"
हमारे जमाने की आदत वही है।

नूतन बहल

इंटरव्यू ● अजातशत्रु

कोई और आकर बीच-बीच में अभिनय कर जाता है: नूतन

बावजूद इसके कि लेखक अपने कॉलेज में परीक्षा-पुस्तिकाओं के मूल्यांकन में व्यस्त था, **'नईदुनिया'** और अपने मध्यप्रदेश के पाठकों से लगाव के कारण उसने वक्त निकाला और फिल्म तारिका **नूतन** से इंटरव्यू लेने चल पड़ा। अपने पत्रकार-साथियों से कुछ तान-तुक्की भिड़ाई, तो पता चला कि नूतनजी बीमार हैं और इंटरव्यू देने के मूड में नहीं हैं। मगर लेखक महाशय ने इसे फिल्मवालों की स्वाभाविक चाल माना और अगली शाम स्वयं नूतनजी को घेरने चल पड़ा।

नूतन बंबई में 'कोलाबा' में रहती हैं। इमारत का नाम है-'सागर-संगीत'। यह कोलाबा पोस्ट ऑफिस के सामने है। इस इमारत में ३१ मंजिलें हैं, जिससे आप अंदाज लगा सकते हैं कि यह इमारत क्षेत्र की अत्यधिक ऊँची बिल्डिंगों में से एक है। लिफ्ट आपको ३० मंजिल तक ले जाकर छोड़ देती है। इसी मंजिल पर इमारत खत्म हो जाती है। अब आप कहाँ जाएँगे? आगे तो सिर्फ छत यानी टेरेस है। जाहिर है कि पते में जब ३१ वीं मंजिल लिखा है, और ३० वीं मंजिल के आगे कोई फ्लेट नहीं है, तो आप परेशान होंगे और संकोची हैं तो बिना किसी से पूछेताछे लौट आएँगे। यही स्थिति मेरी थी। मगर मैंने हिम्मत की और उस दरवाजे की ओर बढ़ा, जो टेरेस की तरफ खुलता है। मगर यह क्या। यहाँ टेरेस नहीं था। किसी के फ्लेट का दरवाजा था। साधारण दरवाजा। कॉलबेल के बगल का प्लास्टर उखड़ा हुआ। दीवारें थीं साधारण, जैसी कि उस पॉश एरिया की इमारतों की नहीं हो सकतीं, या कम से कम नूतन जैसी प्रसिद्ध, दौलतमंद और असरदार अभिनेत्री की नहीं हो सकतीं। मैंने सोचा, अगर कॉलबेल है, तो दबा ही लिया जाए, भले ही नूतन की जगह कोई और निकले और सचमुच यह विश्वास पक्का हो जाए कि यह फ्लेट नूतन का नहीं है और नूतन टेरेस पर नहीं रहतीं। बंदे ने कॉलबेल दबा दी।

उस इमारत की सीढ़ियों के पास दीवार में जो छेद थे, उन्हीं में से मैंने जमीन पर नजर डाली। सर घूम गया। सड़क पर चलनेवाले लोग और कार-टैक्सियाँ, जैसे मेरी चेतना और दुनिया से कटे हुए, किसी और लोक में रेंग रहे थे। मेरे-उनके बीच कोई संबंध नहीं था, सिवा इसके कि



मैं समूचा गतिशील द्वीप या तो सपने में देख रहा था, या काँच में से, या किसी और दुनिया से, जहाँ दो दुनियाओं के बीच पारदर्शी स्पेस के अलावा कुछ नहीं था। हाँ, दूसरी ओर समंदर ही समंदर नजर आ रहा था। मैंने अनुमान लगाया कि फ्लेट के भीतर से इस समंदर को देखने का

कितना दिलकश लगता है कि आप आकाश में एक कुँआरी ऊँचाई पर खड़े हों, कुँआरी हवा नाक में लेते हों और अपने हिस्से के अछूते आकाश से अछूता समुद्र देखते हों।... मेरे सामने एक ऊँची पूरी ब्रिटिश अभिनेत्री खड़ी थी। बेहद गोरा रंग, ओंठ पर गाढ़ी लिपस्टिक, आँखें भूरी और गहरी। किसी अकथ चिंता, पीड़ा और उकताहट से थकी हुई...।

अपना ही सुख होता होगा। कितना दिलकश लगता है कि आप आकाश में एक कुँआरी ऊँचाई पर खड़े हों, कुँआरी हवा नाक में लेते हों, और अपने हिस्से के अछूते आकाश से, गौरवपूर्वक अछूता समुद्र देखते हों। नूतन की जिंदगी में अब तनाव ही तनाव है। कोई बता रहा था कि वह कैंसर की मरीजा है। मगर तय जानिए, उसके जीवन में अगर कोई सुकून होगा, तो उसकी बालकनी से नजर आता समुद्र, रात की रोशनी, और आधी रात के बाद का समुद्री सन्नाटा। मैं नूतनजी के चुनाव पर हैरान रह गया। जी हाँ, वह फ्लेट नूतन का ही था—क्योंकि कॉलबेल दबाने के जवाब में जो शख्स दरवाजे पर आया, वह खुद नूतन थीं। मगर उन्होंने दरवाजा नहीं खोला। केवल दरवाजे की साँकल-भर जगह खोलकर उसमें से बात करने लगीं।

बोलीं-आप कौन?

मैं-फिल्म पत्रकार नहीं।

'क्या चाहिए?'

'जी, मैं एक लेखक और प्रोफेसर हूँ और आपसे...'

'आई एम सो सॉरी, प्रोफेसर। आई हेव गेस्ट्स एंड आई एम सिक, बिसाइड्स।'

मगर मैं 'अपना टेसू यहीं अड़ा' बना रहा। बोला-'एक और सूचना है आपके लिए इंदौर की एक प्रतिष्ठित संस्था आपको एक जलसे में निमंत्रित करना चाहती हैं। मैं उसकी तरफ से आया हूँ। क्या आप...?'

'मैंने आपसे कहा न, मैं बीमार हूँ। और बाहर तो मैं आती-जाती नहीं।'

'तो मैं उन्हें क्या लिख दूँ?'

श्रीमती बहल को थोड़ी सी हँसी आ गई। वे कुछ संभलकर बोलीं-वो आप जानें।

मैंने कहा-'वो तो मैं लिख दूँगा। और यह भी बता दीजिए कि मैं अपने अखबार और पाठकों के लिए क्या लिखूँ? क्या यह कि एक पत्रकार नूतनजी से मिलकर बिना बात किए लौट आया?' मैं उन्हें देखने लगा। नूतनजी उसी 'कुलिया' में से बात कर रही थीं। अनजाने, मेरी आँखें उनके चेहरे पर टिकी हुई थीं। कुछ होश में, कुछ बेहोशी में, और कुछ बचपन की यादों की परत के बीच से मैं उस औरत का भाल पढ़ रहा था, जो उतने क्षणों में मेरे लिए नूतन थी, नूतन नहीं थी, और 'सीमा', 'सुजाता', 'पेइंग गेस्ट' और 'दिल्ली का ठग' की अनेकरूपा नायिका थी। मैं खीझ भी रहा था कि जो औरत परदे पर इतनी सरल, सात्विक, प्रेमल

खजूर में अटकी : तनूजा



शोभना समर्थ की छोटी पुत्री तनूजा ने फिल्मों में 'छबीली' से प्रवेश किया। नूतन और तनूजा सगी बहनें होते हुए भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं परंतु दोनों ही अत्यंत प्रभावशाली अभिनेत्रियाँ हैं। नूतन ने अपनी योग्यता का भरपूर प्रयोग किया, उसे अवसर भी मिले। तनूजा की प्रतिभा का कभी प्रयोग नहीं हो पाया। यह ऐसा उद्योग है कि परदे पर ही नहीं, परदे के बाहर भी आपको अभिनय करना पड़ता है- अपनी छवि की खातिर। तनूजा को हर प्रकार के दिखावे से इतना सख्त परहेज था कि वह कभी भी किसी का भी नकाब उतार सकती थीं। नकाब और मुखौटे हमारे उद्योग के अभिन्न अंग हैं।

आर. चंद्रा की फिल्म "नई उमर की नई फसल" में तनूजा ने नायिका की भूमिका निभाई परंतु उसमें केवल नीरज के गीत ही याद रखने लायक थे। यथार्थ जीवन में तनूजा की छवि 'टॉम-बॉय' की थी। वह पतलून पहना करती थीं। उस समय के समाज को चौंकाने के लिए यह बहुत था। टाइट-पतलून-जीन्स बनकर समाज में बहुत बाद में प्रतिष्ठित हुई। पतलून पहने सिगरेट पीने वाली लड़की के पास कोई गंभीर और महान फिल्म का प्रस्ताव लेकर कैसे जाता। बस यहीं नूतन ने तनूजा से बाजी मार ली। बिमल रॉय ने नूतन को लेकर 'सुजाता' और 'बंदिनी' जैसी अमर फिल्में बनाई परंतु तनूजा को वे हास्य फिल्म **"दो दूनी चार"** ही दे सके। राज खोसला ने नूतन को लेकर "मैं तुलसी तेरी आँगन की" जैसी नारी महिमा की महान फिल्म बनाई और तनूजा के साथ "दो चोर।" क्या ये सारी बातें सिर्फ भाग्य थी?

तनूजा ने 'पवित्र पापी' में उत्तम अभिनय किया। यह तनूजा का दुर्भाग्य है कि गुरुदत्त "बहारें फिर भी आएँगी" पूरी नहीं कर सके। उनकी मृत्यु के बाद धमेंद्र और तनूजा को लेकर आत्माराम ने फिल्म बनाई। तनूजा ने बहुत-सी सफल फिल्मों में काम किया। 'हाथी मेरे साथी' उसकी सफलतम फिल्म है। विनोद खन्ना के साथ 'इम्तहान' में तनूजा ने अविस्मरणीय अभिनय किया था। एक चरित्र अभिनेत्री के रूप में 'तनूजा' ने राजकपूर की 'प्रेमरोग' में उत्तम अभिनय किया। यह अजीब इत्तफाक है कि **"प्रेमरोग"** में महाराष्ट्र की पद्मिनी कोल्हापुरे, नंदा, तनूजा और किरण वैराले ने साथ-साथ उत्तम प्रदर्शन किया। अँगरेजी फिल्म एन अगस्ट रेक्विम में भी तनूजा उपस्थित थीं। उनकी बंगाल फिल्में यादगार हैं। अफसोस यह रहा कि इस उम्दा अभिनेत्री की हिंदी फिल्मों में कद्र नहीं हुई। इसके लिए पचास प्रतिशत तनूजा भी दोषी हैं।

और अप्रोचेबल लगती है, वह इतनी शुष्क कैसे हो सकती है। मगर उतनी देर में मैंने बंबई के फ्लेटवासियों के दृष्टिकोण से भी सोचा। अभिनेत्री, पैसेवाली, बंबई की वासी और दरवाजे पर खड़ा एक अजनबी-इतना संकोच तो साँकल के पीछे खड़े उस शख्स को होना ही था। नूतनजी से

फिल्म 'साजन बिना सुहागन' में नूतन और डॉ. श्रीराम लागू



सारी बातें अँगरेजी में हुई।

मगर जिस नूतन को मैंने देखा और जिस नूतन को आप परदे पर देखते हैं, उसमें जमीन आसमान का अंतर है। मेरे सामने एक ऊँची पूरी ब्रिटिश अभिनेत्री खड़ी थी। बेहद गोरा रंग, ओंठ पर गाढ़ी लिपस्टिक। आँखें भूरी और गहरी, तथा किसी अकथ चिंता, पीड़ा और उकताहट से थकी हुई। भाल पर झुर्रियाँ, गाल पिचके हुए और चेहरे पर उजाड़ तथा वैराग्य के भाव। मुझे याद आया, वे सायन (कोलीवाड़ा) के सत्संग में भी जाती हैं और अपनी महिला गुरु को लगातार खत-वत लिखती रहती हैं। उतनी देर में मैं जो भाँप सका, वह यह है कि मेरे सामने एक अधेड़, ब्रिटिश अभिनेत्री खड़ी है, जो अपनी नफीस अँगरेजी के पीछे किसी अँगरेज अभिनेत्री की सी ही पीड़ा भोग रही है। **उसके जीवन में थकान, भय, अकेलापन और असहायता है।** कहीं कुछ लगातार खाली रह जाने के तीखे बोध से वह स्वयं से जूझ रही है और उसे अपना सुखद, संपन्न, चमकीला अतीत एक सपने सा सत्वहीन नजर आता है। श्रीमती बहल इंटरव्यू न देतीं, यह सहज था। और सहज इसलिए था कि वे संभवतः किसी जन्मजात योगिनी या वैरागन की हद तक दुनिया और उसके ग्लेमर से भंगमोहा हो चुकी थीं। मैं साफ देख रहा था, वे शांति और तनहाई चाहती थीं। एक संवेदनशील, शालीन और इंटेलीजेंट अभिनेत्री का यह रूप देखना अस्वाभाविक नहीं था।

मेरा यह धर्मसंकट महसूस करके कि पत्रिका में मैं यह नहीं लिख सकता कि मैं नूतनजी के घर की सीढ़ियों से वापस आ गया, वे कुछ अंडरस्टेंडिंग से मुझे देखती रहीं। अब यह मौका था, जब मैं उनसे निवेदन करके घर में प्रवेश पा सकता था। पर मेरे स्वाभिमान और उनकी असहाय अरुचि को देखते मुझे यह इमोशनल छल करना नागवार गुजरा।

मैंने कहा—"मैडम, इंटरव्यू तो अब तब होगा, जब आप स्वयं मुझे

मुड़-मुड़ के न देख : नादिरा



फिल्म श्री ४२० में राजकपूर के साथ नादिरा

हिंदी फिल्मों में खलनायिका की भूमिका के लिए नादिरा को हमेशा याद किया जाएगा। लेकिन उनके फिल्मी जीवन का प्रारंभ बतौर नायिका से हुआ।पहली रंगीन फिल्म **आन** में उन्होंने नायिका की भूमिका निभाई थी। विदेश में व्यावसायिक तौर पर प्रदर्शित यह पहली फिल्म थी। फिल्म को अँगरेजी में डब किया गया था और नाम रखा गया था **द सेवेज प्रिंसेस।** इस फिल्म ने नादिरा को रातो रात लोकप्रियता दे दी।

इराकी माँ और मिस्र के पिता से जन्मी नादिरा की प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई। बाद में उन्हें केथोलिक नन के पास पढ़ने भेजा गया। नादिरा ने टायपिंग और शार्टहैंड आर्थिक रूप से सुरक्षित होने के खातिर सीखी थी। वह डॉक्टर बनना चाहती थी, परंतु आर्थिक कारणों से यह संभव न हो सका। उनकी फिल्म अभिनेत्री बनने की काफी रोचक घटना है। वे एक विवाह समारोह में गई थीं। वहाँ मशहूर फिल्मकार महबूब की नजर उन पर पड़ी और बारह सौ रुपए प्रतिमाह पर उन्होंने नादिरा को अनुबंधित कर लिया।

नादिरा इतनी सीधी थी कि लगातार तीन माह तक 'आन' में काम करने के बाद भी अपने मेहनताने के संदर्भ में महबूब साहब से कुछ न बोल पाई। अंततः नादिरा की माँ ने महबूब साहब से रुपये माँगे। नादिरा ने अपना पहला फिल्मी शॉट बगैर रिहर्सल के किया और पहले प्रयास में वह ओ.के. हो गया। फिल्मों में काम करते–करते नादिरा कवि नक्शब से मुहब्बत करने लगी। शीघ्र ही इन्होंने शादी कर ली। लेकिन यह विवाह अधिक दिनों तक न चल पाया, क्योंकि उनके पति पर्दा प्रथा के हिमायती थे तथा वे चाहते थे कि नादिरा सिर्फ उन्हीं की फिल्मों में काम करे और इसके लिए वे निर्माता भी बन गए। नादिरा ने अशोक कुमार के साथ **'नगमा'** और तलत महमूद के साथ **रफ्तार** में भी अभिनय किया।

नक्शब ने के.ए.अब्बास की एक फिल्म 'आकाश' में काम करने की इजाजत नादिरा को दी थी। फिल्म के नायक बलराज साहनी थे। नक्शब इस बीच नादिरा को काफी प्रताड़ित करते रहे।

'आन' फिल्म तीन भाषाओं में बनाई गई थी - तमिल, हिंदी और अँगरेजी। नक्शब से तलाक के बाद नादिरा ने कुछ फिल्में और कीं एवं पुनः विवाह भी किया। इसके बाद उनके पास जितने भी और जैसी भी भूमिकाओं के प्रस्ताव मिले वे स्वीकारती गईं। जैसे मादाम जीरो, ब्लैक टाइगर, पाकेटमार, श्री ४२०, दिल अपना प्रीत पराई, उनकी प्रमुख फिल्में हैं।

कुछ समय पश्चात एक फिल्म आई जूली, जिसने ग्यारह अवार्ड जीते थे। इसमें नादिरा को सर्वश्रेष्ठ सहनायिका का फिल्म फेअर अवार्ड मिला।

बी.आर.इशारा की 'लोग क्या कहेंगे' में अपनी भूमिका को वे सफल मानती हैं। वासु भट्टाचार्य की फिल्म 'मधुमालती' से नादिरा को काफी उम्मीदें बँधी थीं। कुछ साल पहले प्रदर्शित 'सागर' फिल्म में उन्होंने अभिनय को बड़ी सहजता से निभाया था। इन दिनों वे चारित्रिक भूमिकाओं को निभाने में ज्यादा रुचि ले रहीं हैं। राज कपूर की फिल्म श्री ४२० में नादिरा ने उत्तेजक एवं चमकीली पोशाक पहनकर फड़कता गीत गाया था– मुड़ मुड़ के न देख मुड़ मुड़ के। इस गीत के श्रोताओं को नादिरा की याद भुलाए नहीं भूल सकती।



इंटरव्यू लेने के काबिल समझें। फिलहाल हमारे पाठकों के लिए आप एक सवाल का जवाब दे ही दें।" वे इंतजार करती नजर आईं।

मैंने सवाल फेंक दिया—**"पटकथा पढ़ने के बाद जब आप पहली बार अपने पात्र से रू-ब-रू होती हैं, तो उसे अंत में जाकर एक ठोस शख्सियत में कैसे बदल देती हैं? बीच में किन स्टेजों को पार करती हैं आप अपने भीतर?**

खूबसूरत अंग्रेजी में तब उस प्रभावशाली अभिनेत्री ने यह समझाया।

"देखिए, हम फिल्मी लोग अपने कमरों और कारों में बंद जरूर रहते हैं। पर जीवन सब तरफ बिखरा हुआ है, इसलिए हम भी लगातार उसके प्रति 'एक्सपोज' होते रहते हैं। इससे 'रजिस्ट्रेशन' की एक 'प्रोसेस' दिमाग में लगातार चलती रहती है। इस तरह लोग, उनके हाव-भाव, आदतें और उनके वर्ग का मनोविज्ञान हमारी याददाश्त में कहीं न कहीं जमा हो जाता है। स्क्रिप्ट से पात्र को जानने के बाद यही जमा माल किरदार को करते हुए काम आ जाता है। मगर इसमें 'इन्ट्यूशन' को भी जोड़ लीजिए। सहज प्रेरणा को। यानी किसी पात्र को करते समय, अचानक, कैमरे के सामने हमें कोई ऐसा ट्विस्ट या बारीकी सूझ जाती है कि उस किरदार के अभिनय में जान पड़ जाती है। **बस, यही एक स्पर्श है, जो परमात्मा का दिया हुआ है। बाकी तो कलाकार की विराट स्मृति में से आता है।** कह सकते हैं कि एक्टर का श्रेष्ठतम हिस्सा उसका नहीं होता। कोई और आकर बीच-बीच में प्ले कर जाता है।"

इतना कहकर वे चिर-परिचित, फिल्म वाली हँसी मुस्कराईं और **हमारी नूतन** का प्रभाव देकर दरवाजे के पीछे विलीन हो गईं।

वे मुझे अच्छी लगीं। पर स्वयं में बहुत उखड़ी हुई भी लगीं, जैसे वक्त की रंगीन तितली मन की चिमटियों के बाहर भाग निकली हो और अहसास की जीभ पर सिगरेट की राख का स्वाद बचा हो। दिलीपकुमार से लेकर सुरैया तक में यह 'बेस्वादी' साफ नजर आती है। नयों में राजेश खन्ना को ले लीजिए। ■



उत्तमकुमार की छाया सुप्रिया देवी

सुप्रिया देवी सर्वाधिक लोकप्रिय और सफल बंगाली नायिकाओं में गिनी जाती हैं। उम्र अब साठ-बरस हो चली है। औपचारिक रूप से उन्होंने फिल्मों से 'संन्यास' नहीं लिया, मगर अब वे उस किस्म की गरमा-गर्म खबरों में नहीं प्रकट होतीं, जैसी कुछ साल पहले आम बात थी। आखिर खूबसूरत नायिकाएँ लाखों लोगों का दिल चुराती हैं। मगर इसे कोई अपराध नहीं ठहराया जा सकता।

सुप्रिया देवी ने बंगाली फिल्मों की शतक मारी है। वे तीन हिंदी फिल्मों में काम कर चुकी हैं-**दूर गगन की छाँव में, बेगाना व आपकी परछाइयां।** बंगाली फिल्मों में से ३३ में उन्होंने उत्तमकुमार के साथ काम किया है और उत्तमकुमार बंगाली फिल्म के सबसे बड़े सितारे थे। शायद वहाँ एक ही सुपर स्टार पनप पाया है। इन सफलताओं को देखते हुए कोई ताज्जुब नहीं कि इस नायिका ने खासा पैसा बनाया और नाम कमाया। उन्हीं के साथ उनकी बेटी सोमा रहती हैं। उन्होंने भी कुछ फिल्मों में काम किया है। वे दो बच्चों की माँ हैं। उधर माँ को भी तकदीर ने धोखा दिया। वे भी अकेली हैं। माँ-बेटी एक-दूसरे के सहारे अपना अकेलापन काट लेती हैं।

सुप्रिया देवी ने १९५० में बसु परिवार फिल्म में सबसे पहले काम किया। इसके बाद सफलताओं का सिलसिला शुरू हो गया। मगर चार साल बाद ही स्टेट्समेन अखबार के मैनेजर विश्वनाथ चौधरी के साथ उनकी शादी कर दी गई। वे बताती हैं कि उनके पति तगड़े पियक्कड़ थे। रोजाना उनकी पिटाई करते थे। उनके कहने पर सुप्रिया देवी ने फिल्मों में काम करना छोड़ दिया, मगर उनके दुर्व्यवहार में कोई फर्क नहीं आया। इस कारण १९५९ में उन्होंने फिर फिल्मों में काम करना शुरू कर दिया। जब वे थकी-हारी लौटतीं तो फिर वही मार-पीट और गाली-गलौज का सिल-सिला शुरू हो जाता। तंग आकर १९६२ में उन्होंने तलाक ले लिया।

सुप्रिया देवी ने उत्तमकुमार के साथ कोई तीन दर्जन फिल्मों में ही काम नहीं किया है। उनका नाम इस सुपर स्टार के नाम के साथ और कारणों से भी जुड़ा है। वे कोई १७ बरस तक साथ रहे हैं। उनका पता ही उत्तमकुमार का स्थायी पता माना जाता था। सुप्रिया देवी का तो यहाँ तक कहना है कि १९६३ में उत्तमकुमार ने उनके साथ शादी की। चूँकि उन्होंने अपनी पहली बीवी गौरी चटर्जी को कानूनी तौर पर तलाक नहीं दिया था, इसलिए उनकी शादी वैध नहीं मानी गई, लेकिन कहा जाता है कि उत्तमकुमार ने सोमा को बेटी की तरह गोद लिया था।

उत्तमकुमार के साथ बीते वर्ष उनकी सबसे मधुर यादें हैं। वैसे इन संबंधों में भी कड़वाहट पैदा हुई। १९७९ में कलकत्ता के सभी अखबारों में खबर छपी कि सुप्रिया देवी ने उत्तमकुमार को अपने घर से निकाल दिया है। उन्होंने उसे पेइंग गेस्ट ठहराते हुए आवेदन किया कि उत्तमकुमार उनके घर में न घुस पाए। पुलिस का पहरा लगा दिया गया था। नवंबर १९७९ में उत्तमकुमार फिर लौट आए। मगर अगले साल ही जुलाई २४ को उन्हें पक्षाघात हो गया। उस दिन सुप्रिया देवी अपने घुटने के ऑपरेशन करवाने नर्सिंग होम में भर्ती थीं। किसी ने उन्हें खबर न की कि उत्तमकुमार को लकवा हो गया है और वे मौत के मुँह में हैं। जब सुप्रिया देवी को खबर लगी तो वे अपने तमाम पट्टे-प्लास्टर समेत अस्पताल पहुँचीं। वे वहाँ दूसरे लोगों से घिरे थे। सुप्रिया देवी कुछ घंटे तक वहीं रुकी रहीं और उत्तमकुमार ने दम तोड़ दिया।

(वीकली में प्रकाशित आलेख के आधार पर)

नाना रूपों वाली नंदा

शांताराम की फिल्म **'दीया और तूफान'** से बेबी नंदा ने अभिनय क्षेत्र में प्रवेश किया। नंदा शायद एकमात्र अभिनेत्री है जिसने बाल कलाकार के रूप में ख्याति पाकर भी अपने को संतुलित रखा और बेबी नाज (बूट पॉलिश में अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार) की तरह अपने कैरियर को नष्ट नहीं किया। उम्र के हर दौर में नंदा ने अभिनय किया। बाल कलाकार के दौर के बाद **"छोटी बहन"** में काम किया जो उस समय की सबसे बड़ी हिट फिल्म थी। इसके बाद अनेक फिल्मों में वह छोटी बहन बनी। विजय आनंद की 'काला बाजार' में नंदा देव आनंद की छोटी बहन बनी और इसी बैनर की **"हम दोनों"** में देव आनंद की पत्नी की भूमिका अभिनीत की। शशिकपूर के साथ 'चार दीवारी' जैसी गंभीर फिल्म की तो **"जब-जब फूल खिले"** जैसी रोमांटिक फिल्म भी की। "रूठा न करो" जैसी हास्य फिल्म भी नंदा ने भरपूर योग्यता से अभिनीत की। नंदा पर किसी छवि विशेष का प्रभाव ज्यादा समय तक नहीं रहा। किसी और अभिनेत्री ने इतनी कुशलता से छवि तोड़ने में सफलता नहीं पाई। बाल कलाकार के बाद 'छोटी बहन' की छवि तोड़कर रोमांटिक भूमिकाएँ कीं-यहाँ तक कि बी.आर चोपड़ा की **"इत्तफाक"** में नंदा ने पति की हत्या करने वाली स्त्री का रोल भी किया।

उम्र के हर दौर में श्रेष्ठता का प्रदर्शन करने वाली नंदा ने राजकपूर की 'प्रेमरोग' में पद्मिनी कोल्हापुरे की माँ की भूमिका की है। यह एक चुनौतीपूर्ण भूमिका थी। एक दृश्य में नंदा ने कुछ ऐसे ढंग से रजा मुराद को देखा कि वह व्यभिचारी अचंभित होकर जड़ सा हो गया। इस तरह की एक दृष्टि से दृश्य को बदल देने की योग्यता बहुत कम अभिनेत्रियों में होती हैं। नंदा ने प्रेमरोग में और मीनाकुमारी ने 'दुश्मन' में ऐसी ही घातक निगाह राजेश खन्ना पर डाली थी।

नंदा अनन्य सुंदरी नहीं थीं परंतु यथेष्ट प्रतिभा की धनी थी। सिनेमा के प्रति उनमें अटूट निष्ठा थी। उनकी प्रतिभा उम्र के किसी दौर में किसी एक छवि से नहीं बँधी। ऐसा कमाल केवल हॉलीवुड की अभिनेत्रियाँ ही करती हैं। मास्टर विनायक जैसे अभिनेता तथा फिल्मकार की बेटी नंदा के साथ फिल्मी दुनिया ठीक से न्याय नहीं कर सकी।

प्रेम रोग फिल्म में नंदा और पद्मिनी कोल्हापुरे



एक घटना का नाम : सुचित्रा सेन

टालीगंज के इतिहास में **सुचित्रा सेन** एक अभिनेत्री नहीं बल्कि एक घटना का नाम है। इसे कुछ इस तरह से भी कहा जा सकता है कि वे बंगला फिल्म इतिहास के एक युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि उनकी सारी प्रतिभा और सृजनशीलता उसी युग में सीमित है। एक विशेष अंदाज और तत्कालीन बंगला फिल्मोद्योग की मानसिकता की वे मूर्तरूप थीं। अपने अभिनय जीवन की बुलंदी पर उन्होंने फिल्मोद्योग को छोड़ दिया था। जहाँ तक उनके अभिनय का प्रश्न है, यहाँ वे एक विशेष वृत्त में ही कैद नजर आती हैं। उन्होंने कभी भी उससे बाहर निकलने का साहस ही नहीं किया। उनकी सबसे बड़ी धरोहर थी, उनका अपूर्व सौंदर्य। ऐसा फोटोजेनिक फेस बहुत कम देखने को मिलता है। कैमरे के किसी भी कोण से वे सुंदर लगती थीं। इसलिए उनकी सारी फिल्मों में उनके चेहरे के क्लोजअप को बहुत महत्व दिया गया और यही वजह थी कि उनकी फिल्मों में कई-कई गाने होते थे और जिसमें उनके चेहरे के क्लोजअप को एक विशेष सम्मोहन शक्ति के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। इसका असर इतना ज्यादा होता था कि उस समय के दूसरे दर्जे के निर्देशक भी अपनी घटिया दर्जे की स्क्रिप्टवाली फिल्मों को इसके सहारे बॉक्स आफ़िस पर सफल बना लेते थे। यही नहीं शुरू-शुरू में तो उनकी फिल्मों के पोस्टर में भी उनके चेहरे के क्लोजअप का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल किया जाता था जो पहले से ही फिल्म की सफलता का संकेत दे देता था। जहाँ तक सेक्स अपील का सवाल है, उनमें एलिजाबेथ टेलर, मर्लिन मुनरो या सोफिया लारेन जैसी प्रखरता नहीं है। उनमें बंगला मानसिकता के अनुरूप एक मिठास है, जो कहीं से भी मन को चंचल नहीं बनाती। उनकी रोमांटिक फिल्में सपरिवार देखने लायक होती थीं। इस परिप्रेक्ष्य में इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि बंगला फिल्मोद्योग में रोमांटिक भावना को सुचित्रा सेन ने ही चरम रूप दिया था। इसमें उनकी संवाद अदायगी का जहाँ महत्वपूर्ण स्थान है, वहीं संध्या मुखर्जी के गायन की भी हिस्सेदारी है। सुचित्रा सेन के अधिकांश गाने संध्या ने ही गाए हैं।

◆ ◆ ◆

टालीगंज के इतिहास में सुचित्रा सेन एक तारिका न होकर घटना है। सौंदर्य में मधुबाला के समकक्ष सिर्फ सुचित्रा सेन को रखा जा सकता है। हिंदी में ममता, बंबई का बाबू और आँधी जैसी चंद फिल्में ही दर्शकों को देखने को मिली हैं लेकिन बंगला फिल्म उद्योग में उनका मुकाबला कभी नहीं रहा। उनके चेहरे के क्लोज-अप में इतनी सम्मोहक शक्ति होती थी कि दर्शक ठगे से रह जाते थे। अपने जीवन के शिखर पर संन्यास लेकर सुचित्रा सेन एक रहस्यमय पहेली बनी हुई है।





सुचित्रा सेन ने सिर्फ मनोरंजन देने वाली फिल्मों में ज्यादा काम किया है और वे प्रायः उसी से संतुष्ट भी रही हैं। इसका एक मुख्य कारण यह हो सकता है कि वे निर्देशकों के महत्व को बढ़ने नहीं देना चाहती थीं। वे चाहती थीं कि जिस फिल्म में वे काम करें, वह फिल्म सिर्फ उनकी फिल्म के रूप में ही पहचानी जाए। सही मायने में वे अभिनेत्री कम, एक स्टार के रूप में अपने आपको स्थापित करना चाहती थीं। एक ऐसी स्टार, जिसमें चमक-दमकपूर्ण भाव ज्यादा हो। आज भी जबकि उन्हें फिल्मोद्योग से रिश्ता तोड़े, एक दशक से ज्यादा हो गया है, जनमानस में वे एक रहस्यमय स्त्री और स्टार के रूप में अपनी पहचान बनाए रखना चाहती हैं। यहाँ तक कि फोन पर भी वो बहुत कम बातचीत करती हैं, ताकि उनकी आवाज सामान्य न हो जाए। यही वजह है कि उनके अभिनय प्रतिभा के भले ही लाखों प्रशंसक मौजूद हों, उनकी ऐसी फिल्मों की संख्या नहीं के बराबर है, जो मील के पत्थर के रूप में पहचानी जाएँगी। इसके मूल में है बड़े निर्देशकों के साथ उनकी बेरुखी, जिस कारण श्रेष्ठ और बड़े निर्देशकों की फिल्में उनके हिस्से में कम ही आईं। वैसे कभी यह सुनने को मिला था कि सत्यजीत राय की फिल्म में सुचित्रा सेन काम करेंगी, तब समूचे फिल्म जगत के लिए यह अनहोनी ही नहीं अत्यंत गौरवपूर्ण बात थी। परंतु ऐसा हुआ नहीं। और यह बात सिर्फ योजना तक ही सीमित रह गई।

उनके अभिनय की सबसे महत्वपूर्ण उपादान थी, उनकी आत्म संचेतना। जिस किरदार को उन्होंने जीवंत किया, वह पात्र अपना स्वरूप खोकर सुचित्रा के व्यक्तित्व में रंग गया। दरअसल उनका ग्लैमर एवं व्यक्तित्व ही पूरी फिल्म में छाया रहा। इस प्रसंग में 'सूर्यतोरण' फिल्म का उदाहरण दिया जा सकता है। यह फिल्म मूल रूप से आएन रैंड के अविस्मरणीय उपन्यास 'द फाउंटेन हैड' पर आधारित थी। मूल उपन्यास के मुख्य किरदार उमिनिक को सुचित्रा सेन ने पेश किया था। पर यह अनोखा किरदार पूरी तरह से उनके ग्लैमर एवं व्यक्तित्व के सम्मोहन में खो गया और ऐसा उनके साथ एक बार नहीं बार-बार हुआ। उन्होंने जिन भी निर्देशकों के साथ काम किया, उनमें अच्छी भूमिकाओं में भी उनका उपयोग कर्मशियल ढंग से हुआ। ऐसे निर्देशकों की संख्या ज्यादा मिलेगी, जो सुचित्रा सेन के बिना खड़े भी नहीं रह सकते थे। सच तो यह है कि अपने निर्देशकों की अयोग्यता और अक्षमता को ढँकने के लिए ही उन्हें अपना एक विशेष ग्लैमरस रूप और रोमांटिक हाव-भाव देना पड़ा। 'अग्नि परीक्षा' से 'प्रणयपास', 'देवी चौधरानी' या 'सात पाके बांधा' तक सर्वत्र यही अभिनय स्टाइल का क्रम देखने को मिलता है। वैसे यह बात दीगर है कि इसके बाद की फिल्मों में ही वे ज्यादा परिपक्व नजर आईं। 'अग्नि परीक्षा' की सुचित्रा सेन के साथ 'सात पाके बांधा' या 'सप्तपदी' की सुचित्रा सेन में बड़ा फर्क था। उनके

फंतासी फिल्मों की परी : शकीला



भारत में टॉकी का प्रारंभ ही फंतासी **"आलमआरा"** से हुआ। धार्मिक फिल्मों की परंपरा की तरह ही हमारे यहाँ फंतासी फिल्मों की परंपरा भी रही है। अधिकांश सिनेमाघर छोटे कस्बों और गाँवों में हमेशा ही रहे हैं। फंतासी फिल्में कस्बाई दर्शकों की पहली पसंद हैं। शकीला फंतासी फिल्मों की लोकप्रिय सितारा रही हैं और महिपाल के साथ उसने बहुत सी फिल्में की हैं। शकीला की अलीबाबा और ४० चोर, गुलबहार और लालपरी प्रसिद्ध फिल्में हैं।

शकीला की लोकप्रियता के कारण ही उसे गुरुदत्त की "आर-पार" मिली और देवआनंद के साथ काम करने का अवसर भी मिला। शकीला ने शादी करके अभिनय बंद कर दिया। आजकल वे इंडो ओवरसीज नाम की अँगरेजी फिल्मों का वितरण करती हैं। फिल्मों में रहकर भी शकीला कभी पूरी तरह फिल्मी नहीं थीं। आवश्यकतानुसार पैसा कमा कर वे उद्योग से हट गईं।

व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और प्रखरता बाद में ही ज्यादा नजर आई।

आज भी वे मीडिया के लोगों से मिलना नहीं चाहती हैं। शायद वे आज भी इस बात को स्वीकार नहीं करना चाहती हैं कि दर्शक और आलोचकों का जवाब देना भी एक नैतिक दायित्व है, जिसे कोई भी कलाकार अस्वीकार नहीं कर सकता। चाहे वह रवीन्द्रनाथ हो या पिकासो ही क्यों न हों। फिल्म स्टार होने पर भी इस मूल दायित्व को नकारा नहीं जा सकता है। फिर मर्लिन मुनरो, सोफिया लारेन एवं एलिजाबेथ टेलर जैसी विश्वविख्यात तारिकाओं से भी ऐसा संभव नहीं हुआ। इनकी जिंदगी का हर एक मोड़, भिन्न-भिन्न दृष्टिभंगिमाओं को मीडिया द्वारा परखा और विश्लेषित किया गया। जबकि सुचित्रा इस मामले में बिलकुल भिन्न रहीं, उन्होंने हमेशा प्रेस से एक दूरी बनाए रखी। यहाँ तक कि उनके बारे में लिखने वाले भी कुछ खास लोग थे, जो इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि उनके बारे में जो कुछ भी छपे, वह उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही हो। हिंदी फिल्मों में उनके पैर न जमने की भी एक वजह यही थी। वे अपने आपको इतना अधिक रिजर्व रखती थीं कि बंबइया निर्माता चाहकर भी उन्हें साइन करने से कतराते थे। इसीलिए उनसे बहुत कम प्रतिभाशाली बंगाल की अन्य नायिकाओं ने बंबइया फिल्मोद्योग में पाँव जमा लिए। सुचित्रा के हिस्से में नाममात्र की ही हिन्दी फिल्में आईं। इस प्रसंग में इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सुचित्रा सेन ने भले ही कुछ गिनी-चुनी हिंदी फिल्मों में काम किया हो, पर हिंदी फिल्म प्रेमी आज भी उन्हें याद करते हैं। असित सेन की 'ममता' और गुलजार की 'आँधी' की सुचित्रा सेन को क्या सहज ही भुलाया जा सकता है मुझे याद है एक बार स्व. संजीव कुमार से बंगाली अभिनेत्रियों की चर्चा चलने पर उनका जवाब था, 'सुचित्रा सेन जैसी अभिनेत्री के साथ मैं बार-बार काम करना चाहूँगा। क्या गजब की अदाकारा हैं वे। 'आँधी' में उनके साथ काम करने का अनुभव मैं कभी नहीं भूल सकता।' इसी तरह धर्मेन्द्र ने एक बार अपने केरियर के शुरूआती दिनों की फिल्म 'ममता' का जिक्र चलने पर कहा था, 'यह फिल्म तो अशोक कुमार और सुचित्रा के कारण ही याद की जाएगी। सुचित्रा को मैं हिंदी फिल्मोद्योग की कुछ श्रेष्ठ नायिकाओं की श्रेणी में रख सकता हूँ। लेकिन अफसोस इस बात का है कि उनके साथ दोबारा काम करने का मौका नहीं मिला।'

सुचित्रा का प्रसंग हो और स्व. उत्तमकुमार की याद न आए, यह संभव ही नहीं हो सकता। सुचित्रा-उत्तम की जोड़ी बंगला फिल्मों के इतिहास का एक अलग अध्याय ही है। इस जोड़ी ने तीन दर्जन से भी अधिक फिल्मों में काम किया और इनमें शायद तीन-चार फिल्में ही ऐसी होंगी, जो दर्शकों का मनोरंजन करने में विफल रही। एक दौर ऐसा भी था, जब सुचित्रा को नायिका के रूप में साइन करने के बाद निर्माता सीधे उत्तमकुमार के पास चले जाते थे। शायद इसकी वजह यह थी कि सुचित्रा जैसी उच्च कोटि की स्टार नायिका के लिए बंगला फिल्मों के सुपर स्टार उत्तमकुमार ही फिल्म के संतुलन में बिलकुल ठीक बैठते थे। इसके विपरीत उत्तमकुमार के साथ ऐसी कोई बात नहीं थी, वे सुप्रिया देवी, अपर्णा सेन तथा नवोदित नायिकाओं के साथ भी समान रूप से फिल्में करते रहे। पर इसके बावजूद जहाँ सुचित्रा की सर्वाधिक फिल्मों के नायक उत्तमकुमार थे, वहीं उत्तमकुमार ने सबसे ज्यादा फिल्में सुचित्रा सेन के साथ ही की थीं। भारतीय फिल्मोद्योग में इनकी जोड़ी की फिल्मों ने एक अलग मिसाल पेश की है। इस जोड़ी का सबसे दिलचस्प सत्य यह है कि ढेर सारी फिल्मों का साथ होने के बावजूद इस जोड़ी को लेकर पत्र- पत्रिकाओं में कभी भी कुछ नहीं छपा। इनका सारा संबंध काम तक ही सीमित रहा। इसके दो प्रमुख कारण हैं– एक तो सुचित्रा का व्यक्तित्व (जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है), दूसरा– सुप्रिया देवी के साथ उत्तमकुमार का आत्मीय रिश्ता, जिसकी वजह से सुचित्रा के साथ इतनी फिल्मों में काम करने के बाद भी वे उनके सम्मोहन में नहीं बँधे। वरना हमारी हिंदी फिल्मों के नायक-नायिका, जहाँ तीन-चार फिल्मों में दिखाई पड़े, उनके रोमांस की खबरें जन्म लेने लगती हैं और अक्सर वे सच भी होती हैं। उत्तमकुमार को तो बाकायदा इस बात का एहसास भी था, इसलिए सुचित्रा का जिक्र चलने पर अक्सर वे मजाक में कहते थे, 'अफसोस इस बात का है कि सुचित्रा सिर्फ मेरी फिल्मी प्रेमिका और पत्नी ही बनी रही।'

सुचित्रा सेन को फिल्मोद्योग से संन्यास लिए हुए आज दस साल से भी अधिक होने को आए, पर आज भी बंगला फिल्मोद्योग में उनका छोड़ा



स्थान अभी भी खाली है। यह रिक्त स्थान भरेगा, इसकी संभावना बहुत ही कम है। क्योंकि सुचित्रा जैसी बेहद फोटोजेनिक चेहरे वाली कोई अभिनेत्री यदि आ भी गई, तो सुचित्रा सेन जैसी अभिनय क्षमता लाना उसके लिए संभव नहीं होगा। सुचित्रा ने भले ही अपनी अभिनय क्षमता का उपयोग एक सीमित दायरे में किया हो, पर बंगला फिल्मोद्योग उन्हें हमेशा एक अत्यंत प्रतिभाशाली अभिनेत्री के रूप में ही याद रखेगा। ■

निम्मी

अधखुले ओंठों में बंद अरमान



आगरा की नवाब बेगम सन् १९४८ में महबूब खान को मिली जो उन दिनों **'अंदाज'** बना रहे थे। महबूब को उस रोल के लिए अभिनेत्री की तलाश थी जो बाद में कुक्कू ने किया। अस्वीकृत और दुःखी निम्मी आगरा वापस जाने का सोच रही थी जब राजकपूर ने उसे **'बरसात'** में काम दिया। 'बरसात' उस समय की सफलतम फिल्म थी और निम्मी के अधखुले ओंठों पर भारत के दर्शक दीवाने हो चुके थे।

वह जमाना नरगिस, मधुबाला और मीनाकुमारी का था। प्रतिभा की इस **'तिकड़ी'** के बावजूद और साथ-साथ कामिनी कौशल, गीताबाली और निम्मी ने दर्शकों का अपना एक समूह, अपने ही बलबूते पर, खड़ा कर लिया था। 'बरसात' और 'दीदार' के बाद नरगिस और निम्मी कभी साथ नहीं आए। आन, अमर, उड़न खटोला, दाग और दीदार के बाद कभी दिलीप और निम्मी ने साथ काम नहीं किया। दरअसल निम्मी एक ऐसी अभिनेत्री थी, जो छोटे से रोल में भी ऐसा जबरदस्त प्रभाव पैदा करती थी कि दर्शक केवल उसको याद रखते थे। दृश्यों को 'चुरा' लेने की इस अद्भुत प्रतिभा के कारण सह-कलाकार निम्मी से 'बचना' चाहते थे। ऐसी आतंकित करने वाली निम्मी की प्रतिभा थी।

भारतीय चित्रपट पर जिस तरह नरगिस ने अपनी आँखों का प्रयोग किया, मीनाकुमारी ने अपनी आवाज से लोगों को बाँधा और मधुबाला की देहयष्टि ने नदी बन कर दर्शकों को डुबो दिया, उस तरह निम्मी ने अधखुले ओंठों से अरमानों के भँवर पैदा किए। लेखक बृजेन्द्र गौड़ की महबूब निर्देशित 'अमर' में निम्मी एक गरीब और गंदी लड़की है, जो सफल वकील अमरनाथ से एकतरफा प्यार करती है। अमरनाथ को उसकी देह गंध पसंद नहीं परंतु विशेष परिस्थिति में वह निम्मी के साथ बलात्कार करता है। निम्मी के जीवन की सर्वश्रेष्ठ भूमिका यही थी और दिलीपकुमार जैसा निष्णात कलाकार इस फिल्म में निम्मी के सशक्त अभिनय के सामने हड़बड़ाया-सा रहा।

धर्मेंद्र, राजेंद्रकुमार, शम्मीकपूर आदि के युग में लोग जिस तरह राजकुमार से आतंकित रहते थे, उसी तरह का **प्रतिभा का आतंक** निम्मी ने अपने युग में फैला रखा था। इस कारण उस युग की श्रेष्ठ फिल्में निम्मी को नहीं मिलीं और किसी अच्छी भूमिका को पाने के लिए जो हथकंडे लगाने पड़ते थे उनका प्रयोग निम्मी को नहीं आता था।

निम्मी ने महबूबखान की 'आन' में जो भूमिका निबाही थी, उसी से प्रेरित होकर दिलीपकुमार ने 'गंगा जमुना' की धन्नो का निर्माण किया परंतु उन्होंने यह भूमिका निम्मी को नहीं दी। 'आन' का प्रदर्शन विदेशों में भी हुआ था। वहाँ के अखबारों ने निम्मी की बहुत प्रशंसा की थी और उसके मदमस्त ओंठों के बारे में लिखा था कि वे 'अनछुए ओंठ! अधखुले ओंठ' हैं।

१६ साल में निम्मी ने ४४ फिल्में कीं जिनमें से आधी फिल्में हिट थीं। उसकी आखरी फिल्म राजेंद्र कुमार की बहन के रूप में 'मेरे महबूब' थी। देव आनंद के साथ 'आँधियाँ' की थी जिसे कान फिल्म उत्सव में दिखाया गया था। बुद्ध धर्म की पृष्ठभूमि पर रचित प्रेम-कथा 'अंजली' में निम्मी ने चेतन आनंद के साथ काम किया था। १९८७ में के. आसिफ की 'लव एंड गॉड' को अपने अधूरे स्वरूप में ही प्रदर्शित कर दिया गया। निम्मी को नई पीढ़ी ने पहली बार इस फिल्म में देखा।

प्रमुख फिल्में: ***बरसात** (१९४९) ***राजमुकुट** (१९५०) ***दीवार** (१९५१) ***आन** (१९५२) ***आँधियाँ** (१९५२) ***दाग** (१९५२) ***मेहमान** (१९५३) ***अमर** (१९५४) ***कस्तूरी** (१९५४) ***कुंदन** (१९५५) ***उड़न खटोला** (१९५५) ***बसंत बहार** ***भाई-भाई** (१९५६) ***अंजली** (१९५७) ***चार दिल चार राहें** (१९५९) ***अंगुलिमाल** (१९६०) ***मेरे महबूब** (१९६३) ***पूजा के फूल** (१९६४) ***लव एंड गॉड** (१९८७)। ■

शकीला बानू भोपाली

अदाओं का खजाना

राजिन्दर सिंह बेदी की फिल्म 'दस्तक' में एक छोटी परन्तु महत्वपूर्ण भूमिका **शकीला बानू** भोपाली ने की थी। बाद में जागीर, जन्नत, हमराही आदि कई फिल्मों में काम किया। फिल्मों में आने से पहले ही मनोरंजन की चौपाल पर शकीला बानू भोपाली का नाम बहुत हो गया था और उसे कव्वाली की रानी के रूप में प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। फिल्म वालों ने तो इस प्रतिष्ठा को टिकट खिड़की पर भुनाने के लिए शकीला को भूमिकाएँ दीं।

शकीला आठ वर्ष की उम्र से ही तरन्नुम में शेर पढ़ने लगी थीं। आस-पड़ौस के लोग दोपहर को वक्त काटने के लिए शकीला को बुला लेते थे और मजेदार शेर सुनते थे। उनकी प्रशंसा से प्रेरित शकीला अपने शेरों को पढ़ने में हाथ-पैर का प्रयोग भी करने लगी और अदायगी का एक नया तरीका परिपक्व होने लगा। शेरों को पढ़ने की मनोरंजक अदा का नाम ही **शकीला बानू भोपाली** पड़ा। 'नया दौर' की शूटिंग भोपाल के नजदीक ही हुई थी। यूनिट के सभी सदस्यों ने शकीला भोपाली की कव्वाली सुनी। दिलीप कुमार ने उन्हें बंबई आने का निमंत्रण दिया।

फिल्मवालों की दावतों में शकीला की अदायगी ने खूब प्रसिद्धि पाई। उसका दायरा इन पार्टियों से फैलकर पूरे देश पर छा गया। शहर-दर-शहर शकीला बानू भोपाली की कव्वाली का रंग जमता गया। इस प्रसिद्धि का फिल्मवालों ने फायदा उठाया। दरअसल शकीला का 'वन वूमन शो' पूरे तीन घंटे का मनोरंजन होता था जिसमें शायरी, संगीत और अदाओं का संगम होता था। अकेली शकीला बानू भोपाली पूरे तीन



घंटे की फिल्म पर भारी पड़ती थीं क्योंकि फिल्म में इतने सारे किरदारों के बावजूद वह रस नहीं उत्पन्न होता था जो शकीला अकेले ही निभा ले जाती थी। शकीला बानू भोपाली अपने आप में तीन घंटे की मुकम्मल फिल्म थी, जो छठे दशक में खूब चली।

लीला नायडू

कभी अनुराधा, तो कभी डोना मारिया



लीला नायडू के फिल्मी जीवन में कई चढ़ाव, उतार, विराम तथा विश्राम आए हैं। उनकी अभिनय यात्रा ठेठ पचास के दशक के प्रारंभ में जिनेवा के एक इंटरनेशनल स्कूल के एक नाटक "लीला, ऑए द सोल हू वान्टेड टू इक्वल द गॉड्स" (लीला, जो देवताओं की बराबरी करना चाहती थी।) में एक भूमिका के साथ शुरू हुई। इसी स्कूल के एक पुराने छात्र ने उन्हें यह भूमिका करते देखा और उन्हें अपनी एक प्रयोगात्मक फिल्म 'बर्थ ऑव् ए सोल' में मौका दिया। इस फिल्म का रूप बड़ा ही अपरंपरागत था। उसमें कौतुक, आकांक्षा, सहानुभूति तथा अवलोकन जैसे भावों को घटनाओं के बजाए दीवार पर लगी एक फोटो-फ्रेम के जरिए व्यक्त किया गया था। इस फिल्म को कान के शौकिया फिल्म समारोह में पुरस्कृत किया गया था। इसके बाद उन्होंने कुछ फ्रेंच और इंग्लिश नाटकों में काम किया और कुछ समय के लिए भारत लौटीं। और तभी उनके साथ **'अनुराधा'** घट गई। ऋषिकेश मुखर्जी ने उन पर एक नजर डाल कर ही कह दिया कि **"तुम्हीं मेरी 'अनुराधा' बन सकती हो"** एक गाँव में एक काम करने वाले डॉक्टर की उपेक्षिता पत्नी की इस निहायत ही संवेदनशील भूमिका के लिए उन्हें प्रशंसा तो मिली ही, इस फिल्म को राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुआ । 'अनुराधा' बर्लिन फिल्म समारोह में भी दिखलाई गई थी। वहाँ डेरिल जैन्युक ने उनका परिचय क्रिस्टोफर मान से करवाया। क्रिस्टोफर ने १९६२ में उन्हें विलियम मॉरिस एजेंसी में दाखिल करवा दिया। वहाँ उन्होंने टी.वी. फिल्म 'द फ्रंटियर' में अभिनय किया।बेशक इसके बाद मर्चेंट आइवरी की शशि कपूर के साथ वाली फिल्म 'द हाउस होल्डर' (हिंदी में 'घरबार') आई। 'हाउस होल्डर' का प्रीमियर न्यूयॉर्क में हुआ जहाँ कनाड़ा के निर्देशक हार्वे हार्ट ने उन्हें 'फेस इन द सन' में एक भूमिका दी। खुद लीला बतलाती हैं, विदेशी फिल्मों में काम करना वैसे अच्छा लगता था लेकिन मैं भारत में बस जाना चाहती थी। इसलिए यहीं वापस लौटीं। मगर 'अनुराधा' के बाद वैसी भूमिकाएँ लेकर निर्माता मेरे पास नहीं आते थे। —वे बस पैसा ले आते थे, फिल्म की स्क्रिप्ट नदारद रहती थी। मेरे इंकार करने पर वे समझते थे मैं या तो पागल हूँ या खुद को दिलीप कुमार समझती हूँ।



इसके बावजूद लीला ने आर.के. नय्यर की **'ये रास्ते हैं प्यार के'**, **'बागी'** तथा फिल्म वित्त निगम की 'अ फेस इन द सन्' के हिन्दी संस्करण **'उम्मीद'** में भी अभिनय किया। दुर्भाग्यवश यह फिल्म रिलीज नहीं हो पाई। अशोक कुमार के साथ **'आबरू'** फिल्म में काम करते हुए ही प्रसिद्ध अंगरेजी कवि, लखेक डॉम मारेस के साथ उनका प्रणय-प्रसंग चला जो बाद में विवाह में तब्दील हो गया। मगर लीला नायडू को फिल्में मिलना धीरे-धीरे कम होता गया। जहाँ शशि कपूर ने उन्हें सलाह दी कि हर तरह की भूमिकाएँ स्वीकार कर दौड़ में बने रहना चाहिए वही

नई पीढ़ी तो लीला नायडू को जानती भी नहीं। सूरज की रोशनी में दमकते इस चेहरे को देखते ही ऋषिकेश मुखर्जी ने कहा था- 'मेरी अनुराधा तो तुम हो।' अपने संवेदनशील अभिनय से अनुराधा और लीला एक दूसरे के पर्याय बन गए। दो साल पहले श्याम बेनेगल की फिल्म त्रिकाल में लीला नायडू ने एक बार फिर डोना मारिया को सजीव कर दिया।

बलराज साहनी (अनुराधा के नायक) का कहना था कि यह कुत्ते द्वारा अपनी ही दुम का पीछा करने जैसी बात है। लीला नायडू ने बाद वाली सलाह मान ली। वे कैमरे के सामने से हट कर उसके पीछे चली गईं। कुछ समय तक वे वृत्त-चित्र तथा विज्ञापन फिल्में बनाती रहीं तथा गरीब बच्चों के लिए काम करती रहीं। सन् १९७१ में डॉम मोरेस के साथ विवाह के बाद वे दक्षिण -पूर्व एशिया में भी रहीं जहाँ डॉम 'एशिया मेगजीन' का संपादन कर रहे थे। लगभग पंद्रह वर्ष तक फिल्मों के साथ उनका संबंध टूटा रहा। इसके बाद गोआ की पृष्ठभूमि पर बनाई अपनी फिल्म **'त्रिकाल'** में श्याम बेनेगल ने उन्हें डोना मारिया की भूमिका दी। डोना मारिया साठ के दशक के एक गोआनी परिवार की प्रमुख है। वह ईसाई है मगर अपनी

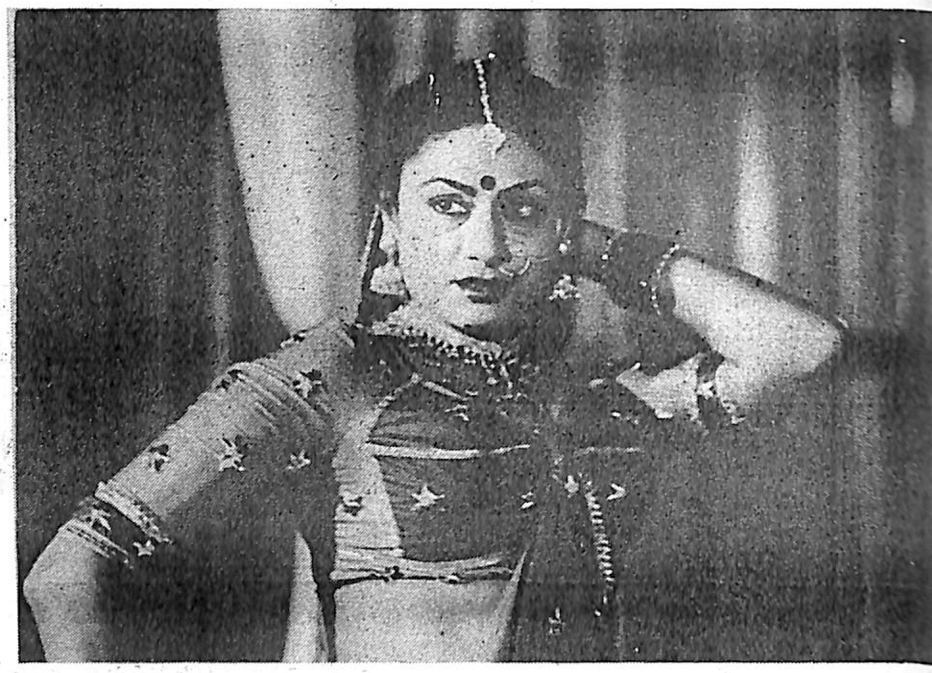
तमाशा चालू है : अरुणा ईरानी

अरुणा ईरानी हिन्दी फिल्मों की सबसे अच्छी और दुर्भाग्यशाली अभिनेत्री है। उसने जितना चाहा, उसका आधा भी उसे नहीं मिला है। नायिका नहीं बनने का उसका दुःख जीवन का स्थाई भाव बन चुका है। भाग्य से समझौता करते हुए वह नाच रही है, गा रही है और दौड़ रही है, ताकि तमाशा चलता रहे। चालीस साल की उम्र में चार सौ फिल्मों का 'स्कोर' उसने हासिल किया है, इसलिए उसे कोई बुरी खिलाड़ी कहने की हिम्मत नहीं कर सकता।

यदि किसी भारतीय अभिनेत्री को हरफनमौला की संज्ञा दी जा सकती है तो वह है **अरुणा ईरानी**। फिल्मों में अपनी उम्र का ९० फीसदी हिस्सा खपा चुकने वाली यह बेचैन अभिनेत्री इस उद्योग में ढेरों पापड़ बेल चुकी है। अमिताभ जैसे सुपर स्टार के साथ नायिका बनकर आने वाली इस चिर युवती ने नृत्यांगना, खलनायिका, चरित्र अभिनेत्री, हास्य कलाकार तथा सहनायिका की कई भूमिकाएँ अदा की हैं। अपनी कार्यक्षमता तथा नियमितता के कारण अरुणा दक्षिण भारतीय निर्माताओं की चहेती अभिनेत्री रही है। सच पूछा जाए तो प्रतिभा, अभिनय क्षमता, रूप सौंदर्य तथा शारीरिक नाप जोख में वह आज की कई सुपर नायिकाओं से बीसी ही उतरती हैं। उम्र के चार दशक पूरे करते समय उसकी फिल्मों की संख्या चार शतक पार कर चुकी है।

अरुणा के फिल्मी केरियर का सुनहरा पन्ना **'बाम्बे टू गोआ'** में लिखा गया। इस फिल्म के बाद उसे उम्मीद बँधी कि अब वह नायिका के रूप में स्थापित होने की सीढ़ी तक पहुँच गई है। किन्तु सारी आशाओं पर तुषारापात हो गया और उसे नायिका की भूमिका के लिए कोई प्रस्ताव नहीं मिला। उस वक्त अनुभवहीन और अपरिपक्व उम्र की इस लड़की ने हड़बड़ी में अन्य सह भूमिकाएँ जैसे-जैसे मिलती गईं, स्वीकार करना शुरू कर दिया। कपड़े बदन से उतारने में भी वह नहीं झिझकी और केबरे डांसर के रूप में काफी आई। **'बॉबी'** तथा **'खेल खेल में'** उसके नृत्यों की खुलकर तारीफ हुई। 'अंगूर' में अरुणा की प्रतिभा हास्य अभिनेत्री के रूप में सराही गई। सेक्सी भूमिकाओं तथा द्विअर्थी संवादों की अदायगी के लिए भी उससे अधिक उपयुक्त कोई अन्य अभिनेत्री निर्माताओं को नहीं मिल पाती थी।

नायिका बनने की साध पूरी करने के लिए उसने गुजराती फिल्मों का सहारा लिया। हिन्दी फिल्मों में नायिका बनकर सफल होने का उसे स्वयं विश्वास नहीं था। इसीलिए जब उसने अपने भाई के नाम से फिल्म निर्माण संस्था (रतन मूवीज) शुरू की, तब **'अनोखा बंधन'** तथा **'मेरा धरम'** नामक फिल्मों में नायिका का रोल खुद नहीं लिया। जब लोगों ने इसकी वजह पूछी तो जवाब था, "मैं बेवकूफ नहीं हूँ कि खुद हीरोइन बन जाऊँ। ऐसा करने पर फिल्म को कौन वितरक खरीदेगा। अब मैं भावुक नहीं रही, व्यापारिक दृष्टिकोण से सोचती हूँ।"



इसी व्यापारिक दृष्टिकोण ने अरुणा को अपनी ढलती उम्र के बारे में सोचने को बाध्य किया, इसीलिए अब वह सास, माँ और बड़ी बहन की भूमिकाएँ बेहिचक स्वीकार कर लेती है। हीरोइन न बन सकने की पीड़ा को वह नियति का क्रूर व्यंग्य मानकर झेल चुकी है। अरुणा ईरानी अपनी क्षमताओं के लिए जितनी याद की जाएगी, उससे कहीं ज्यादा वह एक ऐसे दृष्टांत के रूप में याद आएगी कि किसी को भी भाग्य के बिना प्रतिभा ऊँचाई तक नहीं पहुँचा सकती। ■

हिंदू जड़ों को नहीं बिसरा पाई है। उसका कुनबा समझता है कि वह जरा पगला गई है लेकिन उस पर उसकी पकड़ पूरी तरह मजबूत है और उसके बेटे बहू तथा बेटियाँ भी उसकी मर्जी के खिलाफ कुछ नहीं कर पाते। इस पात्र को जीने के लिए लीला नायडू ने भायखला (बंबई) में रहने वाली एक गोआनी वृद्धा की दिनचर्या का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया था। लीला बड़ी हसरत के साथ कहती हैं कि यदि आज से बीस वर्ष पूर्व गोविंद निहलानी तथा श्याम बेनेगल जैसे निर्देशक होते तो उनका अभिनय जीवन कुछ भिन्न तथा बेहतर आकार ग्रहण कर सकता था। 'त्रिकाल' के बाद वैसे उन्हें कोई नई भूमिकाएँ नहीं मिली हैं।

लीला नायडू का पारिवारिक जीवन तथा पूरी पृष्ठभूमि भारतीय सिनेमा की अन्य अभिनेत्रियों से बहुत भिन्न रही है। उनकी माता फ्रेंच थीं तथा पिता डॉ.रामन नायडू प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी हैं जो मेडम क्यूरी के शिष्य रह चुके हैं। उनका बचपन जिनेवा में गुजरा तथा उनकी वहाँ की यादें वे अब भी संजोए हुए हैं। डॉम मारेस से पहले उनकी एक शादी और हुई थी जिससे उन्हें दो बेटियाँ भी हुईं। इन बेटियों को अपने पास रखने के लिए तलाक के बाद उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा लेकिन कोर्ट ने उन्हें उनका अधिकार यह कहते हुए नहीं दिया कि वे उन्हें पालने में आर्थिक रूप से सक्षम नहीं थीं। उनके पूर्व पति के पास पैसा बहुत था लेकिन वे बेटियों पर ध्यान नहीं दे सके और वे नशीले पदार्थों की आदी हो गईं। बाद में लीला नायडू के साथ बेटियों के संबंध अच्छे हो गए तथा वे इस लत से भी मुक्त हो गईं।

अभिनेत्री के रूप में भी उनके साथ सब–कुछ ठीक ही नहीं रहा। डेविड लीन की 'डॉ.जीवागो' की एक महत्वपूर्ण भूमिका उनके हाथों से निकल गई। देव आनंद की 'गाइड' में पर्ल बक रोजी की भूमिका उन्हीं को देना चाहती थीं लेकिन देव आनंद को चूँकि बॉक्स ऑफिस हीरोइन चाहिए थी, वह भूमिका वहीदा रहमान को मिल गई। बहरहाल, लीला नायडू अपने जीवन से कुल मिलाकर संतुष्ट हैं। क्योंकि जिस बौद्धिक और दार्शनिक माहौल में वे रहती आई हैं वहाँ अफसोस करने का ज्यादा मौका नहीं रहता। त्रिकाल जैसी भूमिका मिलने पर वे वापस अभिनय–क्षेत्र में आना पसंद करेंगी। दर्शकों का एक विशिष्ट वर्ग हमेशा उस घड़ी का इंतजार करता रहेगा।

नलिनी जयवंत

कॉलेज-कन्याओं की आदर्श

रंगमंच ने भारतीय फिल्मों को कई शीर्षस्थ कलाकार दिए हैं। पृथ्वीराज, दुर्गा खोटे, वनमाला, स्नेहप्रभा प्रधान बीते युग की देन थे तथा राजेश खन्ना और संजीव कुमार नए जमाने के उपहार। ऐसा ही एक नायब तोहफा रंगमंच के जरिए फिल्मों को **नलिनी जयवंत** के रूप में मिला। शोभना समर्थ की रिश्ते की इस बहन का जन्म १८ फरवरी १९२६ को हुआ था। स्कूली दिनों से ही इस बालिका को नृत्य तथा अभिनय से लगाव हो गया था। बंबई रेडियो स्टेशन के बालसभा कार्यक्रम में छः वर्ष की उम्र में गाना गाकर इसने अपने कैरियर की शुरूआत की, दस वर्ष की आयु में वह पहली बार स्कूल के मंच पर कलाकार के रूप में आई। इसके पश्चात उसने रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाटक 'श्रीमतीजी' में नायिका की भूमिका सफलतापूर्वक कर यश अर्जित करने की दिशा में पहला कदम रखा। रंगमंच से परदे तक का सफर नलिनी के लिए बेहद आसान रहा। डायरेक्टर वीरेन्द्र देसाई ने तेरह साल की इस लड़की को अपनी फिल्म **राधिका** के लिए अनुबंधित कर लिया। ताजगी भरे चेहरे तथा मासूम अदाओं के कारण नलिनी पर्दे पर आते ही दर्शकों की चहेती बन गई। 'राधिका' के बाद महबूब की 'सिस्टर', वीरू देसाई की 'निर्दोष' तथा आर.एस. चौधरी की 'आँख मिचौली' आई। 'आँख मिचौली' तथा उसके बाद की फिल्म 'आदाब अर्ज' में नलिनी जयवंत की अभिनय प्रतिभा पूरे शबाब के साथ सामने आई।

नलिनी जयवंत का चेहरा आम खूबसूरत कही जाने वाली नायिकाओं से बिल्कुल अलग था। वह किसी पश्चिमी चित्रकार द्वारा योरपीय पृष्ठभूमि की तस्वीर में दर्शाई गई अँगरेज कुमारी लगती थी। बादाम जैसी आँखों को मटकाने की उसकी अनोखी अदा, चुम्बकीय मुस्कान तथा मासूम भोली आवाज उसकी विशेषता थी। भारतीय रजतपट पर उस जमाने में वीना, नसीम, निगार जैसी राजसी सुन्दरियाँ, मधु और मीना जैसी अल्हड़ रूपसी तथा बेगम पारा जैसी सेक्सी हसीनाएँ छाई हुई थीं। नलिनी जयवंत के चेहरे की मासूमियत तथा शरारती आँखों ने उसे तत्कालीन युवाओं और किशोरों की चहेती नायिका बना दिया।

यह चहेती नायिका सत्रह साल की कमसिन उम्र में ही प्यार के बंधन में पड़कर विवाह सूत्र में बँध गई। निर्देशक वीरेन्द्र देसाई से १९४३ में हुआ उसका विवाह फिल्मी कैरियर के लिए घातक सिद्ध हुआ। कुछ निर्माताओं ने तो फौरन अपनी फिल्मों से बाहर कर दिया और बाकी ने उसे फिल्मों में लेना बंद कर दिया। फिल्मी कैरियर को दाँव पर लगाकर उसने जिस वैवाहिक जीवन की कल्पना की थी वह भी उससे दूर रहा। अतः कुछ वर्षों बाद उसने तलाक ले लिया। लगभग चार वर्षों तक फिल्मी दुनिया से अलग-थलग रहने के बाद वापसी की कोशिशें काफी दिक्कतभरी साबित हुईं। अपने अहंकार को तिलांजलि देकर उसने गुजराती फिल्म **वारसदार** में भूमिका स्वीकार कर ली। इस फिल्म में उच्चकोटि के अभिनय तथा त्रुटिहीन गुजराती उच्चारण के कारण वह एक बार फिर दर्शकों की चहेती बन गई।

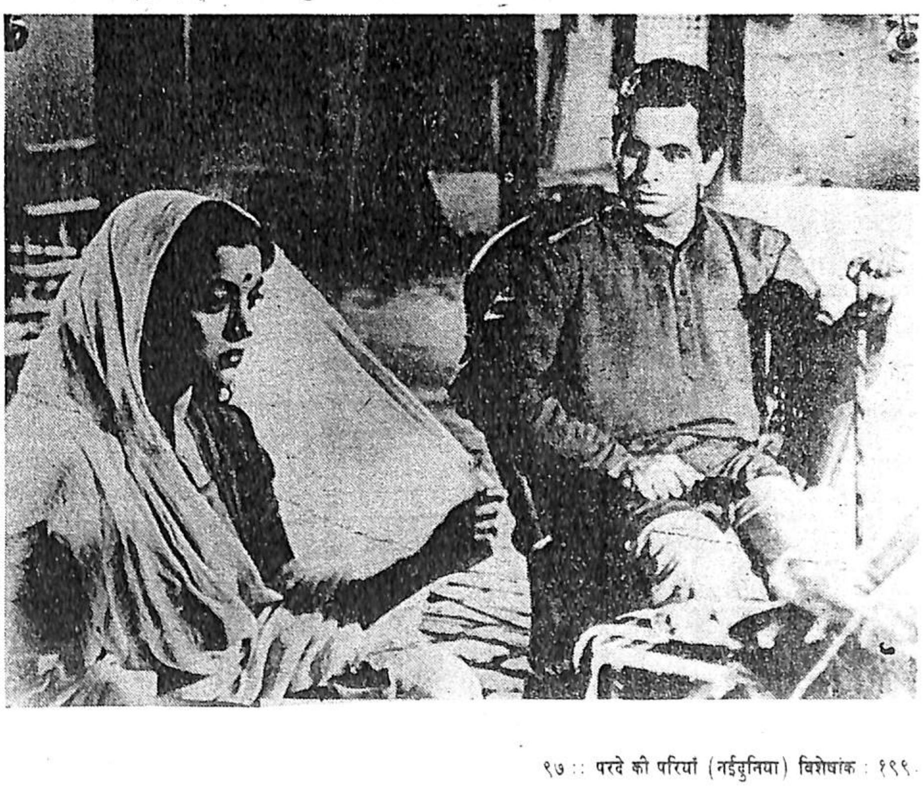
हिन्दी फिल्मों में उसकी वापसी धरमसी की फिल्म 'अनोखा प्यार' के जरिए हुई। दिलीप और नरगिस जैसे सितारों वाली इस फिल्म में वह गरीब माली की बेटी के रूप में आई जो नायक से प्यार करती है। इस फिल्म में उसका अभिनय अत्यंत मार्मिक और प्रभावशाली रहा। 'आँखें' तथा 'नौजवान' ने उसे फिर से सितारों की श्रेणी मे रख दिया। इसके बाद आई 'समाधि'। फिल्मिस्तान की यह फिल्म नेताजी की आजाद हिन्द फौज की पृष्ठभूमि पर निर्मित हुई थी। अशोक कुमार, नलिनी जयवंत तथा श्याम ने इस फिल्म में अविस्मरणीय भूमिका की। समाधि हिट हुई तथा अशोक और नलिनी की जोड़ी कामयाब प्रेमी जोड़ी मानी जाने लगी। बॉम्बे टॉकीज की 'संग्राम' हिंसा और अपराध को बढ़ावा देने वाली फिल्म थी। इस कारण इसे पाकिस्तान में प्रतिबंधित कर दिया गया था। वैसे इस फिल्म में भी नलिनी-अशोक की जोड़ी को लोगों ने काफी पसंद किया। अशोक और नलिनी की जोड़ी 'काफला', 'चंचल', 'शोले', 'नौबहार', 'सलोनी' 'जलपरी' तथा 'नाज' में आई। नाज पहली भारतीय फिल्म थी जिसकी शूटिंग विदेशों में हुई थी। इन दोनों कलाकारों की जोड़ी आखिरी बार एक साथ 'मि. एक्स' में आई। यह पहली हिन्दी फिल्म थी जिसमें 'रॉक एन रोल' डांस का समावेश था। यह फिल्म भी हिट रही।

नलिनी जयवंत का युग नखरेवाली फिल्मी नायिकाओं का युग था। नरगिस, सुरैया, मधुबाला, नूतन, कामिनी कौशल, नलिनी जयवंत सभी चोटी

◆ ◆ ◆

दादा मुनि अशोक कुमार ने अपने जीवन में पत्नी के अलावा सिर्फ नलिनी जयवंत से प्यार किया था। अपने घर की छत पर दूरबीन लेकर वे नलिनी को दूर से घूर कर नजदीक महसूसा करते थे। नलिनी जयवंत अपनी विशेष हेयर स्टाइल के कारण कॉलेज की कन्याओं की आदर्श थी। संवेदनशील अभिनय के कारण राधिका, समाधि, नौबहार, शिकस्त मुनीमजी एवं कालापानी उनकी यादगार फिल्में हैं। अपने रोमांटिक दृश्यों के संवाद वह बाथरूम में दोहरा कर रिहर्सल करती थी। अमिताभ बच्चन की फिल्म 'नास्तिक' में वह अंधी माँ के रोल में आई थी। संग्राम फिल्म में बिकनी पहन कर हंगामा खड़ा करने वाली नलिनी जयवंत पहली नायिका है।

फिल्म 'शिकस्त' (१९५३) में दिलीप कुमार के साथ



की नायिकाएँ थीं मगर सबके अन्दाज अलग-अलग थे। नलिनी अपने बालों के रख-रखाव तथा स्टाइल के कारण कॉलेज छात्राओं की आदर्श थी। वह पहली नायिका थी जो हेयर ड्रेसर को साथ रखती थी। फिल्मों में प्रीमियर के अवसर पर वह खुद की डिजाइन की हुई पोशाक पहनकर जाया करती थी। फिल्म संग्राम में तैराकी पोशाक में लिए गए उसके शॉट काफी चर्चा का विषय बने। इस फिल्म ने उसे पहली भारतीय 'पिनअप नायिका' का दर्जा दे दिया।

नलिनी जयवंत का युग भारतीय विशेषकर हिन्दी फिल्मों में नायिकाओं का युग था। सुरेश तथा शेखर जैसे नायकों के चिकने चेहरों की बजाए नलिनी ही फिल्मों को बॉक्स आफिस पर सफल बनाया करती थी। शेखर के साथ 'दोराहा' में वह एक भावुक कलाकार की भूमिका में आई। फिल्म में उसका अभिनय तथा अनिल विश्वास की धुनें अपनी पूरी ऊँचाई पर थीं। चिंगारी में भी नलिनी शेखर पर हावी रही। मराठी तथा हिन्दी में बनी 'नन्दकिशोर' तथा फिल्मिस्तान की 'दुर्गेश नन्दिनी' भी नायिका प्रधान फिल्में थीं। कोलम्बिया पिक्चर्स ने १९४९ में खानाबदोश कबीलों की प्राचीन लोकप्रिय प्रेम कथा पर 'कारमेन' नामक फिल्म बनाई। उस जमाने में हॉलीवुड की फिल्मों की सफल नकल करने में विशेषज्ञ माने जाने वाले ए.आर. कारदार ने इसी कहानी को लेकर **'जादू'** नामक फिल्म बना डाली। नौशाद के मधुर संगीत तथा 'लो प्यार की हो गई



जीत' जैसे हिट गीतों के बावजूद फिल्म असफल रही। इस फिल्म में नायक की भूमिका सुरेश ने अदा की थी।

'एक नजर' में वह रहमान के साथ आई। फिल्म के अन्य कलाकार थे देवानन्द तथा मधुबाला। इसके बाद 'हिन्दुस्तान हमारा' में उसने देवानन्द के साथ नायिका की भूमिका की। देवानन्द के साथ उसकी जोड़ी काफी लोकप्रिय हुई। ख्वाजा अहमद अब्बास ने जब बागानों के श्रमिकों की दुर्दशा पर अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में 'राही' नामक फिल्म का निर्माण किया तो नायक की भूमिका में देवानन्द तथा नायिका के रूप में नलिनी को लिया। इस फिल्म में नलिनी ने अपने भावपूर्ण एवं प्रभावशाली अभिनय से दर्शकों को मुग्ध कर दिया।

नलिनी तथा उसके पति ने १९५३ में फ्रांसीसी निर्देशक हेनरी डेकोइन के साथ **लास्ट जजमेन्ट** नामक फिल्म का निर्माण किया। नायिका नलिनी थी तथा नायक भारतभूषण। फ्रांसीसी सहयोग से अँगरेजी ओर हिन्दी में बनने वाली यह पहली गेवाकलर फिल्म थी। दर्शकों के बीच इस मासूम नायिका को कितनी लोकप्रियता हासिल थी इसका पता 'फिल्मफेयर' द्वारा भारतीय रजतपट की सर्वाधिक सुंदर नायिका चुनने के लिए कराए गए अभियान से मिलता है। पाठकों को मीना, वीना, नसीम, जयश्री, बीना, निगार तथा नलिनी जयवंत में से सर्वाधिक सुन्दरी नायिका का चुनाव करना था। पाठकों ने बहुमत से नलिनी को ही सर्वाधिक सुंदर घोषित किया।

फिल्मिस्तान की 'नास्तिक' में नलिनी के सौन्दर्य पर उत्तम अभिनय का सुहागा लग गया। इसके बाद आई रमेश सहगल की 'शिकस्त'। इस फिल्म में नलिनी ने धनी जमींदार की ऐसी विधवा की भूमिका की जो अपने पुराने प्रेमी के गाँव वापस लौट आने के कारण विचलित हो जाती है। अपनी भावनाओं को दमन करने के प्रयास उसे कटु बना देते हैं। यह कटुता निरीह किसानों पर उसके अत्याचारों से प्रकट होती है। दिलीप जैसे सधे हुए नायक के साथ असफल प्रेम की पीड़ा झेलते-झेलते लगभग खलनायिका बन जाने वाली नायिका की भूमिका को उसने चुनौती की तरह लिया। इस गंभीर चुनौती के बाद उसे दूसरी चुनौतीपूर्ण भूमिका १९५५ में मिली। फिल्मिस्तान की **मुनीमजी** में उसने देवानन्द के साथ हास्यपूर्ण भूमिका में अपनी अभिनय प्रतिभा का चमत्कार दिखाया। ऐसी ही अन्य हास्य प्रधान फिल्म 'हम सब चोर हैं' १९५७ में बनी। आई.एस. जौहर द्वारा निर्देशित फिल्मिस्तान की इस फिल्म को हिन्दी की श्रेष्ठ हास्य फिल्मों में शुमार किया जाता है। नलिनी ने इस फिल्म में डबल रोल किया। जुड़वाँ बहनों के रूप में उसका अभिनय बेहद सराहा गया।

नवकेतन की 'कालापानी' में नलिनी जयवंत ने पहली बार तवायफ की भूमिका की। देवानन्द और मधुबाला की मुख्य भूमिका वाली इस फिल्म में उसे हैदराबाद रियासत की ऐसी तवायफ का किरदार निभाना था जिसे नायक अपने झूठे प्रेमजाल मे फँसा कर पिता को निर्दोष सिद्ध करने के लिए प्रमाण जुटाना चाहता है। नलिनी ने सब समझते हुए भी नकली प्रेम की लाज निभाकर नायक को जरूरी प्रमाण सौंपे। इस भूमिका में वह इतनी जीवंत हो गई कि सर्वश्रेष्ठ सह अभिनेत्री का फिल्म फेयर अवार्ड मिला।

इसके बाद उसे कोई उल्लेखनीय भूमिका नहीं मिली। 'माँ के आँसू' तथा 'अमर रहे यह प्यार', असफल रही। कुछ वर्षों बाद प्रदर्शित हुई फिल्म 'बाम्बे रेसकोर्स' भी दर्शकों को लुभा नहीं पाई। बाद के वर्षो में वह अपने पति प्रभुदयाल के साथ- चेम्बूर स्थित आलीशान कोठी में रिटायर जिन्दगी बिताने लगी।

प्रमुख फिल्में: *बहन (१९४१)*राधिका, निर्दोष (१९४१) *आँख मिचौली (१९४२) *आदाब अर्ज (१९४३) *अनोखा प्यार (१९४८) *चकोरी (१९४९) *मिस्टर एक्स (१९५७) *कालापानी (१९५८) *मुक्ति (१९६०) *अमर रहे यह प्यार (१९६१) *बाम्बे रेसकोर्स (१९६५)। ■

गीताबाली में पंजाब की अल्हड़ता, सिख औरत की जज्बाती मर्दानगी और निपट देहातन की सटीक घ्राणशक्ति पूरी तीख के साथ भरी हुई थी। पेड़ पर चढ़कर कैरी तोड़ने वाली इस लड़की को यह पता ही नहीं चला कि वह जवान हो गई है। बगैर सोचे वह जानती थी कि कहाँ 'लाइन' खींच देना है। 'टाइम-सेंस' की जानकारी गीताबाली को अद्भुत थी। यह वजह है कि भगवान जैसे अभिनेता के साथ उसने 'अलबेला' फिल्म को सुपरहिट बना दिया।

गीताबाली

एक चादर उजली-सी

● अजातशत्रु

फर्ज कीजिए सिनेमा का आविष्कार नहीं हुआ होता। तब सीधा नुकसान हमें यह होता कि सौन्दर्य, प्रतिभा और शख्सियत में जो कुछ भी आकर्षक और प्रभावशाली है, उसके मानसिक-बौद्धिक आनंद से हम वंचित रह जाते। दिलीप कुमार, नौशाद, नरगिस और बिमल राय को न जानने का जो नुकसान है, उसकी कल्पना हम उस आनंद और आश्चर्य-सुख से कर सकते हैं, जो हमें आज इनके परिचय के कारण नसीब है। फिल्म जगत ने हमें लता-रफी जैसे गायक, मदनमोहन जैसा संगीतकार, अशोक कुमार-बलराज साहनी जैसे अभिनेता, कन्हैयालाल-नाना पलसीकर जैसे चरित्र अभिनेता, नसीम और मधुबाला जैसी सुंदरियाँ, वैजयंतीमाला-वहीदा रहमान जैसी नर्तकियाँ, ऋषिकेश मुखर्जी-गुलजार जैसे निर्देशक, डॉ. राही मासूम रजा और असगर वसाहत जैसे संवाद-लेखक और वी. शांताराम जैसे छविकार दिए हैं। बगैर सिनेमा के किसी एक जगह मनुष्य और कला में जो श्रेष्ठ है, उसे इतनी बड़ी मात्रा में देखना-सुनना दुर्लभ हो जाता।

ऐसा ही कुछ मैं **गीताबाली** को लेकर सोचता हूँ। दुनिया में कितनी ही औरतें गीताबाली की तरह दिलकश और हैरतअफजा होंगी। मगर मैं उन्हें नहीं जानता। मगर एक गीताबाली को मैं जानता हूँ तो एक दुर्लभ कलात्मक सुख का स्वामी भी हूँ। गीता नामक दृश्य और यंत्र के चिंतन ने प्रकृति के प्रति मेरे सम्मान और जवाब में निश्छल आनंद को बढ़ाया भी है। गीता से ज्यादा मेरी रुचि इस तथ्य में है कि मेरी नाक के नीचे एक मीठा-सा करिश्मा हुआ और मैं उसे देखने-समझने का कलात्मक आनंद ले सका। गीता

नामक फिनामेनन की मौजूदगी और उसके अहसास ने मुझे बताया-जैसा गुरुदत्त ने बताया, याकूब ने बताया, अमिय चक्रवर्ती ने बताया- कि इस कायनात के रेतीले धब्बों में मरुभूमि के टुकड़े भी हैं और इन टुकड़ों में एक-एक नैसर्गिक फूल भी हैं। सोचिए, महसूसिए और कलात्मक आनंद में रूखे, क्रूर यथार्थ से कुछ पल के लिए नजात पाइए। मैं सिनेमा का इसी अर्थ में सांस्कृतिक अहसानमंद हूँ।

गीताबाली हमारे फिल्म लोक का छोटा मगर सदाबहार तोहफा थी। वह एक तरोताजा फूल थी, मगर जूही, चम्पा और केतकी की तरह अभिजात फूल नहीं, खेतों की मेड़ों पर उगा हुआ जंगली फूल। वह गुलिस्तानों से गुज़र जाने वाला खिरामचाल नसीम नहीं, घास की गंजियों में बहनेवाली तेजगाम हवा थी। वह नदी का शांत जल नहीं, पहाड़ी-झरने की खिलखिलाहट थी। उसमें कुछ ऐसा अनगढ़, ऐसा बेतरतीब और ऐसा बेतकल्लुफ जोश था, जो दिल को छू जाता है और आपकी उदासी को तिनके-तिनके धुन देता है। गीता को पश्चिम की **रीटा हैवर्ट** कहा गया था। पर रीटा हैवर्ट की तरह वह कामोत्तेजक नहीं थी, बल्कि भारतीय नारी के शालीन चौखटे के भीतर वह प्रफुल्लतादायी शरारत थी। उसमें पंजाब की अल्हड़ता, सिख़ औरत की जज्बाती मर्दानगी, और निपट देहातन की सटीक घ्राणशक्ति... पूरी तीख के साथ भरी हुई थी। पेड़ पर चढ़कर कैरी तोड़नेवाली यह लड़की जिसे कभी पता नहीं चला कि वह जवान हो गई है- बगैर सोचे जानती थी कि उसे कहाँ क्या करना है, कितना करना है, और कहाँ बीच में लाइन खींच देनी है।

वर्युअस. वाइल्डनेस, इन्सटिन्कटिव सेंस ऑफ प्रिसीजन और स्पॉनटनिटी- इनका जमाशुदा नाम है, गीताबाली।

गीताबली महान अभिनेत्री नहीं थी और न वह अविस्मरणीय तौर पर सुंदर थी। उसमें नरगिस-सी गहराई व ठहराव, वैजयंतीमाला-सी गरिमा और वहीदा सा अपरिभाष्य आकर्षण देखने में नहीं आता। मगर इन सबके बावजूद वह भारतीय फिल्म जगत की विशिष्ट और अलहदा तारिका है। वह सितारों की भीड़ में खोती नहीं, अलग-थलग टिमटिमाती है। उसमें एक नारी और अभिनेत्री का जीवंत पोटेंशियल है, जिसके कारण वह रोल में जान फूँक देती है। उसकी खूबी थी- ऐलीमेंटल फोर्स और पहाड़ी ऊर्जा, जो भारतीय नारी की अंतर्स्थित शिष्टता के साथ मर्यादित होकर, प्रेम, समर्पण और नारी की जीत के अविस्मरणीय किरदार रचते थे।

बावरे नैन की प्रेमिका को देख लीजिए! वह डाक बाबू से प्यार करती है। उसे सताती है। उसकी टाँग खींचती है। मगर एक जगह वह अचानक गंभीर हो जाती है और जैसे 'बाबू' के गले में अपना दुपट्टा डालकर कहती है- 'भाग सकते हो, जो भाग जाओ।' संकेत है कि मुझे ही घसीटते और लहूलुहान करते जाना पड़ेगा। जीवन में और अभिनय में गीता की यह खूबी रही कि अपनी तमाम लापरवाह, मिजाजी और सतही नासंजीदगी के बीच वह उस 'ऐन' क्षण को जानती रही है, जहाँ उसे अचानक गंभीर हो जाना है और



देवलोक से मृत्यु लोक में अनिता गुहा

एक ओर यदि शोले फिल्म सुपर हिट होती है, तो दूसरी ओर जय संतोषी माँ। ऐसा करिश्मा सिर्फ भारतीय दर्शक ही कर सकते हैं। देवी के समान पूजी जाने वाली अनिता गुहा इन दिनों सांसारिक चरित्रों में काम कर रही हैं।



पचास और साठ के दशक में मीनाकुमारी और गीताबाली जैसी अभिनेत्रियों के साथ **अनिता गुहा** का नाम भी शान के साथ लिया जाता था। मीनाकुमारी और गीताबाली अगर ट्रेजेडी-क्वीन थीं, तो अनिता गुहा परदे की देवी के रूप में मशहूर थीं। उन्होंने एक के बाद एक कई धार्मिक फिल्मों में कभी सीता तो कभी लक्ष्मी और कभी किसी महासती की भूमिकाएँ निभाईं। ताजा अतीत में उनकी फिल्म **जय संतोषी माँ** ने कई रिकॉर्ड तोड़े थे। १९८२ में अनिता गुहा ने अपने अभिनय जीवन की रजत जयंती पूरी की और इसके बाद ही नायिका की भूमिका छोड़ माँ-बहन और भाभी जैसे चरित्र रोल अपनाने पड़े। पहली बार वे माँ की भूमिका में शक्ति सामंत की फिल्म **आराधना** में दिखाई दी थीं।

अनिता गुहा का फिल्मों में प्रवेश बंगाली फिल्म 'बसेर केला' से हुआ था। यह पचास के दशक की बात है। इससे पूर्व १९५२ में उन्होंने एक सौंदर्य स्पर्धा में भाग लिया और अव्वल रहीं। अनिता की पहली हिंदी फिल्म है **दुनिया गोल है**। इस फिल्म में करण दीवान नायक थे। अनिता गुहा अपने समय की तारिका होते हुए भी शीर्ष पर कभी नहीं पहुँच सकीं। वैसे उनकी चर्चित फिल्मों में टैक्सी स्टैंड, संबंध, कहानियाँ, छूमंतर, संजोग तथा ताँगेवाली के नाम उल्लेखनीय हैं। सामाजिक फिल्मों की अपेक्षा अनिता को धार्मिक फिल्मों में अधिक सफलता मिली। धार्मिक फिल्मों में उनकी लोकप्रियता के डंके विजय भट्ट की 'संपूर्ण रामायण' के बाद बजने लगे। इस फिल्म में उन्होंने सीता की भूमिका निभाई थी। इसके बाद उन्होंने अनेक धार्मिक फिल्मों में काम किया, जैसे-पवनपुत्र हनुमान, अँगुलीमाल, महासती अनुसूया, कण-कण में भगवान आदि।

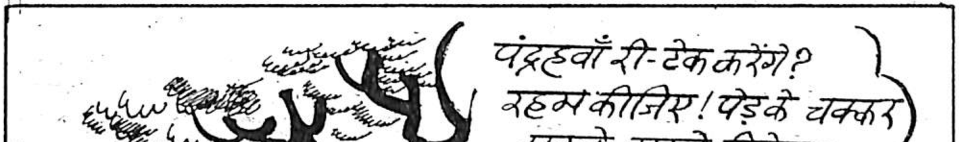
जय संतोषी माँ की सफलता के बारे में अनिताजी का कहना है कि "मुझे भरोसा नहीं था कि यह फिल्म इतनी लोकप्रिय होगी।" अनिताजी की ईश्वर में आस्था जरूर है, मगर वे इस फिल्म में काम करने से पूर्व संतोषी माँ नामक देवी से अनभिज्ञ थीं। अनिताजी कहती हैं-"इस फिल्म में अभिनय के दौरान मुझे कुछ विचित्र अनुभव हुए। जैसे मुझे रहस्यमय सपने आने लगे। मैं अपने शरीर में एक विशेष प्रकार की अनुभूति महसूस करने लगी। शूटिंग के दौरान सेट पर मैंने केवल शाकाहारी भोजन लेना शुरू कर दिया था और नारियल पानी पीने लगी। फिल्म रिलीज होने के बाद भी एक नया अनुभव हुआ। जब मैं महाराष्ट्र के कुछ गाँवों में गई तो लोग मेरे चरण स्पर्श करने लगे।" अनिताजी फिल्म **पूर्णिमा** में मीनाकुमारी के साथ अपनी भूमिका को यादगार मानती हैं। उनकी अन्य चर्चित फिल्में हैं-आनंद आश्रम, अनुराग, शर्मिली, फिफ्टी-फिफ्टी, नागिन, जागीर, रोशनी, नवरात्रि और प्राण-प्रतिष्ठा।

वह सब करना है जो समर्पिता नारी को करना है। गीता बहकती है, पर चूकती है। उसका खेलंदड़ापन कलात्मक झूठ है। **'जाल'** की नायिका को ले लीजिए। वह देवानंद को प्यार करती है। देवानंद उससे प्यार करता है। इस प्यार में गीता को जरा सा अहसास नहीं कि देवानंद एक खूबसूरत ठग है, जो उसे आखिर में छोड़ निकलेगा- यहाँ तक कि वह उसकी जान ले सकता है। "जाल" बिछा हुआ है। मगर किसका जाल और किसके लिए? फँसानेवाला कौन और फँसनेवाला कौन? फिल्म के मोटे हिसाब से जाल का मतलब है कि सारे चरित्र अपराधी हैं और अंततः उन्हें कानून के जाल में फँस जाना है। दूसरा मतलब है कि नायक का प्रेम खुद एक जाल है जिसमें एक औरत अपने सच्चे जज्बात लेकर एक आयरनी के तहत फँसी हुई है। और तीसरा मतलब है- प्रेम और वफा की सच्चाई का वह आदर्श जाल, जिसे तोड़कर अंततः दुनिया का कोई अपराधी नहीं जा सकता। कला के संसार में प्रेम जीतता है, क्योंकि जीतता वह शायद जीवन में भी है, वर्ना कला में वह कहाँ से आता? तो गुरुदत्त क्लायमेक्स फिल्माते हैं। देवानंद भाग रहा है। वह गीता को गोली मार सकता है, क्योंकि अपराधियों और स्मगलरों का कोई रिश्ता नहीं होता। पर किरदार की औरत को तमाम जमाने की मक्कारी और चालाकी के खिलाफ अपने सच्चे प्यार पर विश्वास है और यह विश्वास है कि ट्रिगर पर रखी हुई उँगली आखिरकार ढीली पड़ जाएगी। एक तनाव भरे सिनेमाई बीक प्वाइंट के बाद गीता जीत जाती है और अंत में फिल्म के टायटिल का अर्थ देवानंद पर उलट जाता है। प्यार का जाल सब जालों के ऊपर है। व्यंग्य यह है, गुरुदत्त दर्शाते हैं, कि फँसानेवाला स्वयं फँस जाता है- प्यार इतना मीठा है। हमेशा की तरह, 'जाल' भी, गुरुदत्त की अन्य फिल्मों की तरह मोहक कलात्मक झूठ है, पर गुरुदत्त बुनियादी सच और व्यावहारिक झूठ को मिलाकर पारे का जो संसार रचते हैं, उसमें पारा कितना भी 'इल्युजिव' हो, उस पर उँगली रखी जा सकती है, क्योंकि 'धर्म ही धरती को धारण करता है' और चलायमान मरीचिकाओं के तल पर आदर्श और मूल्य की सख्त जमीन अवश्य है। 'जाल' एक मेटाफिजिकल एन्टरटेनर है।... मगर कल्पना कीजिए 'जाल' में से 'गीता' को निकाल दिया जाए और 'माला सिन्हा' को रख दिया जाए। माला सिन्हा इसलिए कि शरारत, समर्पण और जज्बाती शिद्दत को जाहिर करने में माला सिन्हा, गीता के बहुत करीब पड़ती हैं। मगर इस बदल से 'जाल' फिल्म की अपील काफी कम हो सकती है, क्योंकि माला सिन्हा गीता के सारे गुण ला सकती है, पर वह नैसर्गिक व्यक्तित्व कहाँ से लाएगी जिसके तहत गीता अल्हड़ता, सहजता और पानी सी तरलता को व्यक्त करती है। गीता में पंजाब के खेतों का भोलापन और फसलों की निर्मल जवानी है। सिख कद काठी से निकला यह स्वस्थ, बिलोचनी प्यार- जो देवानंद की पिस्तौल का मुँह नीचे कर देगा- माला में दुर्लभ होता। यहाँ हम माला की कमी नहीं बतला रहे हैं, बल्कि यह दर्शा रहे हैं कि कई नैसर्गिक कारणों से, जिन पर किसी का वश नहीं, गीता ही उक्त रोल के लि
एकदम उपयुक्त थी। इसीलिए पात्र और अभिने
के मेल को तलाशा भी जाता है। गीता अपने
की लोकप्रिय अभिनेत्री थी। उसके नाम पर टि
खिड़की पर भीड़ जमती थी। तरसने, खुश हो
और कला का आनंद लेने के गँवार (और स
जगह पर समझदार) दर्शक सैकड़ों की संख्या
सिनेमा हाल में पहुँचते थे। वे दीवाने थे, गीता
रूप के, उसकी भाव भंगिमाओं के, उस
शरारतों के, उसके ठेंगा दिखाने के, उस
'अँगरेजी छोकरा' बनने वाले मर्दाना भेस
उसके सलोने बदन के, उसकी जीवंत आँखों
उसके हस्त-संचालन के और इन सबसे ऊपर,
भोली सी बेहोशी के जो हर जीनियस और सौन्द
में, अपने खिलाफ पाई जाती है। फिराक ने क
था और सही कहा था कि कुदरत की हर आ
चीज में एक किस्म का बेभूलापन होता है,
वह अपनी ही खूबियों पर नींद में है, और य
खूबी उसे और भी दिलकश बनाती है। प्रौढ़ गी
में एक बच्ची-सा बेभूलापन था। वह उसे पा
साफ और दिलकश बनाता था। वह उसे एक स
दूर की और नजदीक की चीज बनाता था। उ
के कारण पेड़ पर चढ़ती हुई गीता की पिंडलि
दिख जाएँ, तो न कहीं अश्लीलता नजर आ
थी और न दृश्य कामोत्तेजक बनता था। गीता
सतर्क, बेहोश, बालिका की तरह थीं, जो स
तरफ उछलकूद करते हुए, अनजाने यह जान
थी कि सहचर का हाथ कहाँ रोक देना है
वहाँ वह एक समझदार जंगली पशु की तरह

पड़ती थी। यह बेभूलापन ही उसके सख्त रौब का कारण था।

'बावरे नैन, रंगीन रातें, सुहागरात, बाजी, बहार, पाकेटमार, जेलर, बारादरी और अलबेला- जैसी फिल्मों में गीता ने काम किया था। इनमें 'अलबेला' सबसे ज्यादा हिट हुई थी। 'बाजी' में गीता का जादू हिन्दुस्तान के सिर चढ़कर बोला था। 'तदबीर से बिगड़ी हुई तकदीर बना ले' में जब वह 'अपने पर भरोसा है तो एक दाँव लगा ले' वाली पंक्ति गाती थी, तो 'दाँव लगाने' के आशय पर जोर देने के लिए खास ढंग से अपने सीने की तरफ अँगूठा फेंकती थी। उस गीत में उसने नेत्रों के संचालन और हाथ की हरकतों से जो काम लिया है, वह दृश्य के गेपों को भर देता है और हम सिनेमा हाल में आँख और कान का अद्‌भुत सुख प्राप्त करते हैं। **'अलबेला'** के सारे नृत्य गीतों में गीता ने नेत्र और हस्त संचालन द्वारा दृश्य में जान फूँक दी थी। उसकी सहजता, तरलता, लावण्य और ताजगी- जिन्हें उसकी गहरी निर्मल आँखों और स्वस्थ रसीले ओंठों का सम्यक योग मिलता था, ने 'अलबेला' को एक कालजयी फिल्म बना दिया, हालाँकि कथा की दृष्टि से वह बेहद सतही फिल्म थी। 'पाकेटमार' में जब वह 'प्यासे नैनों की प्यास बुझा ले' वाला कोरस गीत गाती है, तो धान कूटने की मुद्रा को वह जिस सहज हस्त संचालन के साथ दर्शाती है, वह केवल गीता जैसी अल्हड़ और निर्मलमना पंजाबी गूजरी का काम हो सकता था। 'बारादरी' में उसने राजपूतनी का जो बाना धरा है, वह हिन्दुस्तान के मध्ययुगीन 'इथास' के बहुत करीब है। वह शुद्ध भारतीय औरत मालूम पड़ती है, प्यार और सोजे-इश्क जिसकी त्वचा से दमका पड़ता है। अल्हड़ता, बेभूलापन और मिट्टी की सी सहजता-सोंधापन-बस यही है गीताबाली, जिसने हिन्दुस्तान का फिल्मी अतीत बनाया और उस अतीत में अपना कोना रचा। अपने स्वभाव और शख्सियत से उसने ऐसी नारी भारत के फिल्म स्क्रीन पर पेश की, जो जीतने की हद तक हारना और हारने की हद तक जीतना जानती है और जो हर कीमत पर अपने प्रेमी को हासिल करके... अपना कोमल मर्दानापन साबित करती है। थकान गीता में कहीं नहीं। वह हमारे फिल्म-स्क्रीन की स्वस्थ पंजाबी विलोचन थी।

गीता की मौत अचानक हुई। करीब-करीब भरी जवानी में। इस सदी में उसे 'माता' की बीमारी हुई, जिस पर स्वयं शम्मीकपूर ने डॉक्टर को हैरत से कहा था- 'स्मॉल पॉक्स एंड इन दिस एज।' पर शायद यह प्रकृति की विशेषता है कि वह कभी इंसान को निश्चित सिद्धांत नहीं बनाने देती और आश्चर्य, सदमे तथा धौंस का छोटा-सा रेखांकन छोड़ देती है। सदाबहार गीता जवानी में मरी। अल्हड़ पाकीजगी चेचक का शिकार हुई। सबको हँसानेवाली अचानक चल बसी और ऊर्जा का भंडार यूँ तिड़ककर रिस गया। जब वह मर रही थी, तो डॉक्टर दीवार पर टँगी एक खूबसूरत स्त्री का चित्र देख रहा था। वह एकदम मंत्रमुग्ध होकर उसे निहारे जा रहा था। पृथ्वीराज कपूर उसके पास गए और बोले- 'भीतर जो औरत मर रही है, यह उसी का चित्र है, डॉक्टर साहब।' आगे वह बोले 'कभी' वह ऐसी ही थी।' डॉक्टर हैरान रह गया। उसे विश्वास नहीं हुआ। मगर यह जुमला कि आज आप जो देख रहे हैं, वह कल



◆◆◆



ऐसा न था, इस मायावी दुनिया का बुनियादी छल सामने ला देता है। कहीं न कहीं सूरज के सतरंगी घोड़ों पर बेतहाशा भागते हुए हमें अचानक 'ब्रेक' लगता है और हमें अपने ही खिलाफ सावधान होना पड़ता है।

अब न गीता है, न गीता का जमाना और न गीता का जादू। बस एक कशिश है। और इस कशिश को भारतीय सिनेमा ने भी रचा है। हम अहसानमंद हैं, काल के विकास में से उपजे, इस माध्यम के, जो कथा, श्रोता और ड्रामा की शाश्वत त्रयी का ही स्वाभाविक नया रूप है, कि उसने हमें कई पात्र, कई कथाएँ, कई अभिनेता और कई कलात्मक अनुभव दिए, जिसने हमारे अतीत को समृद्ध बनाया और कड़वे वर्तमान से निजात पाने के लिए चंद सुखद यादें दीं। गीताबाली और उसका अभिनय... उसी शाश्वत योगदान की... नैसर्गिक इकाई है। काल के भीतर ब्रह्मानंद की आंशिक उपलब्धि अवश्यमेव टिकी हुई है। गीता का आना और जाना प्रतीक है- घटना से बड़ा सच। इसी के चलते सोचता हूँ, काश। गीता बेदी का 'एक चादर मैली सी' पूरा करके जाती। पंजाबी वैधव्य की विडंबना को वही चित्रित कर सकती थी। गीताबाली की मौत के बाद स्वर्गीय राजेन्द्र सिंह बेदी ने 'एक चादर मैली सी' का निर्माण वहीं रोक दिया और बोले- 'फिल्म बनने की अंतिम संभावना खत्म हो गई। गीता के अलावा कोई मेरी नायिका के साथ न्याय नहीं करता।' फिल्म अधूरी रह गई। गीता और बेदी चले गए। फिर आपने गीता की जगह हेमा मालिनी को देखा। पर गीता को हेमा की जगह रखकर सोचने का आज भी एक रोमांचक अनुभव है। और मन ऐसी कई फिल्में बनाकर देख लेता है।

शम्मी की तरह हम भी गीता से मुक्त नहीं हुए हैं। ■

निरुपाराय

परदे की पार्वती

● अजय वर्मा



फिल्म नमक में संजयदत्त के साथ निरुपाराय

पश्चिम रेलवे के एक सामान्य फिटर भागाभाई के घर ४ जनवरी १९३१ को जन्मी कन्या को फिल्मों से लगाव तो दूर की बात फिल्मों की चर्चा भी पाप लगती थी। पारम्परिक मध्यमवर्गीय गुजराती लड़की की तरह उसने दाहोद में चौथी कक्षा तक की शिक्षा प्राप्त की और १९४५ में बंबई के राशनिंग विभाग के कर्मचारी किशोर चंद्र बलसारा की पत्नी बन गई। किशोर चंद्र ही बाद में कमलरॉय के नाम से विख्यात हुए। वे फिल्मों के बड़े शौकीन थे। वे गुजराती फिल्मों में नायक की भूमिका करना चाहते थे। शादी के बाद जब पत्नी मायके याने बुलसार में थी तब किशोर चंद्र ने चिट्ठी लिखकर उसे थिएयर में जा फिल्में देखने का आग्रह किया। पति को परमेश्वर मानने वाली भारतीय नारी की



तरह कांता जो ससुराल में आकर कोकिला बन चुकी थी सिनेमा देखने गई। धार्मिक विचारों वाली, रूढ़िवादी वातावरण में पली इस युवती को सिनेमा में नायक नायिका का खुल्लम-खल्ला प्यार करना, गाने गाना निर्लज्जता और बेशर्मी लगा। उसने क्षुब्ध होकर पति को लंबा खत लिखा जिसमें फिल्मों की कटु निंदा की गई थी।

फिल्मों की यह घोर निन्दक जब पति के साथ रहने बंबई आई तो कोलावा देवी की एक चाल में रहने लगी। थोड़े ही दिनों में वह बंबई के रंग में रंग गई और पति के साथ अक्सर थिएटर जाकर सिनेमा देखने लगी। इसी दौरान निर्माता निर्देशक बी.एम.व्यास ने अपनी गुजराती फिल्म **'रनकदेवी'** के लिए कलाकारों की आवश्यकता का विज्ञापन अखबारों में छपवाया। किशोर चंद्र उर्फ कमल रॉय ने भी अर्जी भेजी और उन्हें इंटरव्यू के लिए बुलावा मिल गया। साक्षात्कार के लिए वे

> निरुपाराय के पति नायक बनना चाहते थे, इसलिए उन्होंने पत्नी को चिट्ठी लिखी कि वह फिल्म देखना शुरू करे। पहली फिल्म देखकर उसने फिल्मों की घोर निंदा की और नायक-नायिका के खुल्लम-खुल्ला प्यार करने, गाना गाने को बेशर्मी बताया। फिल्म में प्रवेश का इंटरव्यू देने उसके पति गए थे, मगर चुन ली गई निरुपाराय। फिल्मों में काम करने के कारण जाति-पंचायत ने उसका बहिष्कार कर दिया था। जब पंचायत के सामने पतिव्रता धर्म का पालन करने की शपथ लेकर दण्ड चुकाया, तब उसे जाति में शरीक कर फिल्मों में काम करने की इजाजत मिली।

अनौपचारिक ढंग से पत्नी को साथ लेकर दफ्तर पहुँचे। वहाँ उन्हें व्यासजी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उनका व्यक्तित्व, चेहरा मोहरा, कद काठी, फिल्मी नायकों जैसे नहीं है। उन्हें काम नहीं मिलेगा। यदि वे मंजूर करें तो मुख्य भूमिका के लिए उनकी पत्नी को लिया जा सकता है। कलम रॉय राजी हो गए और फिर 'रनकदेवी' का जो विज्ञापन छपा उसमें नायिका के रूप में कांता उर्फ कोकिला का नया नाम था **निरुपाराय।**

मुख्य भूमिका के लिए चुनी गई निरुपाराय को एक सौ पचास रुपए माहवार पर रख लिया गया मगर बाद में यह भूमिका किसी अन्य को दे दी गई। बेचारी निरुपाराय को परिवार और पंचायत के आक्रोश का सामना करना पड़ा। पंचायत के सामने एक पतिव्रता नारी बने रहने की प्रतिज्ञा करने के बाद ही वह बहिष्कार के दंड से बच सकी।

इसके बाद गुजराती फिल्म **''गुणसुन्दरी''** में उसे मुख्य भूमिका मिली। फ़िल्म हिट हुई तथा निरुपाराय स्टार बन गई। ओ.पी. दत्ता की सामाजिक फिल्म **'हमारी मंजिल'** से निरुपाराय का प्रवेश हिन्दी फिल्मों में हुआ। फिल्म के नायक प्रेमअदीब थे। इसी वर्ष याने १९४९ में यह जयराज के साथ 'गरीबी' में आई। **उधार** में भी उसने महत्वपूर्ण भूमिका की।

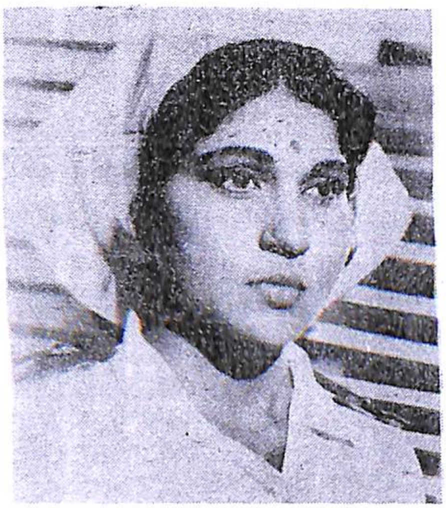
'देवी' के रूप में निरुपाराय की पहचान १९५० में निर्मित **'हर हर महादेव'** से हुई। 'पार्वती' के रूप में वह त्रिलोक कपूर के साथ दर्शकों द्वारा बहुत सराही गई। इसके बाद 'वीर भीमसेन' में उसने द्रोपदी की भूमिका अदा की। १९५१ से १९६१ वाले दशक में निरुपाराय हिंदी फिल्मों के पर्दे पर छाई रही। इस दौरान उसने ज्यादातर धार्मिक और भक्तिभावना प्रधान फिल्मों में काम किया। आर. जोली द्वारा निर्देशित फिल्म 'काश्मीर' में उसने विभाजन में पीड़ितों की व्यथा को पर्दे पर प्रस्तुत किया। 'सिन्दबाद द सेलर' फिल्म जो १९५२ में बनी, निरुपाराय को खलनायिका के रूप में देखकर दर्शकों को विचित्र लगा।

इसके एक वर्ष बाद याने १९५३ में वह ऐतिहासिक फिल्म आई जिसने निरुपाराय को अंतरराष्ट्रीय ख्याति की अभिनेत्री बना दिया। विमलराय की **'दो बीघा जमीन'** में उसने बलराज साहनी के साथ मुख्य भूमिका की। वैसे इस फिल्म में भी उसका नाम पारो (पार्वती) तथा नायक का शंभू था। यह फिल्म हिन्दी फिल्मों के इतिहास में एक नया मोड़ थी। इसे कई अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोहों में प्रदर्शित किया गया। भारतीय कृषक का वास्तविक जीवन दर्शाने वाली इस फिल्म में अपने स्वाभाविक अभिनय के कारण निरुपाराय को कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुए। इसके बाद कई यथार्थवादी एवं भावना

प्रधान फिल्मों में उसने अपनी अभिनय क्षमता को प्रदर्शित किया। 'औलाद', 'गरम कोट', 'हीरा मोती', 'दो रोटी' तथा 'ताँगे वाली' ऐसी ही फिल्में थीं।

'तीन बत्ती चार रास्ता' में उसने वी. शांताराम के निर्देशन में काम किया तथा 'मनचला' में उसके निर्देशक जयंत देसाई तथा नायक मनहर देसाई थे। बलराज साहनी के साथ निरुपाराय की जोड़ी सामाजिक फिल्मों में जितनी लोकप्रिय थी उतनी ही धार्मिक फिल्मों में त्रिलोक कपूर और मनहर देसाई के साथ थी। मनहर देसाई के साथ उसकी प्रमुख धार्मिक फिल्में नागपंचमी, सती मदालसा, सती नागकन्या, नागचम्पा, राम-हनुमान युद्ध, जनम जनम के फेरे आदि।

निरुपाराय के फिल्मी कैरियर में १९५७ का वर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। इसी एक वर्ष में उसकी १५ फिल्में प्रदर्शित हुईं। इनमें 'अमरसिंह राठौर' जैसी ऐतिहासिक तथा 'मुसाफिर' जैसी सामाजिक फिल्में भी थीं। जसवंत झवेरी द्वारा निर्देशित अमरसिंह राठौर के नायक जयराज थे। रमन देसाई द्वारा निर्देशित फिल्में थीं– चण्डी पूजा, मोहिनी तथा नागमणि, एक गाँव की कहानी, दो रोटी, कृष्ण-सुदामा, जनम जनम के फेरे, लक्ष्मी पूजा, नागलोक, नरसी भगत, राम-हनुमान युद्ध व संत रघु। ऐतिहासिक फिल्मों में निरुपाराय की जोड़ी जयराज के साथ काफी लोकप्रिय हुई।



माँ की भूमिका में निरुपाराय की पहली फिल्म १९५५ में बनी। फिल्मिस्तान की मुनीम जी, सुबोध मुकर्जी द्वारा निर्देशित इस फिल्म में वह देवानंद की माँ बनी थी। सशक्त और स्वाभाविक अभिनय के कारण उसे इस भूमिका के लिए अवार्ड भी मिला। इसके बावजूद निरुपाराय ने माँ की भूमिकाएँ अगले छः वर्षों तक स्वीकार नहीं की। छः वर्ष के बाद वह ए.वी.एम. की फिल्म **छाया** में आशा पारेख की माँ के रूप में दुबारा आई। इस बार भी उसे अवार्ड मिला। यश चोपड़ा द्वारा निर्देशित गुलशन राय की फिल्म दीवार में उसने अच्छाई और बुराई का प्रतिनिधित्व करने वाले दो बेटों की माँ के रूप में अद्वितीय अभिनय क्षमता का परिचय दिया। ■

एक अपरिभाष्य सादगी, जिसका नाम है वहीदा रहमान

● अजातशत्रु

हाल ही में वहीदा की तीसरी कसम एक महज इत्तफाक के तहत देख चुका हूँ और मुझे तब पता नहीं था कि शीघ्र ही मुझे वहीदा पर एक लेख लिखना होगा। मैं वहीदा पर लिखने की आंतरिक जरूरत से तनावग्रस्त हूँ और उसी समय मैं इधर-उधर के बेकामिया लेख, अपने को बेखबर करके पढ़ता जा रहा हूँ ताकि वहीदा मेरे भीतर जुड़ने लगे। यह सब जैसे मैं अनजाने कर रहा हूँ और यह सब जैसे मैं किसी आंतरिक लॉजिक के तहत होशो-हवास में कर रहा हूँ। मकसद यही है कि मैं वहीदा पर सिमटता चला जाऊँ और वह मेरे भीतर डिफाइन होने लगे।

फिर अचानक बिना किसी अगले-पिछले तारतम्य के, मोनालिसा की याद दिमाग में बन जाती है। भला मोनालिसा और वहीदा में क्या संबंध? मगर एक कन्विक्शन शक्ल लेने लगता है। मोनालिसा की मुस्कान की तरह वहीदा की सादगी और कशिश भी अपरिभाष्य है। कुछ ऐसा, जो दिल के बहुत करीब से गुजरता हुआ और भाषा की चिमटी की पकड़ से सरासर बाहर।

फिर कालिदास की शकुंतला की याद। फिर मेनका, उर्वशी की। और फिर श्रीलंका के एक संन्यासी की, जो छप्पन प्रकार के पकवान तैयार करवाता है, थाली में सजवाकर अपनी नजर के सामने रखता है और फिर बड़ी निर्ममता से थाली सरकाकर स्वयं भूखा रह जाता है। फिराक का एक शेर जेहन में घिरने लगता है- 'मोहब्बत में क्या हाल करें दिल का, न गम ही काम आता है, न खुशी ही।' मन इस शेर को यूँ बदल लेता है- 'तेरे तआरुफ में ये कौन सी अजनबीयत, न तुझे पाकर चैन, न तुझे खोकर चैन।' फिर एक छोटी सी फेंटेसी बनती है। विश्वामित्र तपस्या कर रहे हैं। यही वहीदा मेनका की शक्ल में आती है। विश्वामित्र का तपोभंग हो जाता है। अब वहीदा ऐन सामने हैं। वे उसे गौर से देखते रहते हैं और फिर न जाने क्यों उनका वैराग्य प्रखर होता है और वे बिना कष्ट के कामरहित होकर ऊँची समाधि लगाने हिमालय चले जाते हैं। वहीदा यह सब नहीं जानती। वह आश्चर्यचकित भी नहीं। वह एक अमृतयुक्त सुरा है, जो स्वयं के लिए पानी से भी अधिक सहज और आसान। मगर, जिनके लिए वह आँखों और दिलो-दिमाग का विषय है, वह एक प्रीतिकर कष्टदायी उलझन है।

मैं जीवन में कभी वहीदा की फिल्म संयत भाव से नहीं देख सका। एक अनजानी सी असहनीय बेचैनी और एक स्पष्ट सात्विक आह्लाद निरंतर बना रहा। उसे देखो तो बेचैनी, उसे न देखो तो बेचैनी। उसे पा लो तो वेदना। उससे महरूम हो रहो तो वेदना। वहीदा एक पाकसाफ, मांसल सौंदर्य है, जो मन को छूता है। जो उसे बियाह कर घर लेने आने की सुखद फेंटेसी रचता है। और फिर उसी रात बैरागी बनकर वन को निकल जाने और किसी अकथ पीड़ा से ईश्वर को जीत लेने की गरिमामय कष्टकथा रचता है। यानी आप संवेदनशील और सौंदर्यबोधी है तो एक रचनात्मक सेल्फ डेस्ट्रक्शन की इमेज ही बनती है, वहीदा को लेकर। यही कहीं एक क्षीण सा क्लू भी मिलता है कि अगर गुरुदत्त की मौत का कलात्मक कारण वहीदा रही होगी तो संवेदनशील गुरुदत्त की भी यही परेशानी रही होगी कि किस एक परम अंदाज से वह लाखों-लाखों तरह से छूटती-बिछलती हुई वहीदा को पा ले। वहीदा में कुछ ऐसा अमूर्त, मीठा, स्वर्गीय और घर-आँगनी है कि वह मन, भाषा और उपलब्धि के अहसास को लंगड़ा कर देता है। एक चिर-अतृप्ति बनी रहती है, उसे देखकर, जो सुकून की पीड़ा और पीड़ा का सुकून एक साथ देती है।

सुंदरियाँ एक से एक आई हैं फिल्म इंडस्ट्री में। वे **लीला नायडू** क्या कम सुंदर थीं। और मासूमियत, पाकीजगी तथा कशिश उसमें क्या कम थी। पर वहीदा की बात और है। वह नरगिस,

वहीदा रहमान की मीठी हँसी, चमकती दंत पंक्तियाँ, गोल चेहरा, चमकदार भाल, हँसती हुई बड़ी-बड़ी आँखें, भीतरी परिष्कार, शालीनता और विनम्रता तथा इसी के साथ उसकी सहजता, घरेलूपन और गँवई-गाँव की भारतीयता ये सब मिलकर उसे एक प्रसन्नचित्त पूर्ण नारी बनाते हैं।

मीना कुमारी, मधुबाला, वैजयंतीमाला और गीता बाली से अलग एक स्थानीयता, दूरस्थता, मिठास, अप्राप्यता, सादगी और आत्मीयता रखती है। उसका रूप, उसका स्वभाव दिल को सुकून देता है और वह कहीं से आफेंड नहीं करती। उसमें एक साथ विनम्र अप्सरा, सहज नारी और मीठी गृहिणी के दर्शन होते हैं। वह हृदय में शिष्ट शृंगार को जगाती है और दिलो-दिमाग की आवारगी को सदाचार में बदलकर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। उसमें गुंडे को नरम दिल शायर बना देने वाली सादगी है।

मगर फिर भी ये तुलनाएँ हैं। शब्द क्रीड़ाएँ हैं। अमूर्त को भाषा देने की तयशुदा असफलता है। वहीदा का रूप, अभिनय और कशिश मन की पकड़ के बाहर है। इस गुत्थी पर वर्षों विचार



वहीदा रहमान

किया जा सकता है कि वहीदा के आकर्षण के क्या कारण हैं? क्यों वह अच्छी लगती है और क्यों वह रिच फ्रस्ट्रेशन से भरती हैं? इमरान खान ने कहा था-'वह संपूर्ण नारी है।' अमृता प्रीतम ने कहा था-'वह पहली औरत है जिससे औरतें ईर्ष्या और घृणा नहीं कर सकतीं।' देवयानी चौबल ने लिखा था-'अमंग वीमन आई मेट एंड निव, शी इज मोस्ट फेमिनाइन।' मेरी एक छात्रा ने कहा था-'सर, वह ट्यूबलाइट की दूधिया रोशनी की तरह





शीतल और सुकूनदेह है। डेलीकेसी और शुद्ध भारतीयता का प्रीतिकर मेल।'

मगर सचमुच इस बात पर बहस होनी चाहिए कि वहीदा में प्रीतिकर और सुखद क्या है? क्यों अच्छी लगती है? क्या हम अपने अनुभव की तमाम जटिलता और अंदरूनी विरोधाभासों को महज इन स्टॉक जुमलों में कहकर छुट्टी पा लें- 'वहीदा खूबसूरत है और शालीन है। वहीदा नाजुक है और घरेलू है। अजी साहब, सूरत और सीरत की खूबसूरती का कमाल है यह। वगैरह वगैरह?- मगर कला, ज्ञान और ब्रह्मानंद का तकाजा है कि हम प्रत्यक्षतम और स्पष्टतम को छीलें और उसे समझने, व्यक्त करने की कोशिश में एक कलात्मक लिबरेटिव आनंद लें। यह वहीदा को भी समझता है, अपने आपको भी, और दोनों के परे उस निर्वैयक्तिक सौंदर्य को भी, जिसे कभी सत्यम् और कभी शिवम् भी कहा जाता है। रूप, कला, काव्य और संगीत की उत्प्रेरक विशिष्टताएँ मानव के लिए, चिंतन मनन द्वारा आध्यात्मिक आनंद को प्राप्त होने का बहाना है और यह एक अनादि प्राकृतिक नियम है।

फिल्म खामोशी (१९६९) में वहीदा और राजेश खन्ना

वहीदा के आकर्षण का पहला कारण है उसके देह की बनावट। उसमें एक मूलभूत नारी की आर्किटेक्चरल सिमेट्री है। किसी जन्मजात नर्तकी की तरह उसके अंग और अंग संचालन में संगीतमय लय-ताल है। जरा गौर से देखिए, तीसरी कसम और गाइड के वे दृश्य, जहाँ वह कमर में पल्ला खोंसकर नृत्य का रिहर्सल करती है। ये दृश्य स्वयं उसके नृत्य दृश्यों से बेहतर है। यहाँ उसके शरीर की नर्तकीनुमा बनावट का और जन्मजात नर्तकी के अंग संचालन का स्पष्ट बोध होता है। पुरुषों (और स्त्रियों में) उसके आकर्षण का कारण यह विशिष्ट शरीर रचना है। मगर सच्चाई सिर्फ इतनी नहीं है। उसकी मीठी हँसी, चमकती दंत पंक्तियाँ, गोल चेहरा, चमकदार भाल, हँसती हुई बड़ी-बड़ी आँखें, भीतरी परिष्कार, शालीनता और विनम्रता तथा इसी के साथ, उसकी सहजता, घरेलूपन और गँवई-गाँव की भारतीयता ये सब मिलकर वहीदा को एक प्रसन्नचित्त और मिष्टभाषी नारी बनाते हैं। उसकी कोमलता आदि नारी की कोमलता है और उसकी धीमी प्रायवेसी तथा संयमित श्रृंगारिकता एक समर्पणशील, प्रतिनिष्ठा वधू की मीठी निजता है। कुल मिलाकर अपने अनऑफेन्सिव फील नजाकत और मीठे प्रभाव के कारण वहीदा इतनी दिलकश रही।

इसी के साथ उसमें मुस्लिम तहजीब से मिला हुआ सलीका और नाज़ो-अंदाज भी, भारतीय सांस्कारिकता को समेटते हुए, एक स्थायी, सुखकर असर छोड़ते हैं। वहीदा मूर्त्त और अमूर्त रूप की धनी एक साथ है। वह आकर्षक युवती और नाजुक कन्या एक साथ है। वह पुरुष की प्रेयसी, ऋषि का वैराग्य और प्रेमी की जॉन कीट्स वाली सुसाइडल टेन्डेंसी एक साथ है। अगर आप गुरुदत्त हैं, तो एक तजबजुब, एक अन्तर्द्वंद्व आप निरंतर हैं, जिसमें प्राप्त की शाश्वत अप्राप्यता का विध्वंसक अतृप्तिबोध आपको एक मेटाफिजिकल सुसाइड की हद तक ले जाएगा और आपकी खुदकुशी जिस्म की खुदकुशी न होकर, सांसारिक नियमों और तर्कों के आगे, एक सुखद विश्राम होगी। माया का आपको मायातीत कर देना ही माया का विध्वंसक नैतिक कर्तव्य है और इसीलिए माया इतनी आकर्षक और अव्याख्येय होती है। गुरुदत्त की मौत हम सबके सिर से निकल गई।

अब हम वहीदा के अभिनय पक्ष को लें, चूँकि हम जानते ही उसे सर्वप्रथम अभिनेत्री के कारण हैं। गुरुदत्त की **सी.आई.डी.** में एक श्यामवर्णा युवती आई थी। एक खलनायिका नुमा रोल था उसका। तब न कोई उसे जानता था और न तब उसकी कीर्ति के डंके बजे थे। फिल्म में उसके करने के लिए इतना कुछ था भी नहीं कि वह हाथ-पैर पसार कर अपनी अभिनय-कला के कुछ श्रेष्ठ और रिलेक्स्ड क्षण दे सके। जब हम वहीदा को पहली बार भारतीय फिल्म स्क्रीन पर देखते हैं तो एक काले रंग की साधारण सुंदरी को पलंग पर बैठा हुआ पाते हैं। वह किसी अंडरवर्ल्ड किंग के गेंग की फाँसनेवाली हसीना है, जिसका काम पोलिस, सीआईडी और दूसरे व्यावसायिक प्रतिस्पर्धियों के तकलीफदेह ईमान अथवा विरोध को तोड़ना है। वह सीआईडी देवानंद से कहती है–सुना है आपको तोतों का बहुत शौक है?

उसके लहजे में व्यंग्य है। देवानंद कहता है– जी हाँ, मेरे पास बहुत से तोते हैं। और वह बोलने वाले तोतों की किस्में गिनाने लगता है। मगर गुरुदत्त की अर्थपूर्ण प्रकाश व्यवस्था के सुनियोजित हल्के अंधेरे में बैठी यह कातिल खलनायिका उसे बीच में टोक देती है– "नहीं, नहीं, मुझे एक गूँगा तोता चाहिए।" और रहस्य गहरा हो जाता है। बात यह है कि सीआईडी देवानंद की गिरफ्त में एक ऐसा अपराधी है, जो खून कर चुका है और जिसके ज़बान खोलने से उस गेंग का पता चल सकता है, जिसमें वहीदा और उसका बॉस शामिल है। व्यंग्य के द्वारा वहीदा यह इशारा करती है कि सीआईडी देवानंद एक गूँगे तोते को बुलवाने की कोशिश कर रहा है और वह उस गूँगे तोते के मुँहमाँगे दाम दे सकती है। मामला साफ हो जाता है। इस सीन में वहीदा ने कोई कमाल नहीं किया है। मगर उसकी अगली ऊँचाइयों के कुछ संकेत यहाँ स्पष्ट हो जाते हैं। मसलन उसकी आवाज, आँखों का संचालन और सधे हुए मूवमेंट्स। समूचा दृश्य वहीदा के भीतरी थमाव का है। एक हल्की सी हलचल, एक गहरी शांति, और उसी में उसका दसों उँगलियाँ नचाकर, कमल बनाकर, उसे तोड़ते हुए, नारी के आदिम आत्मविश्वास से कहना– "ती कर लीजिए न गिरफ्तार मुझे।" ये सब हमें पीछे लौटने पर बतलाते हैं कि भारतीय फिल्म परदे पर एक ऐसी 'विचित्र खूबसूरती' की औरत आ चुकी थी जिसकी धीमी, घरेलू आवाज, इकॉनामी ऑफ मूवमेंट्स और शालीन मेनका का घातक सौन्दर्य आगे चलकर एक विशिष्ट इतिहास बनने जा रहा था। मगर इस पहली फिल्म में ही वहीदा ने अपनी जन्मजात अभिनय-क्षमता का एक विशिष्ट स्पर्श दे दिया था। याद कीजिए वह दृश्य, जहाँ वह खलनायक वीर सकूजा की कालर झिझोड़ते हुए कहती है– "बोलो, क्यों लाए थे, इस नरक में मुझे?" यहाँ जिस खीज, टूटन और लाचारी से उत्पन्न कोफ्त को वहीदा ने माथे की शिकन और तीखी आवाज से अभिव्यक्ति दी है, वह 'प्यासा' की गुलाबो का शिलान्यास कर देता है। 'तीसरी कसम' से लौटकर वापस वहीदा को उसी 'सीआईडी' में देखना एक दिलचस्प अनुभव है। वह कलाकार के रूट को समझने में मदद देता है।

आगे चलकर प्यासा, साहब बीबी गुलाम, खामोशी, गाइड, आदमी, दिल दिया दर्द लिया, फागुन और चौदहवीं का चाँद जैसी वहीदा की ये प्रमुख फिल्में साबित करती हैं कि वहीदा एक उच्चकोटि की अभिनेत्री है। पर यह 'उच्चकोटि' क्या है? वहीदा की श्रेष्ठता नरगिस की श्रेष्ठता से किन मायनों में अलग है, इस पर विचार किया जाना चाहिए, वर्ना स्वयं विशेषज्ञों का कामचलाऊ लफ्फाजी से अलग कोई उपयोग नहीं रह जाता। वहीदा उल्लेखनीय इस मायने में है कि वह कम से कम शब्दों में, सिर्फ अपनी आँख, ओंठ और जिस्म की हरकत द्वारा, काफी कुछ बोलने में सफल हो जाती है। दिल दिया दर्द लिया, चौदहवीं का चाँद और आदमी में उसने वाचिक और आंगिक मितव्ययता से काम लेते हुए सिर्फ सघन अनुभूति द्वारा और उससे उत्पन्न

सायोनारा : सायरा बानो

तीसरे-चौथे दशक में नसीम बानो के सौंदर्य के चर्चे थे। उनकी पुत्री **सायरा बानो** ने सुबोध मुखर्जी की **"जंगली"** में शम्मीकपूर के साथ अभिनय किया। चौथे और पाँचवें दशक में सफलता के जादूगर शशधर मुखर्जी ने शम्मीकपूर को **"तुमसा नहीं देखा"** में नए रूप में प्रस्तुत किया था। शशधर और नसीम के अच्छे संबंध थे। अतः 'जंगली' की योजना के कर्णधार शशधर मुखर्जी थे। जैसे आज भाग्यश्री की "मैंने प्यार किया" चल रही है, वैसे ही 'जंगली' ने उन दिनों धूम मचा दी थी। हिन्दी फिल्मों में रंगीन फिल्मों का प्रारंभ ही "जंगली" से हुआ।

राजेन्द्र कुमार के साथ सायरा ने कई रोमांटिक फिल्में की जिसमें आई मिलन की बेला, झुक गया आसमान अच्छी फिल्में थीं। देव आनंद के साथ "प्यार-मोहब्बत" और राजकपूर के साथ "दीवाना" की परन्तु उनकी लोकप्रियता में चार चाँद लगाने वाली फिल्में थीं- "अप्रैल फूल" और "शागिर्द।" दिलीप कुमार से विवाह के बाद सायरा ने अपने पति के साथ बैराग, गोपी और सगीना में काम किया।

विवाह के पूर्व सायरा ने सुंदर दिखने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। लड़का-लड़की के छेड़-छाड़ के हल्के दृश्यों में वे अत्यंत सहज थीं। शादी के बाद 'सगीना' में उनका अभिनय मंज चुका था परन्तु रूप लावण्य पर उम्र और बीमारी का असर हो चुका था। अपनी पहली फिल्म में उन्हें "ब्यूटी-क्वीन" की तरह प्रचारित किया गया था और दर्शकों को उन्होंने निराश नहीं किया। आँत की गंभीर बीमारी के कारण सायरा बानो का विकास नहीं हो पाया। उनकी माँ नसीम भी ब्यूटी क्वीन कही जाती थीं मगर वह साथ में अभिनेत्री भी थीं। सायरा को अभिनय का क-ख-ग कभी नहीं आया।





अंबेडकर जन्म शताब्दी वर्ष हमारे लिए है ''अनुसूचित जाति आवास वर्ष''

डा. अंबेडकर जन्म शताब्दी वर्ष
को मध्यप्रदेश सरकार
'अनुसूचित जाति आवास वर्ष'
के रूप में मना रही है
इस एक साल के भीतर
अनुसूचित जाति के
-कम से कम एक लाख
सबसे गरीब परिवारों
के लिए आवास
सुविधा का इंतजाम
सरकार करेगी।

एक बरस में अनुसूचित जाति के एक लाख परिवारों के सिर पर छत

अंतिम पंक्ति के
अंतिम व्यक्ति को समर्पित

मध्यप्रदेश सरकार

म.प्र. माध्यम/90

स्वाभाविक भंगिमाओं द्वारा विभाजित नारी के तनाव का बखूबी चित्रण किया है। 'दिल दिया दर्द लिया' में नायक (दिलीप) से कहा गया उसका वाक्य 'तुम्हारे न रहने पर मैं अकेली पड़ गई थी' पात्र की सारी छटपटाहट और लाचारी को प्रभाव के साथ व्यक्त कर देता है। क्या कारण है इसका? सिर्फ यही कि संवेदनशीलता और धीमी आवाज वहीदा की निजी विशेषता है। इसी तरह 'आदमी' में उसने पति संदेह से छिन्न-भिन्न और वेदना को निःशब्द भोगती, जिस एकनिष्ठ प्रेमिका और पत्नी का आत्मान्दोलन चित्रित किया है, वह यह बतलाने के लिए काफी है कि वह टेलेन्ट की आँखें और संवेदनशीलता के कान रखती है, जो पात्र के मनोविज्ञान के डिटैल्स को पूरी विजुअल और टोनल पारदर्शिता के साथ हाइलाइट कर देते हैं। नारी अन्तर्द्वंद्व के ये शाश्वत् दृश्य, जो विश्व साहित्य से लेकर विश्व सिनेमा तक में बिखरे पड़े हैं, वहीदा को भी देशी-विदेशी अभिनेत्रियों के साथ एक अलग रंग से खड़ा करते हैं। यकीनन् वहीदा के त्रासदी दृश्यों में ऐसा कुछ है, जो वहीदा का है और उन्हीं दृश्यों को अन्यथा इनेक्ट करने वाली नरगिस और मीना का नहीं है। यह है वहीदा की पुरुष संबंधी अंडरस्टेंडिंग, अपने नारी होने की सीमा और मर्यादा का ख्याल, परंपरागत नारी की नियति का अहसास और प्रेम संबंधी सफलता-विफलता के मायावीपन में एकतरफा निष्ठता को चुनने का दुनियाई साहस। वह एक जिम्मेदार औरत के जागरण का प्रभाव देती है, जो जानबूझकर भोगते रहना चाहती है, क्योंकि जब भोगना अनिवार्य है, तो यथास्थिति का विवेकपूर्ण स्वीकार ही अंतिम सही विकल्प है। वहीदा के ट्रेजिक सीन एक प्रच्छन्न बौद्धिकता और यथास्थिति के 'कॉस्मिक' स्वीकार से निकलते हैं। उनमें तनावग्रस्त नारी एक इन्स्टिक्चुवल समझदारी से अपनी पीड़ा भोगती है। तिस पर वहीदा का निजी व्यक्तित्व, उसकी शालीनता, उसकी मिठास, उसकी एकनिष्ठा और सुरक्षित अनछुआपन उसके संकल्पजन्य अभिनय को अतिरिक्त आयाम प्रदान करते हैं। यानी शख्सियत स्वयं अभिनेता-अभिनेत्री की सफलता का एक कारण होती है, और इसलिए वहीदा के जिस्म और रूह को भी उसके टेलेंट का हिस्सा माना जाना चाहिए। यह स्थापना गलत है कि अभिनय ही सब कुछ होता है, क्योंकि अभिनय होता ही व्यक्तित्व की आधारभूमि पर है, इसलिए खास अभिनेत्री नहीं, खास व्यक्तित्व ही श्रेय का असली अधिकारी है। वहीदा की सारी तारीफ मूलतः वहीदा नामक उस औरत और देहयष्टि की तारीफ है, जिसमें से अमूर्त अभिनय क्षमता विस्तृत होती है। मैं जातीय तौर पर वहीदा से प्रभावित हूँ– अभिनय बाद में आता है। 'वहीदा' के दो उल्लेखनीय पक्ष हैं– 'खामोशी' वाली वहीदा और 'साहब बीबी और गुलाम' वाली वहीदा। इन दो प्रतिविरोधी श्रेणी में उसके सभी रोल आ जाते हैं। इनमें 'प्यासा' से लेकर 'रूप की रानी चोरों का राजा' तक के सभी ट्रेजी-कॉमिक वैविध्य आ जाते हैं। साधारण प्रेमदृश्यों में वह कमनीय और प्रफुल्ल सुंदरी है। वह



कालाबाजार (१९६०) में वहीदा-देवआनंद



कामोत्तेजित नहीं करती, बल्कि शालीन श्रृंगार को उभारती है। वह रमणीय नहीं लगती, बल्कि काव्य शायरी को जन्म देने वाली एक मांसल प्रेरणा लगती है। वह क्लबगृहों की तितली और चुलबुली नार प्रतीत नहीं होती, बल्कि आऊट एंड आऊट भारतीय सुंदरी प्रतीत होती है, जो विज्ञान और टेक्नोलॉजी के दौर के पहले मालगुजारों और पटेलों के यहाँ पैदा हुआ करती थी। वह अंत तक एक औरत है और ऐसी औरत, जो ईश्वर की प्रथम कल्पना के रूप में पृथ्वी पर आई और महानगरों में पलकर आधुनिक न हो सकी। वह एक शालीन, प्रफुल्लचित्त मेनका है और शुद्ध नारी बनने-दिखने से बाहर उसका कोई वजूद नहीं। 'साहब बीवी और गुलाम' में जवा का जो रोल उसने किया है, वह साफ सुथरी, शिष्ट और आकर्षक प्रेमिका का है। यह प्रेमिका शाश्वत है। उसकी ताजगी, मिठास, हल्की झिड़की, बनावटी गुस्सा और कमनीयता शाश्वत है। उन घने बालों, उस चमकती महजबी, उस तराशे बदनऔर उस स्त्रीपने को पुरुष सदियों से चाहता, संजोता और काव्यित करता आया है। 'साहब बीवी और गुलाम' की जवा स्वस्थ, ताजा, प्रफुल्ल गुलाब है और पवित्रता तथा श्रृंगार को एक साथ पैदा करती है। "भारतीय नारी संसार में श्रेष्ठ और कमनीय है"– यह 'गुलाम' की 'जवा' स्थापित करती है।

वहीदा के सौन्दर्य, माधुर्य और स्त्रीपने की दूसरी फिल्म है– 'तीसरी कसम'। वेदना तो यूँ इस फिल्म का मूलभूत भाव-तत्व है। मगर यह फिल्म वहीदा के ताजगीभरे सौन्दर्य और आंतरिक मिठास के कारण भी याद की जाएगी। इस फिल्म में उसने आवाज के जिस पिच और टोन का इस्तेमाल किया है, वह न सिर्फ अभिनय का हिस्सा है, बल्कि समीक्षकों द्वारा भी अनदेखा रह गया है। बैलगाड़ी के भीतर और पंडाल के भीतर उसने जिस पिच पर, और जिस माधुर्य के साथ हीरामन से बातें की हैं, वह भारतीय फिल्मों के इतिहास में सात्विक श्रृंगार का मधुरतम अनुभव है। वहीदा इन दृश्यों में अपने जीवन के खूबसूरत रोल में आई है। मिठास और सुख की टीस भरे ये दृश्य जैसे अब कभी नहीं आएँगे। कहना मुश्किल है कि यह फिल्म वहीदा की है या निर्देशक की या स्वयं रेणु की कहानी की। हाँ, इतना तय है कि नौटंकी की बाई की भूमिका से वहीदा को निकाल दिया जाए, तो 'तीसरी कसम' का पराग जाता रहेगा और हमारे हाथ में कागज का फूल आ रहेगा।

आगे हम 'खामोशी' की नर्स में वहीदा के सारे टेजिक किरदारों को एक साथ देख लें और वहीदा की अभिनय क्षमता को शीर्षस्थ बिंदु पर मान लें, तो गलती नहीं होगी। भारतीय फिल्म इतिहास में जैसी कि मेरी निजी समझ है, दो ही फिल्में सघनतम अवसाद की बनी हैं। देवदास और खामोशी और दोनों ही फिल्में उनके मुख्य किरदारों और उन्हें अभिनीत करने वाले अभिनेताओं के कारण कालजयी मानी जाएँगी। 'देवदास' के बाद हम न दिलीप को भूल सकते हैं और न 'खामोशी' के बाद वहीदा को। बल्कि गौर से देखा जाए तो 'खामोशी' फिल्म में अवसाद

ज्यादा गहरा और विडम्बनापूर्ण है। देवदास की ट्रेजेडी स्पष्ट और लाऊड है। वहाँ देवदास के खिलाफ अकेला देवदास है। मगर 'खामोशी' में वहीदा एक सामाजिक मूल्य का प्रतिनिधित्व करने वाली परोपकारी नर्स है और वह परोपकार में पागल होती है। वह हमारे भीतर डबल ट्रेजेडी का दुःख जगाती है, जबकि देवदास में ट्रेजेडी इकहरी है। 'देवदास' में हम नायक की मौत के प्रति सहज मानवीय दुःख व्यक्त करते हैं, पर 'खामोशी' में हमारे शरीर का एक अंश भी मरता है। वहाँ एक 'निश्छल' आत्मकेंद्रित युवक मरता है। पर यहाँ एक परोपकारी, जिम्मेदार, समाजोपयोगी नर्स मरती है। एक व्यक्ति का नाश है। दूसरा, मूल्य का .. विनाश है। एक में केवल मौत है। दूसरे में उससे भी बदतर, एक मूल्य का व्यर्थ हो जाना। यानी देवदास में एकल-व्यक्ति नष्ट होता है। 'खामोशी' में सामूहिक सामाजिकता विनष्ट हो जाती है। 'देवदास' फिल्म में कला का आनंद है। 'खामोशी' में कला, झूठ पर हावी होकर सच बन जाती है और हम अपराध भाव लेकर थिएटर से लौटते हैं कि देखो, हमारे सामने एक लाड़ली कीमत तबाह हो गई और हम कुछ न कर सके। मगर इन सबके साथ हमें यह नहीं भूलना है कि 'देवदास' और 'खामोशी' मूलतः दिलीपकुमार और वहीदा रहमान की फिल्में थीं और इन फिल्मों की ऐतिहासिकता उस सामान्य दुर्लभ नियम से तय होनी चाहिए, जिसके अंतर्गत किरदार और अभिनेता की शख्सियतों के मिलने का योग सुखद इतिहास के रूप में घटित होता है। लिहाजा 'खामोशी' से एक बार फिर 'तीसरी कसम' की नर्तकी की तरह वहीदा को निकाल दिया जाए, तो 'खामोशी' की काफी



अपील मिट जाएगी। ऐसा इसलिए नहीं कि उस रोल को करने के लिए नूतन, या मीनाकुमारी फिट नहीं होती, बल्कि इसलिए कि किरदार की शख्सियत और मासूमियत वहीदा के करीब ही अधिक से अधिक पड़ती थी। वहीदा इस अकेली फिल्म के कारण अमर है।

एक और फ़िल्म है वहीदा की, जिसकी ओर समीक्षकों का ध्यान नहीं गया। मगर वहीदा के अभिनय की सूक्ष्मताएँ और अंडरप्लेइंग उसमें देखी जा सकती है। वह फिल्म है– **चौदहवीं का चाँद?** नहीं। **कागज के फूल?** नहीं। वह फिल्म है– **'फागुन'** जिसे राजेन्द्रसिंह बेदी ने बनाई थी। इस फिल्म में वहीदा का रोल हटकर था। इस मायने में कि उसे नायिका के बजाए नायिका की माँ का रोल करना था। ऐसी माँ का, जो कामकुंठित है और .. जाने-अनजाने अपनी बेटी-जमाई की क्रीड़ा-केलियों में रुचि लेती हैं। इससे उसे विकृत संतोष होता है। इस फिल्म में फ्लेश बैक के टुकड़े बताए गए थे, जिनमें हम जवान, कमनीय वहीदा को अपने पति धर्मेन्द्र के साथ, अतीत में खुशगवार जिंदगी गुजारते देखते हैं। इन दृश्यों में वहीदा हमेशा की तरह प्रफुल्ल, मनमोहक और तरोताजी है। और उसके साथ हम बहते जाते हैं। मगर जब वही वहीदा एक अधेड़ा और अतृप्तकामा स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है, तो मात्र आँखों और आवाज से किरदार की मानसिकता जाहिर कर जाती है। समूचा 'इनेक्टमेंट' मर्यादा के भीतर है और कला की शर्तों में प्रामाणिक है। इस रोल को बखूबी निभाकर वहीदा ने साबित कर दिया कि वह अतिक्रमनीय प्रेमिका और दो पुरुषों के बीच नैतिक अन्तर्द्वंद्व में फँसी नायिका से अलहदा एक परिपक्व चरित्र अभिनेत्री भी है, जो रोमांस और ट्रेजेडी से हटकर अपेक्षया गहरी जटिलताओं को अभिनीत कर सकती है। 'फागुन' एक तरह से उसके कैरियर की अलहदा और अंतिम फिल्म है। इसके बाद 'एंटीक्लायमेक्स' बचता है, फिर अतीत, फिर इतिहास, और फिर वहीदा का जादू उतर जाने के बाद यह अहसास कि 'कागज के फूल' के कलालोक की तरह वहीदा का दौर गुरुदत्त का प्यार, 'गाइड' की नर्तकी की छटा, 'तीसरी कसम' की एक जोड़ प्यारी आँखें, रूप की रानी की सदाबहार खिलखिलाहट, हिन्दुस्तान पर एक भारतीय रूप की बादशाहत और अंत में हारी-थकी वहीदा की बेमेल शादी- यह सारी चित्र-शृंखला काल के मुँह में रेत का स्वाद था। इतना विषाद होना स्वाभाविक है कि क्योंकि वहीदा अपनी सादगी के साथ तब भी अपरिभाष्य थी और अपनी सादगी के साथ आज भी अव्याख्येय है। वह जवान हो, बूढ़ी हो, और अंत में एक बेजान तस्वीर रह जाए, वह हमारे मन में लगातार सुखद पीड़ा भरती रहेगी, क्योंकि भारतीय फिल्म में इतना नजदीकी सौन्दर्य और जानलेवा सादगी आज तक नहीं आई। गुरुदत्त की जवान मौत ही इस कठिन सौन्दर्य पर एक सही टिप्पणी है, क्योंकि वसंत को न पाया जा सकता है और न खोया जा सकता है। यूँ यह सही है कि गुरुदत्त की खुदकुशी सामान्य अर्थ में एक दुनिया घटना थी। ■



पाँच सौ फिल्मों में नाची है हेलन

भारतीय फिल्म दर्शकों की दो पीढ़ियों को अपनी नृत्य कला से उत्तेजित और मुग्ध कर देने वाली नृत्यांगना **'हेलन'** हिन्दी फिल्मों के इतिहास में एक किवदंती के रूप में याद की जाएगी। हिन्दी रजत पट की इस महान चिर युवा नृत्यांगना की निजी जिन्दगी में दुर्भाग्य हमेशा खलनायक की तरह खुशियों को छीनता रहा।

बचपन की सरहद पार कर कैशोर्य की दहलीज में कदम रखने की तैयारी जब हेलन कर रही थी तब धनलोलुप माता, बेटी को नर्तकी बनाकर 'नामा' कमाने की योजनाएँ बना रही थी। श्रीमती रिचर्डसन तत्कालीन नृत्यांगना **कुक्कू** से परिचित थी। कुक्कू ने जब हेलन की नृत्य कला को परखा तो उसे सीधे नृत्य निर्देशक बद्रीप्रसाद के पास ले जाकर बोली, 'यह लड़की उम्दा नाचती है, अगर मौका मिले और ट्रेनिंग दी जाए तो यह टॉप पर पहुँच सकती है।' उसे पहला मौका फिल्म **'रंगीली'** के समूह नृत्य में एक सामान्य नर्तकी के रूप में काम करने का मिला। इस तरह तेरह वर्ष की उम्र में स्कूल की वर्दी उतार कर परिवार के लिए रोटी-रोजी कमाने की खातिर हेलन नाचने पर मजबूर हो गई। उसे लगातार तीन-तीन शिफ्टों में काम करने को मजबूर होना पड़ा। माता की लालची प्रवृत्ति ने उसे परिवार से विरक्त कर दिया तथा खुद से काफी बड़ी आयु के फिल्म निर्माता पी.एन. अरोरा के प्रेम जाल में बेचारी भोली कन्या पड़ गई। अठारह वर्ष की आयु में प



से भाग कर वह अपने बूढ़े प्रेमी अरोरा की बाँहों में समा गई। इस प्रकार उसके दुर्भाग्य का दूसरा और भयानक दौर शुरू हुआ। उधर फिल्मी दुनिया में एक कुशल नृत्यांगना तथा अभिनेत्री के रूप में वह स्थापित होने लगी थी। 'बारिश' में **'मिस्टर जॉन या बाबा खान या लाला रोशन दान'** के लिए वह दर्शकों के दिल में उतर गई थी। 'नौ दो ग्यारह' में उसकी कला और भी निखरे रूप में सामने आई। इसके बाद यानी पाँचवें दशक के उत्तरार्द्ध में हेलन ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। 'हावड़ा ब्रिज' का **'मेरा नाम चिन चिन चू'** में तो उसने नायिका मधुबाला को भी पीछे छोड़ दिया था।

बर्मी माता तथा एंग्लोइंडियन पिता की इस बेटी ने नृत्यांगना के साथ-साथ अभिनेत्री के रूप में प्रतिष्ठित होने के लिए कड़ी मेहनत की। हिन्दी तथा उर्दू सीखी तथा फिल्मों में सहायक भूमिकाएँ स्वीकार करने लगी। मेहनत का फल उसे मिला। 'छोटे नवाब' में वह मेहमूद के साथ सहनायिका के रूप में आई तथा बाद में 'सी' ग्रेड की कुछ फिल्मों में उसने दारासिंह के साथ नायिका की भूमिका भी की। संजीव कुमार की नायक के रूप पहली फिल्म **'निशान'** में वह नायिका थी। यह फिल्म असफल रही। दर्शकों ने हेलन को नायिका रूप में नहीं स्वीकारा।

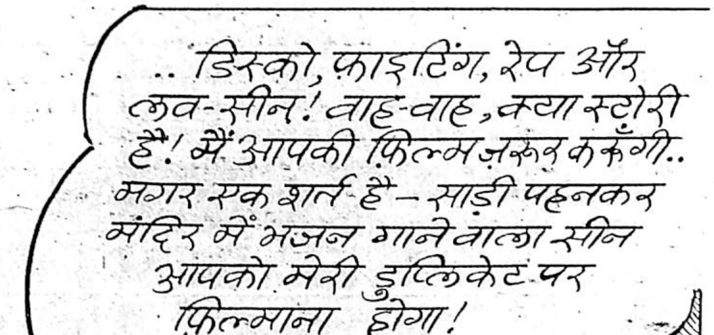
नायिका के रूप में दर्शकों ने उसे भले ही न स्वीकारा हो, किंतु अभिनेत्री के तौर पर पर्दे पर आने के मौके उसे बार-बार मिलते रहे तथा उसकी अभिनय क्षमता को दर्शकों और समालोचकों की सराहना भी मिली। **'शरीफ बदमाश'**, **'बैराग'**, **'लहू के दो रंग'**, **'ईमान धरम'** आदि फिल्मों में उसके संक्षिप्त, किंतु प्रभावशाली अभिनय को व्यापक प्रशंसा मिली। ओ.पी. रल्हन की फिल्म 'तलाश' में उसने बेहद स्वाभाविक अभिनय किया। रल्हन के साथ वह 'हलचल' में आई।

कुल मिलाकर लगभग पाँच सौ फिल्मों में अपने अभिनय और नृत्य से दर्शकों को मोहित करने वाली हेलन को **कैबरे क्वीन** कहा जाता है। नियमित जीवन तथा संक्षिप्त आहार की आदी हेलन की विशेषता उसका शारीरिक सौष्ठव है। उसकी फिगर आश्चर्यजनक रूप से दो दशकों तक एक-सी रही। निजी जिन्दगी में उसे पीड़ा, कष्ट और मुकदमेबाजी की परेशानियाँ झेलनी पड़ी। मुकदमे के लिए धन जुटाने के खातिर उसे रंगमंच पर भी कार्यक्रम प्रस्तुत करने पड़े।

पी.एन. अरोरा ने इस सुंदर नायिका के जीवन को नर्क बनाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। अरोरा ने उसके शरीर पर ही नहीं, बल्कि कमाई के हर एक पैसे पर अपना कब्जा कर रखा था। उससे रात-दिन काम करवाया जाता था तथा सदैव अपमानजनक व्यवहार किया जाता था। यहाँ तक कि आउटडोर शूटिंग के दौरान उसे कमरे में कैदियों की तरह रखने में भी अरोरा साहब को परहेज नहीं होता था। जब स्थिति बिलकुल असहनीय हो गई, तब हेलन ने विवश होकर साहस किया तथा अरोरा से सारे रिश्ते तोड़कर अलग हो गई। इस पर चिढ़कर इस लोलुप व्यक्ति ने कुछ ऐसी वस्तुओं की वापसी के लिए अदालत में मुकदमे दायर कर दिए, जो दरअसल हेलन की कमाई से खरीदी गई थी। अरोरा की मौत के बाद भी उसे विभिन्न अदालतों में चल रहे पाँच ऐसे मुकदमों को लड़ने के लिए भारी रकम का बंदोबस्त करना पड़ा।

जिन्दगी के सफर में इतने दुःख झेलने वाली इस नृत्यांगना को फिल्मी दुनिया तथा हिन्दी फिल्मों के इतिहास में काफी गौरवपूर्ण जगह मिली। विख्यात नायिका साधना के शब्दों में, "हेलन के पूर्व न तो कोई हेलन जैसी नृत्यांगना हुई है तथा हेलन के बाद भी उस जैसी नृत्यांगना शायद ही हो।" दर्शकों तथा सहयोगियों में प्रशंसा पाने वाली इस नृत्यांगना का खुद के बारे में कहना है, "मैंने खुद को कभी बढ़िया नर्तकी नहीं समझा, मगर जब लोग दूसरी नर्तकियों से मेरी तुलना कर मुझे श्रेष्ठ कहते हैं, तो मुझे लगता है कि वे सही कह रहे हैं।"

दरअसल हेलन को नाचता देख यही लगता है कि इस सुंदर गुड़िया को जन्म ही नाचने के लिए मिला है। चाहे पर्दे पर नाचे या स्वार्थी लोगों के हाथों की कठपुतली बनकर नाचे।





कलकत्ता की हवा में इन दिनों अपर्णा सेन की चर्चा ज़ोरों पर है। अभी हाल में उनके नाटक '**पन्नाबाई**' ने लगातार सौ शो पेश करके यहाँ की रंगमंच की दुनिया में तूफान-सा ला दिया है। 'पन्नाबाई' अपर्णा के उन गिने-चुने नाटकों में से एक है, जो अपर्णा के अभिनय की विस्तृत रेंज को बहुत गहराई से दर्शकों के सामने रखते हैं। जहाँ तक खुद अपर्णा का सवाल है, अभिनय के प्रति उनका अनुराग पिछले वर्षों में काफी कम हुआ है। अब कैमरे के पीछे रहना उन्हें ज्यादा पसंद है। यही वजह है कि गत वर्षों में उनकी फिल्मी गतिविधि चंद फिल्मों में ही सिमट कर रह गई है। हाल में विमल मित्र के विख्यात उपन्यास 'कड़ि दिए किनलाम' पर इसी नाम से बनी फिल्म में अपर्णा ने फिर अपने अभिनय का लोहा मनवाया है। यही नहीं इस फिल्म की आशातीत सफलता के बावजूद अपर्णा ने इस सफलता को नहीं भुनाया है। दर्जनों प्रस्तावों में से सिर्फ एक-दो फिल्में साइन कर ही वे संतुष्ट हैं। वैसे देखा जाए तो कम फिल्मों में काम करना अपर्णा की मजबूरी है। एक तो अपर्णा गाहे-बगाहे बंगला नाटकों में काम करती रहती हैं। दूसरे, पिछले चार वर्षो से वे बंगला की एक महिला पाक्षिक पत्रिका का संपादन कर रही हैं। फिर फिल्म निर्माण का उनका प्यारा शौक भी इसी व्यस्तता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। अपनी पहली फिल्म "**३६ चौरंगी लेन**" के बाद से ही अपर्णा सेन की गिनती अंतरराष्ट्रीय स्तर के निर्देशकों में होने लगी है। इसके बाद निर्देशित उनकी तीन फिल्मों '**परोमा**', '**सती**' और टेली फिल्म '**पिकनिक**' ने क्रमशः उनकी श्रेष्ठता को एक मजबूत आधार दिया है। पेश है उनसे हुई बातचीत के संक्षिप्त अंश:—

● **आपने अब तक चार फिल्में बनाई हैं और इन चारों फिल्मों के पुरुष पात्रों के साथ ही आपका कोई समर्थन दिखाई नहीं देता है, बल्कि आपका समर्थन इन पुरुष पात्रों के विपरीत खड़ी महिला किरदारों के साथ दिखाई देता है। जबकि ये चारों पुरुष चरित्र ही फिल्म में महत्वपूर्ण भूमिका प्ले करते हैं? क्या आप शुरू से ही ऐसे पुरुष पात्रों को पसंद नहीं करती हैं?**

○ यानी आप यह कहना चाहते हैं कि मैं पुरुष विरोधी हूँ। आपका प्रश्न दिलचस्प जरूर है, मगर इसका जवाब मैं खुद नहीं दे सकती हूँ। हो सकता है यदि कोई मुझे साइकोऐनेलाइस करे, तो इसका जवाब मिले।

● **इस प्रसंग में विशेष रूप से 'परोमा' और 'सती' की चर्चा जरूरी है। इन दोनों ही फिल्मों की महिलाओं का नायक शोषण कर रहा है?**

○ 'परोमा' का पुरुष किरदार राहुल नायिका का शोषण करता है, ऐसा मैं नहीं मानती, क्योंकि 'परोमा' खुद ही राहुल से प्रेम करने लगती है और उसके सामने समर्पण करती है। इसी तरह 'सती' में शबाना ने जिस महिला किरदार को जीया और वह शुरू में भले ही पुरुष किरदार के शोषण का शिकार रही हो, पर बाद में वह खुद ही उसी पुरुष के पास जाती है।

● **अभी तक सीधे-सीधे आपकी किसी फिल्म में कोई राजनीतिक दृष्टि या आवाज दिखाई नहीं पड़ी?**

○ सच कहूँ, राजनीति की जटिलता भ्रष्टाचार, दल-बदल आदि मैं अच्छी तरह से समझती नहीं हूँ। फिर मैंने कुछ गिनी-चुनी फिल्में ही बनाई है, जिनमें से भी सिर्फ दो फिल्में रीलिज हो पाई हैं। हाँ, मेरी फिल्मों में कभी राजनीति नहीं होगी, मैं इस बात से भी इंकार नहीं कर सकती हूँ।

● **आपकी अगली फिल्म का विषय क्या होगा?**

○ फिलहाल तो मैं अपने दूसरे काम निपटा रही हूँ वैसे शीघ्र ही अपनी अगली फिल्म के काम में हाथ लगाऊँगी।

● **क्या इस बार आप अपने प्रिय विषय 'मतिलाल पादरी' पर फिल्म बनाएँगी? क्योंकि जब भी आप कोई नई फिल्म बनाने के बारे में सोचती हैं तब स्वाभाविक रूप से 'मतिलाल पादरी' की ही बात हमारे जेहन में उठती है। अपने कई साक्षात्कारों में आप इस विषय के बारे में बहुत कुछ कह चुकी हैं। यह आपका बहुत प्यारा विषय है फिर भी आप इस पर फिल्म बनाने का निर्णय लगातार टाल रही हैं ऐसा क्यों?**

○ यह ठीक है कि 'मतिलाल पादरी' का विषय मेरे दिल के बहुत करीब है, पर इसका कैनवास इतना विस्तृत है कि एक झटके में इसे सेल्योलाइड पर उतारने की बात नहीं सोची जा सकती है। बहुत पहले मैंने यह कहानी पढ़ी थी। फिर किसी ने मुझे इसकी पटकथा लिखने के लिए कहा। तब न जाने मुझे क्या हो गया। मैं इस पर लिखना रोक नहीं पा रही थी। सच तो यह है कि इसकी कहानी की शुरूआत ही मुझे एकदम आकर्षित कर गई। इसकी कहानी शुरू ही होती है, एक भयंकर तूफान के दृश्य से। इसकी विजुअल संभावना ही मुझे बहुत ज्यादा प्रेरित करती है। शुरू में जो तूफान का दृश्य है, तभी ऐसे लगता है कि कुछ होने वाला है। इसके बाद ही चर्च में एक बच्चे के जन्म का दृश्य, जिसे देख कर पादरी के मन में यह आवाज उठती है कि मानो यीशू मसीहा ने पुनर्जन्म लिया हो। उस बच्चे को लेकर पादरी के मन में जो आशा-आकांक्षा जन्म लेती है, उससे मैं बहुत ज्यादा प्रभावित हूँ। मैंने अपनी पटकथा में बहुत कुछ नई बातें जोड़ी हैं, जिसे फिल्म मीडिया को ध्यान में रख कर करना ही पड़ता है। मेरे ख्याल से इस फिल्म को बंगला भाषा में बनाना संभव नहीं होगा। बनाना होगा तो इसे हिन्दी में ही बनाऊँगी। **प्रस्तुतिः अवतार**

फिल्म 'परोमा' में अपर्णा सेन और राखी



साधना

सिंड्रेला धारावी से पाली हिल तक

फिल्म 'श्री ४२०' में एक गीत था, "**शाम गई रात आई कि बलम आजा।** रात और दिन के मिलन की घड़ी ठंडी-ठंडी सावन की झड़ी में, दो दिलों ने जो बाँधे थे बंधन, उनमें खोई-खोई घड़ी मैं।" इस समूह गीत के छायांकन के समय राजकपूर के सहायक आर.के. नैयर और जूनियर डांसर साधना में दोस्ती हुई। उन दिनों साधना धारावी की झोपड़पट्टी में रहती थी और नैयर बांद्रा के गेस्ट हॉउस में। गीतांकन के दस दिन पंख लगाकर उड़ गए।

शशधर मुखर्जी ने आर.के. नैयर को स्वतंत्र रूप से डायरेक्शन का अवसर दिया। उन दिनों नैयर फिल्मालय एक्टिंग स्कूल से भी जुड़ गया। वहाँ साधना से दूसरी मुलाकात हुई। नैयर ने अपनी पहली फिल्म **"लव इन शिमला"** की नायिका के लिए साधना का सुझाव रखा। शशधर मुखर्जी फिल्मकारों के डॉन हुआ करते थे। उनकी इच्छा थी कोई स्थापित नायिका ली जाए। नैयर की हिमाकत कि उसने 'डॉन' से कहा कि अगर साधना को नहीं लिया तो वे फिल्म नहीं करेंगे। एक सहायक जिसे पहली बार अवसर मिल रहा है वह इतनी हिम्मत करे- वह भी शशधर मुखर्जी के सामने, जिसने चौथे दशक में 'बंधन', 'झूला', 'किस्मते' और पाँचवें में 'नागिन' और 'अनारकली' बनाई थीं। वह नैयर का साधना की प्रतिभा में विश्वास था या महज व्यक्तिगत प्यार था? नैयर ने बाद में बताया कि 'लव इन शिमला' की कथा एक साधारण सी लड़की के सुंदर और आधुनिक बनने के प्रसंग पर टिकी थी और साधना जैसी नई लड़की, जिसकी कोई स्थापित छवि न हो, ही कर सकती थी।

साधना का जीवन और 'लव इन शिमला' की कथा-दोनों ही में साधना का कायाकल्प साथ-साथ हुआ। यह एक 'एक्स्ट्रा' (भीड़ के दृश्यों में लगाए जाने वाले) के 'स्टार' बनने की कथा है। हर 'एक्स्ट्रा' का सपना होता है स्टार होना और स्टार बनने के लिए आई हुई अधिकांश लड़कियाँ 'एक्स्ट्रा बनकर रह जाती हैं। फिल्म उद्योग में एक्स्ट्रा बड़ा ही करुण जीवन बिताती है। एक्स्ट्रा की छाती पर ही सेट के लोग अपने नैराश्य और कुंठाओं का महाभारत लड़ते हैं। सभी विभागों के सहायकों के पास अपने-अपने सपने हैं जिनके पूरे होने की कोई संभावना नहीं है- ये जानते हुए भी आशा की किसी अज्ञात गंगोत्री के सहारे ये लोग जानवरों से बदतर जीवन काट ही लेते हैं।

कायाकल्प की प्रक्रिया में ही भाल पर कंघी के समान आए हुए बालों का फैशन इजाद हुआ जो कालांतर में '**साधना-कट**' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बड़ा विचित्र कायाकल्प था जिसमें रोगी (साधना) के साथ वैद्य (नैयर) भी पूरी तरह परिवर्तित हो रहे थे। सभी 'विशेषज्ञों' के विचार के खिलाफ 'लव इन शिमला' बनी और कामयाब भी हुई। **एक सहायक निर्देशक और एक 'एक्स्ट्रा' ने इस हिट के साथ ही न जाने कितने आँखों में कितने सपने बो दिए! कालांतर में कितना नैराश्य और कितनी कुंठाओं का जन्म हुआ।**

साधना पहली ही फिल्म से 'स्टार' हो गई। बिमल राय ने 'परख' में साधना को लिया और साबित कर दिया कि साधना सिर्फ स्टार ही नहीं है, बहुत कुशल अभिनेत्री भी है। 'मेरे महबूब' के प्रदर्शन के बाद साधना भारत के लाखों युवकों के मन में बस गई। साधना के लिए लड़के जान लेने और जान देने की बात करने लगे। जब ऐसी बातें होने लगती हैं तभी कोई कलाकार 'स्टार' बनता है।

साधना, आशा पारेख और सायराबानो समकालीन प्रतिद्वंद्वी थे। साधना बेहतर अभिनेत्री थी। उसने जॉय मुखर्जी के साथ 'एक मुसाफिर एक हसीना' की तरह कई रोमांटिक फिल्में कीं और शम्मीकपूर के साथ 'राजकुमार' जैसी फंतासी भी की। देवआनंद के साथ 'हम दोनों' ने तो साधना को प्रमुख स्टार का स्थान दिला दिया। "आरजू" में काम करने के लिए साधना ने रामानंद सागर से ५ लाख रुपए लिए। पाँच लाख रुपए एक बहुत बड़ी धनराशि थी। सच तो यह है कि आज रुपए के अवमूल्यन के बाद भी श्रीदेवी के अलावा किसी और अभिनेत्री को पाँच लाख से ज्यादा नहीं मिलते। उन दिनों साधना बॉक्स ऑफिस सफलता की ग्यारंटी थी। नृत्य दृश्यों में साधना के लटके-झटके इतने प्रसिद्ध थे कि सैकड़ों रुपयों की चिल्लर सिनेमा गृह को बुहारने वालों को मिल जाती थी।

गंभीर नाटकीय भूमिकाओं की साधना और नृत्य दृश्यों की लटके-झटके वाली साधना दो अलग प्राणी लगते थे। 'झुमका गिरा रे बरेली के बाजार में' (मेरा साया) एक ही गीत ने फिल्म को सफल बना दिया।

साधना की सबसे बड़ी सफलता "वह कौन थी?" में निर्देशक राजखोसला ने साधना को बड़े ही मोहक ढंग से प्रस्तुत किया। मदन मोहन का अमर गीत "नयना बरसे रिम झिम" इसी फिल्म का था। अपने पति नैयर के लिए साधना ने 'इंतकाम' फिल्म की जो पहली फिल्म है जिसमें नायिका बदला लेने के लिए सब कुछ करने को तैयार है। इस तरह से साधना पहली 'एंग्री यंग वीमेन' होने का गौरव अर्जित करती है।

साधना की चकाचौंध कर देने वाली सफलता को ऊपर वाले की नजर लग गई। साधना की आँखों पर सूजन आ गई और दुनिया भर में भटकने से भी इलाज संभव नहीं हुआ। एक अत्यंत प्रतिभाशाली अभिनेत्री का इस तरह पटाक्षेप बहुत ही दुखद था। इसके पूर्व साधना ने अपने प्रिय कलाकार राजकपूर के साथ "दूल्हा-दुलहन" में काम किया था। एक निहायत ही कमजोर कथा और अपरिपक्व दिग्दर्शन की वजह से फिल्म खराब बनी। साधना 'एंटी हीरो' कड़ी की पहली फिल्म 'गीता मेरा नाम' में अभिनय और दिग्दर्शन कर चुकी थी। लाखों दीवानों को घायल करने वाली आँखें ऐसी बीमारी से खराब हुईं जो अब आठ आने की गोली से ठीक हो जाती है परंतु उस समय लाइलाज थीं।



शशिकपूर के साथ साधना

शर्मिला ठाकुर

अभिजात्य वर्ग का साधारणीकरण

सत्यजीत राय की फिल्मों में काम करने से शर्मिला ठाकुर पर श्रेष्ठता की छाप ऐसी लगी कि बंबइया फिल्मी दुनिया की काजल-कोठरी में भी वह उजली बनी रही। आराधना, सफर, अमर प्रेम, अनुपमा, दूसरी दुल्हन शर्मिला की उम्दा फिल्में हैं। बंगला नायिकाओं की शालीनता को शर्मिला बंगाल की खाड़ी से खींचकर अरब-सागर तक लाई है।



सत्यजीत राय की फिल्म नायक में शर्मिला ठाकुर

सन् १९५७ में मात्र १३ वर्ष की आयु में शर्मिला ने सत्यजीत राय की 'अपूर संसार' में अभिनय कर अतंरराष्ट्रीय ख्याति अर्जित की थी। इसके बाद सत्यजीत राय की **'देवी', अरण्येर दिन रात्रि', 'नायक'** और **'सीमाबद्ध'** में शर्मिला ने उच्च श्रेणी का अभिनय किया। १९६४ में २० वर्ष की आयु में शक्ति सामंत की **'काश्मीर की कली'** शर्मिला की पहली हिंदी फिल्म थी। बंगाली दर्शकों ने शर्मिला की अभिनय प्रतिभा की प्रशंसा की तो हिंदी दर्शकों को शर्मिला के सौंदर्य ने प्रभावित किया। उसके गाल में धँसने वाले भंवर में युवा दर्शक डूब गए।

शर्मिला का आविर्भाव उस समय हुआ जब साधना, आशा पारेख, सायरा बानो ने दर्शकों को नरगिस, मधुबाला और मीना की याद से छुड़ाने के सारे प्रयास कर लिए थे। दर्शकों ने शर्मिला में नरगिस की प्रतिभा की झलक देखी और सायरा बानो का सौंदर्य। नायिकाओं के इतिहास के दृष्टिकोण से शर्मिला में पुरानी पीढ़ी की प्रतिभा थी और वर्तमान की चपलता भी।

शर्मिला ने आते ही व्यावसायिक सिनेमा के दिग्गजों जैसे यश चोपड़ा की फिल्में कीं, तो दूसरी ओर ऋषिकेश मुखर्जी तथा गुलजार की फिल्में भी कीं। यह शर्मिला का कमाल है कि उसने सत्यजीत राय से लेकर सूरजप्रकाश (आमने-सामने) तक निर्देशकों के साथ काम किया और हर स्कूल के मानदंडों के अनुरूप सफल रही। सत्यजीत राय अगर 'काश्मीर की कली' या 'इवनिंग इन पेरिस' देखते तो 'नायक' या 'सीमाबद्ध' में उसे काम ही नहीं देते। शर्मिला ने अभिनय में विविधता के नए मानदंड स्थापित किए हैं। मुखर्जी के साथ 'अनुपमा', 'सत्यकाम' जैसी गंभीर फिल्मों के अलावा 'चुपके-चुपके' जैसी हास्य फिल्म भी की। यश चोपड़ा के साथ 'वक्त' के मामूली रोल के साथ 'दाग' जैसी फिल्म में अत्यंत नाटकीय भूमिका भी अभिनीत की। राजेश खन्ना के साथ 'आराधना' में असीम लोकप्रियता पाई तो 'सफर' में असाधारण अभिनय भी किया। 'अमर-प्रेम' में दर्शकों को शर्मिला ने मंत्रमुग्ध कर दिया।

शर्मिला अभिजात्य वर्ग से आई थी और अभिनेत्रियों में भी उसका विशिष्ट स्थान ही रहा। वह अकेली ऐसी अभिनेत्री है जिसने गंभीर भूमिकाओं की चुनौती स्वीकार करने के साथ ही कपड़े उतारने वाली भूमिकाएँ भी कीं और उसके बावजूद भी उसके खिलाफ प्रेस या दर्शकों ने कभी कुछ नहीं किया। 'इवनिंग इन पेरिस' 'आमने-सामने' आदि ऐसी कितनी ही फिल्में हैं जिसमें उसने तैरने की पोशाक पहनी है। गुलजार की 'मौसम' में मर्दों की तरह बीड़ी पीने और भद्दी गालियाँ देने वाली भूमिका भी की है। 'मौसम' में शर्मिला ठाकुर एक युवा प्रेमिका भी थी, अनंत विरहणी भी, पागल बुढ़िया भी और एक तवायफ भी। राखी के पति गुलजार से ऐसी बहुमुखी आयाम वाली भूमिका ले लेना कोई आसान कार्य नहीं था।

शर्मिला ठाकुर का कद छोटा था, परंतु अपार अभिनय क्षमता के कारण वह अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों से ऊपर उठ गई। अध्ययन की दृष्टि से शर्मिला शायद वनमाला को छोड़कर सभी अभिनेत्रियों से ऊपर है और इस गहन अध्ययन का फायदा उसने अपने अभिनय में उठाया है। पात्र के अंतर्द्वंद्व की उसे अच्छी समझ है। संवाद की अदायगी में ठहरने (पॉज) की कला में शर्मिला वैसे ही निष्णात है जैसे पुरुषों में दिलीप कुमार, अमिताभ और नसीरुद्दीन शाह। अगर शर्मिला ठाकुर का फिल्म उद्योग में महत्व वर्णित करने के लिए केवल एक शब्द का प्रयोग करना हो तो कहेंगे कि वह अभिजात्य वर्ग की प्रतिनिधि थी। शर्मिला और अभिजात्य शब्द समानार्थी हो जाते हैं।

आज शर्मिला फिल्मों से संन्यास ले चुकी है परंतु अपने पति नवाब पटौदी के साथ कुछ विज्ञापन फिल्मों में टी.वी. पर नजर आती है। आज भी वे इतनी सुंदर और छरहरी हैं कि आज की कई अभिनेत्रियाँ उनकी बड़ी बहन लगती हैं। शर्मिला ने अभिजात्य वर्ग की सारी विशेषताओं के बावजूद आम दर्शक से तादात्म्य स्थापित किया है।

प्रमुख फिल्में : *काश्मीर की कली (१९६४) * आराधना (१९६९) * सुहाना सफर (१९७०) * अमर प्रेम (१९७१) * छोटी बहू (१९७१) * दास्तान (१९७२) * राजा रानी, दाग, आविष्कार (१९७३) * अमानुष (१९७५) * चुपके-चुपके, मौसम, फरार (१९७५) * आनंद आश्रम, त्याग (१९७७) * देश प्रेमी, नमकीन (१९८२) * दूसरी दुल्हन (१९८३) * न्यू देहली टाइम्स (१९८६)।



शर्मिला ठाकुर

बबीता
लहर पर सवार कश्ती


फिल्म कल, आज और कल (१९७१) में रणधीर-बबीता

साधना और **बबीता** नजदीकी रिश्ते की बहनें हैं, परंतु खून के रिश्ते के बावजूद उन दोनों में कोई समानता नहीं। उनमें मित्रता भी नहीं रही। साधना सिन्ड्रेला की तरह उठीं, परंतु बबीता को 'स्टारडम' आसानी से मिला। हरि शिवदसानी अपने जमाने के अच्छे खिलाड़ी और खिलंदड स्वभाव के भी थे। इसलिए फ्रेंच महिला उन पर मर मिटी। सिंधी और फ्रेंच संयोग के प्रमाणस्वरूप बबीता का बेहद गोरा रंग और हल्की भूरी आँखें हैं। हरि शिवदसानी का स्टुडियो बिकने के बाद उसने चरित्र भूमिकाएँ करना शुरू कीं और पूरा उद्योग ही उनका मित्र था। बबीता को जी.पी. सिप्पी ने आमंत्रित किया और नवोदित राजेश खन्ना के साथ फिल्म 'राज' में प्रस्तुत किया।

'राज' के असफल होने के बावजूद गोरी-चिट्टी आधी मेम बबीता को काम मिला क्योंकि नायिकाओं की कमी थी। साधना बीमारी के कारण अभिनय छोड़ चुकी थीं और सायराबानो विवाह के बाद केवल अपने पति के साथ ही काम करती थीं। मनोज कुमार की 'पहचान' हिट हुई और बबीता स्थापित 'सितारा' बन गई। अभिनय कला में अत्यंत कमजोर होने के बावजूद बबीता ने कई सफल फिल्मों में काम किया। दर्शक उसे पसंद करते थे, परंतु उसके लिए उन्मादी नहीं बने। आलोचक उसे नापसंद करते थे, परंतु उसकी फिल्मों का 'बायकाट' नहीं करते थे। अभिनय-क्षमता पर प्रश्नचिह्न लगने के बावजूद बबीता 'अनमोल मोती', 'रिक्शावाला' की तरह हिट फिल्मों में काम करती गई। जीतेन्द्र के साथ दक्षिण में बनी 'फर्ज' बहुत अधिक कामयाब हुई। प्रकाश मेहरा की पहली फिल्म 'हसीना मान जाएगी' में बबीता के हास्य अभिनय को बहुत पसंद किया गया।

बबीता एक चतुर व्यवसायी थी। उसने अपने कैरियर को एक प्रशिक्षित मैनेजर की तरह सुचारु रूप से चलाया। हमेशा अच्छे निर्माताओं के साथ काम किया। उसे सफल कहानी सूँघने की अद्भुत क्षमता थी। संजय जैसे न बिकने वाले सितारे के साथ उसने 'दस लाख' में कार्य किया और फिल्म सफल रही। बबीता की सफल फिल्मों का प्रतिशत चौंकाने वाला है। यह अभिनय कुशलता से अधिक 'मैनेजमेंट' की सक्षमता का परिचायक है। रणधीर कपूर की 'कल, आज और कल' बबीता की आखिरी फिल्म थी। आजकल वे अपनी बड़ी बेटी करिश्मा को प्रशिक्षित कर रही हैं। ■

आशा पारेख
अभिनय की तीसरी मंजिल

अभिनेत्री अगर खूबसूरत के साथ-साथ नृत्यांगना भी हो, तो उसकी सफलता में कोई संदेह नहीं रहता। ऐसी ही एक अभिनेत्री है **आशा पारेख**। आशा पारेख, मीनाकुमारी, पद्मिनी, वैजयंती, माला सिन्हा, नूतन, मधुबाला की समकालीन जरूर है लेकिन उनके समान श्रेष्ठता हासिल नहीं कर सकीं। आशा का प्रवेश फिल्मों में नासिर हुसैन की **'दिल दे के देखो'** से हुआ और उसने लगभग इसी तरह की प्रेम त्रिकोण वाली फार्मूला फिल्मों में काम किया। जैसे जब प्यार किसी से होता है, फिर वही दिल लाया हूँ, लव इन टोकियो, जिद्दी, तीसरी मंजिल वगैरह। लेकिन आशा के अभिनय की श्रेष्ठता कटी पतंग और मैं तुलसी तेरे आँगन की में प्रकट होती है। लगता है इससे पहले निर्देशकों ने उसकी प्रतिभा को परखा नहीं और सिर्फ उसके ग्लैमर तथा नृत्य का इस्तेमाल ही किया जाता रहा।



नृत्य में आशा न सिर्फ माहिर है बल्कि कथक तथा भरत नाट्यम पर एक जैसा अधिकार रखती हैं। वह वैजयंतीमाला की तरह नृत्य का एक स्कूल भी चलाती हैं। वालकेश्वर में उसने कला भवन फाइन आर्ट्स रिसर्च फाउन्डेशन नाम से स्कूल खोल रखा है जिसमें एक समय में १७५ विद्यार्थियों को नृत्य की शिक्षा दी जाती है। सांताक्रूज अस्पताल का एक वार्ड भी आशा पारेख के नाम पर है। आशा पारेख अपने प्रसिद्ध बेले **चौलादेवी** और **डिस्कवरी ऑफ इंडिया** का प्रदर्शन लगभग विश्व के संपूर्ण भाग में कर चुकी हैं। योगेन्द्र देसाई और सुदर्शन धीर के साथ उनका यह ट्रुप दुनिया के कोने-कोने में घूमा है। शास्त्रीय नृत्य में महारथ हासिल होने के बावजूद आशा पारेख को उतनी मान्यता नहीं मिली जितनी मिलती चाहिए थी। वैसे उसके सभी स्टेज-शो हाउस फूल होते हैं।

आशा कहती हैं मेरे पुरस्कार मेरे प्रशंसक और उनका प्रेम है। आज भी मेरे स्टेज शो पर वैसी ही भीड़ पड़ती है, इससे बड़ा पुरस्कार और भला क्या हो सकता है। आशा ने हिन्दी के अलावा अनेक गुजराती फिल्मों में भी काम किया है। आशा ने अपने समकालीन लगभग सभी अभिनेताओं के साथ काम किया। इनमें गुरुदत्त, सुनील दत्त, देवानंद, मनोज कुमार, शम्मी कपूर, शशिकपूर, जॉय मुखर्जी और राजेश खन्ना के नाम उल्लेखनीय हैं। उसकी अनेक फिल्मों ने जुबली मनाई तथा तीसरी मंजिल व कटी पतंग में श्रेष्ठ अभिनय के लिए उसे फिल्म फेअर पुरस्कार भी मिले।

आशा पारेख ने कला के प्रति **समर्पण** के कारण विवाह नहीं किया। लगभग एक दशक तक नायिका की भूमिका करने के बाद उसने अब चरित्र अभिनेत्री की भूमिकाएँ प्रारंभ कर दी हैं। इंसाफ का खून, शिकायत, आखरी मुजरा, बिन फेरे हम तेरे, माँग सजा दो मेरी जैसी अनेक फिल्मों में वह चरित्र अभिनेत्री के बतौर भी अपनी धाक जमा चुकी हैं। आशा इस रूपांतरण से संतुष्ट है। हीरोइन की भूमिका में नाचने-कूदने और पेड़ के आसपास चक्कर लगाने से तो चरित्र रोल ज्यादा श्रेष्ठ होते हैं, जहाँ आप अपने अभिनय की प्रतिभा का प्रदर्शन तो कर पाते हैं। ■

हजारों शाहजहाँ वाली मुमताज

अपने जमाने की कुशल अभिनेत्री नाज की बेटी ने फिल्मी दुनिया में अपनी जगह बनाने के लिए जो संघर्ष किया है, उसकी कहानी अपने आप में एक मिसाल है। शाहिद लतीफ की फिल्म **'सोने की चिड़िया'** में (१९५८) के आसपास वह एक बाल कलाकार के रूप में पहली बार पर्दे पर

'सी'श्रेणी की फिल्मों की सिन्ड्रेला से फिल्मों की पटरानी बनने का सफर मुमताज ने तय कर फिल्म पंडितों को हैरत में डाल दिया था। दारासिंह की कुश्ती फिल्मों की यह नायिका जब राजेश खन्ना और संजीव कुमार के साथ फिल्मों में आई, तो उसके चाहने वाले हजारों शाहजहाँओं ने उसमें अपनी मुमताज की छबि देखी। वैसे इस 'बूँद' को मोती बनाने का श्रेय वी. शांताराम को है। घर-गृहस्थी के आँगन से निकलकर आज मुमताज दूसरी पारी में किस्मत आजमा रही है।

आई थी। इसके बाद वी. शांताराम की फिल्म 'स्त्री' में उसने नायिका की सखी के रूप में काम किया। छोटी-मोटी भूमिकाओं को अपनाने में मुमताज को कोई एतराज नहीं होता था। संयोग की बात तो यह थी कि मुमताज की बजाए उसकी बहन मलिका को शुरूआत में बेहतर भूमिकाएँ मिलीं। मुमताज तो सहनायिका भी काफी सालों के संघर्ष के बाद बन पाई। 'अनपढ़', 'डॉ. विद्या' तथा 'वल्लाह क्या बात है' जैसी फिल्मों में छोटी-मोटी भूमिकाएँ कर चुकने के बाद कॉमेडी फिल्म 'मैं शादी करने चला' में मुमताज को पहली बार महत्वपूर्ण भूमिका मिली। इस फिल्म में वह पाँच विवाह-योग्य बहनों में एक की भूमिका कर रही थी, जिसका रोमांस फीरोज खान के साथ चलता है। इसके बाद उसे 'गहरा दाग' में राजेन्द्रकुमार की बहन की भूमिका मिली। ओ.पी. रल्हन का 'गहरा दाग' शुरू तो बाद में हुई, मगर रिलीज हो गई 'मैं शादी करने चला' से पहले। इस फिल्म में मुमताज के अभिनय को सराहा गया। विख्यात अभिनेत्री मधुबाला के पिता ने अपनी फिल्म **'पठान'** में मुमताज को मुख्य भूमिका के लिए चुन लिया। दुर्भाग्यवश यह फिल्म पूरी नहीं हो सकी। इसके बाद उसे नायिका की भूमिका के लिए 'फौलाद' में चुना गया। विनोद दोषी की इस फिल्म के नायक थे दारासिंह। 'सी' ग्रेड की फिल्मों में नायिका की भूमिका कर चुकने के बाद भी मुमताज ने सहभूमिकाएँ स्वीकार करना जारी रखा। 'रुस्तम-सोहराब' में नायिका सुरैया थी, परंतु मुमताज की भी भूमिका उसके अभिनय के कारण महत्वपूर्ण बन गई। वी. शांताराम के 'सेहरा' में वह नायिका संध्या की सहेली के रूप में आई। इसके बाद मारधाड़ वाली फिल्मों की नायिका के रूप में वह पर्दे पर छाने लगी। 'बाक्सर', 'जवाँमर्द', 'हरक्युलिस', 'सैम्सन', 'रुस्तम कौन', 'टार्जन कम्स टू देहली' आदि फिल्मों में उसे नायिका का काम मिला। सामाजिक फिल्मों में अपनी जगह बनाने की ख्वाहिश ने उसे 'काजल', 'खानदान', 'दादी माँ', 'मेरे सनम' जैसी फिल्मों में सहभूमिकाएँ करने के लिए प्रेरित किया। सामाजिक फिल्मों में अक्सर वह मेहमूद के साथ हास्य भूमिकाओं में आया करती थी। मुमताज के सौभाग्य का सूर्य १९६७ में बादलों से निकलकर चमकने लगा। उसे **'पत्थर के सनम'** तथा **'राम और श्याम'** में सहनायिका की भूमिका मिली। दोनों फिल्में सफल रहीं और फिर 'बूँद' के रूप में शुरू हुआ मुमताज का फिल्मी कैरियर 'मोती' बन गया। वी. शांताराम ने 'बूँद जो बन गई मोती' में मुमताज को नायिका की भूमिका के लिए चुन लिया। इसके बाद मुमताज ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। उसकी दो फिल्में १९६९ में प्रदर्शित हुई 'दो रास्ते' तथा 'बंधन'। दोनों में वह राजेश खन्ना के साथ नायिका बनकर आई थी। 'दो रास्ते' सुपरहिट हुई और मुमताज फिल्म प्रेमियों के प्यार का केन्द्र बन गई। 'जिगरी दोस्त', 'हिम्मत' तथा 'खिलौना' में उसकी अभिनय क्षमता पूरी तरह से उभरकर सामने आ गई। इसके बाद के चार-पाँच सालों तक मुमताज हिंदी फिल्मों की शीर्षस्थ अभिनेत्रियों की कतार में बनी रही। अचानक सफलता की पूरी रफ्तार में चल रही इस दौड़ को उसने खुद ही रोक दिया और शादी करके फिल्मी दुनिया को हमेशा के लिए छोड़ने का फैसला किया। जब मुमताज ने यह कठोर निर्णय लिया तब **'चोर मचाए शोर'** सफलता का शोर मचा रही थी तथा 'आपकी कसम' हिट हो चुकी थी।

संयोग की इस कथा की सूत्रधार मुमताज के साथ सिर्फ 'संयोग' ही महत्वपूर्ण रहे हों, ऐसा नहीं है। उसका परिश्रम, धैर्य तथा प्रतीक्षा की शक्ति उसकी विशेषता रहे। अब यह भी संभावना है कि मुमताज एक बार फिर हिन्दी फिल्मों में अपनी दूसरी पारी शानदार ढंग से खेले। ■

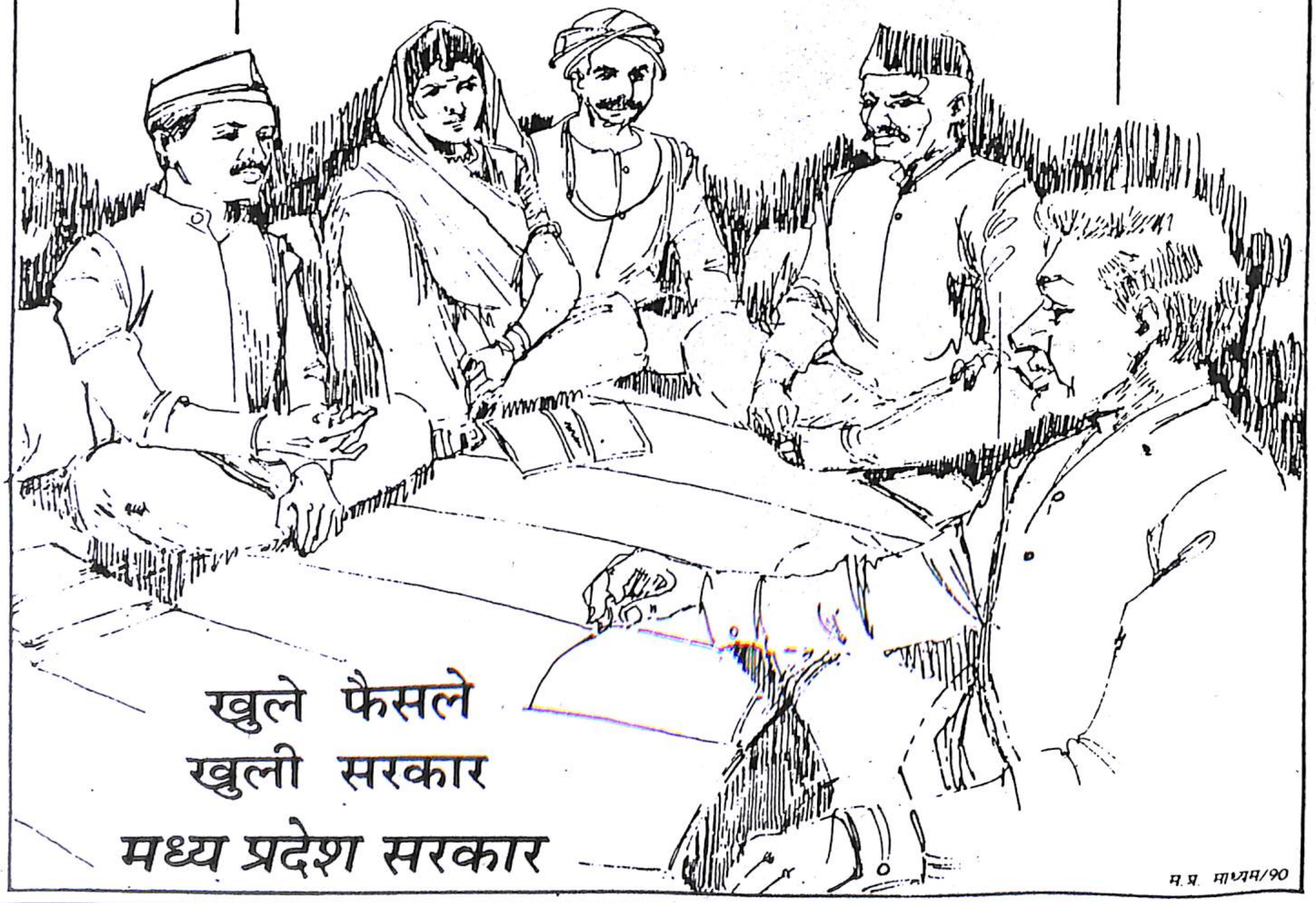


मुमताज

सरकार अपनी होने का अहसास हर गांव और हर शहर में

नई सरकार का संकल्प है कि जनता के हित में किए जाने वाले निर्णयों और उनके क्रियान्वयन का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण किया जाए। अब विकेन्द्रीकरण का अर्थ होगा-गांवो-शहरों के निर्णय वहीं पर। जनहित के निर्णय अब भोपाल में किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की मुठ्ठी में बंद नहीं होंगे।

सरकार स्थानीय शासन की ग्रामीण और नगरीय संस्थाओं को अधिकारों और साधनों से सम्पन्न बनाकर उन्हें जनप्रतिनिधियों के हाथों में सौंपने जा रही है। अब हर निर्णय एक खुला निर्णय होगा जो प्रतीक होगा सरकार के खुलेपन का। अब सरकार होगी आम आदमी की आम आदमी द्वारा।



तबस्सुम

फूल खिले हैं गुलशन-गुलशन

तबस्सुम एक लोकप्रिय नाम है। बचपन से लेकर अब तक अर्थात् ढलती उम्र में भी वे लोगों को अपने नाजो-अंदाज से आकर्षित करती है। कोई भी कार्यक्रम चाहे वह रेडियो पर हो, स्टेज पर या दूरदर्शन पर, यदि तबस्सुम वहाँ मौजूद है, तो उनकी खिलखिलाती हँसी कार्यक्रम में चार चाँद लगा देती है। किसी व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन वे इतनी खूबसूरती से करती हैं कि लोग खुश हो जाते हैं।

तबस्सुम के माता-पिता दोनों स्वतंत्रता सेनानी थे, इसलिए उनके यहाँ सदैव लेखक, विचारक, सेनानी लोगों की भीड़ रहती थी। उनकी अम्मी पढ़ी-लिखी थीं और हमेशा तनवीर मासिक पत्रिका लेती थीं, जिसमें राजनीति एवं शिक्षा से संबंधित लेख और स्वतंत्रता के लिए कैसे संघर्ष किया जाना चाहिए जैसे विषय प्रकाशित होते थे। ये गाँधी, नेहरू व बोस आदि के योगदान के बारे में होते थे। तबस्सुम इसी प्रकार के माहौल में पलीं और बढ़ी हैं। अरुणा आसफ़ अली, अबुल कलाम आजाद, फिराक गोरखपुरी और जोश मलीहाबादी अक्सर उनके यहाँ शाम गुजारते थे। सभी लोग देश की स्वतंत्रता में अलग-अलग प्रकार से योगदान कर रहे थे। वे तीन साल की थीं किंतु अपनी माँ का दूध पीने वाली छोटी बच्ची बनी हुई थीं। अचानक एक दिन उन्होंने निर्णय लिया कि अब मैं माँ का दूध नहीं पीऊँगी क्योंकि यदि यही मेरी आदत रही तो माँ अँधी हो जाएगी और फिर काम नहीं कर पाएगी। इस सोच ने तबस्सुम को डरा दिया और गिलास से दूध पीना शुरू कर दिया।

उनकी माँ हिंदी फिल्मों की हीरोइनों के साथ संवाद बोलकर अपनी भाषा ठीक किया करती थीं। यह करीब १९४६ की बात है। वी. शांताराम और बाबूराव पई ने प्रसिद्ध स्टूडियो राजकमल बनाया था। उन दिनों तबस्सुम अपनी माँ के साथ स्टूडियो जाया करती थीं। कभी-कभी वे बीच में बोल उठतीं 'आंटीजी, ये डायलॉग ऐसे बोलो न'। निर्देशक डी.डी.कश्यप ने फिल्म **नरगिस** में उन्हें बाल कलाकार की भूमिका दी थी। यह उनकी पहली फिल्म थी जिसमें वे नरगिस की छोटी बहन बनी थीं। नरगिस ने उन्हें लोकप्रिय बाल कलाकार बना दिया। किंतु तब तबस्सुम ने महसूस किया कि एक्टिंग करना कितना कठिन काम है। खासकर रोने वाली भूमिका करना तो बहुत कठिन है। मेकअप से वे काफी घबराती थीं। मेकअप ट्रे उन्हें अस्पताल और ऑपरेशन थिएटर की याद दिलाती है। कुछ बड़ी हुई तो उन्हें अपने दाँत खराब लगने लगे क्योंकि दाँतों के बीच काफी दूरी थी। इसलिए वे ज्यादा मुस्कुराती नहीं थीं। साउंड रिकॉर्डिस्ट मुलगाँवकर उन्हें हमेशा डराते रहते। कहते, तुमसे कोई भी शादी नहीं करेगा क्योंकि तुम्हारे दाँत ऐसे हैं।

◆◆◆

एक बार बेबी तबस्सुम का नाम अखबार में छपा तो मारे खुशी के उसकी आँखों में आँसू आ गए। पान वाले, केले वाले, सब्जी वाले के अलावा मोची तक को उसने अपने नाम पर उँगली रखकर दिखाया और कहा कि 'अब आप लोग मेरे ऑटोग्राफ ले सकते हो।' तबस्सुम सफल नायिका तो कभी नहीं बन सकी, हाँ, नायक या नायिका की 'सफल बहना' जरूर रही हैं। 'तुम पर हम कुरबान' नामक फिल्म बनाकर अपने बेटे होशांग गोविल को वह स्थापित नहीं कर सकी। अब तो टी.वी. विज्ञापनों में चहकती हैं तबस्सुम!

तबस्सुम जब लोकप्रिय होने लगीं तो एक बात उन्हें अखरने लगी कि कोई भी उनके पास ऑटोग्राफ माँगने नहीं आता। सभी लोग हीरो-हीरोइनों के आगे पीछे घूमते रहते हैं। एक बार तो अपना नाम एक अखबार में फिल्मों के कलाकारों के नाम के साथ लिखा देखा तो मारे खुशी के उनकी आँखों में आँसू आ गए थे। केले वाला, पान वाला, भाजी वाला, मोची को वह अखबार दिखाया और कहा कि अब मेरा ऑटोग्राफ लो क्योंकि मैं जल्दी ही बड़ी प्रसिद्ध हीरोइन बनने वाली हूँ। और एक दिन उन्हें बड़ा पुरस्कार मिल गया। उनका नाम 'गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स' में शामिल किया गया क्योंकि बाल कलाकार के रूप में उन्होंने सर्वाधिक फिल्में १५० से अधिक की हैं।

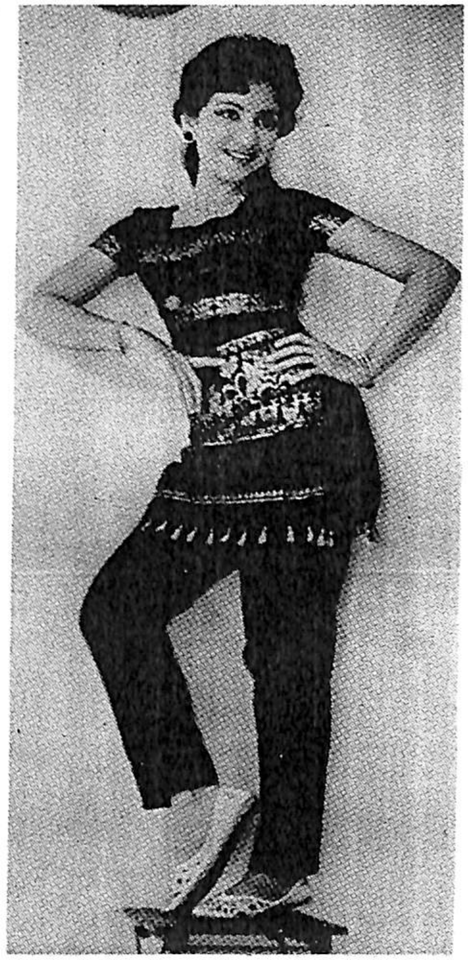
तबस्सुम का बचपन बंबई के भायकला स्थान में बीता। जहाँ दादाओं और अलग-अलग गैंगों की भीड़ रहती। इसलिए वे भी बच्चों के साथ खेलते समय कहतीं- बाहर निकलो, मैं तुम्हें देख लूँगी। असल में उस समय वे काफी मोटी भी थीं।

सन् ५० तक आते-आते वे बाल कलाकार के रूप में अभिनय करने के हिसाब से बड़ी हो चुकी थीं। परंतु हीरोइन के हिसाब से वे काफी छोटी थीं। कुछ समय के लिए उन्होंने फिल्मों से सायोनारा कह दिया।

उन्होंने अलीगढ़ वि.वि. से उर्दू साहित्य में बी.ए. किया है। वे भरतनाट्यम और कत्थक की कुशल नृत्यांगना भी रह चुकी हैं। कुछ सालों पश्चात उनकी फिल्मों में पुनः वापसी तो हुई परंतु उन्हें हीरो की बहन अथवा हीरोइनों की सहेली की भूमिका के प्रस्ताव मिले। इससे वे काफी विचलित हुईं परंतु सदैव आशा करती रहीं।

सन् ६२ में एक गुजराती फिल्म 'लेखो बंजारो' में हीरोइन की भूमिका मिली, जिसके नायक, प्रदीप कुमार थे। उस समय वे अभिनय के शिखर पर थे। अन्य गुजराती फिल्मों, जैसे 'ऊपर गंगा विशाल', 'माडी', 'मैंने कै वादे' में भी काम किया। 'माडी', 'मैंने कै वादे' में गुजरात सरकार ने सर्वश्रेष्ठ हीरोइन का अवॉर्ड दिया। इसके बाद कुछ हिंदी फिल्मों में भी हीरोइन रहीं किंतु न तो फिल्म ही सफल रही और न तबस्सुम। ये फिल्में थीं- 'टार्जन की मेहबूबा', 'सन ऑफ रॉबिनहुड', 'जादूगर और लुटेरा'। इससे तबस्सुम काफी आहत हो गई कि ऐसा क्यों और कैसे हो गया।

जब तबस्सुम फिल्मों में अपने कैरियर के प्रति काफी निराश हो गई कि आगे अब अच्छे अवसर नहीं मिलेंगे तब उन्होंने तनावों के बीच एक कठोर निर्णय लिया, फिल्मों में काम नहीं करने का। और 'अधिकार' उनकी आखिरी फिल्म थी जो १९७० में प्रदर्शित हुई थी। इस बीच में वे दो बच्चों की माँ बन चुकी थीं।



कुछ समय बाद उनके कैरियर ने मोड़ लिया। अमीन सयानी उस वक्त रेडियो पर कम्पेयरिंग करते थे। उन्होंने तबस्सुम से अपने साथ कार्यक्रम देने के लिए कहा। पहले तबस्सुम थोड़ा झिझकीं। फिर तैयार हो गईं। कुछ कार्यक्रम अमीन सयानी के साथ किए। फिर उन्होंने स्वयं एक कार्यक्रम तैयार किया। 'पैसे बचाइए हँसी लुटाइए'। कार्यक्रम में विविधता लाने के लिए वे अपनी बेटी तरन्नुम के साथ कार्यक्रम देने लगी। तबस्सुम का अगला

मेरा नाम 'शबनम' नहीं बिन्दु है

शक्ति सामंत की फिल्म **'कटी पतंग'** में बिन्दु खलनायक प्रेम चोपड़ा की प्रिया की भूमिका कर रही थी। कहानी के अनुसार उसे एक दृश्य में नाच प्रस्तुत करना था। चूँकि बिन्दु को नृत्य का न तो पूर्व अनुभव था और न ही कोई प्रशिक्षण मिला था। इसलिए वे न चाहते हुए भी पटकथा में मामूली हेर-फेर कर वह नृत्य किसी अन्य अभिनेत्री से करवाने की तैयारी करने लगे।



पटकथा के अनुसार नृत्य का महत्व बिन्दु समझती थी, इसलिए उसने आग्रह किया कि वह कोशिश करके खुद ही नृत्य प्रस्तुत करेगी। एक सप्ताह तक उसने नृत्य निर्देशक सूर्यकुमार को साथ कठोर परिश्रम किया और नतीजा निकला सुपरहिट नृत्य **'मेरा नाम है शबनम'**। इस तरह 'दो रास्ते' से चरित्र अभिनेत्री के रूप में स्थापित बिन्दु व्यावसायिक हिन्दी फिल्मों की सफल नर्तकी बन गई। बिन्दु के कुछ नृत्य तो हिन्दी फिल्मों के सदाबहार नृत्यों में शुमार हो गए। फिल्म 'जंजीर' का 'दिलजलों का...।', अनहोनी का "मैंने ओठों से जो लगाई तो..." धर्मा का, "राज की बात कह दूँ तो...।" आदि नृत्यों ने दर्शकों को जितना तब लुभाया घर उतना ही आज भी लुभा रहे हैं। कुशल नृत्यांगना तथा सेक्सी खलनायिका के रूप में अपनी जगह जल्दी ही फिल्मी दुनिया में बना लेने वाली बिन्दु कई बातों में आम खलनायिकाओं से अलग है। उसकी हँसी में झलकने वाली कुटिलता तथा आवाज का तीखापन उसे पक्की खलनायिका के रूप में स्थापित करने में सहायक रहा है।

बिन्दु ने जब फिल्मों में नृत्य न देने का फैसला किया, तब उसके प्रशंसकों को बड़ी निराशा हुई।

बिन्दु ने यह कभी नहीं चाहा कि उसकी जिन्दगी एक लम्बा नृत्य होकर रह जाए। अपने से पहले की नर्तकियों का हश्र वह देख चुकी है। अपनी सेक्सी-इमेज को उसने चरित्र-भूमिकाओं में बदलकर यह साबित किया है कि कलाकार को कभी 'टाइप्ड' नहीं किया जा सकता।

नृत्य से विरक्त होने के पीछे बिन्दु की भावना एक चरित्र अभिनेत्री के रूप में स्थापित होने की दिशा में पहला कदम रखना था। बढ़ती उम्र के कारण उसने सेक्सी भूमिकाओं के साथ-साथ कुटिल सास तथा षड्यंत्रकारी बूढ़ी औरतों की भूमिकाएँ स्वीकार करना शुरू कर दिया। इससे बिन्दु को संतोष नहीं था। वह चाहती थी कि अच्छी औरत के रूप में भी दर्शकों का दिल जीत ले। 'हकीकत' 'आत्मरक्षा' आदि फिल्मों में वह बुरी औरत से अच्छी औरत बनी है। 'नफरत' में भी वह अंत में खुद को सुधारने वाली भूमिका में आई थी। अभिमान में अमिताभ बच्चन की प्रेमिका के रूप में उसने सशक्त रचनात्मक भूमिका सफलतापूर्वक की है।

बिन्दु का कहना है कि अभिनय सिर्फ अभिनय होता है। कहानी की माँग के अनुसार हर कलाकार को अच्छे या बुरे पात्र के रूप में काम करने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह सिर्फ भारतीय फिल्म उद्योग में होता है कि कलाकार को टाइप्ड भूमिकाओं में सीमित कर दिया जाता है। यदि मुझे बदशक्ल औरत की भूमिका भी मिले तो उसे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगी। ऐसा दावा करने वाली बिन्दु को यह आशंका सताती है कि उम्र के ढलने के साथ-साथ वह फिल्म उद्योग में वही जगह ले लेगी, जो ललिता पवार के पास है। कुटिल और अत्याचारी सास के रूप में खुद को बदल देना या फिल्मी दुनिया छोड़ देना इन 'दो रास्ते' के अलावा बिन्दु किसी तीसरी राह को बनाने की कोशिश में जुटी हुई है। चम्पक भाई जवेरी से शादी रचाकर बिन्दु ने सफल गृहस्थिन के सत्ताईस साल पूरे किए हैं। निजी जीवन में अत्यंत विनम्र और सादगी से जीने वाली बिन्दु, परदे पर कितनी क्रूर हो जाती है, यह देखते ही बनता है। ■

बिन्दु के जाल में उलझ गए हैं राजेश खन्ना, हेमा मालिनी और कामिनी कौशल



कदम 'स्टेज शो' कम्पेयर करना था। अमीन सयानी के साथ उन्होंने इसे प्रारंभ किया। कल्याणजी-आनंदजी के साथ उन्होंने स्वतंत्र रूप से कम्पेयरिंग की। तब से वे लगातार सफल होती गईं। सन् १९७२ में टेलीविजन के माध्यम में भी उनका प्रवेश हो गया। 'फूल खिले हैं गुलशन गुलशन' उनका पहला टी.वी. कार्यक्रम था जिसके प्रत्येक शो के उन्हें पचहत्तर रुपए मिलते थे।

एक बार तबस्सुम के मन में आया, क्यों न डाकू जगतसिंह 'जग्गा', जिसका चंबल में बहुत आतंक था, उससे मिला जाए। हिंदी फिल्मों की कहानी के समान वे उससे मिलीं, जिज्ञासावश पूछा, तुमने अब तक कितने आदमियों को मारा। जग्गा ने प्रत्युत्तर में कहा- क्या आपको याद है, आपने कितने मच्छरों को मारा। तबस्सुम जैसे चकित हो गईं। एक इंसान क्या इंसानों के प्रति ऐसा सोच सकता है। परंतु जग्गा को जब उन्होंने गहराई से जाना तो पाया कि वह एक नरम दिल इंसान है। तबस्सुम आज तक उसे राखी भिजवाती हैं।

'तुम पर हम कुरबान' एक फिल्म भी उन्होंने बनाई, जिसमें उनके बेटे होशांग गोविल ने हीरो का रोल किया था। वे स्वयं भी इस फिल्म में थीं लेकिन फिल्म की असफलता से इतनी आहत हुईं कि लगा कि आत्महत्या कर लेना चाहिए। इसके बाद किसी फिल्म निर्माण करने का वे साहस नहीं कर पाईं। अंततः टी.वी. में वे स्थापित हो गई हैं। विज्ञापनों की बढ़ती लोकप्रियता से वे भी अछूती न रह सकीं। कुछ विज्ञापनों में वे लगातार दिखाई देती हैं। मोटापा काम आ रहा शायद! ■



कभी प्यार, कभी तकरार: किशोर कुमार के साथ

वैजयंतीमाला
दक्षिण से दसों दिशाओं तक

सन् १९५१ में दक्षिण भारत की नृत्यांगना **वैजयंतीमाला** ने 'बहार' से हिन्दी फिल्मों में प्रवेश किया और १९५५ में दिलीपकुमार के साथ **'देवदास'** में कार्य कर स्वयं को एक सशक्त अभिनेत्री के रूप में स्थापित किया। 'देवदास' से 'संघर्ष' (१९६८) तक वैजयंतीमाला भारतीय सिने जगत में अत्यंत महत्वपूर्ण हस्ताक्षर रही। 'देवदास' में उसने सुचित्रा सेन जैसी महान अभिनेत्री के साथ कार्य किया और दूसरी नायिका की भूमिका के बावजूद दर्शकों को प्रभावित किया। अभिनय सम्राट दिलीपकुमार के साथ मधुबाला, नरगिस और मीनाकुमारी, कुछ व्यक्तिगत कारणों से कार्य नहीं कर सकती थीं, इसलिए दिलीप और वैजयंतीमाला की जोड़ी बनी और 'मधुमती' तथा 'गंगा-जमुना' जैसी अविस्मरणीय कृतियों का निर्माण हुआ। वैजयंतीमाला ने 'गंगा-जमुना' में इतना सशक्त अभिनय किया कि यह फिल्म दिलीपकुमार का 'वन- मैन-शो' नहीं बन पाई।

◆◆◆

नर्तकी, अभिनेत्री और राज-नेत्री वैजयंतीमाला का पहला प्यार नृत्य है। नागिन, आम्रपाली, साधना, देवदास, गंगा जमुना और संगम उसकी सर्वोत्तम फिल्में हैं। फिल्मों से अलग होते ही वैजयंतीमाला ने शादी कर ली और स्टूडियो के आर्क-लाइट्स की रोशनी से सूरज की धूप में आकर खड़ी हो गई। नेहरू परिवार से नजदीकी रिश्ते होने से वह सांसद बनी और राजनीति में सक्रिय हो गई। मिस्र के राष्ट्रपति नासिर के समक्ष अपना नृत्य पेश कर वह गौरवान्वित हुई थी। वैजयंतीमाला के नृत्य की थिरकन दर्शकों के दिलों में आज भी उथल-पुथल मचाती है।

वैजयंतीमाला का व्यक्तित्व एक कद्दावर, स्वस्थ और मजबूत लड़की का था, जो हर प्रकार की चुनौती को स्वीकार कर सकती थी। 'नया दौर' में उसने मधुबाला की जगह ली थी और संशय करने वाले आलोचकों को जबरदस्त जवाब दिया था-अपने अभिनय द्वारा। दक्षिण भारतीय होने के बावजूद उसने 'गंगा-जमुना' में पूरबी भाषा के संवाद अधिकारपूर्वक बोलकर उत्तर भारत के दर्शकों को मोह लिया था। उसकी अभिनय क्षमता के कारण ही बंगाल के प्रसिद्ध निर्देशक तपन सिन्हा ने उसे बंगाली फिल्म **'हाटे-बजारे'** में नायिका की भूमिका दी, जिसे वैजयंतीमाला ने कुशलतापूर्वक निभाया। बंगाली दर्शकों के मन में भी वह बस गई। १९५१ में 'बहार' के प्रदर्शन के समय लोगों ने सोचा था कि वैजयंती केवल **'डांसिंग स्टार'** है।



संगम (१९६४) में राजकपूर के साथ

१९५१ में 'बहार' के बाद वैजयंतीमाला ने 'लड़की', 'मिस इंडिया' जैसी दक्षिण भारतीय फार्मूला फिल्मों में कार्य किया, परन्तु उसे अपार लोकप्रियता बीन के संगीत वाली फिल्म **'नागिन'** से मिली। यह अजीब इत्तफाक है कि दक्षिण भारत की फिल्मों में वैजयंतीमाला ने केवल अपने नृत्य की योग्यता का ही सहारा लिया, जबकि बंगाली निर्देशकों ने उससे उच्च कोटि का अभिनय कराया। मद्रास से उन्हें 'समाज को बदल डालो', 'देवता', 'राजतिलक' जैसी नृत्यप्रधान भूमिकाएँ ही मिलीं, जबकि दूसरों ने उन्हें देवदास, संघर्ष, गंगा जमुना जैसी उच्च कोटि की भूमिकाएँ दिलाईं। बी.आर. चोपड़ा की 'साधना' में एक नर्तकी की भूमिका को वैजयंतीमाला ने बहुत मार्मिक ढंग से अंजाम दिया।

वैजयंतीमाला एकमात्र भारतीय अभिनेत्री है, जिसने सभी प्रसिद्ध नायकों के साथ महत्वपूर्ण फिल्में अभिनीत की हैं। दिलीप के साथ नया दौर, देवदास, गंगा जमुना, पैगाम, लीडर और संघर्ष जैसी फिल्मों में काम किया। राजकपूर के साथ 'नजराना' और 'संगम' में काम किया। 'संगम' में उसे फिल्म फेयर की सर्वोत्तम अभिनेत्री की ट्रॉफी भी मिली, जो उसकी तीसरी और अंतिम ट्रॉफी थी। राजेन्द्रकुमार के साथ 'सूरज', 'आस का पंछी' में काम किया। देवआनंद के साथ 'अमरदीप' और 'ज्वेलथीफ' में कार्य किया। सुनीलदत्त के साथ 'आम्रपाली' में कार्य किया। किशोरकुमार के साथ 'नई दिल्ली' अत्यंत लोकप्रिय फिल्म बनी।

सुरैया, खुर्शीद और नसीम बानो की पीढ़ी के बाद नरगिस, मधुबाला और मीनाकुमारी का युग आया। इसी युग के दूसरे चरण में ओवरलेपिंग होते हुए कालचक्र में नूतन और वैजयंतीमाला ने अपनी प्रतिभा से हिन्दी फिल्मों को सँवारा। वैजयंतीमाला महान अभिनेत्रियों की परंपरा की आखिरी कड़ी है, जिसने दो पीढ़ियों के मध्य में काम किया। नरगिस, मधुबाला व मीना कुमारी के युग को साधना, आशापारेख, सायराबानो के साथ जोड़ने वाले मध्यकाल की प्रतिनिधि कलाकार रही वैजयंती-माला। इस महान कलाकार की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि उसने नृत्यांगना होते हुए भी अभिनय के क्षेत्र में अपनी अद्वितीय प्रतिभा की अमिट छाप छोड़ी। चंद्रमुखी, धन्नो और राधा को कौन भूल सकता है? फिल्मों से राजनीति की ओर उन्मुख होकर वैजयंतीमाला वर्तमान में सांसद हैं।

प्रमुख फिल्में: * बहार (१९५१) * नागिन (१९५४) * नई दिल्ली, देवदास (१९५५) * आशा (१९५७) * एक झलक (१९५७) * नया दौर (१९५७) * अमरदीप (१९५८) * साधना (१९५८) * मधुमती, पैगाम (१९५९) * आस का पंछी (१९६१) * गंगा जमुना (१९६१) * नजराना (१९६१) * संगम (१९६४) * आम्रपाली (१९६६) * छोटी सी मुलाकात (१९६६) * ज्वेल थीफ (१९६७) * संघर्ष (१९६८) * गंवार (१९७०)। ■



माला सिन्हा

मादक और मासूम

माला सिन्हा ने एक साक्षात्कार में जीनत अमान और परवीन बॉबी जैसी अभिनेत्रियों की कटु आलोचना की क्योंकि वे मॉडल ज्यादा और अभिनेत्रियाँ कम हैं। जीनत और परवीन केवल सेक्स-प्रतीक हैं। यह अजीब बात है कि मालासिन्हा के प्रारंभिक काल में उसे भी केवल सैक्स-सिंबल ही माना गया था। शम्मीकपूर के साथ "दिल तेरा दीवाना" में माला ने वही किया था जिसका आरोप अब दूसरों पर लगा रही हैं। सचाई यह है माला ने जिस युग में फिल्मों में प्रवेश किया, उस युग के दर्शक नरगिस, मीना, और मधुबाला की गोधूलि से इतने प्रभावित थे, कि उन्हें माला छिछोरी ही लगी, परन्तु कालांतर में अपनी लगन और मेहनत से माला अव्वल दर्जे की सितारा अभिनेत्री बनीं। प्रारंभ से ही माला के शरीर में दर्शकों ने अद्भुत आकर्षण पाया। वह भूमिका के अनुरूप गरीब और गंभीर दिखते हुए भी अजीब सेक्स अपील लिए होती थी- उदाहरणार्थ **फिर सुबह होगी, 'परवरिश'** और **'मैं नशे में हूँ'**। 'फिर सुबह होगी' में राज़ कपूर ने माला के बारे में दर्शकों के मन की बात ही कही है। "फिर न कीजिए मेरी गुस्ताख निगाहों का गिला।"

माला सिन्हा ने देवआनंद के साथ कई रोमांटिक फिल्मों में काम किया परन्तु वह चोटी की सितारा बनी घरेलू वातावरण की फिल्मों में, जैसे 'धूल का फूल', 'आसरा', 'बहूरानी', 'गुमराह' इत्यादि। धर्मेन्द्र के साथ रामानंद सागर की "आँखें" में माला लोकप्रियता और अभिनय के शिखर पर थीं। मनोज कुमार की पहली बड़ी हिट फिल्म " हिमालय की गोद में" में माला सिन्हा ही छाई हुई थीं। राजेन्द्र कुमार के साथ माला ने बहुत फिल्मों में काम किया। 'गीत' उनकी आखरी फिल्म थी। माला सिन्हा की "जहाँआरा" असफल फिल्म थी परन्तु माला ने उच्च श्रेणी का अभिनय किया था। गुरुदत्त की 'प्यासा' में माला सहनायिका थी और वहीदा रहमान नायिका थीं। लेखक का प्रिय पात्र न होते हुए भी माला ने दर्शकों को प्रभावित किया।

किसी मजबूरी के कारण बेवफा हो जाने वाले पात्र के साथ माला ने हमेशा ही न्याय किया- चाहे "प्यासा" हो या "गुमराह"। "धूल का फूल" उसकी सर्वश्रेष्ठ भूमिका है।

माला सिन्हा की अभिनय क्षमता का सारा भार उसकी आँखों पर था जिसका भरपूर प्रयोग उसने किया। दर्शकों ने उसकी नरगिसी नजर पर दिल कुर्बान कर दिया था। माला की चाल ढाल और शरीर में अजीब-सी मादकता थी परन्तु चेहरे पर बच्चों की सी मासूमियत थी। इस बेमेल सम्मिश्रण ने लगभग दो दशक तक अपना जादू कायम रखा। माला ने बहुत लम्बे समय तक उम्र के असर से अपने को बचाए रखा परन्तु उम्र और आँकड़ों के पीछे भागने वाले उद्योग ने माला का साथ छोड़ दिया। माला ने भी माँ की भूमिकाएँ अपनाने से इंकार कर दिया। अब वह अपनी बेटी को फ़िल्मों में प्रवेश करा रही है।

● प्रमुख फिल्में: *हेमलेट (१९५४) *पैसा ही पैसा (१९५६) *प्यासा, एक गाँव की कहानी (१९५७) *फिर सुबह होगी (१९५८) *धूल का फूल (१९५९) *लव मैरेज (१९५९) *मैं नशे में हूँ, उजाला (१९५९) *धर्मपुत्र (१९६१) *अनपढ़, हरियाली और रास्ता (१९६२) *गुमराह (१९६३) *जहाँआरा (१९६४) *हिमालय की गोद में (१९६५) *आँखें (१९६८) *गीत (१९७०) *मर्यादा (१९७१) *छत्तीस घंटे (१९७४) *कर्मयोगी (१९७८) *आसमान (१९८४)।








परदे की परियाँ
खण्ड: तीन

१९६६-१९९०

- ☐ शबाना आजमी
- ☐ स्मिता पाटिल
- ☐ हेमा मालिनी
- ☐ दीप्ति नवल
- ☐ माधुरी दीक्षित
- ☐ मीनाक्षी शेषाद्रि

☐ फरहा ☐ सोनम ☐ संगीता बिजलानी ☐ श्रीदेवी
☐ अनुराधा पटेल ☐ पूनम ढिल्लो ☐ अमृतासिंह
☐ किमी काटकर ☐ जयाप्रदा ☐ शताब्दी राय
☐ रेखा ☐ राखी ☐ मौसमी ☐ ममता शंकर





स्वप्न सुंदरी : हेमा मालिनी

उषा चौकसे

वैजयंती माला ने डॉ. बाली से विवाह करके अभिनय से संन्यास ले लिया था। माला सिन्हा, साधना, आशापारेख भी अपनी पारी खेल चुकी थीं और फिल्म जगत में नायिकाओं का अभाव बढ़ता जा रहा था। दक्षिण के अनंतास्वामी ने एक तेलुगु फिल्म में नई लड़की हेमा मालिनी का एक नृत्य देखा था। लड़की की माँ जया चक्रवर्ती बहुत महत्वाकांक्षी थी। अनंतास्वामी ने महेश कौल, के. ए. अब्बास को अनुबंधित किया और इनके प्रभाव का प्रयोग करके राजकपूर को नायक के रूप में लिया। अनंतास्वामी ने हेमा (उम्र १६ वर्ष) और उसकी माँ से ये अनुबंध किया था कि पाँच वर्ष तक हेमा की आय का पचास प्रतिशत अनंतास्वामी को मिलेगा। इसलिए अनंतास्वामी ने विज्ञापन विशेषज्ञों की सलाह से अपनी फिल्म **सपनों का सौदागर** की नायिका हेमा के लिए प्रचार हेतु **स्वप्न सुंदरी हेमा** का नारा बुलंद किया। प्रचार की नीति सफल रही, हेमा का स्वागत हुआ।

प्रारंभ की फिल्मों में से केवल **लाल पत्थर** जिसमें हेमा सहनायिका थी, ने यह सिद्ध किया कि स्वप्न सुंदरी अभिनय भी कर सकती है। **जॉनी मेरा नाम** हेमा की पहली सफल फिल्म थी। विजय आनंद जैसे निष्णात निर्देशक ने हेमा को बहुत सुंदर ढग से प्रस्तुत किया और वैजयंती माला के जाने के बाद नंबर एक की नायिका के रिक्त स्थान पर हेमा विराजमान हुई। राजसी व्यक्तित्व की धनी हेमा भारतीय नायिकाओं की उस परंपरा में आती हैं जो वनमाला से प्रारंभ होकर बीना राय जैसी कड़ी के द्वारा हेमा तक पहुँचती है। अब तक हेमा को फिल्मों में २२ वर्ष हो चुके हैं और उसने अधिकतम सफल फिल्मों में कार्य किया परंतु आलोचकों ने उसके प्रयासों के साथ समुचित न्याय नहीं किया है। उसे केवल प्रथम श्रेणी की सितारा ही माना गया। उसे नरगिस, मीना और मधुबाला की श्रेणी की अभिनेत्री नहीं माना गया। यह हेमा का दुर्भाग्य है कि जब भी हेमा को ऐसी भूमिकाएँ मिलीं, जो उसे अमर 'सितारा अभिनेत्री' बना देती, वे असफल रहीं जैसे कि गुलजार की **मीरा** और कमाल अमरोही की **रजिया सुल्तान**। हेमा का चेहरा परियों जैसा है और डीलडौल राजकन्याओं जैसा। मीरा जैसे चरित्रों की जो छवि जनमानस में दूर तक पैठी है, उस छवि से हेमा का व्यक्तित्व मेल नहीं खाता। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए एक दूसरा उदाहरण है पृथ्वीराज कपूर का सिकंदर। असली सिकंदर पृथ्वीराज की तरह ६ फुट के ओजस्वी व्यक्ति नहीं थे परंतु परदे पर पृथ्वीराज द्वारा बनाई सिकंदर की छवि के विपरीत जाना संभव नहीं है। ठीक इसी तरह मीरा की स्थापित छवि में हेमा नहीं जमती। हेमा रजिया जरूर लगीं परंतु अन्य कारणों से फिल्म असफल रही।

◆◆◆



स्वप्न सुंदरी हेमा मालिनी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने भारतीय नारी की आदर्श छवि को कायम रखा। तेजी से बदलती फिल्मी दुनिया में दो दशक से अधिक तक एक जैसी लोकप्रियता बनाए रखना सिर्फ हेमा के लिए इसलिए संभव हो सका कि उसने अपनी अभिनेत्री को बहु-आयामी आकार दिए। सीता और गीता या शोले की बसंती में वह नटखट रही, तो मीरा, किनारा और खुशबू में धीर-गंभीर। जॉनी मेरा नाम में उतनी ही उत्तेजक भी। ऊँचा कद, कसा शरीर, बड़ी आँखें, गर्म मुस्कान और परंपरावादी नजरें हेमा को एक संपूर्ण स्त्री का दर्जा देते हैं।

हेमा मालिनी का सर्वाधिक लोकप्रिय चरित्र **शोले** की **बसंती** का है। हेमा ने बसंती के वाचाल चरित्र को अपने जीवंत अभिनय से अमर कर दिया। आलोचकों की मजबूरी यह है कि वे अमरता की मुहर केवल मदर इंडिया या छोटी बहू (साहब, बीबी, गुलाम) जैसी महाकाव्यात्मक भूमिकाओं पर ही लगाते हैं। बसंती उनके लिए हल्का चरित्र है। हेमा की एक महत्वपूर्ण फिल्म है- सीता और गीता जिसमें उसने दोहरी भूमिकाओं को बहुत निपुणता से निभाया है। अभिनय की तकनीक पर हेमा की पकड़ बहुत मजबूत है। उसकी सबसे बड़ी सफलता यह रही कि वह कभी किसी छवि की गुलाम नहीं बनी। उसने हर प्रकार की भूमिकाएँ स्वीकार कीं और बहुत ही पेशेवर तरीके से हर भूमिका को निभाने का प्रयास

किया। हेमा का पेशेवर अभिनेत्री का अंदाज टेनिस के पेशेवर खिलाड़ियों की तरह है। हेमा भारतीय सिनेमा की नवरातिलोवा हैं। हेमा ने भूमिकाओं के चयन में साहस भी दिखाया है। राजेन्द्रसिंह बेदी के उपन्यास **एक चादर मैली सी** की नायिका बनने के लिए कोई दूसरी अभिनेत्री तैयार नहीं थी। हेमा ने घोर परिश्रम करके रानो की भूमिका निबाही है। रानो हेमा की मदर इंडिया हो सकती थी परंतु फिल्म अच्छी होने के बावजूद असफल रही। अरुणा राजे की रिहाई भी हेमा के साहस का प्रमाण है। हेमा से ज्यादा विविध प्रकार की भूमिकाएँ कम ही अभिनेत्रियों ने निभाई है। वह सीतापुर की गीता में डाकू बनी हैं तो गुलजार की किनारा और खुशबू भी की है। महेश भट्ट की जामिन और मार्ग में भी काम कर रही हैं।

हेमा सबसे लंबे समय तक चोटी पर बनी रहने वाली अभिनेत्री है। इसी दौर में दूसरी अभिनेत्रियों ने अंग प्रदर्शन करके लोकप्रियता अर्जित करने के प्रयास किए। हेमा ने २५ वर्षों में कभी भी अपने शरीर का प्रदर्शन नहीं किया। **व्यक्तिगत जीवन का यह संयम ही हेमा के अभिनय की आत्मा है। हर प्रकार की भूमिका में उसने अत्यंत नपे-तुले अंदाज में भावाभिव्यक्ति की है।** कहीं भी अतिरेक नहीं है। हेमा के युग में महबूब खान, गुरुदत्त, बिमल राय नहीं थे जो उसकी अभिनय प्रतिभा को माँजते। निर्देशकों के अभाव के कारण ही हेमा को लोग प्रथम श्रेणी की सितारा परंतु दूसरे दर्जे की अभिनय प्रतिभा मानते रहे। विजय आनंद की तेरे मेरे सपने में हेमा ने सशक्त भूमिका निभाई। रमेश सिप्पी के निर्देशन में 'शोले और 'सीता और गीता' में हेमा का अभिनय उच्च श्रेणी का था। पाँच वर्ष की आयु से भरत नाट्यम करने वाली हेमा को अभिनेत्री नहीं मानना आलोचकों की ज्यादती है।

हेमा ने जिस युग में काम किया वह एक्शन प्रधान बहुसितारा फिल्मों का समय रहा जिसमें नायिका को चमकने का बहुत कम अवसर रहा। दरअसल हिंदी फिल्मों के सबसे बुरे समय में हेमा अभिनेत्री बनी। मार-धाड़ और फूहड़ता के जमाने में हेमा ने अपने लिए एक सम्मानजनक स्थान बनाए रखा, वह भी २२ वर्षों तक। ये कोई कम उपलब्धि नहीं। हिंसा के इस भयावह दौर में स्वप्न सुंदरी हेमा ने अपनी मौजूदगी से दर्शकों को कुछ राहत दी। उसने अपने जमाने के सभी नायकों के साथ सफल फिल्में दीं। हेमा ने बहुत सहज और स्वाभाविक अभिनय करके दर्शकों के साथ आत्मीय तादात्म्य बनाए रखा। उसके चेहरे पर कभी किसी निश्चित छवि की मोहर नहीं लगी। हास्य, गंभीर और नाटकीय सभी प्रकार की भूमिकाओं को अच्छे ढंग से किया। चोटी की सितारा होते हुए भी सहनायिका की दो भूमिकाओं (लाल पत्थर, तेरे मेरे सपने) में जबर्दस्त काम किया।

हेमा गरिमामय सितारा अभिनेत्रियों की परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी रही हैं।

प्रमुख फिल्में: *सपनों का सौदागर (१९६८) *अभिनेत्री (१९७०) *शराफत (१९७०) *जॉनी मेरा नाम (१९७०) *अंदाज (१९७७) *तेरे मेरे सपने (१९७१) *सीता और गीता (१९७२) *राजा जानी (१९७२) *जुगनू (१९७३) *जोशीला (१९७४) *छुपा रुस्तम (१९७५) *शोले (१९७५) *त्रिशूल (१९७७) *बर्निग ट्रेन (१९७८) *आजाद (१९७८) *दिल्लगी (१९७८) *लाल पत्थर (१९७९) *मीरा (१९७९) *किनारा (१९८०) *खुशबू (१९८०) *क्रांति (१९८०) *नसीब (१९८१) *देशप्रेमी (१९८२) *सत्ते पे सत्ता (१९८२) *नास्तिक (१९८३) *रजिया सुल्तान (१९८४) *एक चादर मैली सी (१९८७) *संतोष (१९८९) *रिहाई (१९९०)। ■

फिल्मकार महेश भट्ट की निर्माणाधीन फिल्म मार्ग में परेश रावल, हेमा मालिनी और महेश आनंद



मौसमी चटर्जी

शुद्ध भारतीय नारी

बालिका-वधू मौसमी चटर्जी आज भी बालिग नहीं होना चाहतीं। वही सिर पर पल्लू, भाल पर बड़ी-सी बिंदिया उन्हें पसंद है। वह चाहती हैं कि उनका ड्रायवर या लाइटमेन टिकट खरीदकर उन्हें नाचते देखे, मगर फिल्म के सेट पर नहीं। संगीतकार हेमंतकुमार की बहू मौसमी से अंतरंग बातचीत रिंकी भट्टाचार्य द्वारा

फिल्मों के लिए तुम्हें कैसे खोजा गया इसकी कहानी सुनाइए।

टालीगंज में हमारा घर निर्देशक तरुण मजुमदार तथा न्यू थिएटर्स के पास ही था। स्कूल जाते हुए मैं उसके सामने से ही गुजरती थी। कई बार भीतर जाकर शूटिंग देखने की मेरी इच्छा होती थी। एक-दो बार मैं गई भी। एक बार जब मैं वहाँ से निकल रही थी तो चौकीदार मेरे पीछे दौड़ा आया–"रुको, रुको, तुमको हमारा साहब बुलाता है, खोकी (बच्ची)।" मैने एक साँवले सफेद कुर्ता तथा चश्मा पहने व्यक्ति को देखकर उससे पूछा, 'वो कौन हैं?' उसने कहा, 'डाइरेक्टर साब, तरुण मजुमदार।' मैंने जरा अकड़कर कहा "वो बुलाते हैं, तो उनको इधर बुलाओ।"

बस यही चीज तरुण दा को जँच गई "बालिका वधू के लिए मुझे ऐसी ही लड़की चाहिए।" उन्होंने मेरा पता मुझसे ले लिया। मेरे पिता ने साफ इंकार कर दिया। हम लोग सब घर पर पुराने विचारों के हैं और हमारे यहाँ किसी ने कभी फिल्मों में काम नहीं किया। बाद में अभिनेत्री संध्या रॉय (तरुण की पत्नी) ने मेरे पिता को यह कहते हुए समझा लिया कि हर लाइन में अच्छे और बुरे लोग होते हैं।

उस समय तुम्हारी उम्र क्या थी?

मैं बारह साल की थी जब फिल्म शुरू हुई। एक वर्ष वह विलंब से शुरू हुई और खत्म होते समय मैं तेरह की हो चुकी थी।

'बालिका वधू' को बेशक तत्काल सफलता मिली और तुम रातों-रात स्टार बन गई।

हाँ। उसने रजत, स्वर्ण तथा प्लेटिनम जुबलियाँ मनाईं। फिल्म फेयर पुरस्कार मिला तथा उसे रूस भी भेजा गया। उसके संगीतकार मेरे श्वसुर **हेमंत कुमार मुखर्जी** थे। इस परिवार से मेरा परिचय तभी से हुआ।

तुम्हारी पढ़ाई का क्या हुआ? क्या तुमने उसे अलविदा कह दी?

नहीं। मैंने प्राइवेट तौर पर पढ़ाई की। फिल्म को इतनी ज्यादा लोकप्रियता मिली थी कि सामान्य रूप से स्कूल जाना बहुत मुश्किल था। मैं तो घर से बाहर तक नहीं निकल पाती थी। दुर्गा पूजा के लिए मुझे बंबई आना पड़ा, जहाँ मुझे अभी लोग जानते नहीं थे।

क्या तुम्हारी पहली तथा बाद की फिल्मों में बहुत अंतराल था?

ज्यादा नहीं। जो कुछ प्रस्ताव आए उनमें से मैंने अजय कार की 'परिणीता', तपन सिन्हा की 'एखोनी' तथा मेरे भावी ससुर की 'अनिदिता' स्वीकार कर ली। बंबई के कई बड़े प्रस्ताव मेरे पिता ने ठुकरा दिए। राजकपूर **'बॉबी'** की तथा ऋषिकेश मुखर्जी **'गुड्डी'** की योजना बना रहे थे। वे लोग काफी नाराज भी हुए।

बंबई और हिंदी फिल्मों में तुम कैसे आईं?

बाबू के साथ मेरी शादी के कारण। शादी के समय मेरी उम्र १६ साल की थी और मैं यहीं बस गई।

असली जीवन में भी तुम बालिका वधू बन गई...। क्या शादी से तुम्हारा काम प्रभावित हुआ?

नहीं। बल्कि मेरे ससुर, जो कि मेरे लिए सब-कुछ थे, ने शुरू में ही कह दिया था, "तुम्हें आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना होगा। मेरे कंधों पर बहुत जिम्मेदारियाँ हैं।" उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि तुममें काफी प्रतिभा है और मेरे मित्र शक्ति सामंत, राज खोसला आदि चाहते हैं कि तुम काम करो। तो फिर क्या हर्ज है? इस तरह मैंने हिंदी फिल्मों में काम करना शुरू कर दिया। मैंने शक्ति सामंत की **'अनुराग'** तथा राज खोसला की 'कच्चे धागे' में भूमिकाएँ कीं। दोनों फिल्में सफल रहीं और मैं बीस साल पहले इस उद्योग में जम गई।

अब इतने वर्षों बाद तुम्हें अपना 'बालिका वधू' का अभिनय कैसा लगता है?

सच बात तो यह है कि वह वास्तव में निर्देशक की उपलब्धि थी। मुझे खुद पता नहीं मैं वह कैसे कर गई। मैं इतनी छोटी थी, मुझे याद भी नहीं है। मगर हर कोई कहता था, तुम्हें ईश्वर की देन है। मुझसे पूछिए, कुछ पता ही नहीं। मैं वे कुछ खास



भाव कैसे प्रदर्शित कर गई, मुझे ही नहीं मालूम। निर्देशक कहता था, 'इधर देखो, ऐसा करो', मैं सुनती थी और अपने आप वैसा ही हो जाता था। मुझे जीवन का कोई अनुभव नहीं था। कोई परिपक्वता नहीं थी। मगर सब ठीक-ठाक हो गया।

फिल्म में एक दृश्य कोणार्क मंदिर का था। लड़की बड़ी हो रही है और उसे स्त्री-पुरुष संबंधों का अहसास होने लगता है। न तो मैंने मंदिर देखा था, न वे प्रतिमाएँ। निर्देशक मुझसे कहता, "लंबी साँस लो, होंठ खोलो और इस तरह देखो..." और उसे वह भाव मिल जाते थे जिनकी उसे जरूरत होती थी। सारा श्रेय तरुण मजुमदार को जाता है। उनकी पत्नी संध्या रॉय मुझे प्रशिक्षण देती थीं। वही मुझे संवादों की रिहर्सल भी करवाती थीं। इस तरह हम लोगों ने मिलकर सब-कुछ किया।

तुम्हारे ख्याल से क्या तुम्हारा नौसिखुआ होना फायदे का रहा है? उस फिल्म के अनुभव से तुम्हें खुद को सँवारने में मदद मिली?

हाँ, हाँ। मैं शुरू से ही उन्मुक्त थी। मुझे कैमरे से डर कभी नहीं लगा। लोगों के सामने अभिनय करने में भी मुझे कोई दिक्कत नहीं थी। मैं अपने प्रति कॉन्शस नहीं थी...। इससे बड़ी मदद मिलती है। शायद, फिल्में मेरी जिंदगी का एक हिस्सा ही बन गई हैं, मैं उन्हें बहुत गंभीरता से नहीं ले पाती। कलकत्ता जाने पर मैं वहाँ के स्टूडियो वैसे ही पहुँच जाती हूँ जैसे वे मेरा घर हों। मैं वहाँ ऐसे घूमती हूँ जैसे वहाँ के लोग मेरे रिश्तेदार हों।

बंगाल में पूर्वोक्त फिल्मों के अलावा भी किन्हीं फिल्मों में तुमसे काम किया है?

उत्तम कुमार के साथ मैंने एक व्यावसायिक फिल्म 'ओगो बोधु सुंदरी' में काम किया और मेरे ख्याल से मेरा अभिनय 'बालिका वधू' जैसा ही बढ़िया था। उसमें वैसी ही गर्मजोशी और सहजता थी। 'परिणीता' की मेरी भूमिका ठीक उल्टी थी–शांत और निष्क्रिय। 'अनिदिता' भी अच्छी फिल्म थी मगर वह रिलीज ही नहीं हुई। हम लोग उसे टेलीविजन पर देखते हैं। मैंने उसमें एक अनाथ की भूमिका की थी। उत्तम कुमार के साथ मेरी फिल्म **'माय फेयर लेडी'** पर आधारित थी। इस फिल्म के कई भारतीय संस्करण बने लेकिन टिकट-खिड़की पर सिर्फ **'ओगो बोधु**

प्रेमानारायण
नायिका की सहेली

सन् १९७१-७२ में फेमिना द्वारा ब्यूटी क्वीन का खिताब पाने वाली **प्रेमा नारायण** का यह सौभाग्य है कि उन्होंने अपना फिल्मी केरियर निर्देशक महेश भट्ट की फिल्म **मंजिलें और भी हैं** से प्रारंभ किया। उसे जीनत अमान जैसी होने की संज्ञा दी जाती है। मंजिलें और भी हैं के बाद उन्हें कई निर्माताओं ने साइन किया, किन्तु दुर्भाग्य से अधिकतर फिल्में सेंसर के जाल में फँस कर प्रदर्शित ही नहीं हो पाईं। जो फिल्में रिलीज हुईं, वे एक-एक कर फ्लॉप होती गईं। इस प्रकार वे 'बी ग्रेड' की फिल्मों में अपना स्थान तलाशने लगीं। अंग से अंग लगा ले, जब अंधेरा होता है, माय फ्रेंड जैसी अन्य फिल्मों में काम किया, परंतु इनमें कोई फिल्म हिट नहीं हुई। जब फिल्में लगातार असफल होने लगीं तो प्रेमा ने सोचा इस प्रकार की फिल्मों में हीरोइन बनने की अपेक्षा किन्हीं चुनिंदा फिल्मकारों की फिल्म में विशेष प्रकार की भूमिकाएँ करना ज्यादा अच्छा है। इसीलिए शक्ति सामंत की 'अमानुष' फिल्म में शर्मिला टैगोर और उत्तमकुमार के साथ चरित्र अभिनेत्री की भूमिका की। इसमें वे एक आदिवासी लड़की बनी थीं। इस भूमिका ने उनके केरियर के दरवाजे खोल दिए। हिंदी फिल्मों के कई अच्छे प्रस्ताव तो मिले ही साथ में बंगाली फिल्मों में भी अवसर मिला। निर्माता असीम सरकार ने उत्तम कुमार के साथ राजवंश फिल्म में लिया। तपन सिन्हा ने 'ऐक-जे छिलो' में अनुबंधित किया। निर्देशक दीपंकर ने अपनी फिल्म 'कोविता' में आधुनिक स्वतंत्र विचारों वाली लड़की की भूमिका दी। इनके अतिरिक्त अन्य कई बंगाली फिल्में भी प्रेमा ने की।

हिंदी फिल्मों में छोटे-मोटे रोल करने को वे बुरा नहीं मानतीं। उनकी नजरों में रोल छोटे या बड़े के बजाए अधिक महत्वपूर्ण होता है कि भूमिका कैसी है, और आप उसे कैसे निभाते हैं? इसीलिए उन्होंने 'पोंगा पंडित' और 'आनंद आश्रम' फिल्में कीं। एक बार तो प्रेमा ने सोच लिया था कि फिल्मों से अलविदा कहकर शादी करके आराम से जिंदगी गुजारना चाहिए, परंतु वे ऐसा न कर पाईं। फिल्मी दुनिया छोड़ देना उनके लिए काफी कठिन था।

प्रेमा फिल्मों की राजनीति से काफी दुखी रहती हैं। उन्हें मस्काबाजी पसंद नहीं। उनके अनुसार यदि आप में प्रतिभा है तो अच्छे निर्माता अच्छी भूमिकाओं के प्रस्ताव आपको अवश्य देंगे। उन्होंने कई फिल्मों में अभिनय किया और अच्छी एवं मुख्य भूमिकाएँ भी निभाईं। रामानंद सागर की प्रेमबंधन, बासु चटर्जी की दो लड़के दोनों कड़के, मानिक चटर्जी की घरा। 'घर' फिल्म में अपनी भूमिका से वे काफी संतुष्ट हैं। उन्हें इससे संतुष्टि इसलिए मिली कि गुलजार ने कुछ दिनों तक 'घर' की शूटिंग करवाई, क्योंकि इस फिल्म के निर्देशक मानिक चटर्जी बीमार थे और गुलजार उनके पसंदीदा निर्माता हैं। प्रेमानारायण को इसका काफी फख्र है कि उन्हें ज्यादातर अच्छे निर्माता- निर्देशकों की फिल्मों में काम करने का अवसर मिला। 'झूठी' फिल्म में रेखा, राजबब्बर, देवेन वर्मा के साथ उनकी भूमिका को काफी सराहा गया था।

सुंदरी' को ही सफलता मिली। वह कॉमेडी भूमिका थी और **परिणीता** के साथ उसे देखने पर विश्वास ही नहीं होता कि दोनों भूमिकाएँ एक ही अभिनेत्री ने की हैं।

स्वाभाविकता की दृष्टि से 'बालिका वधू' के समकक्ष तुम हिंदी की अपनी किस भूमिका को मानती हो?

बड़ी आसानी से **'रोटी, कपड़ा और मकान'** की मेरी भूमिका उसी वर्ग में आती है। मैंने उसमें अन्य कलाकारों से कई दृश्य चुराए हैं। मनोज, शशि कपूर, जीनत अमान तथा प्रेमनाथ में से सबसे अच्छा काम मेरा और प्रेमनाथ का ही था। मैंने इसमें तुलसी नामक पात्र का अभिनय किया था। इसके बाद मैं जहाँ भी जाती थी लोग मुझे तुलसी कहकर बुलाते थे। बल्कि, 'अनुराग' भी अच्छी फिल्म थी। यदि कहीं मेरी कार रुकती थी तो लोग बोल उठते थे ''वह अंधी है।'' मेरी भूमिका इतनी वास्तविक थी कि मुझे उक्त टिप्पणी सुनकर चिड़चिड़ाहट होती थी।

कलकत्ता से यहाँ आने के बाद तुम्हें कोई कठिनाई तो नहीं हुई?

शुरू में जरूर हुई। मुझे हिंदी नहीं आती थी। अँगरेजी में भी मुझे असुविधा होती थी। 'जाता है', 'जाती है' में तो मुझसे अब भी भूल हो जाती है। यहाँ मेरे कोई मित्र नहीं थे। इसके अलावा मैं शादीशुदा औरत थी। अपने केरियर पर मैं पचास प्रतिशत भी ध्यान नहीं दे पाई। मेरा पारिवारिक जीवन मेरे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण था। काम की खातिर मैं अपने रविवारों का बलिदान नहीं करती थी। इन सब बातों का मेरे केरियर पर असर पड़ा। मगर मुझे कोई शिकायत नहीं है। मैंने इससे ज्यादा कुछ चाहा भी नहीं। मुझे कोई 'कॉम्प्लेक्स' नहीं है। यदि मैं गलत हिंदी बोलती हूँ तो आप सुधार सकते हैं। मेरी बेटी तो सौ लोगों के सामने मेरी गलती सुधार देती है। मैं बुरा नहीं मानती। वह मेरी भाषा नहीं है।

तुम अपनी फिल्मों का चुनाव कैसे करती हो? क्या तुम पटकथा पढ़कर करती हो, ''ठीक है यह मेरे जैसा पात्र है, यह मैं करूँगी'' और ''यह मैं नहीं हूँ, यह मैं नहीं करूँगी?''

मेरी अधिकांश फिल्में मैंने उन लोगों के साथ की हैं जिन्हें मैं जानती हूँ...। जिनके साथ मेरे अच्छे संबंध हैं। मसलन राज खोसला के साथ मैंने तीन फिल्में 'कच्चे धागे', 'दासी' और 'दो प्रेमी' की।

यह तीनों चरित्र कैसे थे?

पहली फिल्म में (विनोद खन्ना, कबीर बेदी) मैंने सोलह साल की एक भोली-भाली ग्रामीण बाला की भूमिका की। वह मेरे उपयुक्त थी। 'दासी' (रेखा-संजीव कुमार) में मैं सब कुछ झेलने वाली पत्नी थी। 'दासी' की नायिका भी अनाथ थी। वह प्यार करती है लेकिन उसे मजबूरन एक नेत्रहीन से शादी करनी पड़ती है। जब उसका प्रेमी वापस लौटता है तो स्थिति उलझ जाती है। उसे अपने प्रेमी की दासी बनकर रहना पड़ता है। 'दो प्रेमी' तो सीधी-सादी प्रेम कहानी थी जिसमें अमीर लड़की, गरीब लड़का, मिलते-बिछुड़ते रहते हैं।

तुम्हें दिक्कत कैसी भूमिकाएँ करने में होती है?

जब भी मुझे नृत्य-प्रधान या शरीर-प्रदर्शन करने वाली भूमिकाएँ मिलती हैं, मैं असहज हो जाती हूँ। शायद यह मेरी दकियानूस पृष्ठभूमि के कारण हो। मैं घर पर या किसी पार्टी में मजे से नृत्य कर सकती हूँ मगर फिल्म के सेट पर नहीं। मुझे लगता है लाइटमेन या मेरा ड्राइवर सब देख रहा है। तीन-चार रुपए की टिकट खरीदकर वे यह सब देख सकते हैं मगर मैं चाहती हूँ कि वे मेरे साथ सम्मानपूर्वक बर्ताव करें।

नृत्य या अंग प्रदर्शन करने से इंकार करने का क्या तुम्हारे केरियर पर कोई विपरीत प्रभाव पड़ा?

हाँ। मैं आज भी 'स्वीमिंग कॉस्ट्यूम' पहनने वाले दृश्य करने से इंकार कर देती हूँ। निर्मातागण हमसे अशोभनीय दृश्य करवाने के लिए कई तरह की तिकड़में करते हैं और सोचते हैं हम कुछ नहीं कर सकते। **'चंबल की कसम'** में उन लोगों ने मेरा क्लोज-अप लिया और उसे किसी दूसरे जूनियर आर्टिस्ट की खुली पीठ से जोड़ दिया। मेरे जूनियर कलाकारों के साथ अच्छे संबंध रहते हैं। मैं उनमें उठती-बैठती हूँ। तो, एक लड़की मेरे पास आई और उसने उक्त चालबाजी के बारे में बतला दिया। मैंने कथित निर्माता को बुलाया और उसे कह दिया कि यदि उसने वह दृश्य नहीं हटाया तो उसे हर्जाना भुगतना पड़ेगा। वे मान गए। एक अन्य फिल्म में मेरा पहला परिचय ही स्विमिंग-पूल में करवाया जाता है। मगर मैंने साफ कह दिया कि मैं स्विम-सूट नहीं पहनूँगी। वे भी मान गए लेकिन बाद में उन्होंने मुझे अपनी किसी फिल्म में नहीं लिया।

तुम अपनी कैसी छवि दर्शकों के सामने प्रस्तुत करना चाहती हो?

मैं पूरी तरह ढँकी-सँवरी, साड़ी-बिंदिया-धारी भारतीय नारी का 'लुक' पसंद करती हूँ। अब मैं भाभी, गृहिणी, पत्नी जैसी परिपक्व भूमिकाएँ कर रही हूँ, हालाँकि कुछ लोग अब भी मानते हैं कि मैं नायकों के साथ नाच-गा सकती हूँ। मगर मैं तो सर पर पल्लू लिए बड़ी सी बिंदी लगाए नारी ही दिखना चाहती हूँ। मैंने साड़ी पंद्रह वर्ष की उम्र से ही पहननी शुरू कर दी थी। अतः वही मुझे स्वाभाविक लगती है। एक बार उन लोगों ने मुझसे घाघरा पहनने को कहा तो मैं रोने लगी। मेरे पति भागे-भागे आए कि पता नहीं क्या गंभीर बात हो गई।

तुम्हारी सभी भूमिकाओं में से तुम्हारी सबसे प्रिय पाँच भूमिकाएँ बतला दो।

'प्यासा सावन' में मुझे चुपचाप सब कुछ सहने वाली बीवी का रोल पसंद है। 'स्वर्ग-नर्क' भी ठीक थी। 'इतनी सी बात' चली तो ज्यादा नहीं लेकिन संजीव कुमार के साथ काम करना अच्छा लगा। 'घर एक मंदिर' तथा 'रोटी, कपड़ा और मकान' भी अच्छी थीं।

आपकी लोकप्रियता का कारण क्या रहा?

मेरे प्रशंसक लिखते हैं कि उन्हें मेरी मासूमियत और ठेठ भारतीय नारी का मिला-जुला रूप बहुत पसंद है। एक ऐसी लड़की जिसे हर कोई अपनी बहू, भाभी मानकर उसकी रक्षा करना चाहता है। मैं पत्नी, प्रेमिका, बेटी आदि की भूमिकाएँ अच्छी तरह से कर पाती हूँ। 'घर एक मंदिर' में मेरी ऐसी ही भूमिका थी।

क्या तुमने कभी खलनायिका की भूमिका भी की है?

नहीं। मगर मुझे करना अच्छा लगेगा। 'स्वर्ग-नर्क' में मैंने प्रति-नायिका की भूमिका की थी। गुलजार की 'अंगूर' में बुद्धू सी पत्नी की अपनी भूमिका भी मुझे पसंद है।

तुम्हारा केरियर इस समय कैसा चल रहा है?

ऋषिकेश मुखर्जी के साथ मैं एक टी.वी. सीरियल कर रही हूँ। वह मेरा अंतिम काम होगा। इस वर्ष मैं सब कुछ समेटकर निवृत्त हो जाना चाहती हूँ। मैंने काफी कुछ हासिल कर लिया है। जैसी फिल्में आजकल बन रही हैं, लगता है किसी को अपना कुछ काम करते नहीं आता। अब फिल्मों में वक्त बर्बाद करने के बजाए मैं सितार बजाना या समाज सेवा करना पसंद करूँगी। ■



लोकप्रिय जोड़ीः संजीव कुमार के साथ मौसमी चटर्जी

उर्वशी रेहाना सुल्तान की

पहली और आखिरी दस्तक



रेहाना सुल्तान ऐसे कट्टर मध्यमवर्गीय मुस्लिम परिवार से फिल्मों में आई थी, जहाँ पहले वालिद फिल्म देखते थे, बाद में बीवी-बच्चों को इजाजत मिलती थी। 'दस्तक' फिल्म में अभिनय का सर्वोत्तम उर्वशी अवार्ड तो रेहाना को मिल गया, मगर बाद में सपाट चेहरे वाले नायक ही उसे ले डूबे।

◆◆◆

चेतना और **दस्तक** जैसी फिल्मों की सफलता से रातों-रात स्टार बनी **रेहाना सुल्तान** पुणे के फिल्म और टेलीविजन संस्थान से डिप्लोमा लेकर बंबई आई थीं। 'दस्तक' फिल्म उन्हें पहले मिली थी, मगर बाबूराम इशारा ने 'चेतना' पहले शुरू कर पूर्ण कर ली। 'चेतना' की बेबाक भूमिका तथा उत्तेजक दृश्यों तथा संवादों ने रेहाना को जहाँ चर्चा का विषय बना दिया, वहीं **दस्तक की अपनी संवेदनशील भूमिका के कारण उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय उर्वशी पुरस्कार मिला** और वे एक अच्छी अभिनेत्री के रूप में भी स्वीकार ली गईं।

लेकिन रेहाना की कला समय से पहले ही चुक गई। उनके खुद के हिसाब से इसका मुख्य कारण यह था कि 'चेतना' के बाद निर्माता उसके पास वैसी ही भूमिकाओं के प्रस्ताव लेकर आने लगे। "मैं एक मध्यमवर्गीय मुस्लिम परिवार की लड़की थी, जहाँ लड़कियों के लिए फिल्में देखना तक आपत्तिजनक माना जाता है। हमारे वालिद पहले फिल्म देखकर आते थे और उसके बाद यदि वह उन्हें ठीक लगती थी तो उसे हमें देखने दिया जाता था। इसी पृष्ठभूमि के कारण मैंने तय किया कि अब मैं अच्छी भूमिकाएँ ही करूँगी।" रेहाना कहती हैं, "इससे निर्माता नाराज हो गए। उन्हें हर फिल्म में चेतना वाली रेहाना चाहिए थी। लेकिन मैं बहुत महत्वाकांक्षी नहीं थी। पैसे का भी मुझे बहुत लालच नहीं था। मात्र विविधता की खातिर मैंने **हम रहे न हम** में खलनायिका की भूमिका की थी। इस पात्र के लिए पैसा ही सब कुछ था।" मगर स्वभाव से रेहाना नकारात्मक भूमिकाएँ पसंद नहीं करतीं।

फिल्मों में आने के पहले वकील बनने की इच्छुक रेहाना ने फिल्मों में सन् १९७१ में प्रवेश किया तथा 'चेतना' और 'दस्तक' के अलावा 'मन तेरा, तन मेरा', 'सवेरा', 'हार-जीत', 'तन्हाई' तथा 'बड़ा कबूतर' जैसी फिल्मों में काम करते हुए सन् १९८३ में अपने निर्देशक बी.आर. इशारा के साथ शादी की और अब कमोबेश एक गृहिणी का संतुष्ट जीवन जी रही हैं।

रेहाना और जया भादुड़ी लगभग एक ही समय क्रमश: 'चेतना' तथा 'गुड्डी' के साथ ही फिल्म आकाश पर चमकीं, लेकिन रेहाना को तुलनात्मक रूप से कम सफलता मिलने का एक कारण यह भी था कि उन्होंने कुछ बहुत ही महत्वहीन नायकों के साथ फिल्में स्वीकार कर लीं। बल्कि कुछ खबरों के अनुसार सफलता के पहले दौर में उन्होंने बड़े नायकों के साथ फिल्में करने से यह कहते हुए इंकार कर दिया कि उनमें नायिका के लिए करने को कुछ नहीं रहता। 'चेतना', 'हार-जीत' और 'तन्हाई' में अनिल धवन जैसे सपाट चेहरे वाले नायक थे। 'सवेरा' के साजिद खान तथा किरण कुमार में भी फिल्म को 'हिट' बनाने की कूबत नहीं थी। 'बड़ा कबूतर' के निखिलेश को कोई जानता ही नहीं था कि वह कौन है? 'प्रेम परबत' (सतीश कौल) तथा 'दिल की राहें' (राकेश पांडे) वगैरह वैसे ठीक थे, लेकिन रेहाना यह भूल गईं कि कैरियर के हिसाब से चोटी के नायकों के साथ फिल्मों में आने से मदद मिलती है। बाबूराम इशारा के सनसनीखेज फिल्मी 'आइडियाओं' का खजाना जल्दी ही चुक गया और उसके साथ ही रेहाना का फिल्मी कैरियर भी। **सज्जो रानी**, 'किस्सा कुर्सी का' तथा 'टिंकू' जैसी महत्वहीन फिल्मों के साथ ही इस प्रतिभाशाली अभिनेत्री के कैरियर पर असमय ही विराम लग गया। ■



सुहासिनी

सिनेमाटोग्राफर अभिनेत्री

कमल हसन की भतीजी और निर्माता-निर्देशक-अभिनेता चारू हसन की बिटिया का पहला शौक था सिनेमाटोग्राफर बनना। वह बन भी गई। लेकिन, तकदीर ने अभिनेत्री बनने का प्रस्ताव रखा और पहली ही फिल्म की बेहद प्रशंसा हुई तब सुहासिनी ने सोचा, अभिनेत्री बने रहने में भी बुराई क्या है!

◆◆◆

साँवली-सलोनी **सुहासिनी** तमिल फिल्मों की लोकप्रिय नायिका है। उसकी प्रतिभा की प्रशंसा सर्वत्र होती है। १९८५ में उसे **सिंधु भैरवी** में यादगार भूमिका निभाने के लिए सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय अवार्ड मिला था। उनकी पहली फिल्म निन्जाथई किल्लाथे थी। इस फिल्म में उन्होंने एक ऐसी किशोरी की भूमिका निभाई थी जो एक मोटर मैकेनिक से प्रेम करने लगती है, लेकिन उसका विवाह एक धनाढ्य अधिकारी से होता है। फिल्म सुपर हिट हुई थी। उम्मीद थी कि इस फिल्म के कारण सुहासिनी को १९८१ का सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय अवार्ड मिलेगा, लेकिन यह अवार्ड स्व. स्मिता पाटिल को "चक्र" के लिए प्राप्त हुआ।

वैसे सुहासिनी अभिनेत्री बनने की कतई इच्छुक नहीं थी। उनका बचपन फिल्मी माहौल में बीता। उनके चाचा **कमल हसन** एक प्रसिद्ध अभिनेता हैं और पिता **चारू हासन** निर्माता-निर्देशक के अलावा चरित्र अभिनेता भी हैं। इसके बावजूद सुहासिनी अभिनय की ओर आकर्षित नहीं हुई। वे फोटोग्राफर बनना चाहती

थीं, इसलिए उन्होंने पुणे फिल्म इंस्टीटयूट में "सिनेमाटोग्राफी" के लिए आवेदन किया था। निर्धारित उम्र से छोटी होने के कारण आवेदन खारिज कर दिया गया। लेकिन सुहासिनी इससे निराश नहीं हुई, अपितु मद्रास फिल्म इंस्टीटयूट से उन्होंने सिनेमाटोग्राफी का डिप्लोमा किया। डिप्लोमा लेने के बाद सुहासिनी ने कई सालों तक भारत के मशहूर कैमरामैन अशोक कुमार की सहायक के बतौर कार्य किया।

उनके साथ उन्होंने कई फिल्में भी कीं। सुहासिनी कहती हैं कि सिनेमाटोग्राफी में अभी भी पुरुषों का वर्चस्व है, लेकिन निर्देशक महेंद्रन की दो फिल्में "उथीरीपुकल" और "जानी" में कैमरे के पीछे कार्य करने में काफी आनंद आया।

कैमरे के पीछे से कैमरे के सामने सुहासिनी का आगमन अप्रत्याशित रूप से हुआ। निर्देशक महेंद्रन अपनी नई फिल्म में पद्मिनी कोल्हापुरे को नायिका के रूप में अनुबंधित करने के इच्छुक थे, लेकिन पद्मिनी से उनकी शूटिंग की तारीखों के बारे में तालमेल नहीं बैठा। अंततः उन्होंने सुहासिनी को अभिनय के लिए "ऑफर" दिया। सुहासिनी ने इंकार कर दिया। लेकिन चाचा कमल हसन के आग्रह पर स्वीकृति दे दी। इस प्रकार फिल्मी जीवन की शुरूआत हुई।

वे कहती हैं-"शायद मैं एक ही फिल्म करके अभिनय छोड़ देती, लेकिन पहली ही फिल्म की इतनी प्रशंसा हुई कि मुझे राष्ट्रीय अवार्ड मिलते-मिलते रह गया। जब मैंने देखा कि लोग मेरी प्रशंसा कर रहे हैं और मैंने कोई खराब कार्य भी नहीं किया है तो मैं अभिनय को बरकरार रखने की इच्छुक हो गई।" चाचा कमल हसन और पिताजी ने उन्हें और भी प्रोत्साहित किया। और फिल्में करते-करते सुहासिनी एक दिन स्थापित अभिनेत्री बन गई। लेकिन अभी भी सिनेमाटोग्राफी उनकी पहली पसंद है।

सुहासिनी ने अभिनय जगत में विविधतापूर्ण भूमिकाएँ निभाई हैं। उन्होंने तमिल, मलयालम और तेलुगु के सभी प्रमुख नायकों के साथ काम किया है। इन तीन भाषाओं की फिल्मों में उन्होंने अनेक अवार्ड प्राप्त किए। प्रायः प्रति वर्ष उनकी कोई न कोई फिल्म राष्ट्रीय अवार्ड की दावेदार होती है। कुछ साल पूर्व सुहासिनी ने एक मलयालम फिल्म "कूडविडे" में काम किया था। फिल्म में उन्होंने एक ऐसी स्कूल शिक्षिका की भूमिका निभाई थी, जिसका मंगेतर उससे दूर सेना में कार्य करता है। चूंकि फौजी होने के कारण उनकी मुलाकातें नहीं हो पाती थीं और इसीलिए वह संबंधों की गहराई को नहीं समझ पाई। धीरे-धीरे फिल्म की नायिका एक युवा छात्र के प्रति आकर्षित होती है। वह छात्र नायिका को बहन जैसी इज्जत देता था। फिल्म में उस समय एक दिलचस्प मोड़ आता है, जब नायिका का फौजी मंगेतर वापस लौट आता है। नायिका सोच नहीं पाती कि उसे क्या करना चाहिए। वह दोहरी मानसिकता की शिकार होती है। इस भूमिका के लिए सुहासिनी को केरल सरकार ने सर्वश्रेष्ठ नायिका का अवार्ड दिया। हालांकि राष्ट्रीय अवार्ड उससे छल कर गया। सुहासिनी की दो अन्य यादगार फिल्में थीं-कोमल स्वामीनाथन् की "ओरू इंधिया कानावू" और मलयालम की "एडमिटे वेरियेलू"। 'ओरू इधिया कानावू' में उन्होंने एक ऐसी गरीब लड़की की भूमिका निभाई, जिसकी मृत्यु के पीछे एक राजनीतिज्ञ का हाथ था। फिल्म को राष्ट्रीय स्तर पर विशेष ज्यूरी का अवार्ड मिला। दूसरी मलयालम फिल्म में उन्होंने मध्यमवर्गीय महिला की भूमिका निभाई। सुहासिनी की तेलुगु फिल्म स्वाती भी चर्चित रही।

सुहासिनी कहती है कि बालचंद्रन् द्वारा निर्देशित तमिल फिल्म "सिंधु भैरवी" में राष्ट्रीय अवार्ड मिलने पर उन्हें इसलिए अधिक खुशी हुई, क्योंकि तमिल मेरी मातृभाषा है। सुहासिनी, महेश भट्ट तथा मृणाल सेन जैसे निर्देशकों के साथ कार्य करने की इच्छुक है।

दक्षिण की इस कुशल अदाकारा ने बहुत ही कम समय में राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर सिद्ध कर दिया कि सितारे बनाए नही जाते, वे जन्मजात होते हैं। ■



एक और उर्वशी दक्षिण से:अर्चना

अर्चना जैसी लड़की आपको अपने घर से दूसरे-तीसरे दरवाजे पर ही मिल जाएगी। शहर के मध्यम वर्ग की लड़कियों के रोल करना उसकी ख्वाहिश है। अभिनय तथा नृत्य के मधुर संगम की स्वामिनी अर्चना को उर्वशी पुरस्कार मिला है। बड़ी और बोलने वाली आँखें, आकर्षक और गतिशील चेहरा और सांवली सूरत मिलकर अर्चना को परिपूर्णता प्रदान करते हैं।

◆◆◆

यदि हिन्दी फिल्म उद्योग के पिछले चार दशकों के इतिहास में झांका जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि व्यावसायिक सिनेमा की अधिकांश शीर्षस्थ नायिकाएँ दक्षिण भारत की देन हैं। इस तथ्य के साथ दूसरा तथ्य यह है कि कलात्मक फिल्मों में काम कर अवार्ड जीतने वाली नायिकाओं में भी दक्षिण भारतीय अभिनेत्रियों की बहुतायत है—शारदा, शोभा, सुहासिनी तथा अर्चना राष्ट्रीय स्तर के अवार्ड पाकर इस सत्य को सिद्ध कर चुकी हैं। तमिल, तेलुगु फिल्मों की नायिका **अर्चना** भी इसी राह पर चल रही है। अपनी फिल्म 'वीडू' के लिए उसे उर्वशी पुरस्कार (१९८७) मिल चुका है। दक्षिण भारत के विख्यात सिने फोटोग्राफर बालू महेन्द्र की इस खोज का फिल्मी कैरियर काफी दिलचस्प है।

तेलुगु रंगमंच की प्रतिष्ठित अभिनेत्री सुशीला की इस बेटी को नृत्य सीखने का शौक बचपन से ही था। छः वर्ष की आयु से ही उसने भरत नाट्यम, कुचीपुडी तथा कत्थक सीखना शुरू कर दिया था। हाईस्कूल परीक्षा पास करने के बाद वह 'आडियार' स्थित फिल्म संस्थान में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए गई। एक वर्ष के इस पाठ्यक्रम के दौरान हुए एक वर्कशॉप में अमेरिका से आए निर्देशक विलियम ग्रीव्ज ने इस लड़की की अभिनय प्रतिभा को पहचाना। इस वर्कशॉप में उसने एक गूँगी लड़की का सजीव अभिनय किया था। ग्रीव्ज ने ही उसे बालू महेन्द्र से मिलवाया तथा बालू ने उसे 'नीनंगल केट्टावाई' में काम करने का अवसर दिया। तमिल की यह फिल्म व्यावसायिक थी तथा १९८४ में प्रदर्शित हुई। दर्शकों ने इसमें अर्चना के अभिनय को काफी

सराहा। इससे पूर्व वह मलयालम डाइरेक्टर पी. एन. मेनन की फिल्म 'मला मुगट्टाइल देवियम' में काम कर चुकी थी। अर्चना उन जिद्दी अभिनेत्रियों में से एक है जो 'टाइप्ड' नहीं बनना चाहती है। वह मध्यम वर्गीय घरेलू लड़की की भूमिका भी उसी उत्साह के साथ करना चाहती है, जिस उत्साह के साथ ग्लेमर गर्ल का रोल अदा करना चाहती है। भूमिकाएँ स्वीकार करने में वह बेहद सावधानी का इस्तेमाल करती है। उसका कहना है कि यदि कहानी में कपड़े उतारने की जरूरत हुई तो वह पर्दे पर वस्त्रहीन होकर अभिनय करने में भी नहीं हिचकेगी।

तेलुगु फिल्म 'यात्री' में अपने अभिनय के लिए उसे पहली बार 'स्पेशल ज्यूरी अवार्ड' मिला। इस फिल्म का निर्देशन बालू महेन्द्र ने किया था। तमिल और तेलुगु के बाद उसने कन्नड़ फिल्मों में काम करना शुरू किया। शंकर नाग तथा वासु के निर्देशन में उसने क्रमशः ओंधू मुथिन कथे तथा 'गुरी' में काम किया। तमिल फिल्म 'वीडू' में उर्वशी अवार्ड प्राप्त करने के बाद भी अर्चना को संतोष नहीं हुआ । वह नृत्य का नियमित अभ्यास करती रही। सितार भी सीखती रही तथा साथ ही अपनी अभिनय प्रतिभा को चमकाने की कोशिश भी करती रही। उसे सही अवसर **दासी** (१९८९) में मिला। 'तेलंगाना' बोली में बनी इस फिल्म का निर्देशन नरसिंह राव ने किया। सबसे पहले तो अर्चना को यह बोली सीखनी पड़ी और उसके बाद उसे दासी प्रथा का इतिहास तथा दासियों का रहन-सहन समझने के लिए कई ऐतिहासिक ग्रंथों एवं दस्तावेजों का अध्ययन करना पड़ा। यहाँ तक कि डायरेक्टर नरसिंह राव ने एक बूढ़ी दासी को खोजकर उसकी आवाज का कैसेट तैयार करवा कर अर्चना को दिया। वह बारंबार इस कैसेट को सुनती, दुहराती और अंत में उसने वही लहजा सीख लिया। फिल्म प्रदर्शित हुई तथा पाँच अवार्ड उसे मिले। मलयालम फिल्म 'पिरावी' (१९८८) भी अवार्ड बटोरने वाली सिद्ध हुई तथा अर्चना एक अभिनेत्री के रूप में स्थापित हो गई।

अर्चना के विचार उसके अभिनय की तरह क्रांतिकारी है। विवाह को वह बिलकुल अनावश्यक मानती है। यह पूछे जाने पर कि किसी पुरुष से प्रेम होने पर वह क्या करेगी, उसका उत्तर था—'जब तक जी चाहेगा उसके साथ रहूँगी।' ■

तमिल फिल्मों की महारानी : लक्ष्मी

हिंदी सिनेमा के दर्शक उसे 'जूली' के नाम से जानते हैं। जब वह बात करती है, तो बड़ी-बड़ी आँखों से फुलझड़ियाँ छूटने लगती हैं। उसकी मुस्कान पर दर्शक बिन मोल बिक जाता है। लक्ष्मी ने अब तक २८० फिल्मों में काम किया है, जो टिकट-खिड़की पर सुपरहिट रही हैं। कई राष्ट्रीय तथा फिल्मफेयर अवार्ड से उसका आँचल भरा पड़ा है।

◆◆◆

हिंदी फिल्म 'जूली' में रोमांटिक किशोरी की भूमिका करने वाली **लक्ष्मी** अपने आप में एक अजूबा है। मलयालम, तमिल और तेलुगु भाषा की फिल्मों में अपनी अभिनय प्रतिभा की धाक जमा चुकने वाली यह साँवली सलोनी नायिका अब तक २८० से भी अधिक फिल्मों में काम कर उपलब्धि हासिल कर चुकी है। तेरह वर्ष की आयु से लक्ष्मी ने अपना कैरियर शुरू किया था। चट्टाक्करी फिल्म बाद में 'जूली' के नाम से हिंदी में बनीं। जूली यद्यपि सुपरहिट रही, मगर बाद में लक्ष्मी हिंदी फिल्मों में अपनी कामयाबी के झंडे नहीं फहरा सकी।

तीन विवाहों तथा दो तलाकों का विषकंठ लिए लक्ष्मी को देश की गिनी चुनी स्वाभाविक अभिनय करने में समर्थ अभिनेत्रियों में शुमार किया जाता है। अभिनय में स्वाभाविकता का कारण शायद इस पेशे से जुड़ा पुश्तैनी रिश्ता हो। लक्ष्मी की माँ रुक्मणी भी अपने ज़माने की ख्याति प्राप्त अभिनेत्री थी। माँ, बेटी की प्रतिभा से भले ही अवगत हो मगर वह नहीं चाहती थी कि संतान फिल्मी दुनिया के गड़बड़-घोटाले से जूझे। इसलिए उसे फिल्मी दुनिया से दूर रख पढ़ाया-लिखाया गया। माँ ने समझाया कि फिल्मों में सफल होने के लिए सुंदर और गोरा दिखना जरूरी है और यह दोनों गुण उसमें नहीं हैं। जिद्दी लक्ष्मी ने इस सलाह की परवाह नहीं की तथा अभिनय के व्यवसाय में कूद पड़ी। माता-पिता ने बेटी का ध्यान फिल्मों से हटाने के लिए उसका ब्याह रचा दिया। अठारह वर्ष की आयु में हुआ यह विवाह एक साल में ही टूट गया और यादगार की निशानी एक बेटी लक्ष्मी की गोद में छोड़ गया। लक्ष्मी का दूसरा विवाह मोहन शर्मा नामक अभिनेता से हुआ। यह विवाह भी ज्यादा नहीं चला। बाद में बेटी के आग्रह पर लक्ष्मी ने तीसरा विवाह शिवचंद्रन से किया।



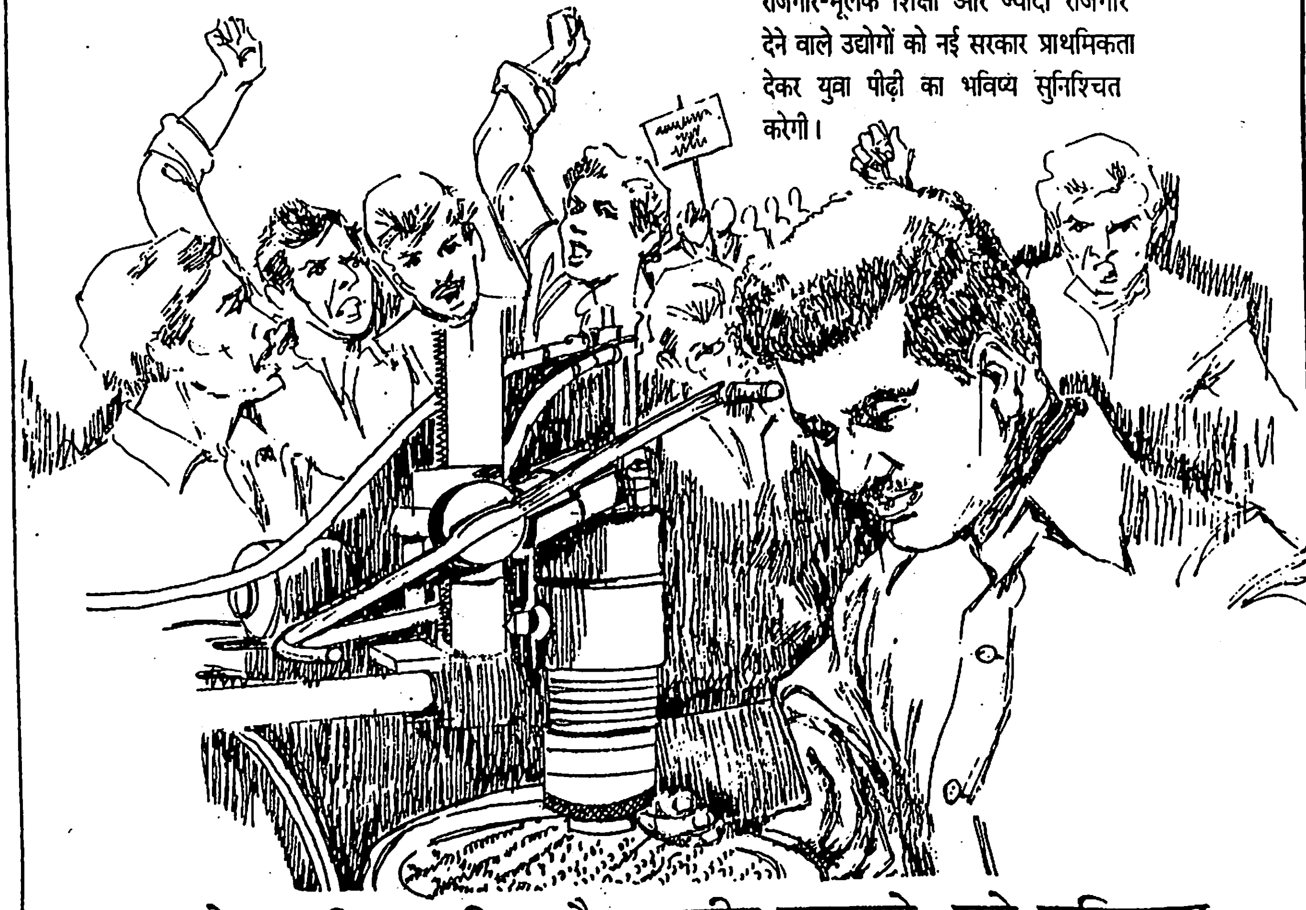
लक्ष्मी ने यद्यपि तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा हिंदी की फिल्मों में काम किया है मगर ज्यादा सफलता उन्हें मलयालम फिल्मों से ही मिली। फिल्म 'सिराई' में उन्होंने ब्राह्मण महिला की भूमिका की है। इस फिल्म ने ब्राह्मण समाज को काफी उत्तेजित कर दिया था।

हिंदी फिल्मों में अपनी असफलता का जिक्र करते हुए लक्ष्मी स्वीकार करती है कि उन्होंने इस क्षेत्र में गलत समय में प्रवेश किया था। पहली बात तो यह कि उस वक्त हीरोइन के रूप में वे अपने कैरियर की प्रौढ़ता की सीमा पर पहुँच चुकी थी तथा दूसरी बात थी कि वह युग एक्शन फिल्मों का था। जब जूली सफल हुई तब लक्ष्मी को हिंदी फिल्मों में रोमांटिक सेक्सी नायिकाओं की भूमिका प्रस्तावित की जाने लगी। दक्षिण भारत में उस समय तक वे एक स्थापित अभिनेत्री बन चुकी थीं तथा एक तमिल फिल्म में भावपूर्ण अभिनय के कारण उन्हें पहली बार अभिनय के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था। ऐसी स्थिति में हिंदी फिल्मों में 'ग्लेमर गर्ल' के रूप में छवि बनाना उन्हें अजीब लगा। जूली में उनकी छोटी बहन का अभिनय करने वाली श्रीदेवी को कम उम्र का फायदा मिला और वह हिंदी फिल्मों की शिखर की नायिकाओं में पहुँच गई है।

उम्र और छवि के साथ-साथ गलत फिल्मों के चयन को भी लक्ष्मी हिंदी फिल्म उद्योग में अपनी असफलता की वजह मानती है। चरनदास, कहानी एक चोर की, जैसी फिल्म ने उन्हें 'बी' ग्रेड की नायिकाओं की श्रेणी में डाल दिया। लक्ष्मी को अब तक नौ बार फिल्म फेयर अवार्ड मिल चुका है। उसके घर का एक पूरा कमरा ट्रॉफियों से भरा है। ■

तरुणाई बदलेगी तकदीर और तस्वीर

भविष्य की अनिश्चितता को लेकर विस्फोट के कगार पर खड़ी युवा पीढ़ी के हाथों में काम सौंपकर उनके आक्रोश को उस ऊर्जा में बदला जाएगा जो प्रदेश की तकदीर और तस्वीर को बदल डालेगी। रोजगार-मूलक शिक्षा और ज्यादा रोजगार देने वाले उद्योगों को नई सरकार प्राथमिकता देकर युवा पीढ़ी का भविष्य सुनिश्चित करेगी।



प्रदेश की तकदीर और तस्वीर बदलने को प्रतिबद्ध
मध्य प्रदेश सरकार

म.प्र. माध्यम/९०

परवीन बॉबी : खो गई चाबी

अचानक फिल्मी दुनिया से गायब होकर तरह-तरह की अफवाहों को जन्म देकर परवीन बरसों के अंतराल के बाद लौट आई है। जरूरत से ज्यादा मोटापा ओढ़े अपनी मोटी बुद्धि से वह अमिताभ के खिलाफ जहर उगल कर पता नहीं क्या हासिल करना चाहती है। परवीन बॉबी की चाबी अब उसके हाथ नहीं है, यह बात दृढ़ता के साथ कही जा सकती है।

◆◆◆

बी. आर. इशारा ने क्रिकेट खिलाड़ी सलीम दुर्रानी को नायक के रूप में लेकर **चरित्र** नाम की फिल्म बनाई थी, जिसकी नायिका परवीन बॉबी थी। जूनागढ़, सौराष्ट्र से आई नई लड़की मॉडल परवीन बॉबी। "चरित्र" असफल रही परन्तु परवीन को काम मिलने लगा। परवीन बॉबी, जीनत अमान की परम्परा की सितारा हैं। अपने अभिनय जीवन के प्रारंभ में ही कबीर बेदी के साथ उसके प्रणय ने पत्रिकाओं को सुर्खियाँ दी। बिना विवाह किए ही परवीन और कबीर साथ रहने लगे। समाज को चौंका देना उनका लक्ष्य था और वे कामयाब हुए।

परवीन बॉबी का चेहरा सुंदर और शरीर सुडौल था तथा अभिनय प्रतिभा भी थी। परन्तु परवीन जिस दौर में नायिका बनी वह दौर बहुसितारा फिल्मों का दौर था, जिसमें भावना के स्थान पर एक्शन हावी था। अतः नायिका को कुछ नहीं करना पड़ता था। बस थोड़ा सा रोमांस और दो-तीन समूह नृत्य। 'क्रांति' और 'बर्निंग ट्रेन' जैसी फिल्मों में परवीन बॉबी अपनी अभिनय क्षमता का प्रयोग कैसे करती? शरीर प्रदर्शन और मौजूदगी के अतिरिक्त कुछ करना भी नहीं था।

परवीन बॉबी बहुत सी फिल्मों में अमिताभ की नायिका थीं, उस समय तक अमिताभ 'एक व्यक्ति प्रदर्शन' (वनमेन शो) हो चुके थे। दर्शक हर दृश्य में केवल उन्हीं को देखना चाहते थे। बकौल मनमोहन देसाई के, अमिताभ नायिका का रोल छोड़कर अपनी फिल्म में सभी कुछ कर सकते हैं। इन परिस्थितियों में परवीन के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी।

परवीन बॉबी की त्रासदी यह है कि व्यक्तिगत जीवन में वह एक भ्रमित लड़की रही जो कई मानसिक ग्रंथियों की शिकार थी अतः अभिनय को उसने गंभीरता से नहीं लिया और उन दिनों मौका भी नहीं था। दरअसल परवीन की जिंदगी को अगर फिल्म मान लें तो उसका अभिनय जीवन मात्र इंटरवल रह जाता है। उन दिनों फिल्में बहुसितारा होती थीं और समाज में "गुरू" का बोल-बाला था- "गॉडमेन" का जमाना था। आचार्य रजनीश अपने आपको भगवान कहने लगे थे। युवा पीढ़ी को दिशा देने वाला कोई नहीं था। परवीन जैसे लोग साधन और साध्य के अंतर को नहीं समझ पाते थे। अतः "गुरुजनों" के लिए यह स्वर्णकाल था। परवीन बॉबी भी गुरु के मोहजाल में बँध गई। माया को यथार्थ और यथार्थ को माया समझने वाली परवीन दो बार फिल्म उद्योग छोड़कर गई और दोनों बार लौटने पर उद्योग ने उसे काम दिया, धन दिया और सहारा दिया। दरअसल परवीन से लोगों को बहुत उम्मीदें थीं, क्योंकि वह सुंदर और प्रतिभाशाली थी। जिस तरह के शरीर के लिए जीनत अमान प्रसिद्ध थी, दरअसल वह परवीन बॉबी के पास था।

परवीन बॉबी ने 'काला पत्थर' में पत्रकार की छोटी भूमिका अच्छे ढंग से निभाई और "रजिया सुल्तान" में भी बहुत छोटी भूमिका उसने स्वीकार की। कोई भी पेशेवर अभिनेत्री इस तरह की छोटी भूमिकाओं को स्वीकार नहीं करती। परवीन का दृष्टिकोण पेशेवर अभिनेत्री का नहीं था। वह गीताबाली की तरह मनमौजी भी नहीं थीं। परवीन एक खोई हुई लड़की थी। छोटे से शहर से बंबई के फिल्म नगर में आना कोई मामूली यात्रा नहीं थी। परवीन यहाँ की चमक-धमक में गुम नहीं हुई- वह गुम हुई थी-स्वयं के बिछाए मायाजाल में। वह काफी हद तक मीना कुमारी की तरह प्रेम के नाम पर ठगी गई। उसने स्वयं एक साक्षात्कार में स्वीकार किया था कि 'छोटीबहू' की भूमिका करना उसकी महत्वाकांक्षा है। परवीन बॉबी एक संभावना थी जिसके सत्य में परिवर्तन नहीं हो पाने के लिए दोषी भी वह स्वयं ही है। दरअसल परवीन उस पीढ़ी की प्रतिनिधि है जो स्वयं को जड़हीन अनुभव करती थी और 'गुरु' के शब्द जाल में फँस चुकी थी।

कालिया, नसीब और सुहाग परवीन की बेहतर भूमिकाओं में मानी जा सकती हैं। ■





दम मारो दम : जीनत अमान

उषा चौकसे

प्रचार-प्रसार के माध्यम की शक्ति की परिचायक है सितारा जीनत अमान। अत्यंत साधारण चेहरा, जिसे स्वयं जीनत ने एक बार असुंदर कहा है, और अभिनय प्रतिभा के अभाव के बावजूद अत्यंत सफल सितारा जीनत भारतीय सिनेमा का अजूबा है। चेहरा नहीं, प्रतिभा नहीं और भाषा भी नहीं आने के बावजूद वर्षों तक उद्योग पर छाए रहने को अजूबा ही कहना चाहिए! सौंदर्य प्रतियोगिता तथा पाश्चात्य व्यावसायिकता की चतुराई का एक ज्वलंत उदाहरण है। धनाढ्य वर्ग के मनोरंजन के लिए युवतियाँ नाप-तौल के अजीब मानदंड पर परखी जाती हैं। इस तमाशे के अंत में विजयी कन्या विज्ञापन करती है- फैशन की चीजों का। दूर दराज के छोटे शहरों और कस्बों में लड़कियाँ सौंदर्य प्रसाधन की वस्तुएँ खरीदती हैं। प्रसाधनों से उत्पन्न सौंदर्य की मृग मरीचिका से कई लोग ठगे जाते हैं। जीनत अमान इसी सौंदर्य के संसार से फिल्मों में आई। सौंदर्य प्रसाधनों की विजय का प्रतीक है जीनत अमान।

देवआनंद ने **हरे राम! हरे कृष्ण!** में जीनत को हशीश की शिकार युवती के रूप में प्रस्तुत किया। जीनत का भाग्य इतना बलवान कि आर.डी. बर्मन की नशीली धुन **दम मारो दम** गाती हुई जीनत ने **तुरंत लोकप्रियता** पा ली! उन्हीं दिनों 'इन्सटेंट कॉफी' के प्रचलन से इन्सटेंट (तुरंत) वस्तुओं की नई संस्कृति उभरी थी और जीनत अमान इसी संस्कृति की विजय पताका बनकर फिल्मों में आई थी। सुलोचना, वनमाला, सुरैया, मीना, नरगिस और मधुबाला जैसी अनन्य सुंदरियों के **स्थान पर जीनत ने पैर जमाए-इंच-टेप के फीतों से नपे तुले पैर।** अंतरराष्ट्रीय मानदंड पर खरे उतरते पैर।

'दम मारो दम' के साथ जीनत एक नशा बनकर फिल्मों में छा गई। **पैकिंग और रैपर** का कमाल यह हुआ कि नकल को असल दिखाने वाले उद्योग को अपनी टक्कर की चीज मिल गई। जीनत की फिल्मों की सफलता के दौर में लगा मानों फिल्म उद्योग और जीनत एक दूसरे के लिए ही बने थे। इस नए भ्रम की सबसे बड़ी सफलता यह है कि राजकपूर जैसा निष्णात फिल्मकार भी इसका शिकार हुआ और प्रतिभा के "धधकते ज्वालामुखी" के मुहाने पर जा बैठा।

जीनत अमान की सबसे बड़ी सफलता यह है स्वयं उसे अपनी छवि ने कभी नहीं भरमाया। धीरे-धीरे उसने भाषा की कठिनाई काफी हद तक दूर कर दी और अभिनय का प्रयास भी किया। 'प्यास', इंसाफ का तराजू' और 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' के गंभीर प्रयास भी छवि को नहीं तोड़ पाए। जीनत ने भारतीय नायिका की एक नई छवि गढ़ी थी जिसकी प्रेरणा का मूल **बेगम पारा** में पाया जा सकता हैं। समाज के मूल्य इतने बदल चुके थे कि पाँचवें दशक की वैम्प सातवें-आठवें दशक में नायिका बन गई। **काले धन के साथ ही रंगीन चमकीली पत्रिकाओं ने भारतीय समाज में गजब ढाना शुरू किया।** इन पत्रिकाओं को स्कैंडल और विवाद की निरंतर खुराक चाहिए थी और जीनत ने उन्हें भरपूर मसाला दिया। **पहली बार लोकप्रियता परदे पर किए गए अभिनय से नहीं वरन् इन पत्रिकाओं में उठे स्कैंडल से मिली।** वासना भड़काने वाली भूमिकाएँ आईना थीं उस समाज की जो "परमिसिवनेस" की नई लहर का स्वागत कर रहा था। **इस तरह जीनत अपने जमाने के मूल्यों की भी प्रतीक बन गई।** 'इंसाफ का तराजू' बलात्कार के खिलाफ सशक्त फिल्म थी और जीनत के साहस तथा अभिनय की प्रशंसा भी खूब हुई। फिल्म में बलात्कार का एक कारण जिस दिखावे की संस्कृति को बताया गया था- जीनत उसी की प्रतीक थी।

सातवें दशक के दर्शकों में एक प्यास थी जो इन्सटेंट और व्यावसायिक संस्कृति ने पैदा की थी। जीनत अमान ने ऐसी भूमिकाएँ अभिनीत कीं जो इस प्यास को बुझाने की कोशिश करती थीं। जीनत की छवि इसी प्यास से पैदा हुई और इसी प्यास को संतुष्ट करने का प्रयास है। 'दम मारो दम' इस प्यास का प्रतिनिधि गीत हैं। **आप जैसा कोई मेरी जिंदगी में आए** (कुरबानी) इस "धुंध" के फैलने की हद है।

जीनत अमान अपनी शक्ति और कमजोरियों से पूरी तरह परिचित थी। यह उसकी बुद्धिमत्ता थी कि उसने अपनी कमजोरियों को भी ताकत बना लिया। उसने इस तरह की भूमिकाएँ ली कि उसकी भाषा में आंग्ल ध्वनि उन चरित्रों के साथ बहुत जमती थी। जीनत पहली अभिनेत्री थी जिसने अपने पूरे शरीर का प्रयोग अभिनय के लिए किया। जीनत जब पर्दे पर आती तो दर्शक उसके चेहरे के बदले उसकी पोशाक और फिगर को देखते थे। 'धरमवीर' में वह घमंडी राजकुमारी बनी थी। 'आन' में जो रोल नादिरा ने किया था, 'धरमवीर' में जीनत ने किया। नादिरा और जीनत में बहुत समानता है- अंतर है तो केवल युग का। नादिरा, मधुबाला, नरगिस के युग में थी- इस लिए उसे खलनायिका (श्री ४२०) या सहनायिका बनना पड़ा। जीनत भाग्यवान थी। उसका शरीर उसकी बड़ी पूंजी थी। सौंदर्य-प्रसाधन के प्रयोग में वह निष्णात थी। अभिनय के प्रति उसका दृष्टिकोण पेशेवर था। दर्शकों को नशा चाहिए था और जीनत ने उन्हें निराश नहीं किया। ■







जीनत अमान

पिता के संस्मरण जया भादुड़ी के बारे में

'गुड्डी' की हस्ती मिट नहीं सकती

तरुणकुमार भादुड़ी



जया भादुड़ी

बारह या तेरह बरस की रही होगी जब जया ने सत्यजीत राय की फिल्म **महानगर** में काम किया था। हुआ यह कि १९६२ में मैं जया के साथ दस एक-दिन कलकत्ता में ठहरा था। वहीं राय ने पहली बार उसे देखा। उन्होंने हम दोनों को खाने पर बुलाया। बात आई-गई हो गई। फिर अचानक एक दिन उनका तार आ धमका। वे हर सूरत में जया को महानगर में लेना चाहते थे। उन दिनों जया भोपाल के एक कांवेन्ट स्कूल में पढ़ती थी। जया बुरी तरह घबराई कि उसे पढ़ाने वाली सिस्टर्स क्या कहेंगी। आखिर फ्रॉक और साड़ी के बीच वाली उम्र की बहन के रोल में जया ने फिल्मी दुनिया में कदम रखा।

सत्यजीत राय जया को बहुत चाहने लगे। जब उसने फिल्म इंस्टिट्यूट में प्रवेश के लिए बाद में उनसे सर्टिफिकेट चाहा तो उन्होंने कहा, 'वैसे मेरे ख्याल से तुम्हें एक्टिंग के लिए कोई ट्रेनिंग लेने की जरूरत नहीं है।' यों वह नाटकों में काम कर चुकी थी। मैं और मेरी पत्नी भी इसमें बरसों सक्रिय रहे थे। घर में रिहर्सल होती रहती थी। एक वातावरण मौजूद था। वह बचपन से ढेरों फिल्म पत्रिकाएँ जमा करती थी और दिलीप कुमार की बड़ी प्रशंसक थी। फिल्म इंस्टिट्यूट में उसे योग्यता की स्कालरशिप मिली और वह गोल्ड मेडल के साथ पास हुई।

पूना में अभिनय सीखते समय ही बासु चटर्जी ने उसे सारा आकाश में नायिका का रोल देना चाहा। मगर संस्था की शर्त यह थी कि पढ़ाई के बीच कोई छात्र या छात्रा व्यावसायिक फिल्मों में काम न करे। खैर, बाद में खुद फिल्म इंस्टिट्यूट के निदेशक ने ऋषिकेश मुकर्जी को **'गुड्डी'** के रोल के लिए जया का नाम सुझाया। इसके पहले वह तीन बंगाली फिल्मों मे काम कर चुकी थी। उनमें से एक बड़ी लोकप्रिय साबित हुई। लेकिन गुड्डी की शूटिंग शुरू हुई और जया फिल्मों के इतिहास में शामिल हो गई।

दरअसल मुझे जया की प्रतिभा के बारे में कोई शक न था। अलबत्ता यह ख्याल आता था कि वह पिटे-पिटाए किस्म के हीरोइन वाले रोल के लिए अटपटी रहेगी। मुझे याद है छुटपन से ही जया ने जिस काम में भी हाथ डाला उसे पूरी संजीदगी के साथ निभाया। पूरे पाँच बरस भरत नाट्यम का रियाज किया। वह एन.सी.सी. में गई तो १९६६ के गणतंत्र दिवस की परेड में उसे प्रधानमंत्री के हाथों सर्वश्रेष्ठ केडेट का पुरस्कार मिला।

अब कई लोग यह जानते हैं, कि गुड्डी में अमिताभ बच्चन को लिया जाना था। वहीं उन दोनों की स्टुडियो में मुलाकात हुई। यह १९७० की बात है। शायद बाद में ऋषिकेश मुकर्जी को

लगा कि उस भूमिका के लिए अमिताभ बच्चन उतने उपयुक्त नहीं रहेंगे और तब उनकी जगह समित भंजा का चुनाव हुआ। शूटिंग के दौरान जया के साथ बंबई में उसकी माँ रहती थी। कभी-कभी मैं भी बंबई चला जाता था और वहीं पहली बार अमिताभ से मिला। मुझे तब लगा था कि लड़का काबिल मगर शर्मीला है।

लेकिन उनकी शादी हो जाएगी इसका मुझे गुमान न था। मई १९७३ में एक दिन अमिताभ ने मुझे फोन किया और फौरन बंबई आने का आग्रह किया। मैं चकराया पर उन्होंने विस्तार से बात नहीं की। सिर्फ यही कहा कि जया आपको सब कुछ बता देगी। जया शुरू से मेरे ज्यादा करीब रही। मिलते ही उसने सीधे-सीधे कहा, 'बाबा, हम शादी करने जा रहे हैं। क्या आप बुरा मानेंगे?' मैंने कहा अगर तुम खुश हो तो तुम्हारी खुशी में मैं भी शामिल हूँ। तब जया ने फिक्र जताई कि माँ क्या कहेंगी। मैंने कहा वह फिक्र न करे, सब कुछ ठीक हो जाएगा। मेरी तीनो लड़कियों ने अंतरजातीय विवाह किया है।

सौ बात की एक बात यह है कि मुझे अमिताभ पसंद आया। मुझे लगा कि वह सामान्य बंबइया एक्टर नहीं है। वह काफी सुलझा हुआ और गंभीर किस्म का युवक था। यह कहना सरासर ज्यादती होगी कि उसने जया के स्टार बनने के कारण उससे शादी की। सच तो यह है कि वह अपनी फिल्म **जंजीर** की सफलता तक रुका रहा। हर सूरत में जया उससे शादी करती ही। वह दृढ़ निश्चय से काम लेती है। बचपन से अपने मन का काम करती रही है। मुझे इतना ही पता था कि जब जया शादी करेगी तो वह किसी मामूली आदमी के साथ नहीं बँधेगी।

मुझे पता नहीं क्यों यह यकीन था कि अमिताभ बच्चन पेशेवर रूप से अपनी लाइन में बेजोड़ रहेंगे। उनमें कमाल की दृढ़ता और अटूट लगन है। एक के बाद एक फिल्म में वे निराश हुए। फिर एक दिन वे उस जगह जा पहुँचे जो सिर्फ अमिताभ बच्चन के ही लिए सुरक्षित थी।

जंजीर के बाद अभिमान कामयाब रही। शोले बहुत बाद में आई। **मिली** और **चुपके-चुपके** में इन दोनों ने साथ काम किया। **मिली** फिल्म देखकर मैं समझ सका कि जया में अभिनय का क्या माद्दा था। जया ने फिल्मों से संन्यास लिया तो वह भी सिर्फ अपनी मर्जी से। उसने सोचा कि बच्चों की देखभाल के लिए घर पर रहना जरूरी रहेगा। मुझे न तो उसके फिल्मों में प्रवेश करने पर एतराज था और न ही संन्यास लेने पर। यह ख्याल जरूर आया कि उसकी प्रतिभा की बरबादी रहेगी। मगर जया को कभी उसके फैसले पर पछतावा नहीं हुआ। सबसे ज्यादा ताज्जुब की बात यह है कि फिल्मी दुनिया छोड़ने पर भी उसकी हस्ती बनी हुई है। अगर वह चांहे तो आज भी उसके लिए कई प्रोड्यूसर तैयार बैठे हैं। मगर वह कहती है कि अगर उसे कोई सही किस्म की कहानी मिले तो वंह उस पर विचार कर सकती है। मैं नहीं समझता उसके काम करने, न करने में अमिताभ बच्चन का कोई आग्रह था पर अमिताभ को इसके लिए अभी भी दोषी ठहराया जाता है।

आदमी को अपनी सफलता की भी कीमत चुकानी पड़ती है। जब भी वह भोपाल में अपने घर लौटती थी हमें पुलिस की सहायता लेनी पड़ती थी। मगर सफलता ने जया के दिमाग को बिलकुल बेअसर छोड़ा। घर में अगर कभी भीड़ हुई तो फर्श पर सोने में उसे कोई संकोच नहीं हुआ। मगर जब वे दोनों एक साथ आते थे तो ईमानदारी की बात यह है, कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा हो जाती थी। मेरी दूसरी बेटी की शादी में अमिताभ जब लखनऊ आए तो पुलिस को लाठीचार्ज करना पड़ा, जिसका मुझे आज तक अफसोस है। अमिताभ **डान** फिल्म की सफलता की कीमत चुका रहे थे। मैंने हाथ जोड़ लिए और उनसे कहना पड़ा कि आप बारात के साथ न रुक कर किसी होटल में शरण लें।

अमिताभ जब उस चर्चित दुर्घटना के शिकार

आदर्श पत्नी जया बच्चन

अमिताभ की पत्नी के रूप में नहीं जया बच्चन (भादुड़ी) की अपनी एक स्वतंत्र पहचान है। वे जब तक फिल्मों में आती रहीं, उन्हें दर्शकों का अथाह स्नेह मिला। मीनाकुमारी, नरगिस जैसी श्रेष्ठ अभिनेत्रियों की श्रेणी में उन्हें सहज ही रखा जा सकता है। ऐसी भाव-प्रवण अभिनेत्री ने जब अचानक विवाह कर फिल्मोद्योग को नमस्ते किया था तो उनके ढेर सारे प्रशंसक वर्षों तक उनकी कमी को महसूस करते रहे। बहरहाल एक आदर्श पत्नी के रूप में भी जया ने अपने दायित्वों को संपूर्ण सार्थकता दी है। अमिताभ फैन क्लब के आग्रह पर जब अमिताभ सपत्नीक कलकत्ता आए तो इस संवाददाता से दो किस्तों में जया की लंबी बातचीत हुई। पेश है उसके अंश:—

आपने एक सफल अभिनेत्री होने के बावजूद अचानक सब कुछ छोड़-छाड़कर घर बसा लिया। तब आपका कैरियर बुलंदी पर था। फिर इसके बाद आपने अपने आपको कैसे एडजस्ट किया?

अभी ऐसा लगता है कि शायद मैं ज्यादा महत्वाकांक्षी नहीं थी। अमित के साथ शादी के बाद फिल्म छोड़ने की कोई शर्त नहीं थी, लेकिन हाँ काम के बाद घर लौटकर वह मेरा साथ चाहता था, जो स्वाभाविक है। फिर आर्थिक रूप से मुझे नौकरी करने की भी जरूरत नहीं थी। इसलिए मैंने फिल्मी जीवन छोड़ने का निश्चय किया। फिर ऐसा भी लगता है कि तब तक मैं इंडस्ट्री के मोह से दूर जा चुकी थी। हिंदी फिल्मोद्योग मुझे आकर्षित नहीं कर पा रहा था। मैं कुछ हद तक 'फेड-अप' हो गई थी।

तब इंडस्ट्री में आए आपको कितने साल हुए थे?

तीन साल। लेकिन इन तीन सालों में मैं हिंदी फिल्मोद्योग के असली चेहरे से वाकिफ हो चुकी थी।

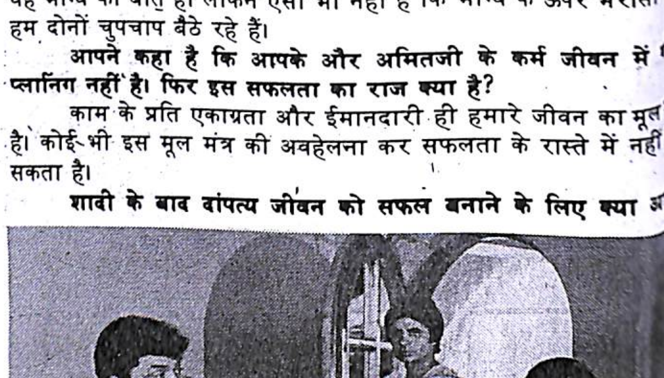
हिंदी फिल्मोद्योग में आप एक नई धारा लेकर आई थीं। आपके साथ ही स्टार अभिनेत्री की एक नई परंपरा की शुरूआत हुई। इसके लिए क्या अपने आपको आपने तैयार किया था?

मेरी जिंदगी में कुछ भी योजनाबद्ध ढंग से नहीं हुआ है। सौभाग्य की बात यह है कि मेरी जिंदगी में जो मर्द आया है, उसका भी जीवन परिकल्पित नहीं है। वे कभी फूँक-फूँककर कदम नहीं रखते हैं। कुछ हद तक यह भाग्य की बात है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि भाग्य के ऊपर भरोसा कर हम दोनों चुपचाप बैठे रहे हैं।

आपने कहा है कि आपके और अमितजी के कर्म जीवन में प्लानिंग नहीं है। फिर इस सफलता का राज क्या है?

काम के प्रति एकाग्रता और ईमानदारी ही हमारे जीवन का मूल मंत्र है। कोई भी इस मूल मंत्र की अवहेलना कर सफलता के रास्ते में नहीं टिक सकता है।

शादी के बाद दांपत्य जीवन को सफल बनाने के लिए क्या आ



फिल्म सिलसिला (१९८१) में देवेन वर्मा, अमिताभ और जया

हुए तो मैं लखनऊ में था। मैंने उसे तब उतनी गंभीरता से नहीं लिया। बाद में जया से बात होने पर उसकी गंभीरता समझ में आई और हम बंबई गए। उन दिनों अगर आप जया को देखते तो ताज्जुब में पड़ जाते। वह बिना किसी हड़बड़ाहट के एकदम ठंडे दिमाग से व्यवस्था और सलीके के साथ हर काम कर रही थी। यही उसकी आदत है जो बचपन से आज तक बनी हुई है। मेरी बेटी को कोई धार्मिक किस्म की औरत नहीं कहा जा सकता मगर उन दिनों जिसने उसे जो भी तावीज, वगैरा सुझाया, वह सब उसने आजमाया।

उन संकट के चिंतापूर्ण दिनों में जो बात मेरे मन को छू गई वह जया की यथार्थवादिता थी। उसने अकेले में मुझसे कहा कि वह किसी भी परिणाम के लिए अपने आपको तैयार कर चुकी है। अमिताभ की जिंदगी और मौत में फर्क करना असंभव सा हो रहा था। जब मेरी पत्नी ने पहली बार अमिताभ को इंटेसिव केअर यूनिट में तमाम लगी हुई ट्यूबों के साथ देखा तो वह बेहोश हो गई थी। अमिताभ का बचना नया जीवन पाना रहा।

जब अमिताभ चुनाव लड़ने इलाहाबाद गए तो मैं अपने समाचार-पत्र के लिए मध्यप्रदेश के दौरे करने में उलझा हुआ था। वे दोनों मुझसे कहते रहे कि कई पत्रकार पूछते हैं आप इलाहाबाद क्यों नहीं आते। मैं समझता हूँ राजनीति के मामले में जया ज्यादा सयानेपन से काम लेती है। बचपन से ही भोपाल में हमारे घर मुख्यमंत्री समेत कई नेता बैठकें जमाते रहे हैं। मैंने अपने अखबारी जीवन में ज्यादातर राजनीतिक मामलों पर ही लिखा है। कई लोग मुझसे सलाह लेना ठीक समझते थे। देर रात गए तक चर्चा- परिचर्चा चलती रहती थी। जया इससे अछूती न रही। स्कूल के जमाने में एक बार उसे दुर्घटना में चोट लगी थी तब मय मुख्यमंत्री के पूरी केबिनेट उसे देखने अस्पताल जा पहुँची थी। एक मौका तो ऐसा भी आया जब हमारे घर ही केबिनेट का गठन हुआ। अमिताभ ने शायद तब राजनीति को इतने करीब से नहीं जाना था। वे गाँधी परिवार के मित्र थे मगर संबंध केवल व्यक्तिगत और सामाजिक धरातल पर रहे।

मैंने अमिताभ की सभी फिल्में तो नहीं देखी हैं पर गृह युद्ध से बचने के लिए उनकी कई एक फ़िल्में देखने का काम पड़ा! मुझे फिल्म देखने के बाद अफसोस ही हुआ। वे कॉमेडी और नाजुक किस्म के संवेदनशील रोल में भी अपनी प्रतिभा के झंडे गाड़ सकते हैं पर उन्हें लगभग एक ही टाइप की घिसी-घिसाई भूमिका मिलती है। जया और अमिताभ की शादी को एक अरसा हुआ।



फिल्म उद्योग में ऐसे सुखी संबंधों के अधिक उदाहरण नहीं मिलते। उनके रिश्तों में गहरी समझ और लगाव है। मुझे उन दोनों पर, कहना चाहिए, गर्व है। **(वीकली से साभार)** ■

इसके प्रति एकाग्र, ईमानदार और एकनिष्ठ रहने की कोशिश की थी?

अवश्य। मैंने पहले ही कहा है कि इंडस्ट्री में मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। जिस किस्म की भूमिका मुझे मिल रही थी, उससे मैं ज्यादा खुश नहीं थी। इन दिनों फिर नायिका प्रधान फिल्मों का दौर चला है, जिसके लिए मैं कुछ हद तक क्रेडिट ले सकती हूँ। जो भी हो, उन दिनों बच्चों के पालन-पोषण की बात सोच कर ही मैंने काम न करने का फैसला किया था। तब मैंने मन ही मन सोचा था कि मुझे एक रास्ते पर ही चलना पड़ेगा। सुखी दांपत्य जीवन या सफल कर्म-जीवन के रास्ते पर मैंने सुखी जीवन को ही चुना। यहाँ यह कहना मैं बहुत जरूरी समझती हूँ कि यह निर्णय मेरे खुद का था। इस बारे में न तो मुझसे किसी ने कुछ कहा, न ही किसी ने मुझे मजबूर किया। यह निहायत ही व्यक्तिगत निर्णय था।

आपके इस निर्णय के पीछे कौन-कौन सी वजहें थीं?

एक औरत होना ही इसकी मुख्य वजह थी। मैंने पत्नी और माँ की भूमिका को चुन लिया। मैं जानती हूँ कि परिवार में नारी ही सुख और शांति ला सकती है और मैं जिस पेशे में थी, वहाँ काम करके परिवार को सही ढंग से चलाना मेरे लिए संभव नहीं था। मेरे लिए घर-गृहस्थी का सुख ही महत्वपूर्ण था।

अब तो आपके बच्चे बड़े हो गए हैं। समय भी आपके पास काफी बचता होगा? ऐसे में दोबारा क्या फिल्मों में आएँगी?

फिल्म "सिलसिला" में अभिनय करना मेरे लिए एक परीक्षा थी। उस समय मैंने यह समझा था कि मुझे कुछ दिन और इंतजार करना पड़ेगा। लेकिन आज मैं अपने अंदर के कलाकार को समय देने के लिए बिल्कुल तैयार हूँ, क्योंकि मेरे बच्चे अब बड़े हो गए हैं।

अब आप किस तरह का काम करना चाहेंगी?

फिल्मोद्योग के साथ ही मैं अपने आपको एडजस्ट करना चाहती हूँ। मुझे फिल्में बनाना बहुत पसंद है। शायद वही करूँगी।

तो क्या आप निर्देशन देना चाहती हैं?

हाँ। मुझे किशोर वय के बच्चों के लिए फिल्म बनाने की बड़ी इच्छा है।

क्या आपने इस संबंध में काम शुरू कर दिया है?

हाँ, मैंने कुछ लोगों के साथ बातचीत की है, लेकिन कहानी आदि के बारे में अभी तक कुछ तय नहीं हुआ है।

सुना है आप मीरा नायर की नई फिल्म 'मिसिसिपि मसाला' में काम करना चाहती हैं?

मैंने नहीं बल्कि मीरा ने चाहा था कि मैं उनकी फिल्मों में काम करूँ। लेकिन, यह भूमिका कोई ज्यादा जोरदार नहीं थी। वैसे अब मैं अपनी उम्र को ध्यान में रखकर ही मन-मुताबिक काम करूँगी। कॉलेज की लड़की या बागों में नायक के साथ नाचने-गाने वाली नायिका की भूमिका करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। अब मैं नेतृत्व देने वाली टाइप की भूमिका ही करना चाहती हूँ, राजनीतिक नेतृत्व नहीं। घर-गृहस्थी का नेतृत्व करने वाली की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण होती है।

नेतृत्व देने वाले रोल के लिए आपने अपने आपको कैसे तैयार किया?

अपने अनुभव द्वारा। मैं अपनी जिंदगी में कई तरह के भाव और भावनाओं के बीच आगे बढ़ी हूँ। मेरी अनुभूति की दुनिया का वैचित्र्य अपने पेशे के अन्य लोगों से बहुत अलग है।

आपके सफल विवाहित जीवन के पीछे कौन सी वजह काम कर रही है?

मैंने खुद प्यार करके शादी की है। इसलिए विवाहित जीवन में मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया है, जिससे मेरे प्रेमी को लज्जित या कुंठित होना पड़े। अमित को मैंने प्यार किया था। उसके साथ रहना ही मेरा मुख्य उद्देश्य था। पत्र-पत्रिकाओं में जो कुछ भी निकलता था, उससे मन को ठेस पहुँचना तो स्वाभाविक था। लेकिन गॉसिप तो हमारे पेशे का एक अंग है। यदि मैं काम करती तो मेरे साथ भी ऐसा होता। इसलिए मैं यह सब नजरअंदाज करने में सफल रही।

आपने कभी इन सब अफवाहों के बारे में अपने पति से कुछ पूछा?

उसकी कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि अमित ने मुझे भरपूर प्यार दिया है। अपने व्यस्त कर्मजीवन से भी मेरे लिए उन्होंने समय निकाला। जिस वजह से मैंने अपने आपको कभी अकेला महसूस नहीं किया। उनके लिए घर की दुनिया घर में थी और बाहर की दुनिया बाहर। बाहर की दुनिया को वे कभी अंदर नहीं लाए। हमारा परिवार हमारा अपना था, एकदम अपना।

● **अवतार**



फिल्म साहेब (१९८५) में राखी, अनिल कपूर और अमृतासिंह

राखी को फिर से इंतजार है

साक्षात्कार : रिंकी भट्टाचार्य

■ क्या यह सच है कि आपको पहली बार फिल्मों में लाने का श्रेय राणाघाट के पास शूटिंग कर रही एक यूनिट को है?

□ बंगाली फिल्मों की अभिनेत्री संध्या रॉय एक फिल्म की शूटिंग हमारे घर के पास ही कर रही थी। ठेठ बंगाली होने के कारण उन्हें घर के बने मछली के झोल की बहुत याद आती थी। मेरी माँ ने उनके लिए मछली पकाई और मुझे किसी वजह से संध्या रॉय से बहुत लगाव हो गया। कुछ ही दिन पहले मेरी एक चचेरी बहन का निधन हुआ था और उस अभाव की पूर्ति उन्होंने बड़े स्नेह से की। दस दिन तक संध्या ने वहाँ शूटिंग की और फिल्म स्टार की तरह बर्ताव उन्होंने कभी नहीं किया। अतः हम लोगों के साथ उनकी अच्छी तरह पट गई।

■ उन लोगों के कलकत्ता वापस लौट जाने के बाद भी क्या तुम्हारा उनके साथ संपर्क रहा?

□ उन दिनों मेरी पढ़ाई के लिए कलकत्ता जाने की बात चल रही थी। बाद में जब मैं वहाँ अपनी मौसी के साथ रहने लगी तो अक्सर संध्या रॉय से मिलने उनके घर जाया करती थी। संध्या के माता-पिता नहीं थे और वे अपनी दादी के साथ रहती थीं। जब मेरी मौसी के परिवार में कुछ झंझट हुआ तो मैं संध्या रॉय के यहाँ रहने चली गई। वे चाहती थीं कि मैं वहीं रह कर पढ़ाई करूँ। मैंने साऊथ-पाइंट स्कूल में अपनी पढ़ाई जारी रखी और फिर पंद्रह वर्ष की उम्र में अजय विश्वास के साथ मेरी शादी हो गई।

■ यानी तुम्हारा अभिनय कैरियर बंबई में ही शुरू हुआ?

□ हाँ। सन् १९६८ में अजय फिल्मालय में कुछ कर रहे थे। मैं कलकत्ता में थी। मेरी सास ने कहा जाओ और अपने पति के साथ रहो। मैं बंबई आ गई। मगर मैं-अजय जिस तरह की जिंदगी जी रहे थे तथा जिन लोगों के साथ उठते-बैठते थे उन लोगों के साथ मैं निभा नहीं सकी। धीरे-धीरे जीवन मेरे लिए असंभव हो गया। एक दिन अजय ने मुझे घर से निकाल दिया और मैं स्वर्गीय चाँद उस्मानी के साथ रहने आ गई। उनके पति मुकुलदत्त लेखक हैं।

■ तो तुमने अपने अस्तित्व के लिए काम करना शुरू किया?

□ मेरे पास और कोई चारा नहीं था। मैंने थोड़ी बहुत मॉडलिंग और बंगाली में डबिंग की। एक दिन निर्देशक सत्येन बोस ने मुझे बुलवाया और कहा कि वे मुझे एक फिल्म में छोटी-सी भूमिका देना चाहते हैं। अभिनय मेरे खून में नहीं था। मेरे परिवार में कभी किसी ने अभिनय नहीं किया था मगर जब उन्होंने मुझे बुलाया तो मैं चली गई। वह रोल छोटा सा था और चूँकि उसमें ग्लेमर नहीं था, सभी बड़े स्टार उसे करने से इंकार कर चुके थे। मगर निर्माता अच्छे लोग थे। राजश्री और मुझे धर्मेंद्र के साथ काम करना था मुझे एक विधवा की भूमिका करनी थी। मेरे सामने उसे स्वीकार करने के अलावा कोई चारा नहीं था।

ताराचंद बड़जात्या के यहाँ उन्होंने मेरा स्क्रीन टेस्ट लिया। मेरी एक तस्वीर जिसमें मेरा बायाँ कान दिखाई दे रहा था पांडिचेरी के ऑरोविले में मदर के अनुमोदन के लिए, भेजी गई (मुस्कुराती हैं) उनकी स्वीकृति के बाद मुझे फिल्म जीवन मृत्यु में शामिल किया गया। वह फिल्म बहुत सफल हुई और उसके बाद बहुत से निर्माता अनुबंध लिए मेरा दरवाजा खटखटाने लगे। मुझे पैसे का लालच नहीं था। हालाँकि अपने परिवार के लिए मुझे उसकी जरूरत थी। मैं केवल अच्छी भूमिकाएँ करना चाहती थी।

■ आपके इस कदम को क्या परिवार का समर्थन मिला?

□ समर्थन परस्पर था। उन लोगों ने मेरी मदद की और मैंने उनकी। मेरे दो भाई नक्सलवादी बन गए थे। मेरी माँ ने मुझे लिखा कि मैं उन्हें बचाऊँ और मैंने चाँदी उस्मानी के पड़ोस में एक फ्लेट ले लिया। बाद में यह मकान मैंने पी.एल.देशपांडे से खरीदा। मेरा परिवार बंबई रहने आ गया और फिर कभी वापस नहीं गया।

■ आपने अभी कहा कि आपको अभिनय का कोई अनुभव नहीं था। क्या आपको शुरू में संकोच होता था?



□ नहीं। कैमरे से मुझे कोई डर नहीं लगा। मुझे यह चीज कभी भी रही ही नहीं। आज भी को मुझसे कहता है, कैमरा चालू है, अपने आपक व्यवस्थित कर लो, तो मैं उनसे कहती हूँ मुझ मत कहिए मैं ठीक हूँ। मैंने कैमरामैन से यह कभी नहीं कहा कि किस कोण से मेरी तस्वी अच्छी आएगी।

■ किसी खास कारण से क्या आपने कोई भूमि या फिल्में ठुकराई थीं?

□ 'जीवन मृत्यु' के बाद कई प्रस्ताव आए। य फिल्म उद्योग का नियम है कि टिकट खिड़की प सफल कलाकार के पीछे लोग भागते हैं। कई तर के निर्माता एक हजार से पाँच हजार रुपए लि अनुबंध करने आने लगे। उन सबको मैंने इंका कर दिया। 'रेशमा और शेरा' में मैंने एक छो सी भूमिका स्वीकार की। जल्दी से खूब सारा पै कमा लेने की लालच को मैंने काबू किया। 'दा १९७२ में रिलीज हुई। १९७३ में मैंने गुलजार

शादी की। उन्होंने मुझसे कहा कि शादी के बाद मैं काम नहीं करूँगी, सो मैंने बंद कर दिया। तीन वर्ष तक मैं घर में बैठी रही। मुझे बड़ा अजीब लगता था। मैंने महसूस किया कि मेरा कोई उपयोग ही नहीं है। थोड़ा समय मेरी बेटी ले लेती थी। घर की देखभाल भी करनी पड़ती थी मगर वह सब बहुत मुश्किल था।

■ कृपया अपने अभिनय के समय को विभाजित करें। यानी शादी से पहले और शादी के बाद... मुड़कर देखने पर आपकी कौन सी फिल्में आपको महत्वपूर्ण लगती हैं?

□ व्यावसायिक दृष्टि से **'जीवन-मृत्यु'**। इसमें मेरे काम की सराहना हुई थी। उसके बाद 'शर्मीली' में मेरा डबल रोल था। फिल्म वित्त निगम की २७ डाउन भी अच्छी फिल्म थी। एक असमी भाषा की फिल्म भी मैंने की। मेरी प्राथमिकता अच्छी भूमिका थी, पैसा नहीं। वही आज भी है।

■ क्या आपने कोई रोल अपने अनुपयुक्त मानकर ठुकराए?

□ हाँ। मैंने कई रोल ठुकरा दिए जिनमें मेरे लिए करने को कुछ नहीं था। मुझे याद नहीं, मैंने नाचने गाने की भूमिका कभी की हो। शुरू से ही मैंने गंभीर और महत्वपूर्ण भूमिकाएँ कीं। मेरी एक कमजोरी यह है कि मैं नृत्य नहीं कर सकती... (मैंने कभी किसी वेश्या की भूमिका नहीं की।...)

■ जानबूझकर?

□ नहीं, मेरे पास कोई ऐसी भूमिका लेकर आया ही नहीं। अब मैं सोचती हूँ कि मुझे वैसा करना चाहिए था। मुझे छः महीने के लिए कत्थक या किसी अन्य प्रकार का नृत्य सीख लेना था। अब बुढ़ापे में मैं ऐसा करूँगी?

■ क्या आपको ऐसा लगता है कि नृत्य न आने से आपको कम भूमिकाएँ मिलीं?

□ बिलकुल नहीं। मुझे नाटकीय अभिनेत्री माना जाता है और वहाँ मेरे लिए कोई समस्या नहीं थी। बेशक कई फिल्मों में मैंने थोड़े बहुत हाथ-पैर हिलाए हैं। पटकथा ही वैसी थी। अब मैं नृत्य पूरी गंभीरता से सीखना चाहती हूँ। मैं अक्सर कहती थी कि मुझे कॉमेडी रोल दीजिए, मगर मुझसे कहा जाता था, लोग तुम्हें वैसी भूमिकाओं में स्वीकार नहीं करेंगे। तो नृत्य के बाद कॉमेडी की कमी मैंने महसूस की।

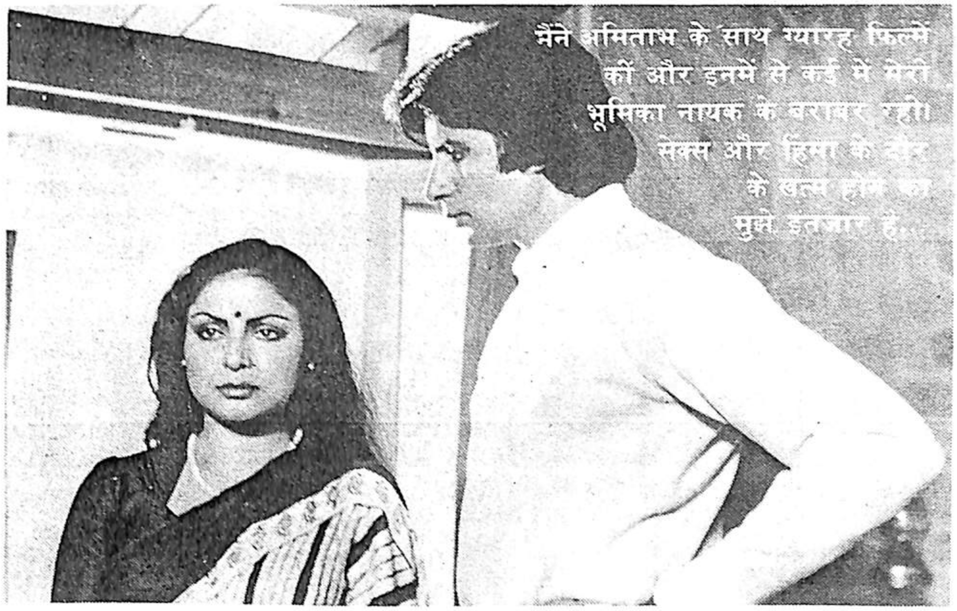


■ फिल्मों में आपकी वापसी भी राजश्री की ही 'तपस्या' फिल्म से हुई?

□ हाँ। राजश्री वालों ने मुझे पहला मौका दिया था, मैंने उनसे कह रखा था कि उनके लिए हर वर्ष एक फिल्म करते हुए मुझे खुशी होगी। एक फिल्म मैं बंगाली में वहाँ के कलाकार संघ के लिए करना चाहती थी। 'चमेली मेम साहब' जैसी कुछ फिल्में मैंने की। 'तपस्या' के बाद फिल्मों की बाढ़ आ गई 'कभी-कभी', 'कसमे वादे', 'हम कदम' आदि।

■ तीन साल के बाद फिर से फिल्मों में जमने में आपको कोई दिक्कत तो नहीं आई?

□ नहीं। बल्कि जो जगह गुलजार से शादी करने की वजह से खाली हुई थी वह खाली ही रही। जैसे मेरा इंतजार कर रही हो। मैं वापस आकर उसी खाँचे में फिट हो गई। मैंने अमिताभ बच्चन के साथ ग्यारह फिल्में कीं और इनमें से कई में मेरी



केंद्रीय या नायक के बराबर की भूमिका थी। इसके बाद फिर एक लंबा अंतराल इन सेक्स और हिंसा पर आधारित फिल्मों के कारण आया। मैं इस दौर के खत्म होने का इंतजार करना चाहती हूँ। फिल्में लगातार फ्लॉप हो रही हैं। मैंने प्यार किया जैसी छोटी तथा एक दूजे के लिए जैसी प्रेम कहानियाँ सफल होने लगी हैं।

■ आपने उन्हीं नायकों के खिलाफ माँ की भूमिकाएँ स्वीकार की जिनके साथ पहले रोमांटिक रोल किए थे। क्या आपको बूढ़ा कहे जाने या टाइप हो जाने का डर नहीं है?

□ नहीं। जहाँ भी अभिनय की गुंजाइश होती है वहाँ कोई भी सच्ची अभिनेत्री अपनी कला का प्रदर्शन कर सकती है। मैं माँ की भूमिका कर रही हूँ...इसका मतलब उन, हमेशा आसूँ बहाने वाली भूमिकाओं से नहीं है। पुराने जमाने में माँ की भूमिकाओं में क्या होता था? एक बूढ़ी औरत, जो हमेशा रोती रहती है, प्रार्थना करती है। मंदिर जाती है तथ अपनी बहू द्वारा सताई जाती है। मैं इस तरह की भूमिकाएँ नहीं कर रही हूँ। दृढ़ इच्छाशक्ति वाले पात्र या जहाँ औरत की केंद्रीय भूमिका हो ऐसी भूमिकाएँ कर रही हूँ। यदि मेरा पात्र दिलचस्प है, तो इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि मैं माँ का रोल कर रही हूँ या दादी का।

■ कॉमेडी भूमिकाएँ तो आप नहीं कर सकीं। मगर आपकी फिल्मों में आपकी प्रिय भूमिकाएँ कौन सी हैं?

□ यह कहना मुश्किल है। कई बार मुझे लगता है, **'दूसरा आदमी'** अच्छी फिल्म थी। उसमें मैंने कुछ अलग हटकर किया। 'तपस्या' तथा कुछ अन्य भूमिकाएँ लिखी हुई ही कुछ अच्छी थीं। उनका श्रेय मैं नहीं लेती। स्पष्ट है कि **'परमा'** मेरी सबसे बोल्ड और विवादास्पद फिल्म थी। मैं सोचती हूँ हर किसी ने वह फिल्म देखी मगर पति और पत्नियाँ उसे देखने (हँसकर) अलग-अलग गए। एक साथ नहीं।

■ फिल्म उद्योग में वे कौन से लोग हैं जिनकी आप इज्जत करती हैं?

□ कह नहीं सकती। लोग अब बहुत बदल गए हैं। गुरुदत्त और विमलरॉय जैसे निर्देशकों की कमी मुझे हमेशा महसूस होती रहती है। कई बार मुझे अफसोस होता है कि मैं फिल्मों में उनकी मृत्यु से पहले क्यों नहीं आई। मगर मैंने कभी किसी निर्देशक के पास जाकर नहीं कहा कि मैं तुम्हारे साथ काम करना चाहती हूँ।

■ आप टेलीविजन के बारे में क्या सोचती हैं?

□ ओह, नहीं। मैं खुद को इतना ज्यादा उजागर नहीं करना चाहती। मुझे अपनी प्राइवेसी पसंद है। टेलीविजन मेरे लिए नहीं है। वैसे फिल्म विकास निगम की देवदासियों पर बनी एक फिल्म में मेरी दिलचस्प भूमिका है।

■ क्या गुलजार ने आपको अपनी फिल्म में अभिनय करने के लिए आमंत्रित नहीं किया?

□ अभी तक तो नहीं। मैं अब भी इंतजार कर रही हूँ। मैंने अभिनय करना छोड़ा नहीं है। दरअसल इस समय गलत किस्म की फिल्में बन रही हैं। यह दौर भी गुजर जाएगा। मैं इंतजार करूँगी। ■

Gram : { "BHARAT" BIRLAGRAM }   Phone : { 2371, 2372 & 2373 NAGDA }

With Best Compliments From :

BHARAT COMMERCE AND INDUSTRIES LIMITED

P. O. BIRLAGRAM : NAGDA (M. P.)

Manufacturers of : Quality 'NAGDA' Staple, Synthetic & Fancy Yarns in the vide range of counts in Grey & Dyed.

Regd. & Head Office : 'Surya Kiran', 5th Floor, 19, Kasturba Gandhi Marg, NEW DELHI - 110 001.

रेखा

कितनी बादल कितनी बिजली

अजातशत्रु

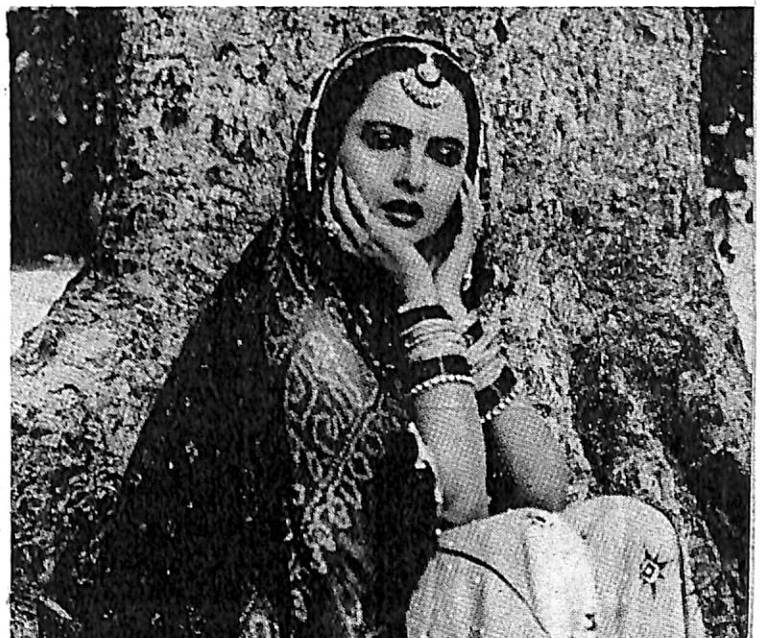
फिल्म अभिनेत्री रेखा को पहेली कहा जाता है। मगर पहेली शब्द स्वयं में एक और अकेला होते हुए भी एक सीढ़ी की तरह है जिसमें कई सोपान होते हैं। ये सोपान नीचे से ऊपर की तरफ जाते हैं। लिहाजा जब आप किसी औरत को पहेली कह रहे हैं तो आप उस शब्द और उसके अर्थ के किस सोपान पर खड़े होकर पहेली शब्द का उपयोग कर रहे हैं, पाठक के लिए तय करना और वक्ता के हिसाब से उसका अर्थ लगाना मुश्किल हो सकता है। स्वयं पहेलियाँ कई किस्म की हो सकती हैं जैसे स्वयं रेखा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में कई किस्म की हो सकती है और वह दूसरी पहेलीनुमा औरत से अलग किसी अन्य किस्म की पहेली हो सकती है!

लिहाजा तय करना पड़ेगा कि रेखा किस किस्म की पहेली है। सामान्य अर्थ में किसी शख्स को रहस्यमय या कठिन इस अर्थ में कहा जाता है कि वह बहुत कम बोलता है। अपने मन की बात किसी को नहीं बतलाता। उसके मिजाज के बारे में तय नहीं रहता कि वह कब क्या कर डाले और उसके मूडों के तेज परिवर्तनों का अनुमान लगाना मुश्किल हो। रेखा इन अर्थों में पहेली होते हुए भी कुछ अधिक बेबूझ है। वह वाचाल होते हुए भी गहरे मौन में है। वह एक सादा सा बर्तन या झाड़ का पत्ता है जिस पर विचार करते जाइए, तो वह बड़ा होता जाता है, फैलता जाता है और अंत में इतना पारदर्शी और आसान हो जाता है कि हम बुद्धि के मोरपंख से उसे छूकर भी शब्दों की पाणिग्रहणी हल्दी नहीं लगा सकते।

रेखा के बारे में दिलचस्प सच्चाई यह है कि वह एक 'नेचरल' अभिनेत्री है। शिक्षा से उसका गहरा रिश्ता नहीं। अभिनय के किसी स्कूल के बारे में वह नहीं जानती। देश-विदेश के बड़े निर्देशकों तथा अभिनेताओं पर होने वाली बहस में उसकी रुचि नहीं। उसने जीवन को सीधे देखा है। बगैर तर्क-वितर्क के वह जानती है कि पटकथा उससे क्या चाहती है?

रेखा अबूझ इस मामले में है कि वह काफी अमूर्त है। कुंठा, भीतरी सिलगन और इन्टेंसिटी मिलकर उसे एक ऐसा दावानल बनाते हैं जो समंदर की गर्भ में फौलाद की भट्टी सा दहकता रहा है। रेखा को देखकर और सोचकर एक ऐसी औरत का चित्र बनता है जिसका निजी संसार बहुत बड़ा और प्रायवेट है। जिसमें बहुत सी ज्वाला, खीझ और सताया हुआ अकेलापन कैद है। जिसमें नारीगत स्वाभिमान से उत्पन्न ठंडा आक्रोश, तीखी संवेदनशीलता से उत्पन्न इन्टेंसिटी और कुचले हुए भोले बचपन से उत्पन्न कभी तृप्त न होने वाली और किसी कीमत पर तृप्त न होने वाली अस्त-व्यस्तता है। बाद में महज दुनियादारी और आवश्यक सामाजिकता के कारण रेखा ने अपने पर शांत, संतुलित और शिष्ट महिला का सफेद बुरका भले ओढ़ लिया हो, मगर उसके रूप की ठंडी चाँदनी के पीछे अमूर्त गुस्से की रोहिणी बराबर धधकती रहती है। वह बर्फ का एक लावेदार चाकू मालूम पड़ती है, जिसकी किनारों पर पोटेशियम साइनाइड लेप दिया गया हो। ऐसी आकर्षक विषकन्या, जो शायद मरने-मारने के अलावा कुछ नहीं जानती। ऐसी प्रखर आत्महत्या, जो अपने से बाहर अनेक हत्याएँ करके और भी अधिक मरना पसंद करती है और इस तरह जीने की लीज को और भी बढ़ा लेती है।

जरूरी नहीं कि जैसा बताया जा रहा है, रेखा हूबहू वैसी ही हो। पर अंदाज और फेंटेसियाँ गढ़कर ही हम किसी प्रतिभा के उलझे रेशों को अधिक से अधिक मेग्नीफाई कर सकते हैं। तो रेखा एक ऐसे प्रभाव की देवी है जो ग्लेसियर की तरह न सिर्फ कम सतह और ज्यादा गहराई है बल्कि ग्लेसियर के बुनियादी मिजाज के खिलाफ आग्नेय और दहनशील भी है। उसमें कुछ छूटा हुआ लगता है जिसे रेखा फिर कभी नहीं भर पाई। उसमें कुछ ऐसी अमूर्तता बचती है जिसे कोई पुरुष, प्रेमी, पति, पुत्र, पिता और भाई के रूप में कभी छू नहीं पाएगा। लोहे की इस चादर के पीछे मकड़ी का एक कोमल जाला है जो हस्तिपतन को भी झेल सकता है। रेखा अपने से ज्यादा है और अपने नियंत्रण से बाहर है।



इस बर्फ और आग के पीछे तीन चीजें खोजी जा सकती हैं। रेखा का अपना जन्मजात स्वभाव। उसका बचपन और आत्मवैशिष्ट्य की तीखी चेतना से उत्पन्न स्वयं का सामाजिक नकार। जहाँ तक स्वभाव का सवाल है, हम उस पर कमेंट नहीं कर सकते, क्योंकि आदमी की शुरूआत के लिए उसका खास जन्मजात स्वभाव होना जरूरी है। इसके अभाव में स्वयं कुंठा या आनंद या प्रतिक्रियाएँ पैदा नहीं हो सकतीं। लिहाजा यह मान लेने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि रेखा लाखों किस्म की होती और उसके जीवन की परिस्थितियाँ लाखों भिन्न-किस्म की होतीं, तो भी बुनियादी रेखा आज भी वही और उतनी होती। यह मानना गलत है कि परिस्थितियाँ मानव स्वभाव को गढ़ती हैं क्योंकि परिस्थितियों की व्याख्या के लिए भी पहले से मानव स्वभाव चाहिए। उसके बिना परिस्थितियों को प्रभावित करना, उनसे प्रभावित होना और स्वभाव तथा परिस्थितियों का उत्क्रमण करके नजात की ओर बढ़ना मुमकिन नहीं हो सकता। लिहाजा रेखा यानी एक गमगीन, खोई हुई, सघन औरत जिसे अमिताभ मिले या न मिले, बर्फ की आग यूँ भी धधकती रहती। दूसरी तरफ, रेखा को गमगीन, निर्मम और मायावी बनाए रखने में उसके बचपन का बहुत बड़ा हाथ है। कल्पना कीजिए, एक

खेलंदड़ी, जिंदादिल, शरारती लड़की और दूसरी तरफ पिता के प्यार से महरूम। कल्पना कीजिए, विज्ञान और शिक्षा के दौर में बड़ी होती बालिका और अपनी माँ नामक औरत का एक मर्द (अपनी माँ के पति) द्वारा परित्याग और तिरस्कार देखती एक बुनियादी स्त्री। और इसी में जोड़ लीजिए, उसकी माँ का सतत् संघर्ष, जिसमें रेखा ने औरत का अकेलापन, साहस और पुरुषरहित आत्मनिर्भरता का एक लंबा सफर देखा। इसमें उसका अपनी माँ के साथ हो जाना, पिता के खिलाफ पड़ जाना और फिर जनरल तौर पर पुरुष विमुख एक आत्माभिमानी नारी हो जाना स्वाभाविक था। यह सब धीरे-धीरे और अपने आप हुआ।

तीसरा कारण, जिसने रेखा को शायद अधिक अतृप्त, अव्यवस्थित और जल्दबाज बनाए रखा, उसका यह अहसास था कि वह आर्थिक और सामाजिक तौर पर एक विशिष्ट औरत है और यह विशिष्टता साधारण तथा पराई शर्तों पर खंडित नहीं की जा सकती। तब उसने तन-मन और परिस्थितियों की मार से प्यार चाहे जितने किए हों, उसे अपनी विशिष्टता के समक्ष ऐसी पुरुष विशिष्टता की तलाश थी, जो उसकी आत्मवत्ता को छीने बिना उसे जीत ले।

ऐसे प्रतिक्रियाजनित हवाई सपने यूँ भी पूरे नहीं होते। इसलिए आहत बचपन, विवश जवानी और स्वाभिमानी नारीत्व का जटिल विरोधाभास सीधा-सादा पुरुष समाधान पा नहीं सका। रेखा ने चाहे जितना आत्मविश्लेषण किया हो, चाहे जितनी समझौतापरस्त बनी हो, उसके लिए अवचेतन में यह भूलना मुश्किल था कि अब वह सिर्फ रेखा नहीं, अपनी शर्तें रखकर अपना भविष्य तय करने वाली एक समर्थ औरत है। तब वह औरत के रूप में चाहे जितनी विजयी रही हो, एक जन्मना माँ के रूप में उतनी उदास भी होती गई। जिंदगी सरल रेखा कभी नहीं होती।

मगर इस तमाम पृष्ठभूमि के साथ हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि हम जिस शख्स के बारे में बात कर रहे हैं, वह कलाकार भी है। एक उच्च कोटि की कलाकार। ऐसा कलाकार जिसमें इन्साइट, इन्टेंसिटी और इन्स्टिक्ट का फोर्स भरपूर है। जिसमें प्रतिभाओं का सहज अंतर्द्वंद्व एक शाप और वरदान के रूप में लगातार मौजूद है। एक ऐसी ट्रेजी कॉमेडी, जिसे सब कुछ पाकर और देकर भी लगातार अतृप्त रहना है और जिसको चैन सिर्फ बिखराव से मिल सकता है क्योंकि तूफान सिर्फ तूफान रहकर ही अपनी मर्यादा में शांतिपूर्वक रह सकता है। मेरा ख्याल है कि रेखा की रहस्यमयता, चिर अतृप्ति और आत्मिक यौवन का कारण यही है कि वह सोने के काँटों पर सोती है और चाँदी की तृणों का रस पीती है। वह उन तमाम प्रतिभाशाली अभिनेत्रियों की श्रेणी में आती है जो दुनिया में कहीं भी कभी भी स्थूल रूप में सुखी नहीं रह सकीं और जिनकी रचनात्मक आग ही उनकी आत्मा की सुरक्षा का ठंडा मलहम बना रहा। रेखा की सारी ट्रेजेडी अंततः एक कलाकार की आदिम ट्रेजेडी है और रेखा गलत नहीं है, अगर वह कहती है- 'मैं एक भरपूर औरत हूँ और पूरी सुखी हूँ।'

अभिनेत्री के रूप में रेखा बेजोड़ है। कथानक और किरदार की अंदरूनी माँगों के साथ-साथ वह ड्रामे के इमोशन को एक सघन और निर्वैयक्तिक ऊँचाई देने में सफल है। चीख-पुकार, रोना-धोना और मेलोड्रामा रचना उसके कलाकार की फितरत में नहीं है। वह लाउड होने में विश्वास नहीं करती क्योंकि सुख और दुःख की स्वयं में एक गरिमा होती है। वह शब्दों और भंगिमाओं की पूरी इकानॉमी के साथ स्थिर अंदाज और स्थिर आँखों से बर्फ को आग और आग को बर्फ में बदलते हुए अनभ्रपात कर सकती है। उसके अभिनय की मौजूदगी में आप संयमित होकर ड्रामे के इमोशन को जीते हैं और एक आंतरिक सन्नाटे के साथ डिबिया में बंद तूफान के साथ सरकते हैं। रेखा असर छोड़ती है, उस बरगद का, जो गमले में रोप दिया है और जो अपने धीमे इवलूशन के साथ गमले की दीवारों को दरकाने लगा है। इस टूटते जाने और टूट चुकने के बीच जो बारीक तिड़क है, अनदेखी और स्पष्ट, उस वेदनामय निःशब्द पीड़ा का नाम रेखा है। उमरावजान अदा का एक दृश्य ले लीजिए। इन्टेंसिटी के उच्चतम स्केल पर हमारी भारतीय हिंदी फिल्मों का एक अविस्मरणीय जीवंत सीन है। अर्थ और काश के तेजाबी सीन भी उसका मुकाबला नहीं कर पाते। उमरावजान बहुत शिद्दत से अपने प्रेमी से प्रेम करती है। उसका प्रेम एक कवच है जिसके भीतर वह जीती है। उसके जज्बात का ठंडा लावा किसी मंदिर का गर्भगृह है जिसमें शरण लेकर एक तवायफ अपनी इश्किया पाकीजगी के साथ साँस लेती है। यह एक महामृत्युंजय मंत्र है, जिसे अपने लिए सिद्ध करके उमरावजान स्वयं को और अपने प्रेमी को भूल गई है। एक अमृत और जहर पचाकर वह इतनी शांत हो गई है कि उसके प्यार का तल नहीं खोजा जा सकता। उमराव के प्यार





रेखा

की यह आग महबूब की समझ के बहुत आगे है। यही कारण है कि यह आसानी से कह देता है कि उसकी सगाई होने जा रही है। उमराव के लिए यह स्थिति असहनीय है। असहनीय इसलिए नहीं कि तवायफ समझी जाने वाली एक औरत का पाक प्रेम महज विद्रूप साबित हुआ। बल्कि इसलिए कि उस प्रेम के कारण ही वह स्वयं को पतुरिया मानने के कष्ट से ऊपर उठी थी। उसे लगा, उसने सिर्फ अपनी दुनिया नहीं खो दी, एक गौरव भी खो दिया। यह दुबारा तवायफ बनने की पीड़ा थी। उस अकथ वेदना में, अभिव्यक्ति को तंग कर चुके उस जलजले में उमराव का समूचा बदन और वजूद सिर्फ दो हाथ रह जाते हैं जो आगे बढ़कर प्रेमी के कुर्ते को चीर देते हैं। यह संपूर्ण जिस्म के खिलाफ जिस्म की एक यांत्रिक हरकत थी और फिजिकल ऑर्गेनिज्म का यह ब्रुटल, एनीमल फोर्स ही उस इन्टेंस रेखा और उमराव जान की अमूर्त पीड़ा को एक जिस्मानी चीख दे देता था। मेरा ख्याल है, रेखा के फिल्मी कैरियर का वह पहला और आखिरी सीन था, जिसमें रेखा ने अपने ब्रुटल, एनीमल फोर्स का तहखाना खोल दिया था और दर्शकों से मंजूर करवा लिया था कि उमराव जान और रेखा, व रेखाऔर उमराव एक. हैं। उक्त सीन यह बतलाने के लिए काफी था कि औरत के प्यार की हद और उस बेकली की सीमा क्या होती है। रेखा ने दिग्गज फिल्म समालोचकों से मनवा लिया था कि वायलेंस की कविता और कविता के वायलेंस को गढ़ने में उसका सानी नहीं। निजी रेखा को भी उस सीन में हमने जैसे पहली बार देखा।

इसी तरह आ जाइए फिल्म **विजयेता** के टोटल प्रभाव पर जो रेखा के किरदार की नैरंतरिक मनोस्थिति को लेकर गठित होता है। गहन अवसाद और अकथनीय दर्द की गहरी परत जो उस किरदार के जीवन में है, खामोश और गमगीन रेखा के मूवमेंट्स में बखूबी रूपायित होता है। आमतौर पर ऐसे उदास सीनों में वही स्टॉक प्रतीकों का उपयोग किया जाता है जिनके बाहर निर्देशक, अभिनेता और कैमरामेन नहीं जा सकते। जैसे कम बोलना, नजरें नीची रखना, धीरे-धीरे चलना, खिड़की या दरवाजे की चौखट पकड़कर शून्य में ताकते रहना तथा पाँव के नख से चुपचाप

◆◆◆

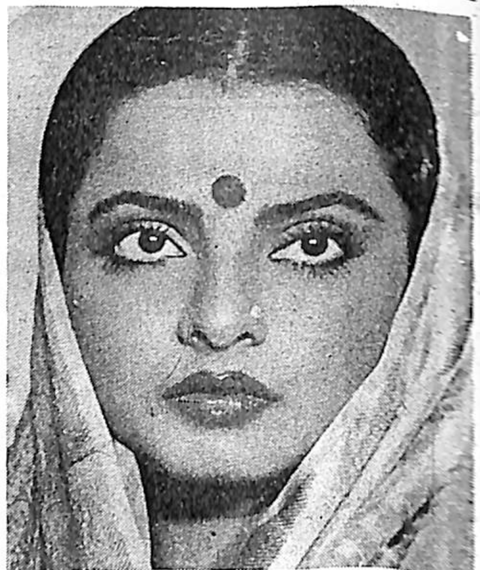
रेखा एक विराट जलप्रपात है जिसका बहुत सा पानी बगैर बिजली में बदले बह गया। उसे न कोई राजकपूर मिला, न कोई गुरुदत्त और न महान फिल्मकथाओं का किरदार। वह सिर्फ उमराव के कारण अविस्मरणीय है या फिर एक चुंबन और चार शादियों की चर्चा के कारण। हिंदुस्तान के फिल्म बाजार में चंदन की एक आग भरी बट्टी भव्यता के ऐशगाह के दरवाजे का गुटका बनकर रह गई। एक अविस्मरणीय अदाकारा की शक्ल स्वीमिंग-पूलों के पानी पर लिखी गई है।

जमीन खोदना आदि। मगर रेखा कमाल करती है। वह महज एक तकन से और उदास सूनी आँखों से पात्र की तन्हाई और उँसासें उतार देती है। ऐसा कैसे संभव होता है? कारण स्पष्ट है और सिर्फ

फिल्म विजेता (१९८२) में शशिकपूर-रेखा



एक है। गहराई से महसूस करने की क्षमता। कोई बता रहा था कि रेखा जब उदासी और वेदना के शॉट देती है तो उसकी त्वचा तक का रंग बदल जाता है। यह असंभव नहीं होगा। अनुभूति की शिद्दत तंतु-तंतु तक मुरझा सकती है। मुझे याद है



अकेली रेखा के कारण विजयेता में एक प्रकार का रचनात्मक डिस्कम्फर्ट पैदा होता है और सिनेमा हॉल में एक फौलादी सन्नाटा छाया रहता है।

दर्द की चितेरी मीना कुमारी, नरगिस और राखी भी रही हैं। पर रेखा अधिक एलीमेंटल और आदिम है। उसमें एक अनएडल्ट्रेटेड प्राथमिक वेदना है, जो घने जंगलों और पहाड़ी नालों के ज्यादा करीब है। उसमें आत्मघात, परपीड़न और घायल बाधन की तटस्थता एक साथ है। उसकी वेदना न शहर से आती है, न गाँव से और न किसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से। वह एक पवि वानस्पतिक वेदना है जिसका सुस्पष्ट रूप हम एमिली ब्रांटे और वदरिंग हाइट्स की कैथरीन में देखते हैं।

कभी-कभी सिद्धांत की हद तक यह मानने को मन करता है कि जरूर अभिनय और जीवन में कहीं न कहीं साम्य होगा। एक कलाकार यदि किसी किरदार को बखूबी अदा कर जाता है तो इसका मतलब है कि कलाकार के बौद्धिक और भावनात्मक जीवन में तथा किरदार की आंतरिक बनावट में एक साम्य जरूर है। इस नाते दिलीप कुमार और देवदास में कहीं इथॉस की बुनियादी समानता है। तब अकारण नहीं है कि रेखा जिन किरदारों के कारण लोकप्रिय हुई, वे रेखा की मानसिक बनावट से काफी करीबी रखते हैं। **उत्सव** का रोल अगर उसकी देहयष्टि के कारण मिला तो दासी का रोल उसके अवसादपूर्ण मिजाज के कारण मिला। जीवन में प्यार करना, खोते रहना और अकेले पड़ जाना अगर उसकी परिस्थितिजन्य नियति है तो उसके किरदार भी इन्हीं फीचरों के साथ परदे पर आते हैं। पूर्ण निगेटिव केपेबिलिटी मिथ है।

रेखा के बारे में दिलचस्प सच्चाई यह भी है कि वह एक नेचरल अभिनेत्री है। शिक्षा तथा

अकेडेमिक्स से उसका गहरा रिश्ता नहीं। अभिनय के किसी स्कूल के बारे में वह नहीं जानती। देश-विदेश के बड़े निर्देशकों और अभिनेताओं पर होने वाली बहसों में उसकी रुचि नहीं। उसने जीवन को सीधा देखा है। हर बार अपनी इन्स्टिंक्ट और कॉमनसेंस से काम लिया है। बगैर तर्क-वितर्क किए वह जानती है कि पटकथा उससे क्या चाहती है और कैमरे के सामने वह बड़ी सहजता से आवश्यक इमोशन को चित्रित कर जाती है। उसके पीक सीन सहजता और इन्टेंसिटी लिए हुए होते हैं, ऐसे कि उनमें झटका, मेलोड्रामा या स्थूलता नहीं होती। जस्ट ए ग्रेजुवल इवलूशन, और हल्का सा पलकपात। सीन में जान पड़ गई।

मगर रेखा चूकी है। और कई मुद्दों पर चूकी है। उच्च कोटि की अदाकार होते हुए भी वह महान नहीं। एक उमरावजान को छोड़कर कोई फिल्म उसके पल्ले नहीं जो उसकी अभिनय क्षमता को खींचकर शीर्षस्थ रेखांकन दे पाती। उसने पैसे से समझौता किया। फैशनपरस्ती से समझौता किया। अपने को खबर में रखने के लिए कलंक कथाओं से समझौता किया। उसने एक सनकी अभिनेत्री होने का स्वांग भी लादा। मगर ये सब गिमिक्स थे। इससे उसका गहरा हित न होना था।

दूसरी ओर, हमारी हिंदी फिल्में और हिंदी निर्माता निर्देशक ऐसे होते हैं कि हम उनकी तरफ से असरदार फिल्मकथा और अविस्मरणीय किरदारों की उम्मीद नहीं करते। अमिताभ और रेखा जैसे ग्रेट और संयमित कलाकार फेंटेसी रोल करते-करते बूढ़े हो जाते हैं, पर उन्हें अपना लाइफ टाइम रोल नहीं मिलता। नतीजा यह होता है कि तृतीय और द्वितीय दर्जे की साधारण फिल्में और उसी में थोड़े बहुत करतब दिखाकर कलाकार बाजार से बाहर हो जाता है। इस व्यावसायिक रेले में कहाँ और कब यह सस्तेपन तथा बाजारूपन का शिकार हो जाता है और किस तरह उसकी समझने और सीखने की मानसिक तैयारियाँ समाप्त हो जाती हैं- इस विमानवीकरण और सांस्कृतिक अवमूल्यन का उसे पता नहीं चलता। रेखा भी इस जलजले में बहकर रही। न्यूज में रहने की बंबइया बीमारी उसे बंबइया अभिनेत्रियों में श्रेष्ठ से अधिक कुछ नहीं बना सकी। वह एक चटपटा अजूबा है। जो सामान्य फिल्म दर्शक को चमत्कृत करके उसी पान की दुकान पर छोड़ देता है और संभवतः रेखा ने भी एक अभिनेत्री की हैसियत से इससे अधिक नहीं पाना चाहा। मेरा ख्याल है अब भी वह एक विराट जलप्रपात है जिसका बहुत सा पानी बगैर बिजली में बदले बेकार बह रहा है। यह भी बुरा संयोग है कि उसे न अपना राजकपूर मिला, न गुरुदत्त और न महान फिल्मकथाओं, किरदारों का दौर। यह सिर्फ एक उमरांव के कारण अविस्मरणीय है और संभवतः एक चुंबन और चार शादियों के कारण।

यानी हिंदुस्तानी फिल्म बाजार में चंदन की एक आग भरी बट्टी भव्यता के ऐशगाह के दरवाजे का गुटका बनकर रह गई। एक इतिहास, जिसे जल्द भुला दिया जाएगा। एक अविस्मरणीय अदाकारा, जिसकी शक्ल स्वीमिंग पूलों के पानी पर लिखी गई। ■

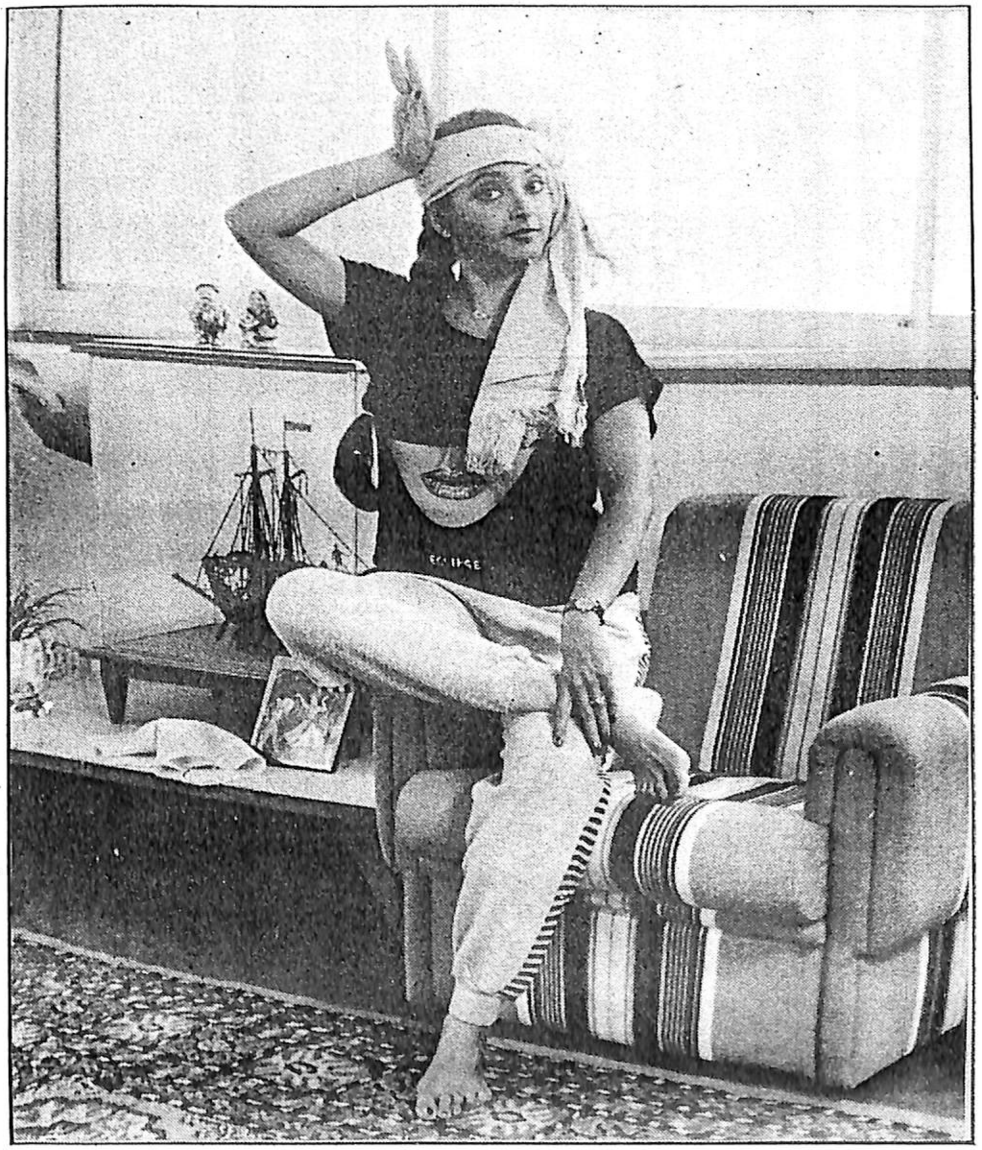
रेखा

'मैं बहुत खुशकिस्मत हूँ'

विगत मार्च महीने के एक शांत इतवार को रेखा ने दिल्ली के एक व्यापारी मुकेश अग्रवाल से बंबई के एक मंदिर में शादी कर ली। शादी की रस्म के तत्काल बाद उसने टेलीफोन पर अपने कुछ मित्रों को सूचित किया कि वह हनीमून मनाने योरप तथा कुछ अन्य चुनिंदा विदेशी स्थलों के लिए रवाना हो रही है। अपने काम पर वापस लौटकर रेखा ने बतलाया कि वह फिल्मों में अभिनय करना जारी रखेगी। क्योंकि उसे अभी बहुत दूर तक जाना है।

कई बरसों पहले मद्रास स्थित अपने छोटे से घर से भानुरेखा गणेशन फिल्म और ग्लेमर की नगरी बंबई में आई। यद्यपि उसकी पहली ही फिल्म **'सावन भादो'** को जोरदार सफलता मिली, तथापि उसके श्याम वर्ष की वजह से उसे प्रेस ने **'काली बतख'** का खिताब दे डाला। ज्यों-ज्यों रेखा की फिल्में सफल होती गई, त्यों-त्यों वे अपनी भूमिकाएँ सावधानी से चुनने लगीं और पत्रकारों ने महसूस किया कि उनका सही मूल्यांकन करने में उनसे भूल हुई थी।

निर्माताओं ने भानुरेखा को एक नया नाम और पहचान दी। अब वे रेखा थीं जो कि खूबसूरत और प्रतिभाशाली अभिनेत्री थी। दुर्भाग्यवश रेखा ने जल्द ही यह महसूस किया कि वे अभिनय को आश्चर्यजनक तेजी से साथ सीख रही थीं। इंसानी



"जीवन में हम प्यार एक ही बार करते हैं। मैंने भी अपने हिस्से की मोहब्बतें खूब कर ली हैं। ऐसे कितने लोग हैं, जो पूरी ईमानदारी से यह दावा कर सकते हों कि वे एक सप्ताह, एक महीना, एक वर्ष से ज्यादा समय तक किसी को पूरी गहराई से प्यार कर सकते हों? मैंने उसे लगातार बारह साल तक महसूस किया है। क्या मैं दुनिया की सबसे खुशकिस्मत औरत नहीं हूँ।"

रिश्तों के बारे में उन्हें अभी बहुत कुछ सीखना था। 'एलान' के निर्माण के दौरान वे विनोद मेहरा से घनिष्ठ हुई और बाद में पछताईं। किरण कुमार के साथ काम करते हुए वे उनसे भी प्रेम प्रसंग चला बैठीं। जो कि केवल दो तीन साल चला।

इसी बीच रेखा जो कि अब अपने कैरियर पर काफी ध्यान दे रही थीं ने महसूस किया कि रद्दी व्यापारिक फिल्मों में काम करने से उन्हें कोई फायदा नहीं हो रहा है। अपने एक करीबी मित्र से उन्होंने कहा था, "कितने नादान हैं ये निर्मातागण जो नकल तो अमेरिकन फिल्मों की करना चाहते हैं, मगर जब भी कोई नारी उन्मुख फिल्म बनाने की बात आती है, वे भागते फिरते हैं।"

इस समय तक रेखा जितेन्द्र और विनोद खन्ना से लेकर राजेश खन्ना और धर्मेंद्र तक सभी लोकप्रिय सितारों के साथ अभिनय कर चुकी थीं। उन्हें व्यापारिक रूप से सफल स्टार मान लिया गया था। मगर **अमिताभ बच्चन** के साथ नायिका बनने की उनकी महत्वाकांक्षा पूरी होना अभी बाकी थी। अंत में उनके साथ उन्होंने **'मि. नटवरलाल'** साइन की। इसकी सफलता के बाद एक-के-बाद एक, अमिताभ के साथ उनकी 'मुकद्दर का सिकंदर', 'राम बलराम', 'सुहाग', 'सिलसिला' तथा 'खून-पसीना' जैसी कई फिल्में आईं। इनमें से अधिकांश 'हिट' हुईं। उन्हें कई फिल्मों में एक साथ लेने के प्रस्ताव आए और कहा जाता है कि इन्हीं के कारण वे एक-दूसरे के ज्यादा नजदीक आ गए।

खुद रेखा के अनुसार उन्हें अपनी असली प्रतिभा का पता **'खूबसूरत'** और **'उमरावजान'** से चला। उन्हें अपना अभिनय कौशल दिखाने का खूब अवसर मिला। इसके साथ ही वे अपनी भूमिका चुनने के मामले में बहुत सतर्क हो गईं। निर्मातागण उनमें छुपे स्टार की कमी महसूस करने लगे। मि. इंडिया की सफलता के बाद रेखा ने 'मैडम एँक्स' फिल्म साइन की जिसमें वे अदृश्य मानव के महिला संस्करण की भूमिका कर रही थीं। इस समय तक उनकी 'जाल' फिल्म भी सुपरहिट हो गई और वे 'खून भरी माँग' से भी ऐसी ही उम्मीद कर रही थीं। संयोगवश यह फिल्म भी बहुत सफल हुई और रेखा ने पहले नंबर की स्थिति के लिए अपना सशक्त दावा श्रीदेवी, जयाप्रदा और मीनाक्षी शेषाद्रि के होते हुए प्रस्तुत कर दिया।

रेखा काफी व्यस्त रहने के बावजूद अपने खाली समय में अपने मित्रों से काफी मिलती-जुलती रही हैं। इस बीच उनकी बहन ने भी अभिनेता तेज सप्रू से शादी कर ली और उनके मित्रों ने उन पर भी ऐसा ही करने का दबाव डालना शुरू कर दिया। गत वर्ष किसी समय उनकी मित्र बीना रमानी की मुलाकात दिल्ली में मुकेश अग्रवाल से हुई और उनको लगा कि रेखा और मुकेश की रुचियाँ एक जैसी हैं। सारी शंकाएँ दूर करने के बाद संबंध तय हो गया।

"जीवन में हम प्यार एक ही बार करते हैं। मैंने भी अपने हिस्से की मोहब्बतें खूब कर लीं हैं।" हाल ही में एक संक्षिप्त मुलाकात में रेखा ने कहा, "ऐसे कितने लोग हैं जो पूरी ईमानदारी से यह दावा कर सकते हों कि वे एक सप्ताह, एक महीना, एक वर्ष से ज्यादा समय तक भी किसी को पूरी गहराई से प्यार कर सकते हों? मैंने उसे लगातार बारह वर्ष तक महसूस किया है। क्या मैं दुनिया की सबसे खुशकिस्मत औरत नहीं हूँ? मैंने इस तरह का दावा करते किसी और को नहीं देखा।"

फिल्म जुदाई (१९८०) में जीतेन्द्र-रेखा



जहाँ तक उनके भविष्य का सवाल है रेखा का कहना है कि उसके बारे में उन्होंने कभी नहीं सोचा न कभी कोई योजना बनाई। बेशक मुकेश के साथ अपनी शादी के बारे में वे बड़ी सतर्कता से कहती हैं "उन्हें परम्परागत रूप से हैंडसम तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे थोड़े ठिगने और मोटे हैं, मगर वे एक भले इंसान हैं।" शादी के एक रोज पहले उन्होंने कहा था, "मुझे पता है कि मेरे लिए अपने आप को पति के साथ एडजस्ट करना आसान नहीं होगा क्योंकि काफी लंबे समय से आजादी के साथ रहने की मुझे आदत पड़ी हुई है। मगर मुझे यह भी पता है कि यदि कोई आदमी इस काबिल है, तो मैं उसकी खातिर अपने आपको बदल सकती हूँ। स्वभाव से मैं बहुत उदार और सहज व्यक्ति हूँ तथा त्याग करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती। एक जमाने में मेरा ख्याल था कि मैं किसी व्यक्ति को उसकी आँखों से भाँप लेती हूँ। मैं चेहरे पढ़ना अच्छी तरह जानती हूँ। मेरी स्वप्रेरणा शायद ही गलत होती है। मैंने जिस क्षण मुकेश को देखा मैं समझ गई कि वही मेरे लिए सही व्यक्ति हैं।"

प्यार और मानवीय रिश्तों के बार में रेखा के पास अनुभवों का विशाल भंडार है। "अधिकांश पुरुष मुझसे डर जाते हैं। सही व्यक्ति के लिए मुझ तक पहुँच कर शादी का प्रस्ताव रखना बहुत ही हिम्मत का काम है। मेरे ख्याल से अकेला अमीर और शक्तिशाली होने का यह सबसे बड़ा नुकसान है। कई बार मैं डर जाती थी कि मुझे मेरा आदर्श व्यक्ति मिलेगा भी या नहीं। मैंने सोच लिया था कि यदि मुझे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला तो सबसे अच्छा यही होगा कि मैं अविवाहित ही रहूँ। मगर समझौता मैं कभी नहीं करती। मैं वैसे बहुत स्नेह करने वाली व्यक्ति हूँ। हो सकता है मैं उसका प्रदर्शन ज्यादा न कर पाऊँ पर दिल से मैं रोमांटिक हूँ। जिंदगी में इतना कुछ अनुभव कर लेने के बाद किसी पुरुष का हमेशा साथ न रहना मुझे अब बहुत बड़ी कमी लगती है। रोज सुबह उठकर उसका चेहरा देखने जैसी चीजों का अपना महत्व है।"

● **दीपक नास्ता**



क्लासिक-ब्यूटी : जया प्रदा

● इंटरव्यू: दीपक नास्ता

लगभग तीस से भी ज्यादा फिल्मों में काम करने के बाद जया प्रदा उस मुकाम पर पहुँच गई हैं, जहाँ उन्हें दौलत और शोहरत की और जरूरत नहीं रह गई है। एक समझदार कारोबारी की तरह उन्होंने अपनी कमाई को अच्छे ढंग से विनियोजित किया है और फिल्में छोड़ने के बाद वे व्यापार को ही पूर्णकालिक ढंग से अपना सकती हैं। अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने अपनी मौजूदा फिल्मों और आगामी कल की योजनाओं के बारे में बतलाया:-

आज आपके पास नाम, दाम, शोहरत, इज्जत सब कुछ है। आप भविष्य में क्या करना चाहेंगी? क्या आप औरतों की आजादी में विश्वास करती हैं?

अरे नहीं, बिल्कुल नहीं। औरतों की आजादी के बारे में बातें करना आसान है, उसे व्यवहार में लाना मुश्किल है। औरत और मर्द के बीच जो बुनियादी फर्क है, उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। क्या आपने कभी किसी औरत को दो या तीन मर्दों के साथ रहते देखा है, जबकि मर्दों के लिए बहु-विवाह करने या एक से ज्यादा प्रेमिकाएँ रखने की पूरी छूट है। सच तो यह है कि मैं ईश्वर के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उसने मुझे इतना अच्छा चेहरा-मोहरा दिया कि **सत्यजीत राय** जैसी शख्सियत को मुझे एक **खूबसूरत अभिनेत्री** कहना पड़ा। बल्कि मैं तो अब उस दिन का इंतजार कर रही हूँ, जब वे मुझे अपनी किसी महान् फिल्म में काम करने का मौका देंगे। जैसे ही मुझे उनका प्रस्ताव मिलेगा, मैं बगैर पैसे या 'डेट्स' की परवाह किए उसे स्वीकार कर लूँगी।

आपकी कई बढ़िया भूमिकाओं के बावजूद आप चोटी पर क्यों नहीं पहुँच सकीं?

हाँ, यह सही है। मैं फिल्मों में चौदह साल से हूँ, मगर याद रखिए, मुझे कोई भी अपनी जगह से नहीं हटा सका है। यह भी सही है कि मैं अभी एक नंबर पर नहीं पहुँच सकी हूँ। मगर मैंने उस स्थान पर पहुँचने की कभी कोशिश भी नहीं की। मेरा लक्ष्य सिर्फ एक सफल स्टार-अभिनेत्री बनने का था, जो कि मैं हूँ। शुरू से ही मेरी महत्वाकांक्षा नरगिस और मीनाकुमारी की तरह बहुमुखी अभिनेत्री बनने की रही, ताकि लोग मुझे बरसों तक याद रख सकें। अव्वल तो मेरी फिल्मों के रिलीज पर मेरा कोई नियंत्रण नहीं होता और न मैं अपनी फिल्मों को किसी न किसी कारण से लंबित कर निर्माताओं को परेशान करने में विश्वास करती हूँ। मैं सिर्फ अपनी भूमिकाओं पर ध्यान देती हूँ और इसके बाद भी, आजकल इतनी बड़ी संख्या में फिल्में बन रही हैं कि सभी कलाकार अपनी भूमिकाओं के बारे में अतिरिक्त सावधानी बरतते हैं। तो फिर इस चीज से डरना क्यों?

यदि ऐसा ही है तो आपने "गंगा-जमुना-सरस्वती" जैसी फिल्मों में महत्वहीन भूमिकाएँ क्यों स्वीकार कीं?

देखिए, जब मुझे "गंगा-जमुना- सरस्वती" का रोल सुनाया गया तो उसे बड़ा जोरदार बतलाया गया था। मगर बाद में निर्माण के दौरान ही कहानी बदल दी गई और मेरी भूमिका महत्वहीन तथा फूहड़ बनकर रह गई। अतः आपको अपना यह सवाल फिल्म के निर्माता मनमोहन देसाई से पूछना चाहिए, मुझसे नहीं।

मगर आपको अन्य फिल्मों में भी ऐसी गौण भूमिकाएँ करते देखा गया है।

सच तो यह है कि ऐसी भूमिकाएँ स्वीकार करने के लिए मुझे मेरे प्रशंसक बाध्य करते हैं। मैं आपको अपने प्रशंसकों के ऐसे अनगिनत पत्र दिखला सकती हूँ, जिनमें वे मुझसे विविधतापूर्ण भूमिकाएँ करने को कहते हैं। उनमें से कई को यह पता नहीं होता कि परदे पर ऐसी भूमिकाएँ कैसी नजर आएँगी? मेरे ख्याल से वे मुझे तब पसंद करते हैं, जब मैं भड़कीली पोशाकें पहनती हूँ, जुल्फों में बल डालती हूँ और नायक के साथ पेड़ों के इर्द-गिर्द चक्कर काटती हूँ या मंच पर नृत्य के नाम पर उछलकूद करती हूँ। मगर मेरे हिसाब से इनमें से किसी भी चीज को अभिनय नहीं कहा जा सकता। सच्ची प्रतिभा का प्रदर्शन तो भावनात्मक भूमिकाओं के माध्यम से ही हो सकता है।

'सावन का महीना' फिल्म के द्वारा निर्माता बनने की आपको कैसे सूझी?

अभिनेत्री तथा स्टार के रूप में सफल होने के बाद से ही फिल्में बनाने की मेरी इच्छा रही है।

◆◆◆

औरतों की आजादी के बारे में बातें करना आसान है। उसे व्यवहार में लाना मुश्किल है। औरत और मर्द के बीच जो बुनियादी फर्क है, उसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि मैं ईश्वर के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उसने मुझे इतना अच्छा चेहरा-मोहरा दिया कि सत्यजीत राय जैसी शख्सियत को मुझे एक 'खूबसूरत-अभिनेत्री' कहना पड़ा।

जहाँ तक इस सवाल का संबंध है कि मैंने **सावन का महीना** का निर्माण अपने पति श्रीकांत नाहटा के साथ मिलकर क्यों नहीं किया, तो उसका एक खास कारण है। मै मूल तेलुगु फिल्म का हिंदी संस्करण तुर्त-फुर्त बनाना चाहती थी। कोई और व्यक्ति उसके निर्माण अधिकार झपट ले, इसके पहले फिल्म शुरू कर देना जरूरी था। वैसे भी श्रीकांत बहुत ही व्यस्त थे और मैं देर नहीं करना चाहती थी।

आप प्रेस से मिलने से क्यों कतराती हैं, जबकि वह आप पर काफी मेहरबान रही है।

मेरा यह निजी तजुर्बा रहा है कि किसी पर भी विश्वास मत करो, कुछ दिनों पूर्व एक पत्रकार के साथ मुझे बड़ा अप्रिय अनुभव हुआ। एक युवा रिपोर्टर ने मुझसे मुलाकात ली। मगर जब उसका विवरण उस पत्रिका में छपा तो मैं भौंचक्की रह गई। मेरे सारे बयानों को तोड़-मरोड़ डाला गया था। इसके अलावा भी प्रेस मुझे गलत ढंग से उद्धृत करती रही है। अतः मैं पत्रकारों से ज्यादा मिलना-मिलाना पसंद नहीं करती। हाँ, ऐसे भी लोग होंगे, जो सिर्फ सचाई ही लिखते होंगे, मगर अच्छे-बुरों में फर्क करने का कोई तरीका मुझे तो पता नहीं है।

एक ही साँचे में ढाले जाने से बचने के लिए आप क्या करती हैं?

मुझे कुछ नहीं करना पड़ता। मैं सिर्फ यही करती हूँ कि अपनी चालू फिल्मों में एक-दूसरे से भिन्न 'रोल' करती हूँ। जैसे कि **जादूगर** में मैंने हल्का-फुल्का रोल किया। तो **एलान-ए-जंग** में एक अत्याधुनिक लड़की का। मैं नंबर एक भले ही न होऊँ, मगर मैं किसी से पिछड़ भी नहीं रही हूँ। खातिर जमा रखिए, पिछले वर्ष (१९८९) में मेरी हर फिल्म 'हिट' हुई है। किसी की सफलता की इससे बढ़कर और क्या कसौटी हो सकती है। मैंने अपने कैरियर में **सरगम** की गूँगी-बहरी ग्रामीण बाला से लेकर 'गंगा-जमुना-सरस्वती' की सहृदय तवायफ तक हर तरह की भूमिका की है। और मेरे प्रशंसक मेरी फिल्मों में मुझे देखकर निहाल हो जाते हैं।

इस बारे में आपका क्या कहना है कि आपके भाई राजा बाबू फिल्मों में काम पाने के लिए आपके निर्माताओं को तारीखों आदि को लेकर तंग करते हैं?

यह भी सचाई से कोसों दूर की बात है। यह सही है कि पिछले कुछ दिनों से मैं राजा बाबू की सिफ़ारिश कर रही हूँ और अपने निर्माताओं को उसे यथासंभव कोई न कोई भूमिका देने को कहती हूँ, लेकिन यह कहना कि इसके लिए वह उन्हें परेशान करता है, बिल्कुल सफेद झूठ है। यदि मैं वाकई इस तरह की हरकतें करूँ तो लोग मुझे 'इंडस्ट्री' से निकाल बाहर करने में जरा भी देर नहीं करेंगे। ■

—जया प्रदा





देबाश्री राय

थीं। उनकी इच्छा थी कि वे एक बड़ी गायिका बने। इसलिए अपनी बेटियों में वे इसका सार्थक रूप देखना चाहती थीं। देबाश्री की बड़ी बहन कृष्णा राय सत्तर के दशक की लोकप्रिय गायिका थीं।

जहाँ तक देबाश्री का सवाल है, उसने अँगरेजी माध्यम से पढ़ाई-लिखाई की है। इसी दौरान झुमकी नाम से उसने कई नृत्य कार्यक्रम पेश किए हैं। बंगाल के किसी भी कोने में 'आरती राय के सौजन्य' से आयोजित समारोह में झुमकी के नृत्य को देखने के लिए दर्शकों की भीड़ लग जाती थी। इसी झुमकी को सर्वप्रथम वयस्क अभिनेत्री के रूप में तरुण मजूमदार ने अपनी फिल्म 'दादार कीर्ति' में पेश किया था। उन्होंने ही झुमकी का नाम बदलकर देबाश्री रखा। 'दादार कीर्ति से पहले देबाश्री ने कुछ खास फिल्मों में काम नहीं किया। पर 'दादार कीर्ति' के बाद वह क्रमशः आगे बढ़ती रही। विशेष रूप से महुआ राय की आकस्मिक मृत्यु के बाद उसके शून्य स्थान को कुछ हद तक देबाश्री राय ने भरा है। बहरहाल बंबइया फिल्मों में देबाश्री की दाल नहीं गली है। बंगाल की इस चोटी की नायिका को अब भी इस बात की उम्मीद है कि बंबइया फिल्मों में उसे बुलाया जाएगा। हाल में बी. आर. चोपड़ा की 'महाभारत' से सत्यवती की भूमिका को करके फिर उसने हिंदी फिल्मों में दस्तक दी है। वैसे जहाँ तक दर्शकों का सवाल है, अधिकांश का मानना है कि देबाश्री ने पहले की अपेक्षा अपने अभिनय में काफी सुधार किया है। देबाश्री को दर्शक अपर्णा सेन की फिल्म ३६ चौरंगी लेन से अच्छी तरह जानते हैं

इंद्राणी दत्त

इंद्राणी मूलतः नृत्य को समर्पित है। वह बहुत छोटी उम्र से ही नृत्य सीख रही है। अभी वह विख्यात नृत्यांगना सुमित्रा मित्र से नृत्य की शिक्षा ले रही है। इंद्राणी बंगला फिल्मों में चोरी-छिपे आई है। १९७६ के शुरू में अपने नृत्य के मेकअपमैन से यह सूचना पाकर कि निर्देशक सुशील मुखर्जी अपनी अगली फिल्म के लिए एक नई नायिका की तलाश कर रहे हैं, उसने चुपचाप मेकअपमैन स्वप्न बसु के जरिए ही अपनी एक तस्वीर उन तक पहुँचा दी। संयोग कुछ ऐसा बना कि निर्देशक सुशील मुखर्जी को इंद्राणी बहुत भा गई। उनकी फिल्म 'नदीयार नगर' में पहली बार वह विष्णुप्रिया की भूमिका में दिखाई पड़ी। इसमें उसने कुछ खास काम नहीं किया। इसके बाद प्रदर्शित 'पाप-पुण्य' और 'अपमान' ने भी उसके अभिनय की कोई संभावना नहीं जगाई है। हाल में प्रदर्शित 'तूफान' में उसने जरूर इस बात का संकेत दिया है कि बंगला फिल्मोद्योग उसे कुछ और मौके देने के लिए बाध्य है।

इस समय उसकी फिल्मों की सूची में तरुण मजूमदार की 'आपन आमार आपन', अग्रदूत की 'अपरान्हेर आलो', दिलीप राय की 'गरमिल' प्रमुख हैं। उसका कैरियर भी कुछ हद तक इन फिल्मों की सफलता पर ही निर्भर करता है। **(गोपा)**

नयना दास

बंगला दूरदर्शन के कार्यक्रमों के जरिए जिन कुछ प्रतिभाओं ने अपने आपको साबित किया है, उनमें **नयना दास** का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। वैसे बड़े परदे पर नयना ने अभी तक कोई बड़ा करिश्मा नहीं दिखाया है। पर उसके बारे में कई निर्देशक काफी आशावादी हैं। तरुण मजूमदार की पथभोला फिल्म में पहली बार नयना दिखाई पड़ी थी। उसके बाद वह काफी दिनों तक बड़े परदे से गायब रही। 'सुरेर आकाशे' फिल्म से उसकी बड़े परदे पर फिर वापसी हुई। अब तक उसकी 'नयनमणि', 'आमार तुमी' जैसी चार-पाँच फिल्में प्रदर्शित हो चुकी हैं। इन फिल्मों में उसने अपनी प्रतिभा का कोई सार्थक परिचय नहीं दिया है। इसकी वजह शायद इन फिल्मों में उसकी महत्वहीन भूमिका हो। वैसे नयना के ग्लैमर ने दर्शकों को आकर्षित किया है। व्यावसायिक फिल्मों में स्थापित करने का यह प्रमुख अस्त्र है। आने वाली कई एक फिल्मों में नयना बतौर नायिका नजर आएगी। उल्लेख योग्य फिल्में हैं- 'पूर्ण-अपूर्ण', 'आलो आंधारे', 'शेष आघात', 'आकांक्षा', 'बलिदान', 'जीवनरेखा', 'दिवस रजनी' आदि। उत्पलेंदु चक्रवर्ती की टेली फिल्म 'सोनार चेये दामी' की मुख्य भूमिका में भी नयना को देखा जाएगा। यह फिल्म १९९० के अंत तक दिखाई जाएगी। अपनी इस फिल्म को लेकर नयना काफी उत्साहित है। हाल में एक मुलाकात के दौरान उसने कहा, 'उत्पलेंदु दा देश के कुछ गिने-चुने निर्देशकों में से एक हैं। उनकी यह टेली फिल्म मेरे बारे में निर्माताओं को नए ढंग से सोचने के लिए बाध्य करेगी। इसकी पूरी संभावना है।'

देबाश्री राय

डेढ़ साल की उम्र में **देबाश्री राय** ने पहली बार कैमरे का सामना किया था। वह फिल्म थी हिरण्मय सेन की 'पागल ठाकुर'। इसमें देबाश्री ने बालक गदाधर की भूमिका निभाई थी। इसके चार साल बाद हिरण्मय सेन की ही 'बालक गदाधर' में भी शीर्ष भूमिका देबाश्री ने निभाई। इन सब फिल्मों में उसने अपना असली नाम झुमकी रखा था। पाँच साल की उम्र में उसने तरुण मजूमदार की फिल्म 'कुहेली' में काम किया था। उसके बाद वह पढ़ाई-लिखाई और नृत्य में व्यस्त हो गई। माँ आरती राय अच्छा गाना गाती

श्रीला मजुमदार

टालीगंज की 'ब्लैक ब्यूटी'

वह बहुत सुंदर तो नहीं है लेकिन उसमें सुंदरता के सभी गुण विद्यमान हैं। उसके प्रशंसक उसे **टालीगंज की ब्लैक ब्यूटी** कहते है। सेक्सी भूमिकाएँ उसे रास नहीं आतीं, लेकिन उसकी काया सेक्सी से कम नहीं है। **श्रीला मजुमदार** अपनी अभिनय क्षमता के बलबूते पर कला फिल्मों की अभिन्न अंग बन चुकी है। मई–जून १९७२ की बात है, मशहूर फिल्म निर्देशक मृणाल सेन ने श्रीला को अपनी महत्वाकांक्षी फिल्म **"परशुराम"** में अभिनय करने का अवसर दिया था। तब से लेकर अब तक श्रीला सफलताओं की ऊँचाइयों को स्पर्श कर चुकी है। श्रीला की अधिकांश फिल्मों ने क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अवार्ड प्राप्त किए हैं, उदाहरण के लिए जैसे "चोख" फिल्म ने पाँच अवार्ड प्राप्त किए। उसकी सबसे पहली फिल्म "परशुराम" को रशिया में भी प्रदर्शित किया गया था। इस प्रकार वे पहली फिल्म से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचानी जाने लगीं। श्रीला की दो और फिल्में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहीं। पहली फिल्म **"अकालेर संघाने"** और दूसरी **"एक दिन प्रतिदिन"** ने बर्लिन फिल्म महोत्सव में अवार्ड प्राप्त किए। इन फिल्मों के निर्देशक मृणाल सेन थे। **चोख** फिल्म ने क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में अवार्ड प्राप्त किए। गौतम चक्रवर्ती निर्देशित "नागमोती" फिल्म को सर्वश्रेष्ठ क्षेत्रीय फिल्म का अवार्ड मिला था। उन्होंने "श्रीखोल" जैसी व्यावसायिक फिल्म में भी काम किया। फिल्म उन्हें पसंद नहीं आई थी, लेकिन उसमें काम करने में उन्हें मजा आया। श्रीला द्वारा अभिनीत "शीत ग्रीष्मेर स्मृति" का निर्माण टी.वी. के लिए किया गया था। इसके निर्देशक बुद्धदेव दासगुप्ता थे। मृणाल सेन द्वारा निर्देशित "खारिज" को राष्ट्रीय व पश्चिम बंगाल सरकार का अवार्ड मिला। इसके अलावा मृणाल सेन द्वारा ही निर्देशित "खंडहर" को वेनिस फिल्म महोत्सव में प्रदर्शित किया गया। वहाँ उसे देखने वालों और आलोचकों की प्रशंसा मिली। श्रीला ने इन दोनों ही फिल्मों में काम किया। उन्होंने श्याम बेनेगल निर्देशित "मंडी" में भी काम किया। श्रीला की दो और चर्चित फिल्में थी "आरोहण"(निर्देशक श्याम बेनेगल) तथा "खारा" (निर्देशक पूर्णेन्दु पात्र)। श्रीला संभवतः भारत की पहली फिल्म अभिनेत्री है जिसकी अधिकांश फिल्मों को अवार्ड मिले। प्रकाश झा की "दामुल" में भी उन्होंने अच्छा अभिनय किया। अपर्णा सेन की टेली फिल्म "पिकनिक" में उन्होंने शबाना आजमी की बहन की भूमिका बखूबी निभाई। श्रीला का फिल्मों में प्रवेश का भी एक रोचक किस्सा है। १९७८ की बात है। निर्देशक मृणाल सेन की पत्नी रेडियो से एक नाटक सुन रही थी जिसमें श्रीला भी कार्य कर रही थी।

श्रीमती मृणाल सेन, श्रीला की आवाज से इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने अपने पति को श्रीला के पक्ष में सुझाव दिया। मृणाल सेन भी अपनी नई फिल्म "परशुराम" के लिए नए चेहरे की तलाश में थे। एक दिन जब श्रीला आकाशवाणी गई तो उन्हें वहाँ मृणालसेन को देखकर आश्चर्य हुआ। पहली ही बैठक में वे "परशुराम" के लिए चुन ली गई। उसके बाद से अब तक श्रीला ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

ऊँचाइयों तक पहुँचने के लिए उन्हें कई मार्गों से होकर गुजरना पड़ा। जब वे आठ–नौ साल की थीं, तो वे आकाशवाणी के शिशुमहल कार्यक्रम में भाग लेती रहती थीं। बालिका से किशोरी तक पहुँचते–पहुँचते वे युववाणी और रेडियो नाटकों में भाग लेने लगी थीं। इसके अलावा वे स्टेज नाटकों में भी भाग लेने लगी थीं जो बाद में फिल्मों के लिए क़ाफी लाभदायी सिद्ध हुआ।

श्रीला ने परशुराम में विविधतापूर्ण अभिनय किया। उसने एक ऐसी अवैध संतान की भूमिका निभाई जिसके जाति व पिता का नाम तथा प्रारंभिक शिक्षा की जानकारी अज्ञात है। "नागमोती" में श्रीला ने जिप्सी लड़की तथा "एक दिन प्रतिदिन" में उन्होंने एक ऐसी आधुनिक कॉलेज गर्ल की भूमिका निभाई जो मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी। "खंडहर" में श्रीला ने विवाहित स्त्री की भूमिका निभाई। "मंडी" में "वेश्या" बनी। इस फिल्म में वे मूक रहकर आँखों के जरिए सब कुछ कहती हैं। श्रीला ने सदैव सेक्सी भूमिका और नग्नता का विरोध किया है। वे कला और व्यावसायिक फिल्मों मे अंतर नहीं करती हैं। उनका कहना है कि जो फिल्म बनती है वह व्यावसायिक है और फिल्म बनाना कला है। वे कहती हैं कि जिस फिल्म में उन्हें पर्याप्त अभिनय का मौका नहीं मिलेगा तो वे सिर्फ रुपयों के लिए अभिनय नहीं करेंगी। वे भावनाओं से ओतप्रोत फिल्मों में कार्य करने के पक्ष में नहीं हैं। वे यह नहीं समझ पाती है कि ये फिल्में इतनी चलती कैसे हैं। वे कहती हैं कि मैं एक कलाकार हूँ इसलिए बंगाली फिल्मों तक ही सीमित क्यों रहूँ। हिन्दी फिल्मों का दायरा विस्तृत है और इससे प्रसिद्धि में वृद्धि होती है।

स्व. स्मिता पाटिल और शबाना आजमी के समान श्रीला भी स्थापित कलाकार है। वे न सिर्फ बंगाली फिल्मों की कलाकार है अपितु सम्पूर्ण फिल्म उद्योग की वे प्रतिष्ठित अभिनेत्री हैं। उनकी अभिनय प्रतिभा की विदेशों में भी प्रशंसा की जाती है। ■





इन्दौर कार्यालय :

12/2 आर . एन . टी . मार्ग,

फोन : 21781

भोपाल कार्यालय :

9, शांतिनगर कालोनी, भोपाल

फोन : 75498

ग्वालियर कार्यालय :

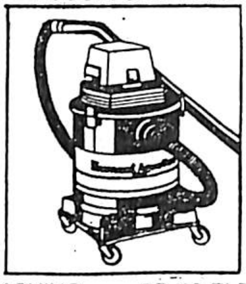
दौलतगंज, ग्वालियर

फोन–28658 25871

Sumeet®

Range of Domestic Help

WET & DRY
VACUUM CLEANER.



K-30 WASHING MACHINE



SP-16 ELECTRONIC



Readily Available at :

Kirti Sales Corporation

24, M.T.H. Compound, Indore Ph : 39462.



मार्केटेड बाय : **बजाज इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड**

165, रविन्द्रनाथ टैगोर मार्ग, इन्दौर 452 001 ☎ 4317

Natraj

ममता शंकर

नृत्य पहले, अभिनय बाद में

ममता शंकर ने बंगला फिल्मी जगत में वही जगह बनाई है, जो हिन्दी फिल्मों में शबाना आजमी या स्मिता पाटिल को मिली है। नृत्यकार उदय शंकर की इस लाड़ली बिटिया के दरवाजे चलकर फिल्मों के प्रस्ताव आए थे। पढ़ाई-लिखाई से फुरसत पाने के बाद एक दिन वह मृणाल सेन के सामने जा धमकी और फिल्म 'मृगया' की नायिका बन गई।

ममता शंकर की फिल्मी व्यस्तता इन दिनों काफी कम हो चली है। फिल्मों की अपेक्षा टीवी सीरियलों में अब वे ज्यादा दिखाई देती हैं। वैसे उनका ज्यादा से ज्यादा समय अपने बैले ट्रूप में ही खर्च होता है। पिछले कुछ सालों से उनके बैले ट्रूप की नृत्य नाटिकाओं ने देश तो देश, विदेशों में भी आशातीत ख्याति अर्जित की है। नृत्य को समर्पित ममता शंकर की पहचान एक श्रेष्ठ अभिनेत्री के रूप में भी है। पेश है उनसे हुई बातचीत के अंश—

आपने कई आर्ट, यानी कला फिल्मों में काम किया है, इन फिल्मों के बारे में आपकी क्या धारणा है?

सबसे पहले तो यह स्पष्ट कर दूँ कि इन फिल्मों को आर्ट की बजाए 'रियलस्टिक फिल्म' कहने की मैं पक्षपाती हूँ। ये फिल्में वास्तविकता के साथ बहुत हद तक जुड़ी रहती हैं, इसी तरह कमर्शियल फिल्म को 'पापुलर' फिल्म कहना ज्यादा ठीक होगा, क्योंकि ये फिल्में मूलतः मनोरंजन प्रधान होती हैं। बॉक्स ऑफिस को ध्यान में रख कर ही इन फिल्मों में नाच-गाने और मारपीट के दृश्य रखे जाते हैं।

फिल्मों में आपका आना कैसे हुआ?

जब मैं बहुत छोटी थी,तभी से फिल्मों के ऑफर मेरे पास आना शुरू हो गए थे, लेकिन तब मैं अपनी पढ़ाई में व्यस्त थी। मेरे दादा आनंद शंकर मृणालजी की फिल्म में संगीत निर्देशन कर चुके हैं। तभी से मृणाल दा मुझे अपनी फिल्म में काम करने के कई प्रस्ताव दे चुके थे। पर मैं हमेशा उन्हें यह कह कर मना कर देती थी कि स्कूल-कॉलेज से मुक्ति पा लूँ, तभी आपके पास काम करूँगी और आपसे बहुत कुछ सीख सकूँगी। बारहवीं की परीक्षा देने के बाद मैं खुद उनके पास गई। उन्हें बताया कि मैं अब एकदम फुरसत में हूँ और मानसिक रूप से पूरी तरह से काम करने के लिए तैयार हूँ। अभी यदि आपके पास कुछ काम हो,तो अवश्य दीजिए। कुछ संजोग ऐसा था कि उन दिनों मृणाल दा **'मृगया'** के टेबिल वर्क को अंतिम रूप दे चुके थे। बस, मुझे देखते ही बोले, 'ठीक है तुम ही 'मृगया' की नायिका हो।'



मृणाल सेन की उड़िया फिल्म ओका ओरी कथा में ममता शंकर

तब तो फिल्मों में आपको लाने का श्रेय मृणाल दा को जाता है?

बिलकुल। सिर्फ यही नहीं, 'मृगया' में मृणाल दा ने मुझे थोड़ा-थोड़ा करके तैयार किया था। मैं इस चरित्र के साथ जितना भी न्याय कर पाई वह सब मृणाल दा के कारण ही संभव हुआ।

'मृगया' के बाद मृणाल सेन की कई एक फिल्मों- 'एक दिन प्रतिदिन', 'खारिज' आदि में भी आपने काम किया है। इन वर्षों में मृणाल दा के चिंतन, जीवन दर्शन, फिल्म के ट्रीटमेंट और जीवन बोध में आपने क्या कोई परिवर्तन देखा है?

परिस्थितियाँ आदमी को बदल देती हैं। इसमें समय का योगदान भी होता है। इस दृष्टि से देखें, तो मृणाल दा बहुत बदल गए हैं। जीवन के प्रति उनका ममत्व बोध बहुत बढ़ा है। इस परिवर्तन की वजह से बहुत सारे लोग उन्हें गलत समझेंगे। एक फिल्मकार के रूप में उनकी परिपक्वता बहुत बढ़ी है। उसी अनुपात में उनके जीवन दर्शन में भी एक परिवर्तन आया है, जो उनके कार्यो के माध्यम से स्पष्ट होता है। पर बतौर इन्सान मृणाल दा को किसी परिवर्तन ने नहीं छुआ है। वो पहले की तरह खुशमिजाज और मिलनसार ही हैं। अपने पुराने दिनों को मृणाल दा नहीं भूले हैं। जो लोग मृणाल दा को वर्षो से जानते हैं, वे यह अच्छी तरह से जानते हैं कि एक इन्सान के रूप में मृणाल दा जरा भी नहीं बदले हैं।

किन-किन फिल्मों में निभाए गए अपने किरदारों को आप स्मरणीय मानती हैं?

'मृगया' की डूंगरी, 'दूरत्व' की अंजली, 'गृहयुद्ध' की निरूपमा, 'खारिज' की ममता और 'दाखल' की आदि ऐसे किरदार हैं, जो मेरे लिए हमेशा चिर-स्मरणीय रहेंगे।

आपके ये सारे किरदार स्वर विरोधी हैं या वे किसी सेट-अप से खुश नहीं हैं, तो क्या आप यह मानती हैं कि ये किरदार राजनीति के इर्द-गिर्द घूमते हैं?

ये किरदार राजनीति के इर्द-गिर्द भले ही घूमते हों, पर ये राजनीति से प्रेरित नहीं हैं। मेरा ख्याल है कि अपना कोई भी व्यक्तिगत-राजनीतिक आदर्श फिल्म के माध्यम से पेश नहीं करना चाहिए। क्योंकि सिनेमा राजनीति का कोई प्लेटफार्म नहीं है। जहाँ दर्शक टिकट कटाकर उसे देखने-सुनने क्यों जाएगा?

इन दिनों बंगला फिल्मों में सेक्स और हिंसा जिस तेजी से फैली है, इस संबंध में आपके क्या विचार हैं?

यह बड़ा दिलचस्प सत्य है कि हमारा बंबइया फिल्मोद्योग पश्चिम की नकल कर रहा है। और हम (बंगला फिल्मोद्योग) बंबई की। वरना एक दौर था, जब कितनी अच्छी-अच्छी बंगला फिल्में बनती थीं। उनकी कहानियाँ कितनी सहज होती थीं और कितना स्वाभाविक अभिनय देखने को मिलता था। अब तो वह सारा सेट-अप ही बिगड़ गया है। वैसे अभी भी बहुत अच्छे कलाकार इंडस्ट्री में मौजूद हैं, पर न जाने क्यों अच्छी फिल्में नहीं बन रही हैं?

आप एक अत्यंत प्रतिभाशाली अभिनेत्री हैं, पर इसके बावजूद बंगला फिल्मोद्योग में आपकी रफ्तार काफी धीमी रही। इसकी वजह क्या आपका सही मूल्यांकन नहीं होना है या अभिनय के प्रति आपकी उदासी?

नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। फिल्मों के प्रस्ताव तो आते ही रहते हैं, पर उनमें से अधिकांश में ही मुझे अभिनय की संभावनाएँ कम, देह दर्शन की संभावना ज्यादा नजर आती हैं। इसलिए ऐसी फिल्मों को मैं अस्वीकार कर देती हूँ। मैं यह अच्छी तरह से जानती हूँ कि किसी भी किरदार को जीवंत रूप से पेश करने की क्षमता मेरे अंदर भरपूर है, फिर मैं क्योंकर देह दर्शन का सहारा लूँ।

आप एक अत्यंत कुशल नृत्यांगना हैं, पर किसी भी फिल्म में आप अपनी इस प्रतिभा का उपयोग नहीं कर पाती हैं। इससे आपको असुविधा नहीं होती है?

असुविधा किस बात की। अभिनय के दौरान मेरी यह प्रतिभा ही तो मेरे बहुत काम आती है। इसकी वजह से ही स्टेज के संबंध में मैं बहुत कुछ जान गई हूँ। इसीलिए कैमरे के सामने खड़े होने में भी मुझे कोई परेशानी नहीं होती है।

बंबई से बुलावा आने पर क्या जाएँगी?

जरूर, पर मैं वहाँ नाच-गाने वाली फिल्मों में काम करने नहीं जाऊँगी। वहाँ की अच्छी और गंभीर फिल्मों में काम करने की मेरी बहुत इच्छा है, पर इन दिनों मैं अपने बैले ट्रूप को लेकर देश-विदेश में शो करने में इतनी व्यस्त हूँ कि अच्छी बंबइया फिल्मों के लिए समय निकालना भी मेरे लिए एक और नई चिंता होगी।

● प्रस्तुति : अवतार



फिल्म एक दिन अचानक (१९८९) में उत्तरा बावकर के साथ शबाना

शबाना

एक प्रतिबद्ध अभिनेत्री

● विनोद भारद्वाज

कुछ कलाकार ऐसे होते हैं जो अपने सामने किसी कठिन चुनौती या प्रतिद्वंद्विता के बाद ही अपनी रचनात्मकता के शिखर तक पहुँच पाते हैं। प्रतिभा उनमें जैसे दबी-छिपी होती है, जिसका विस्फोट किसी स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता के बाद ही हो पाता है।

शबाना आजमी के बारे में यह बात काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। जब तक स्मिता पाटिल जीवित थीं तब तक शबाना ने लगभग हर फिल्म में स्मिता को अपने लिए चुनौती माना। पिछले कुछ सालों में शबाना में पुरानी बात नहीं रह गई है। जाहिर है कि इसकी कई वजहें हैं। जिस तरह की फिल्मों में शबाना, स्मिता, नसीर, ओमपुरी वगैरह ने अपनी अलग पहचान बनाई थी, उन फिल्मों का ही हाल काफी बदल गया। कुछ फिल्मकार टेलीविजन में दिलचस्पी लेने लगे। अभिनेताओं में भी नसीर ने बंबई में बनने वाले तथाकथित समानांतर या कला सिनेमा के बारे में शक करना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे वे 'ओए ओए' गति का एक हिस्सा बन गए।

इसमें कोई शक नहीं कि नसीर सरीखे अभिनेता व्यावसायिक सिनेमा में भी अपनी प्रतिभा के बल पर अलग दिखते हैं। स्मिता भी अपने अंतिम वर्षों में व्यावसायिक सिनेमा और 'ग्लैमर' की दुनिया के प्रति आकर्षित हो गई थीं। ओमपुरी ने भी अपना नजरिया बदला, पर बंबइया व्यावसायिक सिनेमा में उस तरह के चेहरे के लिए ज्यादा गुंजाइश नहीं रही है।

जहाँ तक शबाना (शब्द का अर्थ है–रात का) का सवाल है, उन्होंने शुरू से ही व्यावसायिक सिनेमा और गैर व्यावसायिक सिनेमा में एक मेल-सा बना रखा था। अर्थ और अवतार दोनों ही तरह की फिल्मों में वे स्वयं को सुखी स्थिति में पाती थीं।

स्मिता और शबाना में एक और तरह की तुलना भी महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। एक मशहूर शायर (कैफी आजमी) की बेटी को घर में संस्कृति-संपन्न माहौल मिला था। अँगरेजी-स्कूलों में पढ़ाई हुई। पुणे के फिल्म संस्थान में अभिनय का प्रशिक्षण मिला। घर में वामपंथी हवा के झोंके भी मिलते रहे। स्मिता जबकि शबाना के मुकाबले में 'हिंदी माध्यम' की उपज लगती थीं। शबाना अगर पब्लिक स्कूल की पैदाइश है तो स्मिता मराठी और हिंदी की दुनिया से उभरी लड़की है। उसके व्यक्तित्व में इसीलिए शबाना सरीखा आत्म-विश्वास नहीं था। एक संकोच था, एक आशंका, एक डर और एक खास तरह की पिछड़ी हुई दुनिया में सहज रूप से घुल-मिल जाने वाला व्यक्तित्व।

एक समय हिंदी के सार्थक सिनेमा में ऐसी स्थिति बन गई थी कि 'शबाना या स्मिता' सवाल कुछ वैसे ही मन में उठता था, जैसे पश्चिम में आधुनिक साहित्य चर्चा में आलोचक तोल्स्तोय या दोस्तोएव्स्की और काफ्का या ठोमस मन्न सवाल को उठाते हैं। दोस्तोव्स्की और काफ्का सरीखे लेखकों को 'आशंका के कलाकार' कहा गया है। स्मिता की भी सिनेमा में कुछ ऐसी ही स्थिति थी। आशंका की अभिनेत्री जिसे मालूम था कि मुझे ज्यादा नहीं जीना है।

शबाना में–उसके अभिनय और व्यक्तित्व दोनों में ही आशंका, बेचैनी, भय आदि बहुत कम है। एक आत्मविश्वास है, जीवन से लड़ने की ताकत है। कोई आश्चर्य नहीं कि शबाना ने बाद में पदयात्राओं, अनशनों, राजनीतिक रैलियों में सक्रिय हिस्सेदारी शुरू कर दी।

मोटे तौर पर अभिनेत्रियाँ दो तरह की होती हैं। एक जिनके व्यक्तित्व में सुंदरता, मोहकता, रहस्य और जादू होता है। दूसरी तरह की अभिनेत्रियाँ अपनी प्रतिभा के बल पर विभिन्न भूमिकाओं को अविस्मरणीय बना देती हैं। वे किसी जादुई यथार्थ से नहीं जुड़ी होतीं। इसी दुनिया के यथार्थ से वे एक रिश्ता बनाती हैं।

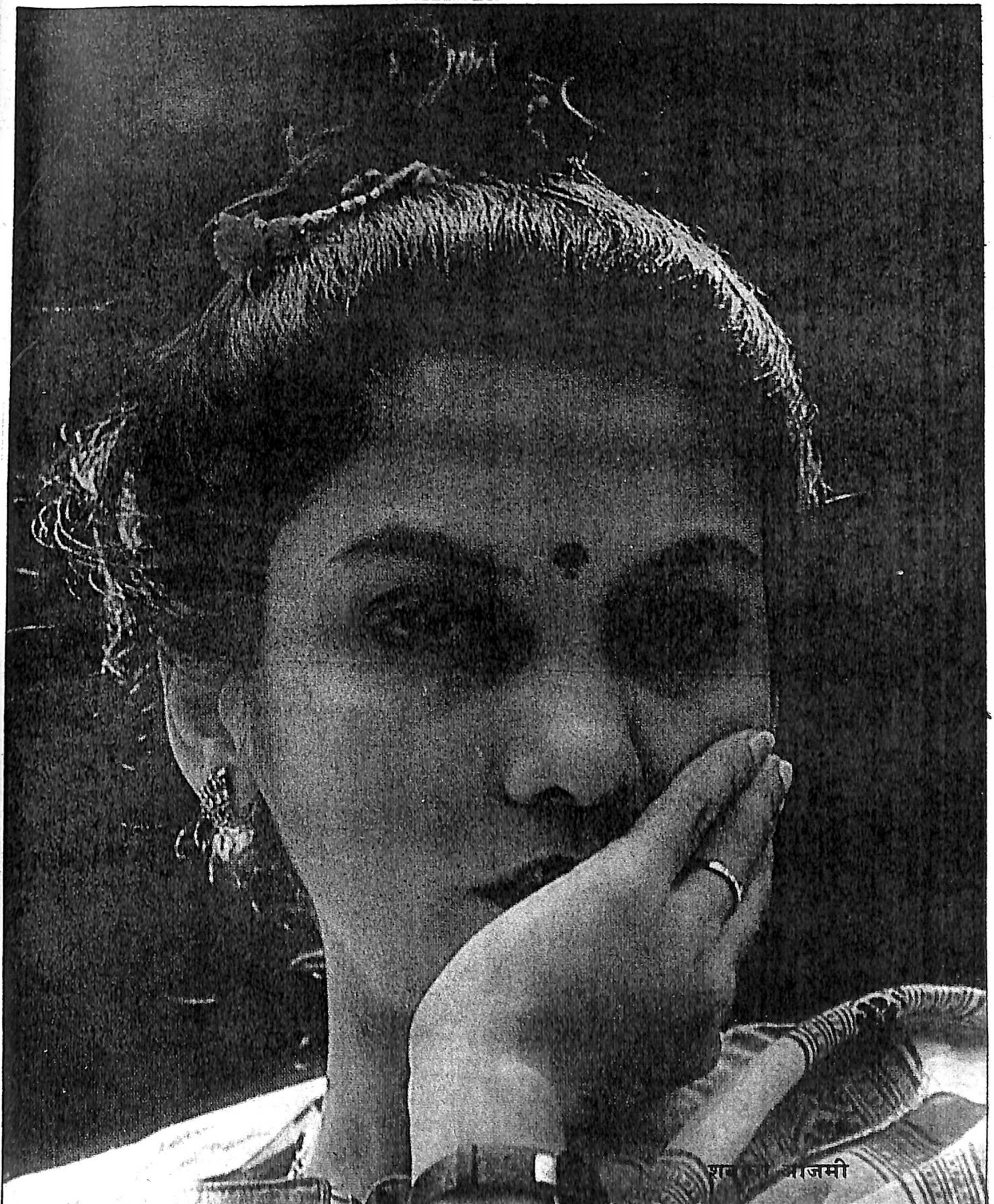
पहली श्रेणी में मधुबाला, स्मिता, वहीदा रहमान सरीखी अभिनेत्रियों को रखा जा सकता है। किसी साधारण सी भूमिका में भी ये अभिनेत्रियाँ अपनी उपस्थिति को अलग से दिखाने की अद्भुत सामर्थ्य रखती हैं। **'चलती का नाम गाड़ी'** एक कॉमेडी फिल्म है, पर **मधुबाला** 'इक लड़की भीगी भागी सी' गाने में अपनी जादुई उपस्थिति के बल पर ही एक चमत्कार नजर आती हैं। एक दूसरी दुनिया की लड़की।

नूतन या शबाना सरीखी अभिनेत्रियों को मैं दूसरी श्रेणी में रखना चाहूँगा। शबाना ने कई यादगार भूमिकाएँ निभाई हैं, उनके व्यक्तित्व में एक चमक है, जो हर तरह की भूमिका में दिखती जरूर है, पर अनेक फिल्मों में शबाना निर्देशक, पटकथाकार और लेखक की अभिनय प्रतिभा पर आश्रित हैं।

चुनौती भरी भूमिकाओं की वो सार्थक तारिकाएँ: रेखा-शबा



'मंडी' में शबाना को एक रोल मिला और निर्देशक श्याम बेनेगल भी। सत्यजीत राय सरीखे 'मास्टर' फिल्मकार ने 'शतरंज के खिलाड़ी' में शबाना को बहुत छोटी सी भूमिका दी, पर उसमें शबाना नजर आती हैं। दर्जनों अवतारों में शबाना ऐसे नजर नहीं आएँगी। सत्यजीत राय तो खैर उन फिल्मकारों में से हैं, जो किसी भी साधारण चेहरे के असाधारण रूप को पर्दे पर लाने की क्षमता



शब[illegible] आजमी

रखते हैं।

शबाना को जब भी चुनौतीपूर्ण भूमिकाएँ, प्रतिभाशाली निर्देशक मिले हैं, तो उसने अपने आलोचकों के मुँह बंद कर दिए हैं। एक समय लगातार तीन राष्ट्रीय पुरस्कार पाने वाली शबाना यह करिश्मा कभी दुबारा भी कर सकती हैं।

लेकिन संभवतः पर्दे की अच्छी भूमिकाओं की कमी ने शबाना को वास्तविक जीवन में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरण संबंधी मुद्दों में सक्रिय हिस्सेदारी के लिए बाध्य कर दिया है। अपने आप में यह कोई बुरी बात नहीं है।

कोई सुपरिचित सितारा व्यस्त भी हो, तो उसे इन मुद्दों पर बोलना चाहिए। आपका चेहरा परिचित है, तो लोग आपकी बात पर ज्यादा ध्यान देते हैं। एक परिचित चेहरा हमेशा शेविंग क्रीम या सूटिंग-शर्टिंग का ही क्यों विज्ञापन करे। जीवन को बेहतर बनाने की कोशिशों में भी उसकी हिस्सेदारी महत्वपूर्ण हो सकती है।

शबाना ने यही किया है। अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में सफदर हाशमी हत्याकांड पर जिस चतुराई और विश्वास के साथ शबाना ने फोकस किया था, उसकी पटकथा शबाना जैसा कोई प्रतिबद्ध कलाकर्मी ही लिख सकता था। बहुत से लोग मानते हैं कि ये काम अभिनेताओं का नहीं है। लेकिन आज के समय में एक कलाकर्मी (किसी भी विधा में) असमानता और अन्याय के विरुद्ध चुप रहकर अपराधियों की पंक्ति में शामिल नहीं हो सकता है।

जहाँ तक शबाना की प्रतिबद्धता का प्रश्न है, वह तो एक अच्छी बात है। लेकिन अनेक ज्वलंत प्रश्नों को सार्वजनिक रूप में उठाने वाली शबाना ने कई मौकों पर रेडियो या टी.वी. पर हिंदी में बोलने से इंकार किया है। इसकी एक व्याख्या यही समझ में आती है कि वे श्रोताओं या दर्शकों के सामने 'पिछड़ी' हुई नहीं नजर आना चाहतीं।

शबाना १९७४ में 'अंकुर' (निर्देशक: श्याम बेनेगल) में नायिका के रूप में उभरी और तब से लगातार उसने एक 'अभिनेत्री' और एक 'स्टार' दोनों ही भूमिकाओं को निभाना चाहा है। इसे वे एक चुनौती भी मानती रही हैं।

लेकिन आज शबाना अगर 'स्टार' है भी, तो 'फकीरा' या 'अमर अकबर एंथनी' के कारण नहीं, एक प्रतिबद्ध और कुशल अभिनेत्री होने के कारण ही उन्हें स्टार का दर्जा मिला है। बंबइया फार्मूला फिल्मों में अब शबाना के लिए कोई जगह नहीं है। लेकिन सौभाग्यवश कुछ ऐसे फिल्मकार मौजूद हैं, जो शबाना की प्रतिभा का फायदा उठा सकते हैं।

शबाना की एक अपनी सिनेमाई उपस्थिति है। छोटी सी भूमिका में भी वे किसी प्रसंग विशेष को अविस्मरणीय बना सकती हैं। अपनी आँखों, चेहरे के हाव-भाव, संवाद बोलने की सुंदर शैली के बल पर शबाना आज भी एक संभावना है। लेकिन यह भी एक सच है कि हमारे फिल्मकार शबाना का पूरा इस्तेमाल नहीं कर पाए। और अब शायद देर होती जा रही है। ■

फिल्म मंडी (१९८३) में शबाना तथा अमरीश पुरी



शबाना

● हेमचंद्र पहारे

शबाना आजमी पर लिखे जा रहे इस लेख के शीर्षक में प्रयुक्त अर्थ शब्द से यदि श्लेष की ध्वनि सुनाई देती है तो यह स्पष्ट कर देना बहुत जरूरी है कि यह मात्र शाब्दिक चमत्कार पैदा करने की नीयत से नहीं किया गया है, बल्कि यह **शबाना** नामक इस अभिनेत्री के बहुआयामी व्यक्तित्व की विभिन्न परस्पर विरोधी परतों को उजागर करने की एक ईमानदार कोशिश है। **दरअसल, शबाना एक सफल अभिनेत्री ही नहीं है, बल्कि एक आंदोलन है, एक अभियान है जो पिछले उन्नीस बरसों से जारी है और शायद तब तक जारी रहेगा, जब तक स्वयं शबाना चाहेंगी।** सन् १९७१ में श्याम बेनेगल तथा अपनी पहली ही फिल्म **'अंकुर'** से जब उन्होंने सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया और लगे हाथों उन्हें अंतरराष्ट्रीय मान्यता भी मिल गई, तो अचानक वे भारतीय समानांतर सिनेमा, जिसे उन दिनों 'कला फिल्में' या 'नई लहर का सिनेमा' भी कहा जाता है, का प्रतीक बन गईं। सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के राष्ट्रीय पुरस्कार उन्हें इसके बाद दो बार और 'खंडहर' तथा 'अर्थ' के लिए भी मिले और उनकी अभिनय प्रतिभा के बारे में कोई शक बाकी नहीं रह गया।

लेकिन शबाना होने का अर्थ यह भी है कि वे प्रसिद्ध उर्दू शायर और फिल्मी गीतकार कैफी आजमी और इंडियन पीपुल्स थिएटर तथा पृथ्वी थिएटर की विख्यात अभिनेत्री शौकत आजमी की बेटी हैं। दूसरी तरफ वे उर्दू शायर और फिल्मी गीतकार मुकालमा नवीस अख्तर उल इमान के उनसे भी ज्यादा प्रसिद्ध हुए बेटे जावेद अख्तर की पत्नी हैं। मगर शबाना का यह परिचय भी अधूरा है। शबाना हिंदी फिल्मों की एकमात्र ऐसी अभिनेत्री भी हैं जो सामाजिक तथा राजनीतिक सरोकारों के साथ बड़ी गहराई के साथ जुड़ी हुई हैं। चाहे वह बंबई की झोपड़पट्टियों में रहने वालों का मामला हो या सफदर हाशमी की राजनीतिक हत्या से उपजा जन-आक्रोश, शबाना अपनी आवाज उठाने से नहीं चूकतीं। लेकिन सम्पूर्ण शबाना की तस्वीर अब भी पूरी नहीं होती। वे तथाकथित कला-फिल्मों की एकमात्र ऐसी अभिनेत्री भी हैं, जिन्होंने बंबई की व्यावसायिक फिल्मों में भी अपनी सफलता दर्ज की। 'अमर अकबर एंथनी', 'अवतार', 'दूसरी दुल्हन', 'मासूम' जैसी फिल्मों में अपनी प्रतिभा साबित कर देने के बाद उनमें इतनी हिम्मत भी रही कि वे कला फिल्मों का दामन बराबर थामे रहीं और 'पार', 'पेस्टनजी', 'सती' तथा 'मैं आजाद हूँ' जैसी व्यावसायिक रूप से जोखिम भरी फिल्मों में भी अपना दखल बनाए रहीं।

शबाना के नारी-वादी (फेमिनिस्ट) विचारों ने भी उनके व्यक्तित्व को अंतर्विरोधों और

होने का अर्थ

विवादों का बायस बनाया है। बहरहाल, सारे विवादों और अंतर्विरोधों के बावजूद शबाना की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि वे लगातार बड़ी बहादुरी के साथ अपनी प्रतिबद्धताओं और अंतरात्मा की आवाज के अनुसार निर्णय लेती रहीं और हमेशा विजेता बनकर उभरीं। फिल्मों में व्यस्त पेशेवर प्रचारकों ने किसी जमाने में राजेश खन्ना को एक 'फिनॉमिना' घोषित किया था, लेकिन वास्तव में 'फिनॉमिना' (एक घटना, चमत्कार तथा रहस्य) कहलाने की हकदार भारतीय अभिनेत्रियों में यदि कोई है तो वे शबाना ही हैं। स्वयं राजेश खन्ना, जिन्होंने उनके साथ 'थोड़ी सी बेवफाई' तथा 'अवतार' जैसी हिट फिल्मों में काम किया है, ने कहा है: "ठीक है, शबाना सुपर स्टार नहीं होंगी, लेकिन वे भावनाओं की सुपर स्टार हैं।"

तो शबाना आजमी के जिस बहु-आयामी जटिल और विवादास्पद व्यक्तित्व का ऊपर जिक्र किया गया है उसका परत-दर-परत विश्लेषण पत्रकार विनोद भारद्वाज ने कुछ बरसों पूर्व एक साक्षात्कार में किया था। उसकी मदद से एक हद तक हम उनके व्यक्तित्व में झाँकते हुए शबाना होने का सही अर्थ तलाश कर सकते हैं।

'अंकुर' से लेकर 'अर्थ' तक कई नारी-उन्मुख भूमिकाएँ सफलतापूर्वक परदे पर करने वाली तथा नारी स्वातंत्र्य की प्रखर पक्षधर शबाना से जब यह सवाल किया गया कि पचास और साठ के दशक की फिल्मों में नारी की जो छवि थी या उनमें उसकी जो अर्थपूर्ण भूमिका होती थी, वैसा अब क्यों नहीं हो रहा है, तो वे जरा बचाव की मुद्रा में आकर कहती हैं, "दरअसल समाज और दर्शकों पर अब भी पुरुषों का ही वर्चस्व ज्यादा है। दर्शक नायक के साथ ही अपने आपको 'आइडेंटिफाय' करता है। हीरोइन तो बस दो-तीन नाच-गानों में हिस्सा लेगी और उसका न औरतों पर कोई असर पड़ता है न मर्दों पर। जिस पचास-साठ के दशक की बात हम करते हैं, उसमें स्त्रियों को रोने-धोने और लंबे समय तक दुःख झेलने की भूमिकाएँ ही दी जाती थीं और इसका असर नुकसानदेह ही होता था। उनका मतलब यही होता था कि आपका शौहर आपके साथ कैसे भी पेश आ रहा हो, वह आपका शौहर है। अपमानित होकर भी आपको उसी के पास लौट कर आना है। बहन का यह फर्ज है, माँ का फर्ज यह है आदि।" तमाम पत्र-पत्रिकाओं और अन्य माध्यमों से फिल्मी नायक-नायिकाओं की निजी जिंदगी के बारे में जो जानकारी सामान्य मध्यमवर्गीय परिवार को मिलती है, उसके विपरीत असर के बारे में वे कहती हैं, "यह उनकी (दर्शकों की) समस्या है, मेरी नहीं। मैं अपनी जिंदगी इसलिए नहीं जीती हूँ कि उसका क्या असर होने वाला है। मेरी निजी जिंदगी बिल्कुल अलग चीज है। मैं अपनी पब्लिक इमेज की बेदी पर अपने निजी जीवन की बलि नहीं दे सकती। मेरी प्राइवेट लाइफ भले अलग हो, लेकिन अपनी कला के माध्यम से या अपनी बातचीत में जो कुछ मैं कहती हूँ, उसका क्यों नहीं अच्छा असर होता? लोग क्यों आपकी सिर्फ बुराइयाँ ही लेना चाहते हैं और सकारात्मक चीजों को भूल जाते हैं। फिर सवाल यह भी है कि जिन चीजों को वे वर्जित मानते हैं, उनके बारे में हम कैसे आसानी से दूसरों के बारे में फैसला कर सकते हैं। आखिर लोगों के नैतिक मापदंड अलग-अलग हो सकते हैं।"

अपने बचपन के बारे में पूछे जाने पर अक्सर महान लोग उसे भिन्न-भिन्न ढंग से 'ग्लैमराइज' करते हैं, लेकिन अपने सीधे-सुलझे हुए, वास्तविकतावादी व्यक्तित्व के अनुरूप ही शबाना अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में बड़ी बेबाकी के साथ कहती है, "मेरा बचपन बहुत ही सामान्य किस्म का था। अक्सर कलाकारों के बारे में कहा जाता है कि उनके भीतर कोई दुःख या दर्द रह जाता है जो बाद में उनकी रचना के द्वारा बाहर निकलता है। मेरे साथ ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हमारा परिवार ऐसा था जिसमें बहुत ही स्वतंत्रता थी। घर पर हम दो ही लोग तो थे, मैं और मेरा भाई, (कैमरा-मैन बाबा आजमी)। हम चारों के चारों प्रचंड रूप से स्वतंत्र लोग हैं। मगर हम एक धागे से बँधे लोग भी हैं। मेरी मम्मी पृथ्वी थिएटर्स में काम करती थी। तीन-तीन महीने के लिए मुझे और मेरे भाई को छोड़कर चली जाती थीं। मगर हमें इसमें कोई असामान्य बात नहीं लगती थी। अक्सर बच्चे इस बात को लेकर कई तरह के 'कॉम्प्लेक्स' विकसित कर लेते हैं कि उनकी देखभाल के लिए माँ घर पर नहीं है। मगर हमें घर में खूब 'स्पेस' और आजादी मिली। घर में कोई भी महत्वपूर्ण फैसला लेने के पूर्व चारों की राय ली जाती थी। हमसे वयस्कों की तरह ही बरताव किया जाता था। इस तरह की आजादी से एक तो उड़ान भरने का मौका मिलता है, दूसरे जड़ें भी गहरी होती जाती हैं। घर में जो महफिलें होती थीं, उनमें जोश मलीहाबादी, फैज अहमद फैज, सरदार जाफरी जैसे लोग होते थे। (उन्हें शबाना नाम सरदार जाफरी ने ही दिया था।) शायरी मैं ज्यादा नहीं समझती थी, लेकिन वे सारे लफ्ज मेरे कानों में पड़ते रहते थे। फिल्मों का असर हम पर कभी नहीं रहा, लेकिन थिएटर का असर था। थिएटर



की एक विशेषता यह होती है कि उसमें बहुत ही बराबरी के स्तर पर बातचीत होती है। वहाँ वह भेदभाव नहीं होता जो फिल्मों में आ ही जाता है। इस तरह बचपन से ही मुझमें बराबरी का अहसास बहुत गहरा था।"

राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शबाना को एक कला फिल्मों की अभिनेत्री के रूप में मान्यता मिल जाने के बाद उनका व्यावसायिक बंबइया फिल्मों की तरफ मुड़ना उनके कई प्रशंसकों तथा फिल्म समीक्षकों को जरा भी पसंद नहीं आया। मनमोहन देसाई की 'अमर अकबर एंथनी' फिल्म की उनकी क्षुद्र सी भूमिका ने अचानक जनमत को उनके विरुद्ध कर दिया।

- **शबाना दुनिया की दस श्रेष्ठ अभिनेत्रियों में से एक है।**

मृणाल सेन

- **शबाना दुनिया की पाँच सर्वोत्तम नायिकाओं में से एक है।**

अपर्णा सेन

- **अंतरराष्ट्रीय सिनेमा में शबाना को लिव उल्मान, इंग्रिड तुहलिन या मेरिल स्ट्रीप जैसी अभिनेत्रियों के समकक्ष रखा जा सकता है।**

श्याम बेनेगल

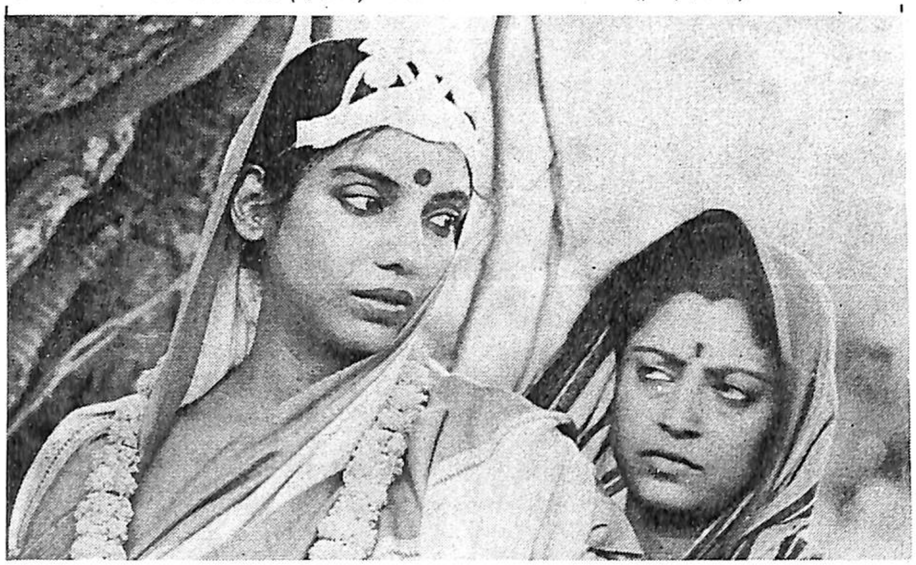
- **शबाना उन हीरोइनों जैसी नहीं है, जो हमेशा नए बंगलों और नई कारों के पीछे भागती रहती हैं। उनके लिए इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे फर्श पर बैठकर खाना खा रही हैं या पाँच सितारा होटल में।**

मोहन कुमार

पत्रिकाओं में उनके बारे में जो कुछ लिखा गया, उसका सार यही था कि 'अंकुर' और 'निशांत' जैसी फिल्मों की गंभीर, बुद्धिमती और युवा अभिनेत्री ने इस तरह की बेतुकी भूमिका करने का दु:साहस ही क्यों किया? अपनी स्वाभाविक स्पष्टवादिता के साथ शबाना 'इंडिया टुडे' को दिए गए एक साक्षात्कार में कहती हैं, "दर्शकों की इस प्रतिक्रिया ने मुझे भी यह सोचने को एकबारगी मजबूर कर दिया कि व्यावसायिक फिल्मों में 'खून की पुकार' जैसी भूमिकाएँ करते हुए न केवल मैं ऐसा कुछ कर रही हूँ, जो मैं हूँ ही नहीं, बल्कि वैसा करते हुए मैं बुरी तरह असफल भी हो रही हूँ। मुझे लगा कि व्यावसायिक फिल्मों में घुस कर तथा हिंदी फिल्मों की 'मिस नीता' जैसी व्यक्तित्वहीन, नाचने-गाने वाली नायिका बनने की कोशिश करते हुए मैं असंभव को संभव बनाने की कोशिश कर रही हूँ। तब मैंने सोचा कि मुझे ऐसी भूमिकाएँ ही करनी चाहिए, जिनमें मैं विश्वसनीय लगूँ। यदि व्यावसायिक फिल्मों में मुझे सफल होना है तो मुझे वैसे रोल करने चाहिए, जैसे **नूतन** या **जया भादुड़ी** करती हैं। खुशकिस्मती से ऐसी भूमिकाएँ भी मुझे मिलीं।



फिल्म मासूम (१९८६) में शबाना आजमी



अपर्णा सेन की बंगला फिल्म सती (१९८९) में शबाना

शरतचंद्र की कहानी पर आधारित **'स्वामी'** के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का फिल्म फेयर पुरस्कार मिला तथा 'थोड़ी सी बेवफाई' की सफलता ने उन्हें व्यावसायिक फिल्मों में भी स्टार का दर्जा दिलवा दिया। महेश भट्ट की **'अर्थ'** तथा शेखर कपूर की **'मासूम'** जैसी फिल्मों में भी बंगाल के मृणाल सेन तथा अपर्णा सेन की फिल्मों जैसी प्रामाणिकता तो नहीं थी, लेकिन उनमें नारी की स्थिति का एक तटस्थ आकलन करने की कोशिश अवश्य थी। इन फिल्मों में 'नारी स्वातंत्र्य' की नारेबाज कर्कशता तो नहीं थी, लेकिन इन फिल्मों के द्वारा वे दर्शकों के एक कहीं ज्यादा व्यापक समुदाय से मुखातिब हो सकीं और अपनी नारी-मुक्ति-छवि के साथ भी थोड़ा न्याय कर सकीं। आखिर कला फिल्मों के उनके सदा के साथी नायक नसीरुद्दीन शाह की हताशा भी तो इन्हीं परिस्थितियों में उन्हें उन व्यावसायिक फिल्मों की तरफ ले गई, जिन्हें वे निश्चित रूप से बेतुकी मानते हैं।

हिंदी फिल्मों की आम नायिका से अलग हटकर जो छवि शबाना ने प्रस्तुत की, उसके संदर्भ में उनकी अभिनय प्रतिभा का आकलन उनके निर्देशकों द्वारा उनके बारे में व्यक्त मत के सहारे बड़ी आसानी से किया जा सकता है। उनको सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार दिलवाने वाली फिल्म **'खंडहर'** के निर्देशक **मृणाल सेन** के अनुसार शबाना दुनिया की दस सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्रियों में से एक है। दसियों श्रेष्ठ कला फिल्मों में उनसे अभिनय करवाने वाले **श्याम बेनेगल** मानते हैं कि अंतरराष्ट्रीय सिनेमा में भी उनके मुकाबले में इंग्रिड तुहलिन, लिव उल्मान तथा मेरिल स्ट्रीप को ही रखा जा सकता है। 'सती' तथा टेली फिल्म 'पिकनिक' में उन्हें निर्देशित करने वाली **अपर्णा सेन** तो इनसे भी एक कदम आगे बढ़कर दुनिया की पाँच सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्रियों में रखने को तैयार हैं। यह तो हुई गंभीर फिल्मों के निर्देशकों की बात। व्यावसायिक फिल्मों के जादूगर रमेश सिप्पी तक कहते हैं, "बदकिस्मती सिर्फ मेरी है कि मेरे पास ऐसी कोई फिल्म नहीं है, जिसमें शबाना के उपयुक्त कोई भूमिका हो।" बॉक्स ऑफिस के एक और मसीहा मनमोहन देसाई की टिप्पणी कुछ ज्यादा यथार्थवादी है: "साफ-साफ कहा जाए तो हेमामालिनी की मुस्कान ही **उनकी पूँजी** है। शबाना के पास वह नहीं है। इसलिए शबाना कभी नंबर एक नहीं बन सकेंगी। मगर इसका मतलब यह भी नहीं है कि उनकी उपलब्धियाँ (हेमा से) कुछ कम हैं। बल्कि एक तरफ वे दौलत और शोहरत भी कमा रही हैं और दूसरी तरफ अपनी रचनात्मक (कलात्मक) आवेगों को भी परिदृश्य कर पा रही हैं। 'अर्थ' के निर्देशक महेश भट्ट उनकी अभिनय क्षमता तथा पात्र के व्यक्तित्व में पूरी तरह डूब जाने के गुण के बारे में कहते हैं, "वह बिल्कुल एक घाटी की तरह है। आप उसमें चीखिए और तत्काल उसकी प्रतिध्वनि आपकी तरफ लौट आती है।"

एक अन्य साक्षात्कार में शबाना ने कहा है कि प्रारंभ में उनमें एक अभिनेत्री बनने की तीव्र महत्वाकांक्षा जैसी कोई बात नहीं थी। अभिनय और 'परफॉर्म' (प्रदर्शन) करने की लगन उनमें वक्त बीतने के साथ ही बढ़ती गई। और चूँकि शबाना होने का एक अर्थ अप्रत्याशित और चौंकानेवाले करतब कर डालना भी है, शबाना ने अपने फिल्मी कैरियर के शिखर पर रहते हुए ही, जबकि उन्हें इससे कुछ भी कलात्मक या आर्थिक लाभ नहीं होना था, उन्होंने स्टेज पर अभिनय करने का फैसला कर डाला। 'इप्टा' के साथ उनका परिवार तो जुड़ा हुआ था ही, खुद उन्हें लगा कि थिएटर में किसी भी अभिनेता के लिए रियाज

की बहुत अच्छी गुंजाइश निकल सकती है। जिस समय वे एम.एस. सत्यू निर्देशित ब्रेख्त के नाटक 'कॉकेशियन चॉक सर्कल' के हिंदी संस्करण 'सफेद कुंडली' में अभिनय करने के लिए पृथ्वी थिएटर पहुँचीं तो साथी कलाकारों ने बड़ी मुश्किल से अपना तिरस्कार छुपाया था। सबके मन में एक ही बात थी, "दो-चार दिन की बात है, सारा जोश ठंडा हो जाएगा। थिएटर फिल्म स्टारों के बस की चीज ही नहीं है।" मगर शबाना ने जिद पकड़ ली थी। 'कॉकेशियन चॉक सर्कल' एक कठिन नाटक है। वह तीन घंटे तक चलता है। नायिका को लगभग पूरे समय तक मंच पर मौजूद रहना पड़ता है तथा लंबे-लंबे संवाद बोलने के अलावा उसे गाना भी पड़ता है। शबाना ने यह सब किया, नाटक-मंडली के साथ सारे भारत में प्रदर्शन किए और ग्रुप की अच्छी आमदनी भी हुई।

शबाना की अभिनय प्रतिभा की शायद सबसे शानदार प्रशस्ति उन्हें सत्यजीत राय द्वारा **'शतरंज के खिलाड़ी'** में दी गई भूमिका ही है। सत्यजीत राय ने यह कहा बतलाया जाता है कि इस फिल्म में जो एकमात्र महत्वपूर्ण नारी-पात्र था, वह एक चिड़चिड़ी, हुक्का पीने वाली बेगम का था और इसके लिए उन्हें एक अधेड़, खबीस सी लगने वाली औरत की जरूरत थी, मगर उन्होंने यह भूमिका शबाना को दे दी, क्योंकि वे 'काफी' महत्वपूर्ण अभिनेत्री थीं। बंगाल के पारखी और आसानी से संतुष्ट न होने वाले चार-चार निर्देशकों ने शबाना की प्रतिभा का लोहा माना है। राय और मृणाल सेन के अलावा अपर्णा सेन तथा गौतम घोष की 'पार' में भी उन्होंने पूरी तरह ग्लैमरविहीन भूमिकाएँ करते हुए अपना सिक्का जमाया।

शबाना आजमी की अनेक विशिष्टताओं में से एक यह भी है कि उन्होंने पाँच-पाँच महिला निर्देशिकाओं की फिल्मों में काम किया और सभी के साथ उनकी पटरी पुरुष निर्देशकों से भी ज्यादा बढ़िया बैठी। खुद उनके हिसाब से महिला निर्देशिकाओं के साथ काम करना उनके लिए बड़ा अनोखा और तसल्लीबख्श तजुर्बा रहा। अरुणा राजे (शक), कल्पना लाजिमी (एक पल), सई परांजपे (स्पर्श), अपर्णा सेन (सती एवं पिकनिक) तथा विजया मेहता (पेस्टनजी) सभी की जिस एक खासियत ने शबाना को प्रभावित किया है, वह है पात्र या चरित्र के सूक्ष्म विवरणों के प्रति उनका आग्रह। बड़ी विनम्रता से शबाना स्वीकार करती हैं कि ये सभी निर्देशिकाएँ पात्रों को इतनी स्पष्टता और संपूर्णता के साथ परिकल्पित करती हैं कि उन्हें उसमें भीतर तक पैठ जाने में कोई दिक्कत नहीं होती। 'पेस्टनजी' की भूमिका जब उन्हें दी गई तो उन्होंने विजयाबाई से अपनी शंका जाहिर की थी कि, सभी पारसी गोरे होते हैं और वे तो उतनी गोरी ही नहीं। इस पर विजया मेहता ने अपने घर पर एक पार्टी रखी और उसमें कई पारसी परिवारों के साथ उन्हें, नसीर तथा अनुपम खेर को भी आमंत्रित किया और उनसे पारसियों के हाव-भाव, बोलने के ढंग आदि का अध्ययन करने को कहा तथा बतलाया कि सभी पारसी गोरे नहीं होते। बाद में विजया ने उनके पास 'जेरू' के व्यक्तित्व के बारीक से बारीक विवरण का बयान करने वाली पूरी फाइल भेज दी। इसी तरह अपर्णा की निर्देशकीय योग्यता के प्रति उनमें लगभग अंध श्रद्धा है। 'सती' में वे उमा नामक एक ऐसी पागल लड़की की भूमिका करती हैं, जिसका विवाह एक बूढ़े वृक्ष के साथ कर दिया जाता है। बाद में एक तूफान में वह बूढ़ा बरगद गिर जाता है और उसके नीचे दबकर उमा भी मर जाती है। इस निहायत ही संवेदनशील भूमिका करते हुए अपर्णा को शबाना से शिकायत यह रही कि उनकी मुस्कान जरा शहरी किस्म की है। उन्होंने उन्हें सलाह दी कि वे मुस्कराने के बजाए जोर से हँसें, तभी वे असली ग्रामीण लड़की नजर आएँगी। बगैर 'मंडी' का जिक्र किए शबाना की फिल्मों की चर्चा कुछ ज्यादा ही अधूरी रह जाएगी। 'मंडी' में उन्होंने जानकीबाई नामक एक वेश्यालय की मालकिन बाईजी की भूमिका की है। आम फिल्मों में वेश्याओं की जो दयनीय और करुणा जगाने वाली छवि प्रस्तुत की जाती है (बच्चा रो रहा है, वह नाच रही है आदि) उससे यह बिल्कुल भिन्न है। जानकीबाई एक मातृ-मूर्ति है। वह आम 'माताओं' से भी अलग है। 'मंडी' की अपनी भूमिका को शबाना ने एक चुनौती की तरह लिया था और इसकी तैयारी के लिए वे हैदराबाद, दिल्ली तथा बंबई की वेश्याओं से भी जाकर मिलीं। वैसे इस तरह की चीजों को 'आर्गेनाइज' करना उनकी राय में काफी मुश्किल भी होता है। 'वेश्याएँ' यह समझ सकती हैं कि उन्हें 'यूज' किया जा रहा है। बहरहाल ये सब उल्लेख इसलिए कि शबाना के लिए अपनी भूमिका को अच्छे ढंग से

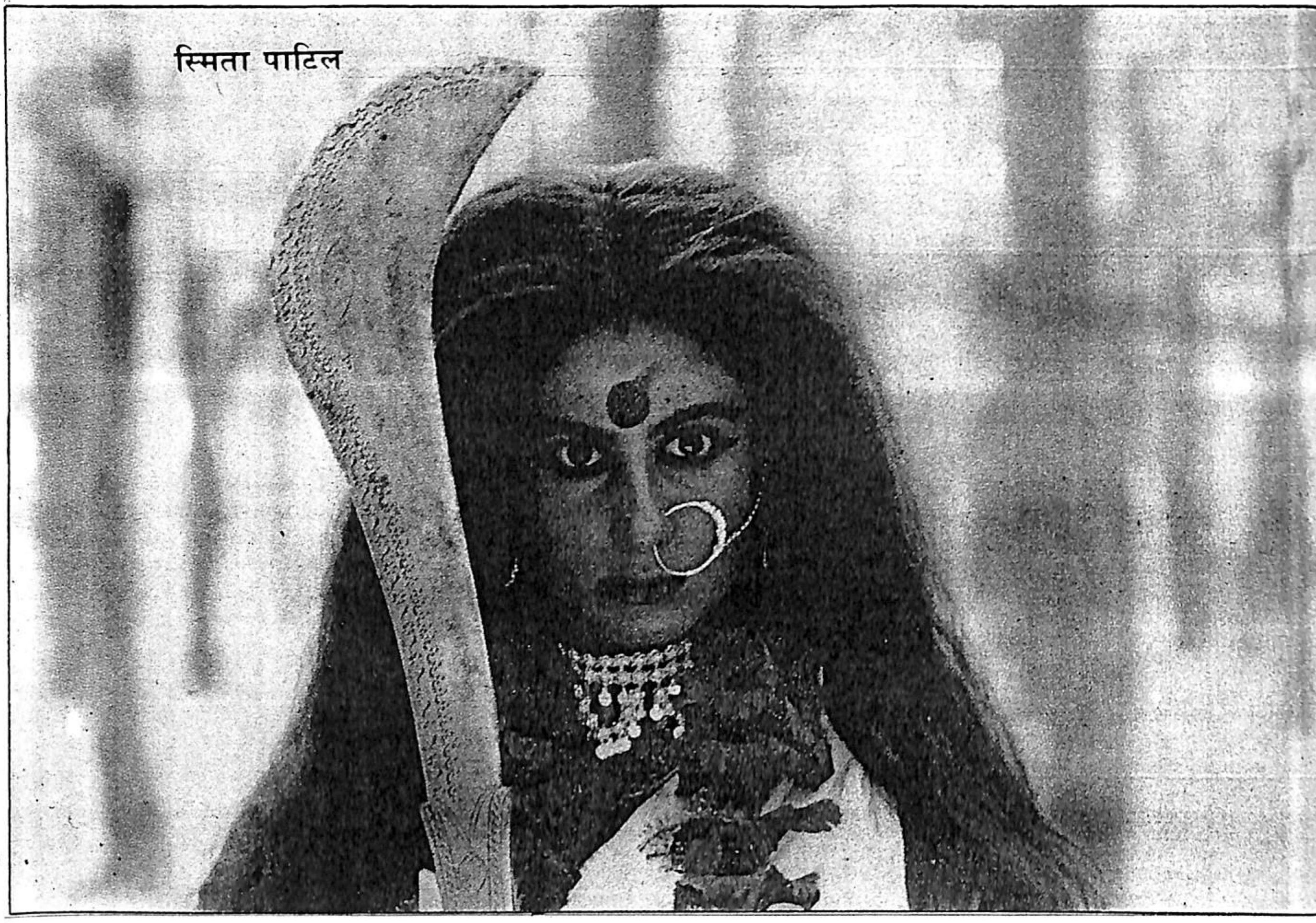


जान श्लेसिंगर की अँग्रेजी फिल्म मादाम सुजात्स्का में शबाना

प्रस्तुत कर देने से आगे भी कई सरोकार हमेशा रहे हैं।

प्रोफेशनल स्तर पर स्मिता पाटिल के साथ उनकी प्रतिद्वंद्विता को लेकर भी काफी चर्चाएँ होती रही हैं। जहाँ एक तरफ वे बड़ी साफगोई से यह स्वीकार करती हैं कि आरोप लगाए जाने पर उन्होंने कुछ तल्ख बातें उनके बारे में कही थीं, लेकिन बाद में उन्होंने एक पेशेवर की तरह उनसे मेल-मिलाप भी कर लिया था। मगर अभिनेत्री के रूप में उनके पेशेवर होने का यह अर्थ कतई नहीं है कि वे अन्य अभिनेत्रियों की तरह पैसे को ही सब-कुछ समझ लें। निर्माता मोहनकुमार कहते हैं: "वे उन हीरोइनों जैसी नहीं है जो हमेशा नए बंगले और नई कारों के पीछे भागती रहती हैं। उनके लिए इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे फर्श पर बैठकर खाना खा रही हैं या किसी पाँच सितारा होटल में।" बड़ी स्टार बन जाने के बाद भी वे बरसों अपनी पुरानी कॉटेज में ही रहती रहीं। उनकी परवरिश जिस समतावादी माहौल में हुई है (उनके माता-पिता दोनों कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे और शबाना के नौ वर्ष के होते समय तक पार्टी के सामुदायिक क्वार्टर में रहते थे।) वह उनकी जीवन-शैली में पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है।

शबाना के फिल्मी कैरियर में जो कि किसी भी तरह से अभी चुका नहीं है, सबसे ताजा उपलब्धियाँ हैं जॉन श्लेसिंगर की फिल्म **'मादाम सुजात्स्का'** जिसमें वे हॉलीवुड की अप्रतिम अभिनेत्री शर्ले मैकलेन के साथ इंग्लैंड में बसी एक भारतीय बंगाली नारी सुशीला सेन की भूमिका करती हैं। इसके अलावा निकोलास क्लॉट्ज की फ्रेंच फिल्म 'ला नुइत बेंगाली' में उन्होंने सौमित्र चटर्जी के साथ अभिनय किया है। यह भूमिका क्लॉट्ज ने उनकी 'खंडहर' फिल्म देखकर विशेष रूप से उनके लिए लिखी थी। इस फिल्म से मैत्रेयी देवी कुछ नाराज भी हुई थीं, क्योंकि उसमें एक माँ, जिसके जीवन में कभी रोमांस नहीं रहा, अपनी बेटी (शबाना) को एक विदेशी से प्यार करने के लिए उकसाती है। वैसे शबाना को इसमें औपनिवेशिक- शोषण जैसी कोई बात नजर नहीं आई। मगर शबाना होने का एक अर्थ लगातार विवादों से घिरे रहना भी है और वे इंशाअल्लाह आइंदा भी चलते रहेंगे, क्योंकि शबाना अपनी प्रकृति के अनुसार अपनी पिछली छवि को तोड़कर नई छवि गढ़ती रहेंगी। और अंत में शबाना का असली अर्थ भी जान लें- वह 'निशा' भी हो सकता है और 'नशा' भी! ! ■



स्मिता पाटिल

स्मिता पाटिल कुछ नोट्स...

● आर. एस. यादव

◆◆◆

स्मिता का खर्च हो जाना एक खास संभावना का अंत था और यकीनन वह ट्रेक खाली पड़ा है, जिस पर स्मिता और सिर्फ स्मिता ही चलकर छोर पर एक आधिकारिक शक्ल खड़ी कर सकती थी। वह नहीं मरी, हमारे कुछ खास किरदार मर गए, जो अब किसी और तरह से जन्म लेंगे।

स्मिता को गुजरे इतना ज्यादा अरसा नहीं हुआ कि हिंदी फिल्मों की श्रेष्ठ अभिनेत्रियों का जिक्र निकले तो उसे लोग अतीत के रूप में याद करें। वह अभी भी जीवित मालूम होती है। और उसकी यह आस्तित्विक विद्यमानता केवल उसकी उन फिल्मों के कारण नहीं है जिन्हें हम प्रोजेक्टर और वी.सी.आर. पर चलाकर देख सकते हैं। बल्कि उस उष्मा और मांसलता के कारण है जो स्मिता को सदा-सदा के लिए एक जिंदा चीज बना गया। साधारण रूप रंग की इस साँवली औरत पर कभी **रावण** वाले जॉनी बख्शी बुरी तरह फिदा थे। उनका यह जुनून कितना ही हास्यास्पद और एकतरफा रहा हो, पर उन्होंने एक पत्रकार को अपनी चाहत का जो कारण बताया था वह एक गंभीर दर्शक को स्मिता को समझने में बड़ी मदद देता है। जॉनी बख्शी ने कहा था कि स्मिता मर्द में बौद्धिक, ब्रह्मचर्य जगाने वाली एक कामुक अभिनेत्री है। यानी स्मिता में कामुकता, मांसलता, बौद्धिकता और अमूर्तता का ऐसा योग था कि उसे केवल भोग्या समझकर टाला नहीं जा सकता था बल्कि उसके साहचर्य की उष्मा में काफी हद तक सांस्कृतिक और एस्थेटिक हुआ जा सकता था। **अर्थ** में स्मिता ने जिस परवीन बॉबी और कथा के किरदार को जिया है उनका डिरेंजमेंट और स्किजोफ्रेनिया जैसे स्मिता का भी रहा है। समस्त बौद्धिकता के बावजूद पुरुष प्रेम के खातिर वही छटपटाहट, समस्त नारीगत आत्मसम्मान के बावजूद वही टूटन, वही दैन्य, सारी समझ के बावजूद वही हताशा और समर्पण और विद्रोह की सारी खदबदाहट के बावजूद पुरुष निर्भरता की वही विवशता कमोबेश विद्रोहिणी स्मिता को वास्तविक जीवन में भी गठते रहे हैं। स्मिता परिभाष्य थी, बावजूद इसके कि वह काफी अमूर्त थी।

इस मौके पर रेखा और शबाना से उसकी तुलना काफी स्वाभाविक हो जाती है। रेखा में जो इन्टेंसिटी है, वह स्मिता में नहीं है। शबाना में जो सहजता, तंज और बौद्धिक खुलापन है, वह भी स्मिंता में नहीं है। रेखा की तरह आत्मघाती डिरेंजमेंट और शबाना की तरह रोल की सटीक समझ के बावजूद स्मिता में विश्व स्तर की अद्राकारा का ठहराव और मेटाफिजिकल अमूर्तता थी। वह अवसाद के कठिन और जटिल शेड को अभिव्यक्त करके जाहिर कर सकती थी कि रूह की अमूर्तता की तरह आदिम अवसाद भी अतीन्द्रिय स्तर तक वायवीय है और उसे सीधा सपाट अवसाद कहकर केटेगराइज नहीं किया जा सकता। रेखा और शबाना की तुलना में स्मिता काफी मेटाफिजिकल थी। उसमें जैसा कि प्रतिभाओं के साथ होता है, एक किस्म की आत्मविस्मृति थी। यह आत्मविस्मृति किसी गँवार की असमर्थता के कारण नहीं उपजी थी, बल्कि

सहज और स्वाभाविक अभिनेत्री : स्मिता पाटिल

विख्यात फिल्म निर्देशक श्याम बेनेगल ने **स्मिता पाटिल** को स्वाभाविक अभिनेत्री का दर्जा दिया था। उसे अभिनय न तो विरासत में मिला था और न ही उसने किसी प्रशिक्षण संस्थान में अभिनय की बाकायदा शिक्षा पाई थी। बचपन में भारत सेवक समाज के दल में शामिल होकर ग्रामीण लोगों के लिए नृत्य और संगीत के कार्यक्रम पेश करने के कारण उसे मंच पर जाने से भय नहीं लगता था। श्याम बेनेगल की फिल्म **चरणदास चोर** में वह एक कच्ची अभिनेत्री के रूप में आई और फिर यानी १९७५ के बाद उसकी कला में निखार आना शुरू हो गया। **निशांत, मंथन** तथा **भूमिका** में अभिनय की परिपक्वता तक पहुँच गई। इस फिल्म में श्रेष्ठ अभिनय के कारण उसे राष्ट्रीय अवार्ड भी पहली बार मिला। मराठी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जयवंत दलवी की कृति पर आधारित फिल्म **चक्र** में रवीन्द्र धर्मराज में उसे **अम्मा** की भूमिका प्रस्तावित की। इस बार फिर उसने अभिनय की स्वाभाविक ऊँचाइयों को छुआ तथा राष्ट्रीय पुरस्कार पाया। इसके बाद आक्रोश, भवनी भवाई, सद्गति, बाजार, सुबह, अर्थ, मंडी तथा अर्धसत्य में वह एक निपुण, सहज और बेबाक अभिनेत्री के रूप में स्थापित हो गई। सद्गति में काम करने के अवसर को स्मिता ने अपना सौभाग्य माना क्योंकि इस फिल्म में विख्यात निर्देशक सत्यजीत राय के साथ काम करने से उसे काफी कुछ सीखने को मिला।

जब स्मिता को **बाजार** में एक मुस्लिम लड़की की भूमिका करने का प्रस्ताव मिला तब उसने पात्र का अध्ययन किया। अपनी खुशी की खातिर अपने प्रियजनों की खुशियों को दाँव पर लगाने वाली इस लड़की का रोल समालोचकों की नजर में नेगेटिव था। स्मिता ने मुस्लिम सामाजिक पृष्ठभूमि को देखा-परखा तथा फिर पूरी शक्ति और सामर्थ्य से इस भूमिका को कुछ इस तरीके से अदा किया कि वह पॉजीटिव की श्रेणी में आ गई। सागर सरहदी की फिल्म 'तेरे शहर में' में उसकी भूमिका अलग किस्म की है। कोल्हापुर की नटखट चंचल लड़की की शादी बहुत भले आदमी से होती है। आपस में प्यार करने वाला यह जोड़ा जब महानगर में अस्तित्व की लड़ाई लड़ने पर बाध्य होता है तो उनकी कोमल भावनाएँ मरने लगती हैं। महानगर का माहौल इस लड़की को पागल बनाकर ही छोड़ता है। सुबह में अपने अभिनय को भी वह काफी उत्तम मानती है। इस फिल्म में उसने ऐसी पत्नी की भूमिका की थी, जिसका पति रिमांड होम का अधिकारी है तथा पत्नी की गैर मौजूदगी में एक अन्य महिला के साथ रिश्ता कायम कर लेता है। पंजाब की पृष्ठभूमि पर बनी फिल्म वारिस में भी उसकी भूमिका बिल्कुल अलग किस्म की थी। निःसंतान विधवा होने के कारण ससुर के भाईबंद उसकी सारी सम्पत्ति हड़प लेना चाहते हैं। वह स्थिति की गंभीरता को समझती है तथा जमीन जायदाद का वारिस पैदा करवाने के लिए अपनी बहन का ब्याह ससुर से करवा देती है।

अभिनय की स्वाभाविकता या सोच का लचीला तरीका स्मिता को हर तरह की फिल्मों में सफल बना देता है। सन् १९८४ में पेरिस में फ्रांसीसी फिल्मकारों ने इस महान अभिनेत्री का सम्मान किया। ऐसा सम्मान पाने वाली वह पहली भारतीय अभिनेत्री थी। इस मौके पर फ्रांसीसी फिल्म निर्माता रॉल रोइज ने अपनी एक भावी फिल्म में उसे ताहिती लड़की की भूमिका करने का प्रस्ताव किया। स्मिता ने विनम्रतापूर्वक यह प्रस्ताव अस्वीकार करते हुए कारण बताया- ताहिती लड़कियाँ नहीं के बराबर कपड़े पहनती है। कम कपड़ों में परदे पर आने में एतराज करने वाली स्मिता को व्यावसायिक फिल्मों में काफी उत्तेजक भूमिकाएँ करनी पड़ी हैं। बदले की आग, घुँघरू तथा नमक हलाल में उससे अभिनय की अपेक्षा कम तथा सेक्सी नजर आने की अपेक्षा ज्यादा की गई थी। नमक हलाल में तो बरसात के दृश्य में पतले वस्त्र गीले होकर उसके शरीर से पूरी तरह चिपक गए थे। कला फिल्म चक्र में भी उसका **नग्नसम** स्नान दृश्य काफी चर्चित रहा था।

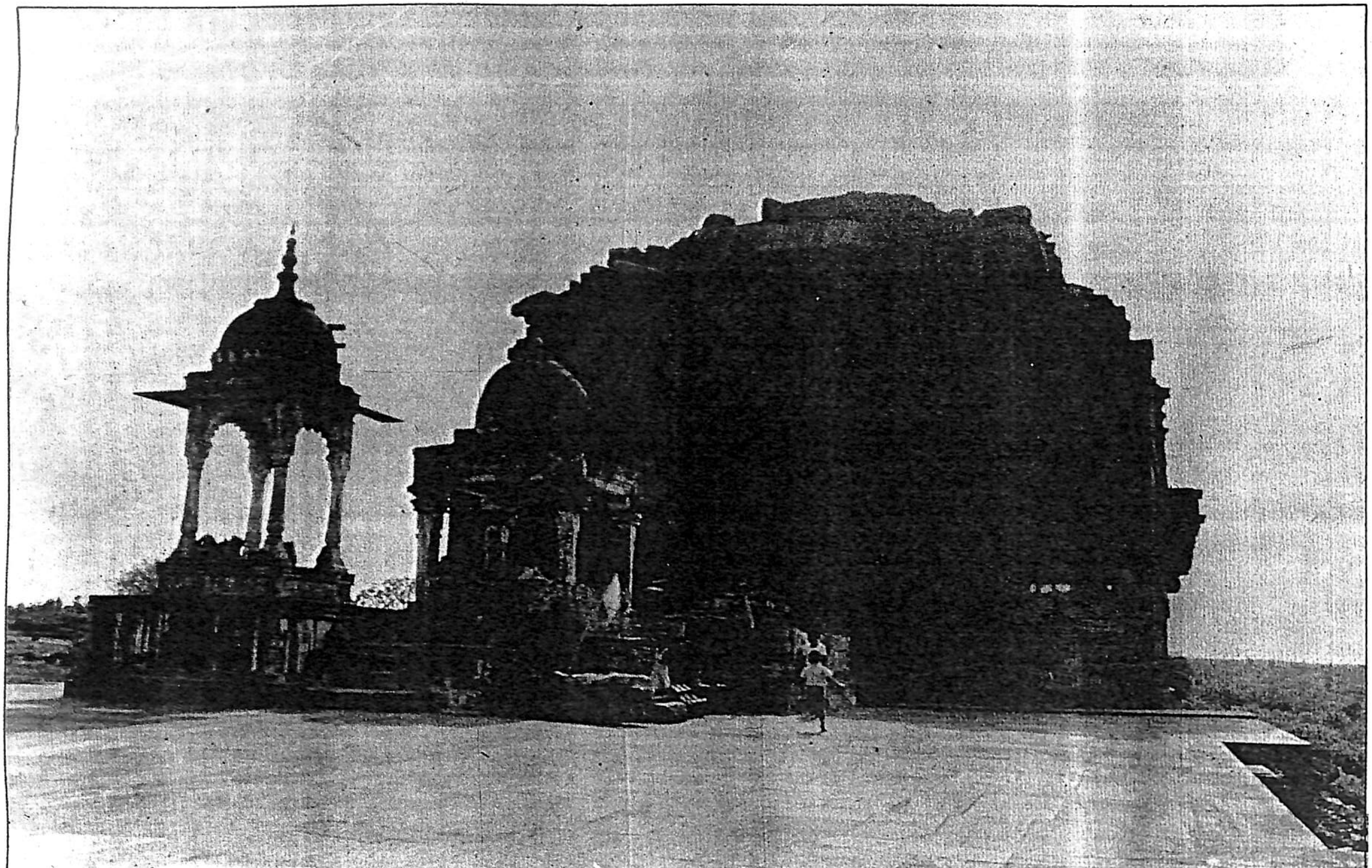
स्मिता एक अभिनेत्री होने के साथ महानगरों में चलने वाले महिला आंदोलनों से भी जुड़ी रही थी। अतः भारतीय महिलाओं का जैसा चित्रण हिंदी की व्यावसायिक फिल्मों में किया जाता था उससे वह संतुष्ट नहीं थी। नाचना, गाना, प्यार करना तथा रोना-धोना ही नारी की नियति नहीं है। वह ऐसे सार्थक सिनेमा की पक्षधर थी जो मनोरंजन तो करे मगर दर्शकों के लिए अफीम का काम न करे। नारी प्रधान फिल्मों में भूमिकाएँ करना उसे बहुत भाता था। विवाह तथा प्रेम को उसने सदैव पृथक माना तथा विवाह को सिर्फ सामाजिक दायित्व तथा संतानों के लिए कल्याणकारी संस्था के रूप में ही स्वीकार किया।

आम नायिकाओं से पूरी तरह अलग व्यक्तित्व वाली इस नायिका को श्याम बेनेगल ने एंटी हीरोइन कहा है। तीन साल पहले बहुत छोटी उम्र में स्मिता का निधन हिंदी और सार्थक सिनेमा के साथ विश्व सिनेमा की भी अपूरणीय क्षति है।



अवचेतन की गहराइयों तक बुद्धि के न पहुँच पाने के स्वाभाविक नतीजे का परिणाम थी। यह आत्मविस्मृति एक लहर की नहीं, समुद्र की थी, जो लहर के स्तर से अपनी ही गरिमा और गांभीर्य को नहीं जान सकता। तो स्मिता का अभिनय अवचेतन की एक स्वाभाविक समझ से उत्पन्न होता था और साधारण से दृश्य में भी उसमें कॉस्मिक तत्व का स्पर्श देखा जा सकता था। मेरी समझ है कि बौद्धिक डिरेंजमेंट और शुद्ध मांसलता की कामुक ऊष्मा को नेचरलाइज करके रखना स्मिता की अपनी खूबी थी।

उंबरठा में स्मिता के रोल की बहुत तारीफ हुई है। मगर अर्थ के रोल की तुलना में वह स्पष्ट और फ्लेट था। अर्थ का रोल बेहद जटिल है। यह समझना गलत होगा कि वह रोल चूँकि परवीन बॉबी को ध्यान में रखकर लिखा गया था, इसलिए उक्त किरदार के अभिनय के वक्त स्मिता के सामने एक निश्चित मॉडेल था और स्मिता को उसे कॉपी भर करना था। जी नहीं, अर्थ की स्मिता और वास्तविक जीवन की परवीन बॉबी में कलात्मक अंतर है। अर्थ का किरदार स्मिता के अभिनय के मार्फत केवल परवीन बॉबी का संस्करण नहीं है, बल्कि स्मिता द्वारा उस पात्र के मनोविज्ञान की समझ का अनुभव है। अर्थ की परवीन बॉबी वास्तविक परवीन बॉबी से कहीं अधिक सटल और सार्वभौमिक है। कल्पना कीजिए एक औरत का कातर दीवानगी और चिढ़ाने वाली असहायता में डूबा चेहरा। याद कीजिए, कामुकता के पिघलते गुड़ से मिठियायी हुई व्यक्तित्वहीन, अंधी, परनिर्भरता। उक्त रोल दया से अधिक चिढ़, चिढ़ से अधिक गुस्सा और गुस्से से अधिक वितृष्णा पैदा करता है। उक्त भूमिका में बिना बोले, पीलिया के चेहरे वाली निर्जीव लुक से



सदियों से संस्कृतियों के विकास का गवाह रहा मध्यप्रदेश अब फिर एक बार गवाह होगा एक नई संस्कृति के उदय का। यह संस्कृति एक नई राजनीतिक संस्कृति होगी जिसमें राजनीतिक तंत्र और प्रशासन तंत्र एक-दूसरे के पूरक होंगे। आम आदमी प्रशासन को अपना मददगार मानेगा। उसे यह महसूस होगा कि सरकार उसके लिए है। प्रशासन का ढाँचा ऐसा बनेगा कि सबको बराबरी के मौके मिलेंगे, काम करने के और आगे बढ़ने के। यह संस्कृति एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्कृति होगी जिसमें न भ्रष्टाचार होगा न अत्याचार।

स्मिता ने जिस मॉर्बिड पुरुष-निर्भरता का चित्र खींचा है, वह अभिनय की दुनिया में आसान चीज नहीं थी। उसके लिए नारी मनोविज्ञान की प्रामाणिक समझ जरूरी थी। मेरे लिए स्मिता की वह भूमिका अविस्मरणीय है। और अविस्मरणीय इस मायने में कि अर्थ में सामान्य तौर पर करने के लिए स्मिता के पास कुछ नहीं था। मगर शून्य में से उसने कातर, विभाजित व्यक्तित्व की जो भंगिमा खड़ी की है, वह प्लॉट रहित कहानी के सशक्त कहानीपन का मामला है। केवल समझ और सघन अनुभूति ही चरित्र के स्केलटॅन को मांसल भराव दे सकते थे। स्मिता वहाँ खरी उतरी। वह अर्थ में शबाना से अधिक एक्सप्रेसिव और सटल है।

भूमिका फिल्म मराठी अभिनेत्री **हंसा वाडकर** की आत्मकथा पर आधारित थी। जिन लोगों ने हंसा वाडकर की किताब 'सांगाये ऐका' (सुनाती हूँ, सुनो!) पढ़ी है, उन्हें एक ऐसी स्त्री और अभिनेत्री का अहसास होगा जो आदर और खीझ, करुणा और शॉक, क्षम्यता और सांस्कृतिक आतंक और इंसान की एलीमेंटल लाचारगी के स्वीकार का सहमा हुआ साहस जगाती है। हंसा, जो बेदाग है। हंसा, जो उन्मुक्त है। हंसा, जो पतिनिष्ठ है। हंसा, जो परअंकशायिनी है। हंसा, जो शेप की तलाश में है और हंसा, जो आचरण की तमाम सिमेट्रियों को तोड़ देती है। भूमिका एक ऐसी औरत के जटिल मनोविज्ञान का चित्रण था जो चली थी एक व्यवस्थित गृहस्थी बसाने और पति के शक द्वारा आहत पात्निक स्वाभिमान के कारण ऐसे रास्ते पर चली गई जो स्वयं उसके खिलाफ था और जिसकी अति में ही मन के लावे को शांत किया जा सकता था। किताब में हंसा ने परपुरुषों से साहचर्य का खुला वर्णन किया है और अपनी उस आत्मस्वीकारोक्ति में कहीं झिझक नहीं बरती है। वह एक औरत के विदेह हो जाने का किस्सा था। मगर सेल्फ कन्फेशन की उस तटस्थता तक पहुँचने में अंत की हंसा को शुरू में किस कातरता, टूटन, विरोध और फिर आत्मविरोध की शिद्दतों से गुजरना पड़ा था, वह एक साँस रोकने वाला भाषिक सिलसिला है। स्मिता को अपने अभिनय में इसी शारीरिकता और विदेहपन को जताते हुए बीच में कामुकता और वासना विरोधी वासनात्मकता से गुजरना था। वह आँसुओं को उन्मुक्त रति और उन्मुक्त रति को आँसुओं में बदलने का दस्तावेज था। स्मिता हंसा की भूमिका में खरी उतरी। उस दृश्य में उसने सचमुच की हंसा की तरह जान फूँक दी थी जब वह पति के सामने कसम खाती है- 'मैं देवी की कसम खाती हूँ कि परपुरुष से मेरा कोई संबंध नहीं है। पर मैं अब देवी की ही कसम खाकर कहती हूँ कि अब ऐसा ही होगा।' बस कुछ ऐसा ही था डायलॉग। और अगर हम अपनी बीवियों के खाविंद होकर इस दृश्य को नहीं देख रहे हैं बल्कि एक जिंदे आदमी में कला का सच खोज रहे हैं तो हम साफ देखने लगते हैं कि हंसा की उद्दाम कामुकता का जीवन दरअसल शरीर का समर्थन नहीं है बल्कि उसे एक विवश पुल के रूप में इस्तेमाल करके आत्मा की शांति और पवित्रता में उतर जाने का कॉस्मिक प्रयास है। प्रकृति इसी रास्ते अपना रेचन करती है और इस फिनामेनन को दैनिक तर्क से नहीं समझाया जा सकता चूँकि हमारा सारा सोच और नैतिकता समाज पर आधारित है और समाज एक कॉस्मिक अज्ञान पर आधारित है। भूमिका की उस भूमिका के लिए स्मिता को पुरस्कार भी मिला। मगर स्मिता ने साबित कर दिया कि पुरस्कार फिर भी स्थूल था। तब तक हम एक ऐसी अभिनेत्री को देख-खोज चुके थे जिसका कलाकारीय इन्साइट एक आत्म विस्मृत प्रतिभा का चटकदार और तीखा इंसाइट था। इस आंतरिक सर्चलाइट में भूमिका के डिटेल्स का बच निकलना नामुमकिन था। किरदार की जटिलता के भिन्न-भिन्न शेडों का अनदेखा रह जाना अघट्य था। तिस पर स्मिता की संवेदनशीलता, आगे गुंजाइश नहीं रह जाती थी कि जीवन, ड्रामा व असली-नकली इमोशन में फर्क का बाल नजर आ जाए। स्मिता ने जिस छाया को खेला वह काया बन गई। उसकी मौत अगले किरदारों की मौत थी। अब हम नहीं जान सकते कि स्मिता होती तो अमुक किरदार कैसा खेला जाता, पर इतना जरूर जानते हैं कि कहीं मेक बिलीफ का खून जरूर पतला हो गया। आखिर स्मिता के रहने और न रहने का ठोस फर्क कहीं तो होगा और क्यों नहीं होगा?



मगर स्मिता की भी सीमा थी। और वह कमोबेश सभी भारतीय अभिनेता-अभिनेत्रियों की सीमा है। उन्हें जीवन की विविधता को देखने से एतराज है। उन्हें हर अनुभव से गुजर जाने की झिझक है। उन्हें साधारण आदमी से मिलने और मानवता के अनंत नमूनों को देखते रहने की परम् जिज्ञासा नहीं है। धन, ग्लेमर और तबके की प्रतिष्ठा के भीतर जीने के वे इतने आदी हो चुके हैं कि जीवन से उनका खुला संपर्क खत्म हो गया

शबाना और स्मिताः फिल्म मंडी (१९८३)



है। फिल्म जगत में अध्ययन, बहस और सतत खोज का बौद्धिक वातावरण भी न के बराबर है। ऐसे दकियानूस सस्ते माहौल में एक कलाकार के दैनिक होमवर्क की गहरी कमी है। कमोबेश स्मिता भी इसी ग्लेमर का शिकार हुई। पैसा और नाम कमाने की होड़ उसे व्यावसायिक फिल्मों में ले गई। उसका पति संबंधी चुनाव भी हल्का-फुल्का साबित हुआ और दर्शकों ने महसूस किया कि किसी स्तर पर वह महज साधारण औरत है। मगर ये सब बाद की बातें हैं, साँप निकल जाने के बाद लकीर पीटने जैसी और साँप हमेशा ही पहले निकल चुका होता है। उपसंहार में हम केवल इतना कह सकते हैं कि स्मिता का खर्च हो जाना एक खास संभावना का अंत था और यकीनन वह ट्रेक खाली पड़ा है जिस पर स्मिता और सिर्फ स्मिता ही चलकर छोर पर एक आधिकारिक शक्ल खड़ी कर सकती थी। वह नहीं मरी, हमारे कुछ खास किरदार मर गए, जो अब किसी और तरह से जन्म लेंगे। स्मिता क्योंकि एक प्रतिभावान अभिनेत्री थी, इसलिए अनुमान लगाने का मजा और तुलना करने का दुःख कुछ और वर्षों तक हम सहर्ष पाले रहेंगे। स्मिता, दि स्मिता थी। ■



स्मिता पाटिल

बेजोड़ और लाजवाब

● श्याम बेनेगल

मैंने **स्मिता पाटिल** को पहली बार बंबई दूरदर्शन केंद्र पर देखा था। उन दिनों वे मराठी के समाचार टी.वी. पर पढ़ती थीं। उनके पिता तब महाराष्ट्र में राज्यमंत्री थे। स्मिता को देखते ही मैंने महसूस किया था कि वे एक सफल अभिनेत्री हैं। उनका बोलने का तरीका, आँखों का भाव और आवाज ऐसी थी कि किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती। टी.वी. के स्क्रीन पर तो और भी आकर्षक लगती थीं।

स्मिता पाटिल सही मायनों में सुंदर थीं। मेरी निजी भावना तो यह है कि भारतीय महिलाएँ दुनिया में सबसे सुंदर होती हैं। स्मिता का सौंदर्य शुद्ध भारतीय सौंदर्य था। न जाने क्यों, हम भारतीयों ने भी उन बातों को ही सौंदर्य का पैमाना मान रखा है जो योरप के लोगों ने माना है।

स्मिता पाटिल साँवले रंग की भारतीय नारी थीं यह भारतीयपन मैंने स्मिता पाटिल के अलावा शबाना आजमी में भी पाया है।

शबाना और स्मिता दोनों ही समकालीन रही हैं। शबाना की कुछ विशेष खूबियाँ हैं जिनमें से एक यह है कि वे ज्यादा 'ड्रामेटिक' पार्ट कर सकती हैं। स्मिता की विशेषताएँ अलग रही हैं। स्मिता ने कई ऐसे रोल किए जिनमें उन्हें ग्लैमरस अभिनेत्री लगना था। कई रोल ऐसे थे, जिनमें वे बिलकुल सीधी-सादी महिला थीं। स्मिता में ग्लैमर और सादगी दोनों थीं।

स्मिता के निजी जीवन में बड़ी सादगी थी। जब वे कैमरे के सामने नहीं होती-तब हमेशा बिना मेकअप के रहती थीं। मेरी किसी भी फिल्म में, दूसरे कलाकारों की तरह उन्होंने भी कोई मेकअप नहीं किया था।

स्मिता पाटिल और शबाना दोनों ही केवल अपने समाज से जुड़ी रही हैं। उन्होंने केवल अभिनय ही नहीं किया, यह भी देखा कि समाज में, अपने परिवेश में क्या कुछ घट रहा है। दोनों के विचार स्वतंत्र थे और प्रेस वालों ने उनकी तुलना अक्सर की है। मेरा खयाल है दोनों की तुलना करना उचित नहीं था। संयोग से दोनों ने **'निशांत'** और **'मंडी'** फिल्मों में काम किया था। दोनों ही फिल्मों में शबाना की मुख्य भूमिका थी, लेकिन यह स्मिता का बड़प्पन ही था, कि उन्होंने इन फिल्मों में काम करना कबूल किया।

एक खास बात मैंने स्मिता में पाई, कि उनमें अपने रोल के लिए बहुत एनर्जी थी। उन्होंने कभी अपने स्वास्थ्य को लेकर कोई शिकायत नहीं की। कभी यह नहीं कहा कि आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। उनमें बिलकुल सही अर्थों में प्रोफेशनलिज्म था। **'मंथन'** फिल्म में उन्होंने एक हरिजन लड़की की भूमिका को लिया। उनका अभिनय गजब का था। उन्होंने जहाँ भी काम किया, बहुत ही बढ़िया काम किया।

स्मिता ने कभी भी यह भाव नहीं आने दिया कि मैं 'स्टार' हूँ। वे यूनिट की एक मेंबर बनकर रहीं। मेरी यूनिट में सारे लोग बराबर होते हैं। स्मिता ने कभी अपने को बड़ा दिखाने की कोशिश नहीं की।

स्मिता के बहुत सारे दोस्त थे। विविध क्षेत्रों के, विविध रुचियों वाले। डिजाइन के बारे में उनका 'टेस्ट एक्सिलैंट' था। कपड़ों के बारे में उनका कलर सैंस अच्छा था। अगर वे अभिनेत्री नहीं होती तो बहुत ही बढ़िया डिजाइनर होतीं। वे बहुत अच्छी फोटोग्राफर थीं और अपनी किसी भी भूमिका के लिए उन्हें कभी कोई परेशानी नहीं हुई।

स्मिता पाटिल का मैं बड़ा आदर करता हूँ। वे एक स्वतंत्र भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती थीं। वे महिला होने के कारण नहीं, स्वतंत्र व्यक्तित्व होने के नाते आदर की पात्र हैं। 'मंथन' फिल्म उनके विचारों के बहुत करीब थी। मैंने 'मंथन' में ही उन्हें सर्वश्रेष्ठ रूप में पाया।

स्वतंत्र विचारों का यही गुण शबाना में भी है। जेनिफर में भी यही खासियत थी। युवा कलाकारों में अनिता कँवर और नीना गुप्ता भी स्वतंत्र विचारों की हैं। इनमें भी वही गुण है जो शबाना में है, स्मिता में थे।

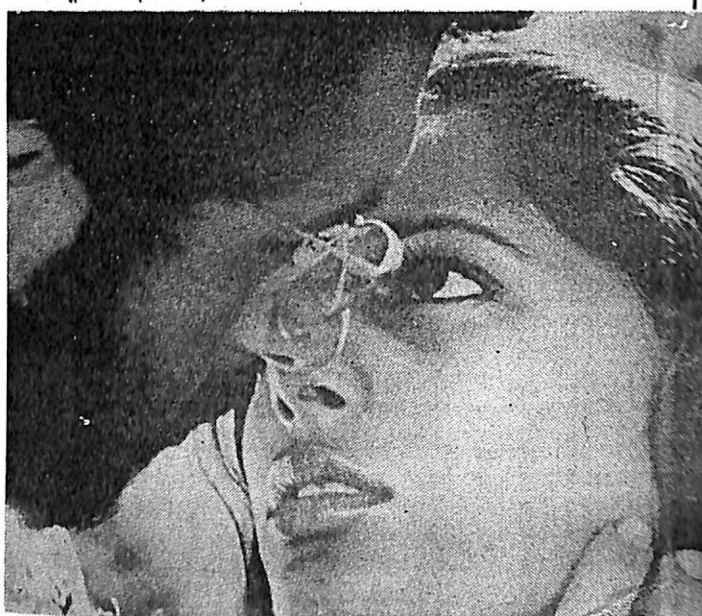
स्मिता के जाने से फिल्मी दुनिया में आया खालीपन हमेशा रहेगा। मैं जानता हूँ कि कई ऐसी भूमिकाएँ हैं जिन्हें कोई और नहीं कर पाएगा।

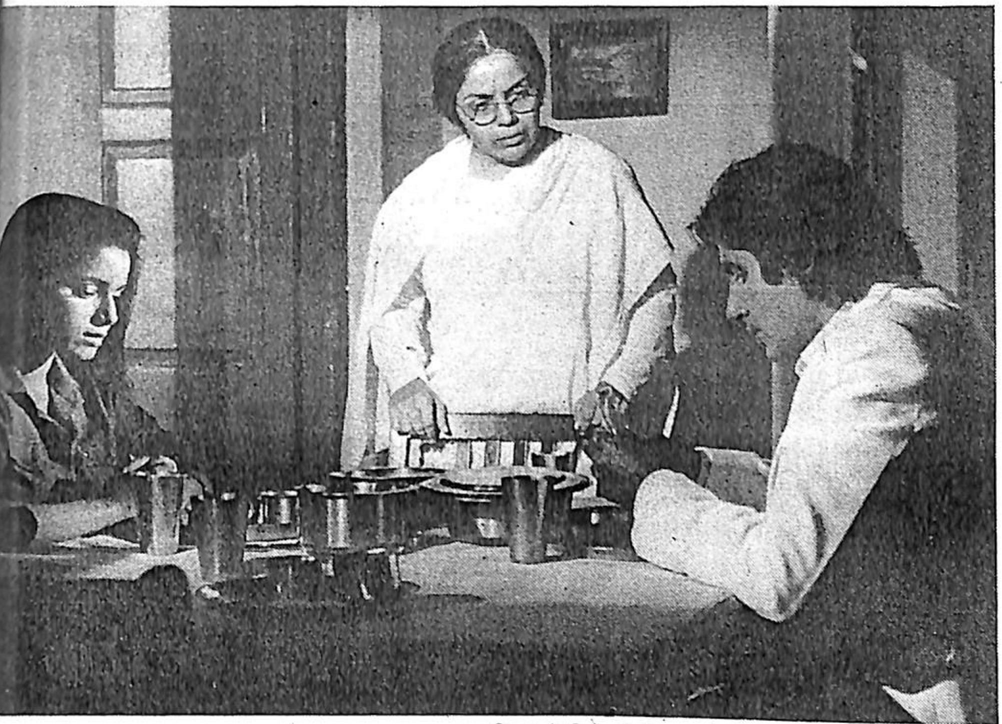
स्मिता पाटिल मराठीभाषी थीं और उनकी पढ़ाई अंग्रेजी माध्यम में हुई। लेकिन उन्होंने हिंदी पर बहुत जल्दी अधिकार जमा लिया। तेलुगु और मलयालम की फिल्मों में भी उन्होंने काम किया। भाषा कोई भी हो, वह बहुत जल्दी उनकी जुबान पर चढ़ जाती।

स्मिता अगर अभिनेत्री नहीं होती, तो भी वह जहाँ भी होती शिखर पर होती। अगर वह मेडिसिन में जाती तो सफलतम डॉक्टर होती। जब स्मिता ने मेरी फिल्म में पहली बार काम किया, तब वे काफी मशहूर हो चुकी थीं लेकिन 'भूमिका' फिल्म बनने के बाद ही उन्होंने तय किया था कि उन्हें एक अभिनेत्री के रूप में ख्याति पानी है।

कभी भी रुपए को लेकर उन्होंने बातचीत नहीं की। मेरी फिल्मों से उन्हें जितना रुपया मिला, वह उनकी दूसरी फिल्मों की तुलना में बहुत कम था। जब उन्होंने 'मंडी' फिल्म में काम किया, तब तो वे एक बड़ी स्टार बन चुकी थीं। उन्होंने केवल 'मंडी' में नाममात्र के पारिश्रमिक में काम करना मंजूर किया, बल्कि शबाना से छोटा रोल भी स्वीकार कर लिया।

फिल्म 'भूमिका' (१९७७) में नसीर-स्मिता.





फिल्म 'अग्निपथ' (१९९०) में नीलम और अमिताभ के बीच

सम्पादिका-अभिनेत्री

रोहिणी हट्टंगड़ी



पूना की रहने वाली, रंगमंच कलाकार अनंत ओक की बेटी **रोहिणी हट्टंगड़ी** को अभिनय, नृत्य एवं संगीत विरासत में मिला था। माँ कुशल सितार वादिका थीं तथा बेटी की क्षमताओं का पूर्ण विकास देखना चाहती थीं। छः वर्ष की अल्पायु में ही वह नृत्य की बाकायदा शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल जाने लगी तथा कुछ ही वर्षों में कथकली की कुशल कलाकार बन गई। स्कूली शिक्षा के दौरान वह खेलकूद, एन.सी.सी. तथा अन्य गतिविधियों के साथ नाटकों में अभिनय भी करने लगी थी। रंगमंच पर अभिनय का ही शौक उसे १९७१ में दिल्ली स्थित राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में खींच लाया। यहीं वे रंगकर्मी जयदेव हट्टंगड़ी से प्रेम विवाह कर कुमारी से श्रीमती बनी। यहीं उसने पहली बार बुजुर्ग महिला की सशक्त भूमिका कर अपनी अभिनय प्रतिभा को उजागर किया। डॉ. धर्मवीर भारती के नाटक **'अंधायुग'** में 'गांधारी' के पात्र को उसने जीवंत कर दिया था। इस प्रकार प्रौढ़ भूमिकाओं को अदा करने में उसकी कुशलता चर्चित होने लगी।

फिल्म उद्योग में रोहिणी का प्रवेश कला फिल्मों के जरिए हुआ। अरविन्द देसाई की अजीब दास्तान, अल्बर्ट पिन्टो को गुस्सा क्यों आता है तथा चक्र जैसी फिल्मों में वह परदे पर आई जरूर मगर अपनी प्रतिभा व क्षमता को प्रदर्शित करने के पर्याप्त अवसर उसे नहीं मिल पाए। यह अवसर उसे मिला रिचर्ड एटनबरो की फिल्म गाँधी में। फिल्म गाँधी में वह कस्तूरबा बनी। कस्तूरबा की जिन्दगी के पच्चीसवें साल से पैसठवें साल तक की अवधि के प्रसंगों को अभिनय के माध्यम से साकार करना बहुत बड़ी चुनौती थी। रोहिणी ने इस चुनौती को मंजूर कर लिया तथा खुद को पूरी तरह से कस्तूरबा के व्यक्तित्व में डूबो दिया। पारम्परिक विचारों वाली भारतीय पतिव्रता नारी की इस भूमिका को अभिनीत करते समय उसने सदैव अपनी दादी की छवि को सामने रखा।

'गाँधी' अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हुई तथा रोहिणी का नाम विश्व की कुशल अभिनेत्रियों में लिया जाने लगा। उसे अपने सशक्त अभिनय के कारण 'ब्रिटिश अकादमी अवार्ड' भी मिला। इतनी सफलता तथा प्रशंसा मिलने के बावजूद रोहिणी को गाँधी में अपनी भूमिका से संतोष नहीं मिला। उसका कहना है कि कस्तूरबा का अभिनय करने के बावजूद वह कस्तूरबा जैसी आदर्श भारतीय नहीं हो सकती है। वास्तविक रूप में वह गाँधी की सहधर्मिणी होना भी पसंद न करे। अभिनय के मामले में वह 'सारांश' को 'गाँधी' से बेहतर मानती है। रोहिणी का कहना है कि इस फिल्म में काम करते वक्त वह खुद को बूढ़ी, थकी और पस्त समझने लगी थी।

रोहिणी बूढ़ी भूमिकाओं से हटकर भी सशक्त अभिनय कर सकती है यह 'अर्थ' से प्रमाणित हो गया। इस फिल्म में उसे फिल्मफेयर का सर्वश्रेष्ठ सह-अभिनेत्री का अवार्ड भी मिला।

सर्वश्रेष्ठ सह-अभिनेत्री का अवार्ड उसे 'पार्टी' में अपनी भूमिका के लिए भी मिला। राष्ट्रीय स्तर का यह अवार्ड उसे अपने सहज और मार्मिक अभिनय के लिए मिला। बुद्धिजीवी वर्ग के खोखलेपन तथा संभ्रांत परिवारों के बिखरावों को दर्शाने वाली इस फिल्म के प्रत्येक फ्रेम में उसकी विशिष्ट छाप नजर आती है। फिल्म 'मोहन जोशी हाजिर हो' में उसकी भूमिका लगभग खलनायिका की थी, तरंग में वह आधुनिक किस्म की निजी सचिव बनी थी, जिसे बॉस को खुश करने के लिए हर तरीका जायज लगता था।

कला फिल्मों से कीर्ति पाने वाली रोहिणी को व्यावसायिक फिल्मों में काम करना अच्छा लगता है। पेड़ों के आसपास नायक के साथ नाचते-गाते रोमांस करते हुए नायिका की भूमिका निभाने की उसकी तमन्ना पूरी तरह से पूरी नहीं हो पाई। फिल्म **धर्माधिकारी** में दिलीप कुमार के साथ की गई एक महत्वपूर्ण भूमिका के दौरान उस पर एक गाना फिल्माया भी गया था। रोहिणी का कहना है कि उसे इस गाने के फिल्मांकन में बहुत मजा आया।

अन्य व्यावसायिक फिल्मों में उसे अक्सर माँ की पारम्परिक भूमिका करनी पड़ती है। हैसियत, जख्मी शेर आदि फिल्मों में उसे ऐसे ही चरित्र निभाने पड़े थे। जीविका के लिए ३० वर्ष की आयु में ६० वर्ष की बूढ़ी की भूमिका अदा करना उसे अच्छा तो नहीं लगता मगर मजबूरी करवाती है। इन फिल्मों में अभिनय प्रतिभा भी सामने नहीं आ पाती क्योंकि चीखना चिल्लाना मुख्य होता है। वैसे उसे कुछ व्यावसायिक फिल्मों में भी लीक से हटकर भूमिकाएँ मिल रही हैं। बी.आर. इशारा की 'हम दो हमारे दो' भी एक ऐसी ही फिल्म है।

दूरदर्शन पर प्रसारित धारावाहिक 'खानदान' में उसने 'उर्मिला वर्मा' के पात्र के रूप में अपनी एक विशिष्ट छवि को दर्शकों के हृदय में अंकित कर दिया था। खानदान के निर्देशक श्रीधर क्षीरसागर की निर्देशन प्रतिभा की यह परम प्रशंसक रही है। खानदान ने उसकी कस्तूरबा वाली छवि को धुँधला करने में अहम् भूमिका निभाई।

अभिनय की बुलन्दियों को छू लेने वाली इस तारिका ने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपने जौहर दिखाए हैं। मराठी की विख्यात पाक्षिक फिल्मी पत्रिका **'चन्देरी'** की सम्पादिका के रूप में भी वह काफी सफल रही हैं। वह सिर्फ नाम मात्र की सम्पादिका नहीं है बल्कि खुद लिखती है, औरों का लिखा पढ़कर उसमें सुधार करने की क्षमता रखती है। ■



फिल्म अजूबा (निर्माणाधीन) में अमिताभ-डिम्पल

डिम्पल

बाहर की ओर खुलने वाले दरवाजे

बॉबी फिल्म ने डिम्पल को रातों-रात सितारा बना दिया। सितारा- डिम्पल की चमक देख सुपर स्टार राजेश खन्ना पालकी लेकर दरवाजे पर आ गए। लेकिन घर-गृहस्थी के झंझटों को पीछे धकेल डिम्पल फिर से फिल्माकाश में जगमगाने लगी। उसने अमिताभ बच्चन से लेकर विनोद खन्ना और धर्मेन्द्र से लेकर शत्रुघ्न सिन्हा तक अपने अभिनय की धाक जमाई है। युवा दिलों की धड़कन बनी डिम्पल उनके लिए एक अद्‌भुत फेंटेसी के समान है, जो एक दिन सामने आकर खड़ी हो जाएगी।

जैसा कि सब जानते हैं कि **डिम्पल** अपनी पहली ही फिल्म **'बॉबी'** से स्टार बन गई थीं। कुछ समय बाद राजेश खन्ना ने उन्हें मोहित कर लिया और दोनों जल्दी ही दाम्पत्य सुख भोगने लगे। लेकिन यह खुशी ज्यादा टिकाऊ साबित नहीं हुई। डिम्पल ने अपना घर छोड़ दिया और वापस फिल्मों में लौट आईं। इस समय उनके पास अच्छी से अच्छी फिल्में हैं। इस बातचीत में वे अपने कैरियर और निजी जीवन के बारे में विस्तार से बतला रही हैं।

क्या आप बहुत व्यस्त हैं?

आप विश्वास नहीं करेंगे, लेकिन कई बार मुझे दो कौर भोजन करने का समय भी नहीं मिल पाता। हर वक्त शूटिंग, शूटिंग और शूटिंग ही चलती रहती है। जिस तरह की भूमिकाएँ मुझे मिल रही हैं उनसे भी मैं खुश हूँ। हालांकि मैंने कोई धमाकेदार रोल तो नहीं साइन किया है लेकिन वे सब काफी दिलचस्प फिल्में हैं। अब मुझे सिर्फ नाचने- गाने वाली भूमिकाएँ नहीं मिल रही हैं इसलिए मैं औरों की अपेक्षा ज्यादा खुश हूँ। मेरे लिए उनमें करने को बहुत कुछ रहता है। अतः आप कह सकते हैं कि मैं इस समय संतुष्ट हूँ। मैं जो कठोर परिश्रम इन भूमिकाओं को अदा करने के लिए करती हूँ उसका सिला मुझे मिल रहा है। लोग मेरी चर्चा कर रहे हैं। इससे ज्यादा मुझे और क्या चाहिए?

फिल्मों में काम करते हुए आपको कैसा महसूस होता है?

इस समय तो मुझे खुद पता नहीं। मैं चाहती हूँ कि मेरे काम का मूल्यांकन दूसरे लोग करें, छोटी-छोटी बातों का विश्लेषण करने का वक्त मेरे पास नहीं है। मैं काम करते हुए खुश हूँ। और जब तक निर्माता चाहेंगे मैं काम करती रहूँगी। इस दौर में मैं हर हालत में सफल होना चाहती हूँ। मेरे लिए यह बहुत जरूरी है। लोगों ने मुझे स्वीकार करना चाहिए और मेरे काम से उनका खुश होना जरूरी है। मेरे लिए यही महत्वपूर्ण है। वैसे भी मैंने न तो कोई महान फिल्म साइन की है न टिकट खिड़की पर कोई तहलका मचाया है। नहीं, मैं विनम्रता प्रदर्शित नहीं कर रही हूँ। मैं, तथ्य जैसे हैं वैसा ही उन्हें सामने रख रही हूँ। मैं केवल जनता के समर्थन के बल पर निजी स्तर पर ही सफल हुई हूँ। मेरे नाम तथाकथित 'सुपर हिट' फिल्म नहीं है। मेरा मतलब है मेरे नाम के साथ कोई **'नगीना'** जैसी फिल्म नहीं है। अतः मैं जो कुछ भी हूँ वह जनता की राय के बल पर ही हूँ। उसी के बल पर मैं कायम हूँ। वैसे मुझे यही चीज पसंद भी है। लोग मुझे पसंद करते हैं और ट्रॉफिक लाइट पर रुक कर वे मुझे कहते हैं कि वे मुझे पसंद करते हैं बल्कि मुझे सराहते हैं।

अपने सह-कलाकारों के साथ आपकी कैसे जमती है?

'हाँ, यह बहुत महत्वपूर्ण चीज है। मेरा मतलब है ये लोग हमसे इस तरह बात करते हैं जिससे हमें लगता है कि लोगों को हमारी जरूरत है। मैं भले ही उन्हें ज्यादा नजदीक से नहीं जानूँ लेकिन उन्होंने मेरी इतनी फिल्में देखी हैं कि उन लोगों ने मुझे अपनी जिंदगी का एक हिस्सा समझना शुरू कर दिया है। सामाजिक क्षेत्र के लोग तो मुझसे इज्जत के साथ मिलते हैं लेकिन सामान्य लोग मुझे अपने में से ही एक मानते हैं। जहाँ तक अपने सह-कलाकारों के साथ मेरे संबंधों का सवाल है मेरी सबसे पट जाती है और मेरा किसी के साथ अभी तक कोई विवाद नहीं हुआ।'

इन दिनों जिस तरह की फिल्में बन रही हैं उनके बारे में आप क्या सोचती हैं?

मेरे विचार से इस समय एक के बाद दूसरी डाकू फिल्म बनाने की मूर्खतापूर्ण लहर चल पड़ी है। मैं इसे किसी भी तरह से नारी केंद्रित फिल्मों का युग नहीं कह सकती। वाकई यह सब बहुत नादानी भरा है। हममें से आधा दर्जन नायिकाएँ पुलिस इंस्पेक्टर बन रही हैं तथा बाकी डाकू बन जाती हैं। उन लोगों को हमें पहले की तरह कुछ अच्छी ठोस भूमिकाएँ देनी चाहिए। हमारे यहाँ मीना कुमारी तथा नरगिस जैसी कुछ ही औरतें हुई हैं जो अकेले अपने दम पर फिल्में चला ले जाती थीं। मैं किसी का नाम नहीं लेना चाहती लेकिन आजकल हम हिरोइनों को विचित्र वेषभूषाओं में देखते हैं। फिल्मों में अब मजा नाम की चीज नहीं रही। निर्माता बस किसी तरह फिल्में पूरी कर जल्दी से पैसे बना लेना चाहते हैं। सिनेमा का पूरी तरह कबाड़ा हो गया है। हालात को समझने की किसी को फुर्सत नहीं है। मेरे ख्याल से वितरकगण भी झूठे किस्से गढ़ते हैं। मेरा खुद का विचार है कि बिना औरत के फिल्म बिल्कुल नीरस होती है। लोग बिना पुरुष की फिल्म तो बर्दाश्त कर सकते हैं, मगर बिना औरत की फिल्म तो असंभव है।

क्या हालात को सुधारने के लिए आपने अपनी तरफ से कोई कोशिश की है?

मैं सिर्फ इतना कर सकती हूँ कि अपना काम भरसक बढ़िया करूँ। जब भी मैं कोई पुलिस वाली भूमिका स्वीकार करती हूँ तो इसलिए नहीं कि वर्दी मुझ पर खूब खिलेगी। मैं उस पात्र में जी जान से घुल-मिल जाना चाहूँगी। मगर हमारी जानकारी की भी सीमा होती है। फिर हम एक हद से ज्यादा परिश्रम भी नहीं कर सकते। आखिर हम थकते भी हैं। यह पेशा बहुत थकाने वाला है। मुझे पता है, कभी-कभी हमारी इच्छा होने लगती है कि हम सब कुछ छोड़-छाड़ कर रिटायर हो जाएँ। किसी मृत्यु के दृश्य में नायिका को आप कितने अलग ढंग से रोते हुए दिखला सकते हैं या आप कितने भिन्न-भिन्न ढंग से रो सकते हैं? और वह भी कब तक? जो कुछ भी काम मैं इस समय कर रही हूँ वह मेरे निजी अनुभव पर आधारित

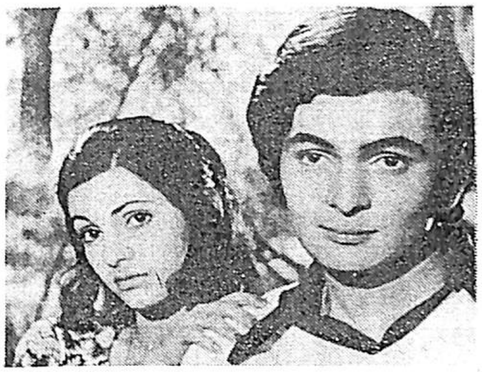
है। मेरे चेहरे पर आने वाला हर भाव मेरे निजी जीवन का हिस्सा है।'

क्या आप कभी अवसादग्रस्त होती हैं?

'हाँ, जब भी मुझे लगता है कि आप दूसरों की अपेक्षा कितनी ज्यादा मेहनत कर रहे हैं। बल्कि आपके पास जो कुछ है वह आप सब दे डालते हैं और इसके बाद भी 'गंगा तेरे देश में' जैसी घटनाएँ हो जाती हैं। इस फिल्म में शुरू में मेरी भूमिका बहुत बड़ी नहीं थी। मैं एक खिलंदड लड़के जैसा रोल कर रही थी। अतः उसमें उन्होंने एक मारा-मारी का दृश्य भी जोड़ दिया। बाद में उन्होंने एक गीत भी डाल दिया। इस पर मैंने निर्माता से कहा, आप ही मुझसे वह सब करवा रहे हैं, जो नायक करता है। बेहतर हो आप मुझे उतने ही पैसे भी दें। इस तरह मुझे निर्माताओं को झेलना पड़ता है। जब भी कोई औरत दूसरी खूबसूरत औरत की तरफ देखती है तो वह उसका अध्ययन करती है। मगर पुरुष दूसरे पुरुष को देखने के बजाए औरतों को ताकना पसंद करते हैं। मेरे खुद के कुछ छोटे-बड़े दुखड़े भी हैं। कभी मेरा एयरकंडीशनर काम नहीं करता तो कभी बाथरूम में पानी टपकने लगता है। कई बार मुझे लगता है क्या ये समस्याएँ कभी खत्म भी होंगी? मगर मेरी समस्याएँ बस इसी स्तर की हैं। ईमानदारी की बात, इनके अलावा और समस्याओं का कोई और स्तर है भी नहीं। और भला क्या परेशानियाँ मुझे हो सकती हैं? सिवा इसके कि कई बार मैं कुछ लम्हे सिर्फ अपने लिए चाहती हूँ।'

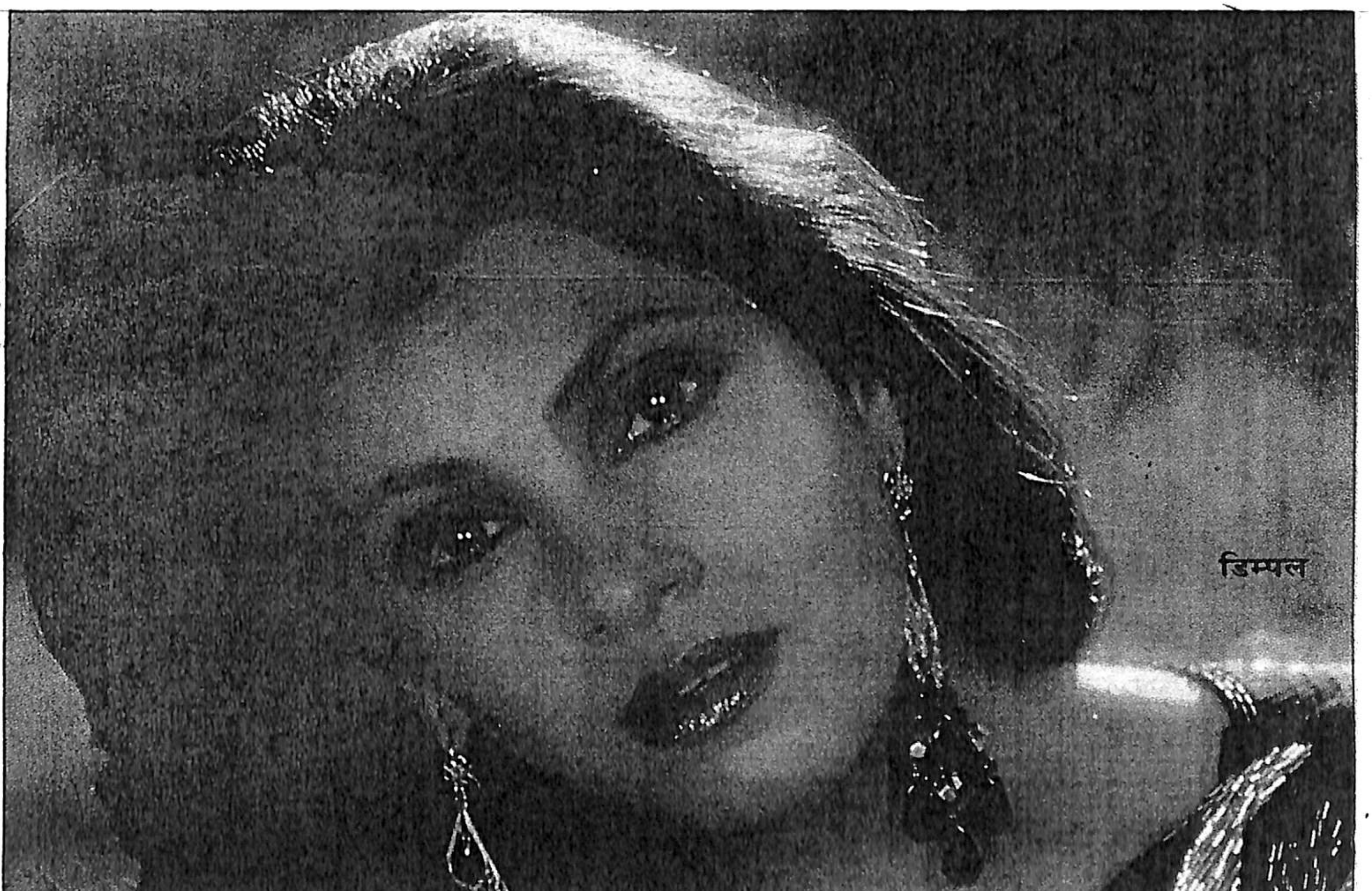
आम जनता तथा अपने प्रशंसकों के साथ अपने रिश्तों के बारे में कुछ कहिए?

'मैंने आमतौर से कभी अपने आप को लोगों से काट कर नहीं रखा। मगर अपने काम के अलावा मैं और कुछ भी नहीं करती। मसलन, मैं कभी पार्टियों में नहीं जाती। या तो मैं घर पर रहती हूँ या काम पर। मेरी एक बिल्कुल अलग जिंदगी है। मैं घर पर निर्माताओं से नहीं मिलती। ऐसा नहीं कि मैंने उन्हें आने के लिए मना किया है, मगर बस यह कि रोजमर्रा की आदत है। प्रशंसक कभी-कभी वक्त-बे-वक्त भी आ धमकते हैं। मेरा चौकीदार कई बार उन्हें अंदर आ जाने देता है। अतः मेरा घर कमोबेश, सबके लिए खुला ही रहता है। मैं अतीत के बारे में नहीं सोचती और मुझे कोई शिकायत भी नहीं है। मुझे सिर्फ यह पता है कि जब सब अच्छा चल रहा था तब भी मुझे सब कुछ छोड़ देने में हिचक नहीं हुई और जब हालात विपरीत होंगे तो तब भी कोई दिक्कत नहीं



'बॉबी' में डिम्पल और ऋषिकपूर

होगी। इंसान को हर स्थिति के अनुकूल बन जाने की देन मिली हुई है। सिर पर आन पड़ने पर वह हर चीज से निपट लेता है। इस समय मैं इसलिए नहीं सब कुछ छोड़-छाड़ कर चल दे सकती कि एक अभिनेत्री के रूप में मुझे अच्छा पैसा मिल रहा है। अपने बुढ़ापे में मुझे सब त्यागना ही पड़ेगा। तब मैं कुछ और करने लग सकती हूँ। मुझे इन बातों से डर नहीं लगता। उस समय तक मैं इतना पैसा कमा चुकूँगी कि मुझे चाहे जो करने की आजादी रहेगी। मेरे बच्चे भी बड़े हो जाएँगे और वे मेरी देख-भाल करेंगे। **(वीना)**



डिम्पल

मीनाक्षी शेषाद्रि एक पेशेवर अभिनेत्री है। यदि वह फिल्मों में नहीं आती, तो किसी स्कूल में अध्यापन कर रही होती। मिस इण्डिया चुनी जाने पर मनोजकुमार ने 'पेंटर बाबू' का प्रस्ताव रखा। इसके बाद सुभाष घई की फिल्म 'हीरो' की सफलता ने मीनाक्षी को सफल हीरोइन बना दिया। प्रेस द्वारा 'बर्फ–बाला' का लेबल लगाने पर मीनाक्षी का जवाब है कि –"मेरी जिन्दगी में क्या चल रहा है, यह बात आगे होकर क्यों बताऊँ?"

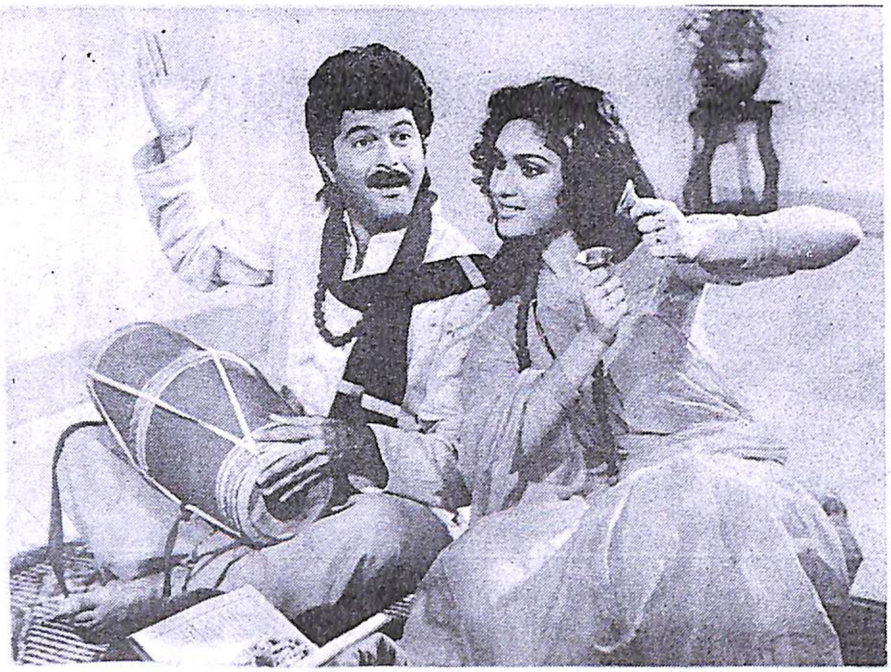
मीनाक्षी शेषाद्रि

सीढ़ियों पर धूप में

मीनाक्षी शेषाद्रि लगभग बीस फिल्मों में काम कर चुकी हैं। वे अब भी एक नवागंतुक की तरह ही महसूस करती हैं।एक बढ़िया बंगले में रहने चली गई हैं, लेकिन शूटिंग पर उसी तरह अपनी माता के साथ जाती हैं जैसा वे अपनी प्रारंभिक फिल्मों में **'पेंटर बाबू'**तथा **'हीरो'** के समय करती थीं। जिन फिल्म निर्माताओं ने उनके साथ काम किया है, वे यह तो दावे के साथ कहने को तैयार हैं कि इन बरसों में मीनाक्षी ने निर्माण की काफी तकनीकें सीख ली हैं। कई बार अपने सुझाव भी देती हैं। लेकिन बुनियादी तौर पर वे एक छात्र का ही दृष्टिकोण रखती हैं। जहाँ तक निर्माताओं का सवाल है, वे उनसे खुश हैं क्योंकि वे स्टारों की तरह नखरे न दिखलाने के बावजूद टिकट–खिड़की पर भीड़ जुटा देती हैं। अपने इस ताजा साक्षात्कार में वे अपने लक्ष्यों तथा महत्वाकांक्षाओं की चर्चा कर रही हैं।

फिल्म–उद्योग में इतने वर्ष रहने के बाद अब आप कैसा महसूस करती हैं?

'पेंटर बाबू' के समय तो मुझे अभिनय के बारे में कुछ भी पता नहीं था लेकिन 'हीरो' में काम करते हुए मुझे काफी मजा आया। वह सुभाष घई जैसे निर्देशक के साथ मेरी पहली फिल्म थी और वह मेरे कैरियर में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई। वह मेरी पहली बॉक्स–ऑफिस सफलता थी और आप जानते ही हैं, सफलता से बढ़ कर और कोई दूसरी चीज महत्वपूर्ण नहीं होती। इस फिल्म से मैंने बहुत कुछ सीखा और उसने मुझ में कैमरे का सामना करने का आत्मविश्वास पैदा किया।



घर हो तो ऐसा (१९९०) में अनिल कपूर के साथ मीनाक्षी

आपने अन्य अभिनेत्रियों की अपेक्षा ज्यादा कुछ हासिल कर लिया क्योंकि आपको इसके लिए खास संघर्ष नहीं करना पड़ा। क्या यह सिर्फ खुश-किस्मती ही थी या आपकी माता के मार्गदर्शन का भी कुछ हाथ था?

मैं हमेशा से बहुत ही भावुक रही हूँ। हमेशा अपने दिल और अंतरात्मा के निर्देशों के अनुसार ही काम करती हूँ। मसलन मुझे फिल्मों में काम करना है, यह फैसला मैंने बहुत पहले, जब मैं स्कूल में मैट्रिक में पढ़ती थी तभी कर लिया था। बाद में मैं **'मिस इण्डिया'** चुनी गई और इसका फायदा मुझे तब मिला जब मैं मनोजकुमार से मिली और उन्होंने मुझे 'पेंटर बाबू' फिल्म में नायिका की भूमिका प्रस्तावित की। यह प्रस्ताव जिस समय मेरे सामने आया तब मेरी बहन की शादी हुई थी और मेरे पिता सेवानिवृत्त हुए। मैंने सोचा कि शादी कर घर बसाना या कोई कैरियर अपनाना इसके बारे में निर्णय करने का अधिकार खुद लड़की को ही होता है। आखिर मैं घर में बिना कुछ किए-धरे तो बैठ नहीं सकती थी। मझे लोगों तथा घनिष्ठ मित्रों को उपयोगी समझाइशें देने का काफी शौक है, यदि मैं फिल्मों में नहीं आई होती तो अध्यापिका ही बनी होती।

फिल्म-उद्योग में इतने वर्ष रहने के बाद अब आप क्या सोचती हैं?

पलट कर अतीत में झांकते हुए मुझे बड़ी हसरत होती है। अब मुझे लगता है कि उस समय फिल्म- नायिका बनने के हिसाब से मैं ज़रूरत से ज्यादा कम उम्र और लगनशील थी। मुझमें कच्चापन भी बहुत था और मैंने सब कुछ बाद में ही सीखा। उन दिनों दृश्य बहुत लंबे हुआ करते थे। अक्सर मुझे एक ही भाव बहुत लंबे समय तक बनाए रखने में बहुत कठिनाई होती थी। जब एक ही दृश्य अलग-अलग 'शॉट्स' में, टुकड़े-टुकड़े फिल्माया जाता था तो और भी ज्यादा दिक्कत होती थी। मेरी खुशमिजाजी तथा जोशीलेपन के द्वारा मैंने इस समस्या को सुलझाया। किशोर अवस्था वाला दुःसाहस भी मुझमें तब बहुत था। उस भूमिका में मुझे कई तरह के भाव अभिव्यक्त करने थे तथा हॉफ-पैंट से लेकर साड़ी तक, कई प्रकार के परिधान धारण करने पड़े। शिमला में एक गीत के फिल्मांकन के लिए मुझे खुली सड़क पर भी हॉफ -पैंट पहनने पड़े। इस गीत की शूटिंग लगभग दस दिन चली और इस दौरान मुझे एक ही दिन में कई-कई घंटे बर्फ में दौड़ना पड़ा। यदि आज मुझसे यह सब करने को कहा जाए तो शायद मैं इंकार कर दूँगी। मगर तब बात कुछ और थी। मुझमें इतना जोश था कि मैं हर चीज से निपट सकी।

'हीरो' फिल्म इतनी ज्यादा सफल रही थी, फिर काफी समय तक आपको जैकी श्राफ के साथ क्यों नहीं लिया गया?

मुझे पता नहीं। प्रारंभ में 'हीरो' फिल्म के निर्माण के दौरान हमारे संबंध बहुत अच्छे थे। मगर फिल्म के हिट हो जाने के बाद हमें अपने रास्ते बदलने पड़े क्योंकि हम दोनों को बहुत सी फिल्में मिल रहीं थीं। यदि एक ही स्थान पर हमारी शूटिंग हो रही होती थी तो हम लोग 'सेट' पर मिलते-बतियाते थे। कई बरसों के बाद, हाल ही में हमें देव आनंद की **'सच्चे का बोल बाला '**में लिया गया और हमें एक साथ पसंद भी किया गया। मुझे आशा है हम लोग भविष्य में भी साथ-साथ काम करेंगे। एक समय ऐसा था जबकि हम दोनों में ज्यादा नहीं पटती थी लेकिन अब बीतते समय के साथ हमारे संबंधों में गर्म-जोशी आई है। अब तो मैं उन निर्देशकों से खुद हमें एक साथ लेने का अनुरोध करूँगी जिन्होंने हमें 'सच्चे का बोल-बाला' में पसंद किया है।

आपकी पसंदीदा फिल्में कौन-सी हैं?



मीनाक्षी शेषाद्रि

मुझे 'स्वाती', 'माँ बेटी', 'डकैत, 'शहंशाह'आदि में अपनी भूमिकाएँ खास तौर से पसंद हैं। हालाँकि हो सकता है टिकट-खिड़की पर ये फिल्में ज्यादा सफल नहीं रही हों। इन फिल्मों में काम करते हुए मुझे बहुत आत्मसंतोष प्राप्त हुआ। मेरे खयाल से **'गंगा जमुना सरस्वती'** में भी मेरी भूमिका काफी अच्छी थी। खासतौर से इस बात को देखते हुए कि उस फिल्म में बड़े सितारों का अच्छा खासा जमघट था। मैं मनमोहन देसाई की वाकई शुक्रगुजार हूँ जो उन्होंने मुझे यह मौका दिया।

आपके ऊपर सबसे ज्यादा प्रभाव आप किसका महसूस करती हैं?

मेरे जीवन पर व्यक्तिगत तथा वृत्तिगत, दोनों ही रूप से, सबसे ज्यादा प्रभाव मेरे परिवार का पड़ा है। पिछले कुछ बरसों से मेरी माँ ही मेरी 'डेट्स' आदि का इंतजाम कर रही हैं और मुझे यही पसंद भी है। जिन निर्देशकों के साथ मैंने काम किया है उनमें से भी कई ने मुझे प्रभावित किया है। आप किसी व्यक्ति को सिर्फ काम करते हुए देख कर भी काफी कुछ सीख सकते हैं। एक अभिनेत्री के रूप में मेरे विकास में मेरे प्रत्येक निर्देशक का कोई न कोई योगदान है। वैसे, यह भी सही है कि मुझे कोई ऐसा निर्देशक भी नहीं मिला है कि

जिसने मुझ में ऐसा कोई बदलाव किया हो जिसे नाटकीय कहा जा सके। प्रारंभिक वर्षों में मैं देव आनंद के उत्साह तथा मिलनसारिता से बहुत प्रभावित हुई थी। मुझे याद है कि एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि जिस क्षण हम पब्लिक के सामने आते हैं उसी समय हमें उनकी खातिर अपने खोल से बाहर आना पड़ता है। उन्होंने कहा था कि यह कहने से कोई फायदा नहीं कि आप शर्माते हैं क्योंकियदि आप वाकई शर्माते हैं तो आपको फिल्मों में होना ही नहीं चाहिए। एक जमाने में मैं स्वर्गीय सोहन लाल कँवर को भी बहुत पसंद करती थी। मैंने उनकी कई फिल्मों में काम किया और उनसे मुझे काफी लगाव भी हो गया था। उन्हें अपनी आखरी फिल्म 'तड़प' के निर्माण के समय ही पता चल गया था कि उन्हें 'कैंसर' है। मगर इससे उनकी लगन और एकाग्रता पर कोई फर्क नहीं पड़ा। उम्मीद है उनकी **'तड़प'** जरूर 'हिट' होगी क्योंकि अतीत में उन्होंने मुझे बहुत अच्छी भूमिकाएँ दी थीं। वे मुझे अपने पात्र को विस्तार देने का पूरा मौका देते थे। उनके साथ काम करना वाकई बहुत सुखद अनुभव होता था।

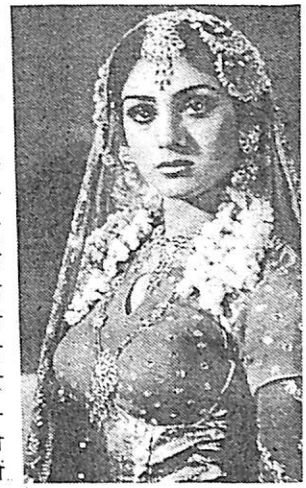
अब जबकि कई सितारा कलाकार भी दूरदर्शन के सीरियलों में काम कर रहे हैं, आपका विचार क्या है? क्या आप भी ऐसा करना चाहती हैं?

मैंने अभी इस बारे में सोचा नहीं है, शायद इसलिए भी कि कोई अभी तक मेरे पास इसका प्रस्ताव लेकर आया ही नहीं है। मगर यदि कोई आता भी है तो फिलहाल उसमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। दूरदर्शन का कामकाज जरा अलग और तेज रफ्तार है। टी.वी. श्रृंखला की यूनिट बड़ी तेजी से काम करती है और मैं पहले ही बहुत मसरूफ हूँ। मगर इसमें कोई शक नहीं कि टी.वी. एक शक्तिशाली माध्यम है। वह सारी दुनिया आपके कमरे में ले आता है और इसलिए जनता पर उसके प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि बड़े परदे पर फिल्म देखने से जो मनोरंजन होता है उसकी तुलना वीडियो फिल्म से नहीं की जा सकती।

क्या आप हमेशा फिल्मों में काम करती रहेंगी?

मैं अभी से कुछ नहीं कह सकती, हो सकता है दो वर्ष बाद मैं कुछ सोच सकूँगी। वर्तमान में मैंने जो फिल्में साइन की हुई हैं, उन्हें इतना वक्त तो पूरा होने में लगेगा ही। उसके बाद क्या होगा मुझे वाकई पता नहीं। जिंदगी का एक निश्चित तरीका होता है और हमें परिस्थितियों के अनुकूल ही चलना पड़ता है। इस समय तो मुझे अपने काम में काफी मजा आ रहा है। मेरे ऊब जाने या काम के एकरस हो जाने का कोई सवाल ही नहीं है क्योंकि हर रोज मुझे कुछ न कुछ भिन्न करना पड़ता है और फिर ऐसा भी नहीं है कि जिन चीजों को करना मुझे अच्छा लगता है, मसलन नृत्य करना या पढ़ना,उसके लिए मुझे वक्त नहीं मिलता हो। अभी तक तो मैं अपना काम और रुचि की चीजें साथ-साथ कर पा रही हूँ। अतः ऐसी बात नहीं है कि फिल्मों के कारण मैं किसी बात से वंचित हो रही हूँ।

अभिनय की आपकी तकनीक क्या है?



जब मैं कोई भूमिका कर रही होती हूँ, मैं एक भिन्न व्यक्ति बल्कि वही पात्र बन जाने में विश्वास करती हूँ। उस पात्र की ताकत और कमजोरियाँ दोनों एक प्रकार से आपकी अपनी हो जाती हैं और इससे आपको एक व्यक्ति और कलाकार के रूप में परिपक्व होने में मदद मिलती है। बीते दिनों की मधुबाला और जया भादुड़ी जैसी अभिनेत्रियों ने मुझे अपनी अद्भुत विशिष्टताओं से प्रभावित किया है। अंत में, यदि आपकी भूमिका तथा अदायगी अच्छी है तो आप अपने दर्शकों तक फिल्मों के माध्यम से पहुँच सकते हैं भले ही फिर प्रेस या समीक्षक आपके बारे में कुछ भी क्यों न लिखें। मूलतः मैं कोई खास छवि बनाने में विश्वास नहीं करती। चूँकि मैं आपने आप को मात्र अभिनेत्री ही नहीं बल्कि एक पेशेवर कलाकार भी मानती हूँ। प्रेसवालों ने मुझ पर 'बर्फ–बाला' का लेबल लगा दिया है। मेरे ख्याल से इसका एक कारण यह है कि मैं खुद होकर प्रेसवालों को अपना परिचय नहीं देती। और न ही मैं उन्हें यह बतलाती हूँ कि मेरी जिंदगी में क्या चल रहा है। वैसे मैं प्रेसवालों के लिए हमेशा उपलब्ध रही हूँ।

(दीना)

महुआ रायचौधरी



बंगला फिल्म का इतिहास जब तक रहेगा और जब तक सैल्युलाइड नष्ट नहीं होता, तब तक **महुआ** जिंदा रहेगी। बंगला फिल्मों का दर्शक उन्हें दो कारणवश कभी भूल नहीं सकता। एक तो उनका जीवंत अभिनय, दूसरी उनकी अस्वाभाविक मृत्यु। चेहरे पर एक अकृत्रिम मुस्कान रखने वाली इस सुंदर नायिका की ऐसी दर्दनाक मौत क्या सहज ही भुलाई जा सकती है? ध्यान रहे, महुआ की मौत स्टोव्ह फटने से हुई थी।

भारत के साथ-साथ बंगलादेश में भी महुआ के प्रशंसक मौजूद हैं। ये असंख्य प्रशंसक वह पंद्रह साल तक कठोर परिश्रम के सहारे धीरे-धीरे बना पाई थी। महुआ की पहली फिल्म है **'श्रीमान पृथ्वीराज'**, जिसके निर्देशक थे तरुण मजूमदार। इस फिल्म में महुआ को लिए जाने की भी एक दिलचस्प कथा है। तरुण मजूमदार किशोर प्रेम को लेकर एक फिल्म बनाने की योजना बना रहे थे कि अचानक तेरह साल की महुआ उन्हें दिखाई पड़ गई। उनकी पत्नी संध्या राय को भी वह इतनी भा गई कि श्रीमान पृथ्वीराज के लिए महुआ के स्क्रीन टेस्ट की भी जरूरत नहीं पड़ी। देखते ही देखते शिप्रा या सोनाली रायचौधरी महुआ रायचौधरी बनकर श्रीमान पृथ्वीराज की नायिका बन गई। तेरह साल की महुआ में अभिनय की अद्भुत प्रतिभा मौजूद थी। उस पर तरुण दा जैसा विख्यात निर्देशक। इसलिए अपनी पहली फिल्म में ही महुआ ने अभिनय की गहरी छाप छोड़ी।

सन ८६ में श्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार मिलते-मिलते महुआ के हाथ से छूट गया। बाद में यह पुरस्कार शबाना को मिला पार के अभिनय के लिए। यह तय है कि यह पुरस्कार यदि महुआ को मिलता तो कहीं कोई आश्चर्य नहीं होता। क्योंकि महुआ ने तपन सिन्हा की हिंदी फिल्म **आदमी और औरत** में जो अभिनय किया है, वह शबाना की पार की भूमिका से किसी मायने में कम नहीं है।

दस सौहवें बंगला फिल्मोद्योग को जिन गिने-चुने लोगों ने अपनी ताकत से खड़ा किया है, उनमें महुआ का नाम भी लिया जाता है। जैसी भी भूमिका महुआ के हिस्से में आई, उसे उसने हमेशा जीवंतता प्रदान की। वह चाहे कॉलेजगर्ल की भूमिका रही हो या सध्यादीप हाथ में लिए वधू नारी की, महुआ ने उस भूमिका को हमेशा एक नया रंग दिया। शायद इसीलिए सुचित्रा सेन के बाद वह पहली बंगाली अभिनेत्री थी, जिस पर बंगला फिल्मोद्योग आश्रित हो चला था। महुआ रायचौधरी की प्रमुख फिल्में हैं — श्रीमान पृथ्वीराज, बनवासर, हारमानिनि, सावित्री सत्यवान, पिपासा, सुवर्णगोलक, कलंकिनी, दादर कीर्ति, उपलब्धि, परवेश साहेब, लाल गोलाप, बाघबंदी, मेला, राजा, आसमेला, दंपति, सई चोख, प्रेम रक्षा, कविता, राजेश्वरी, अवासबंदी, माटिर पुतुल, शत्रु, प्रतिश्रुति, दौड़, आजकाल, परशु, गल्प, सूर्यसाक्षी, कितने पास कितने दूर (हिंदी), आदमी और औरत (हिंदी), अनुरागेर छोआ, आमार पृथ्वी, प्रेम औ पाप, अभिमान, नीलकंठ, शापमुक्ति, जागरण, आशीर्वाद, संध्या प्रदीप, आबीर, राधारानी, जवाब, मधुमय जीवन, राजपुरुष, अंगीकार, मौनमुखार, अभिसार, मेघ रौद्र छाया, मुक्त प्राण।

माधुरी दीक्षित

सफलता के सोपान एक-दो-तीन-चार

फिल्मों की अनिश्चित दुनिया में खूबसूरती का क्रम अभिनेत्रियों को लोकप्रियता के हिसाब से बदलता रहता है। कल तक जो लोग पूनम ढिल्लो, रीना राय, रति अग्निहोत्री और उसके पहले हेमामालिनी, मालासिन्हा को खूबसूरत अभिनेत्रियों में गिनते थे, आज वही **श्रीदेवी** और **माधुरी दीक्षित** को पहले नंबर पर रखते हैं। लेकिन यदि इन दोनों में से किसी एक अभिनेत्री का चुनाव करने को कहा जाए तो निःसंदेह माधुरी उसमें नंबर मार लेगी। सवाल यह उठता है कि ऐसा क्यों? तो जवाब होगा कि दर्शक माधुरी में नैसर्गिक सुंदरता के अलावा **मधुबाला** की झलक भी देखते हैं।

माधुरी जितनी आज खूबसूरत है, उतनी ही कल भी थी। लेकिन आज लोकप्रियता के दौर में दर्शकों का उनके प्रति नजरिया बदल गया है। 'अबोध' के बाद 'उत्तर दक्षिण' की असफलता ने माधुरी को दर्शकों के दिमाग से विस्मृत-सा कर दिया था। लेकिन **'राम-लखन'** व **'तेजाब'** की शोख और चुलबुली भूमिकाओं ने माधुरी को रातों रात प्रसिद्धि के उस शिखर पर पहुँचा दिया, जो हर अभिनेत्री का लक्ष्य होता है।

अपने फिल्मी जीवन को याद करती हुई माधुरी बताती है कि 'मेरा फिल्मों में आना एक हादसा-सा था। आना था मेरी बहन को और एक्टर मैं बन गई। राजश्री ने अपनी फिल्म **'अबोध'** के लिए नए चेहरों को आमत्रित किया था।

मजाक में मेरी बहन और मैंने अपनी-अपनी एप्लीकेशन भिजवा दी। संयोग था कि हम दोनों बहनों को बुलावा आ गया। इंटरव्यू के दिन भी हम दोनों बहनों को यह सब खेल लगा। मैं तो इंटरव्यू देने नहीं जा रही थी पर मेरी बहन ने जिद की तो मैं भी साथ चली गई। इंटरव्यू के बाद हम दोनों इस बात को करीब-करीब भूल ही गई थी। एक दिन खबर मिली कि मुझे चुन लिया गया है। बस यहीं से मेरी फिल्मी जिंदगी शुरू हुई।''

राजश्री को पारिवारिक पृष्ठभूमि में सामाजिक फिल्में बनाने के लिए याद किया जाता है, लेकिन राजश्री की जो फिल्में पूरी होकर भी रिलीज नहीं हो सकी उसमें एक 'अबोध' भी है। इसे माधुरी का सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य कि राजश्री की फिल्म से अपना कैरियर शुरू करने वाली अभिनेत्री होने पर भी उस पर राजश्री की सीधी-सीधी घरेलू छाप हीरोइन होने की छाप नहीं लगी।



माधुरी बताती हैं कि '' 'अबोध' के बाद अभिनय में एक लंबा अंतराल आ गया। मुझे भी लगा कि मेरा अभिनय शौक अबोध से ही शुरू होकर वहीं खत्म हो गया। लेकिन बाद में परिस्थितियाँ बदली और सुभाष घई की मुझ पर नजर पड़ी। मुझे **'उत्तर दक्षिण'** की हीरोइन बनाया गया। अनिल और जैकी तब सितारे तो नहीं थे पर मुझे इस फिल्म से काफी आशा थी। इस फिल्म का हश्र 'अबोध' जैसा तो नहीं हुआ। फिल्म बनी भी रिलीज भी हुई पर चली नहीं। मैंने बिल्कुल आशा छोड़ दी कि मैं कभी अच्छी अभिनेत्री भी बन सकती हूँ। लेकिन वक्त ने पलटा खाया और सुभाष घई ने मुझे फिर 'राम-लखन' में चांस दिया। फिल्म बन ही रही थी कि एन. चंद्रा ने **'तेजाब'** के लिए साइन किया। मैंने पूरा दिल लगाकर इन दोनों फिल्मों में काम किया और परिणाम सामने है।''

कैसा लगता है जब कोई माधुरी में मधुबाला को ढूँढता है? इस सवाल पर माधुरी के चेहरे का रंग बदलने लगता है। वे कुछ सोचती हुई सी कहती हैं ''मधुबालाजी तो एक महान एक्ट्रेस थी, उन्हें वीनस कहा जाता था मैं भला उनकी बराबरी कहाँ कर सकती हूँ। मैंने आज तक अपने आपको कभी इस नजर से नहीं देखा पर यदि दर्शकों को मुझमें मधुबाला की छवि दिखाई देती है, तो यह मेरी खुशकिस्मती है। फिल्मों में आने से पहले मैं मधुबाला की फैन जरूर थी पर मैंने आज तक उनकी किसी अदा को नही अपनाया।''

माधुरी ने इस बात को गलत बताया कि ओंठ का कोना दबाकर, मुस्कुराने की उनकी अदा मधुबाला की नकल है। ''यह तो मेरी पुरानी आदत है, दर्शक यदि इसे मधुबाला की नकल मानते हैं तो यह उनका अपना नजरिया है।''

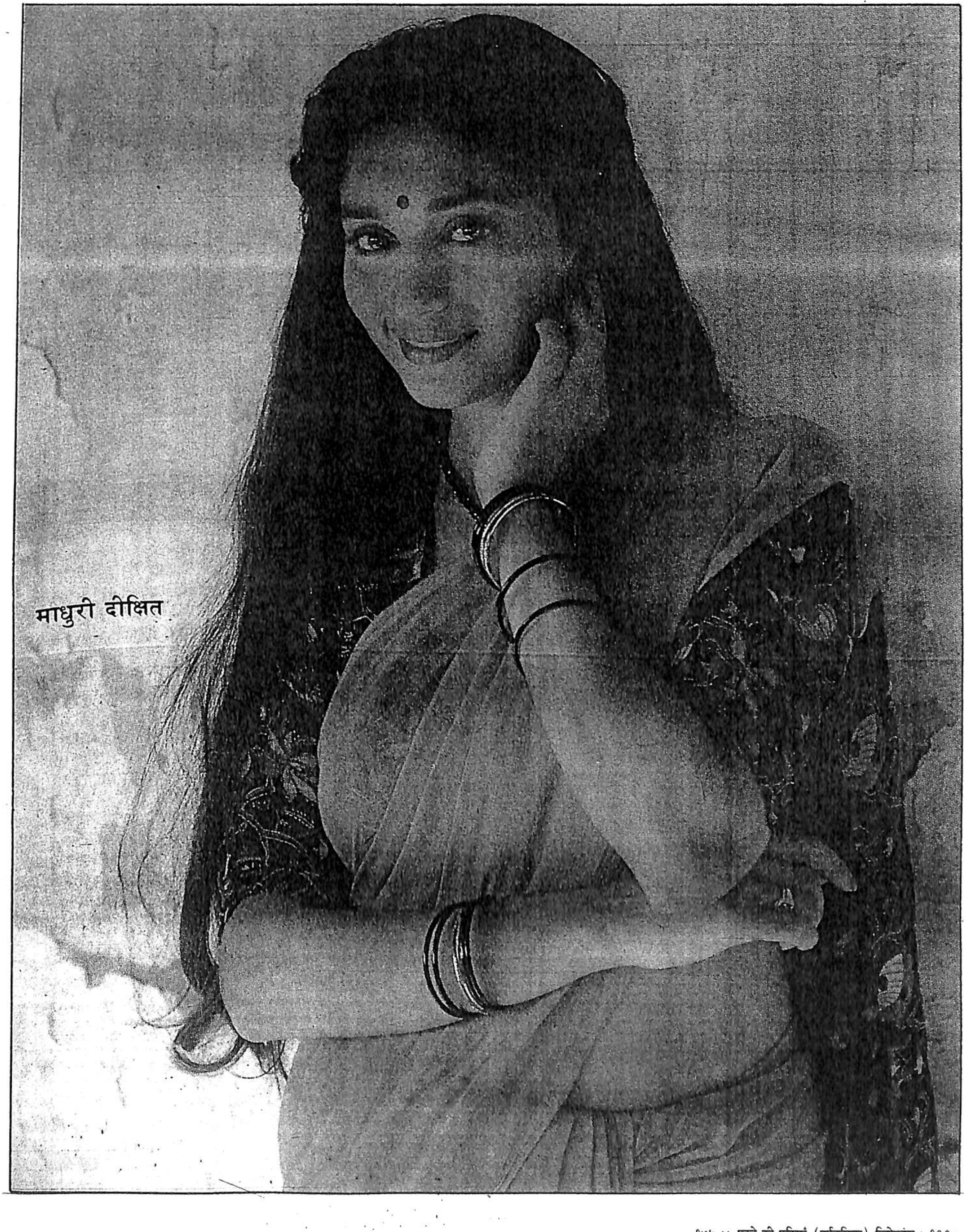
कोई इस बात पर सहज विश्वास करे या न करे पर यह सच है कि माधुरी अपनी निजी जिंदगी में पहली फिल्म 'अबोध' के शीर्षक की ही तरह सरल और सहज है। ''मुझे जानवरों से बहुत प्यार है। कौनसा जानवर? इसमें कोई भेद नहीं मुझे हाथी भी पसंद है, चिड़िया भी और हिरण भी। एक बिल्ली तो हमारे यहाँ कई सालों से पली है। जब भी जानवरों को किसी परेशानी में देखती हूँ मेरी आत्मा अंदर ही अंदर रो पड़ती है।''

माधुरी बताती है कि ''हाथी मेरे साथी'' फिल्म के जिस दृश्य में रामू हाथी को गोली मार दी जाती है मैं फूट-फूट कर रोई थी। इतना रोई कि सिनेमा हॉल में आसपास बैठे लोग तक मुड़-मुड़ कर मुझे देख रहे थे। जब भी फुर्सत मिलती है, चिड़ियाघर चली जाती हूँ।

साथी कलाकारों के बारे में सवाल पूछने पर माधुरी ने कहा कि ''उन्हें किसी से शिकायत नहीं है। सभी के साथ अच्छी दोस्ती है पर जैकी श्राफ और अनिल कपूर से उनकी अच्छी पटती है।'' वे बताती हैं कि ''अनिल कपूर मुझे इसलिए पसंद है कि वह काफी मेहनती इंसान है। कई बार मुझे आश्चर्य होता है कि आठ-दस घंटे की शिफ्ट करने के बाद भी अनिल तरो-ताजा दिखाई देते हैं और उसी तरह मुस्कुराते रहते हैं। जबकि जैकी बहुत जिंदादिल इंसान हैं।

चुनौतीपूर्ण भूमिकाओं के बारे में पूछे जाने पर माधुरी बताती हैं कि ''वैसे तो मैंने कई तरह के रोल किए हैं और कर भी रही हूँ पर जती वर्मा की फिल्म **'आँसू बने अंगारे'** में मैं 'माँ बेटी' की दोहरी भूमिका निभा रही हूँ। यह भूमिकाएँ इसलिए भी मुश्किल होती हैं कि चेहरे को तो मेकअप के जरिए बूढ़ा दिखा दिया जाता है पर संवाद अदायगी से दोनों भूमिकाओं में अंतर दिखाना पड़ता है। देखना है दर्शक मेरी इस चुनौती को किस तरह स्वीकारते हैं।''

● एच. कुमार



माधुरी दीक्षित

सुजाता मेहता

पंख लगाकर उड़ने की चाहत



नवसारी गुजरात में जन्मी और बंबई में पली, पढ़ी, बड़ी, **सुजाता मेहता** ने अभिनय के क्षेत्र में उस वक्त कदम रखा जब वह सातवीं कक्षा की छात्रा थी। इसके बाद परिवारजनों का प्रोत्साहन मिलता गया और वे प्रगति के रास्ते पर बढ़ती गईं। खानदान एवं श्रीकांत जैसे टी.वी. धारावाहिकों से चर्चित हुई तथा **'प्रतिघात'** से प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँची सुजाता में आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा है। वे कहती हैं कि सफलता उनसे दामन छुड़ा नहीं सकती क्योंकि वे काम को गंभीरता और पूरी मेहनत से सम्पन्न करने में विश्वास रखती हैं।

फिल्मी दुनिया में आने से पहले सुजाता ने गुजराती रंगमंच पर अपनी अभिनय प्रतिभा के रंग दिखाकर यश बटोरा था, आँख नीं अटाटी साव सूनी, अमे बरफ ना पंखी, थैंक यू मि. ग्लैड, शार्ट कट आदि उनके सफल नाटक थे। चीत्कार तो पिछले चार वर्षों से नियमित दिखाया जा रहा है। इसके बाद वे गुजरात की एक बाल फिल्म में आईं और फिर सियाही नामक वीडियो फिल्म में। एक अभिनेत्री के रूप में वे कई एकल अभिनय भी प्रस्तुत कर चुकी हैं। मलयालम कला फिल्म 'पुरुषार्थम' में भी वह काम कर चुकी हैं।

'प्रतिघात' में जब सुजाता को काम करने का प्रस्ताव मिला तब कई शुभचिन्तकों ने उन्हें समझाया कि वे इसे ठुकरा दें। तर्क यह था कि फिल्म के मूल दक्षिण भारतीय संस्करण में नायिका ने अत्यंत भावपूर्ण अभिनय किया था तथा सुजाता जैसी नई अभिनेत्री के लिए अभिनय की उन ऊँचाई तक पहुँचना नामुमकिन था। सुजाता ने इस चुनौती को स्वीकार तथा सहज, स्वाभाविक अभिनय क्षमता का इतना उत्तम प्रदर्शन किया कि आलोचकों ने यहाँ तक कह दिया कि मूल फिल्म की नायिका भी इतना उम्दा अभिनय न कर पाई थी।

सुजाता का कहना है कि वह इससे भी बेहतर अभिनय कर सकती थी। खुद को वहीदा रहमान, मीना कुमारी तथा स्मिता पाटिल की ऊँचाइयों तक ले जाने की कोशिश में जुटी हुई सुजाता का कहना है कि फिलहाल फिल्मी दुनिया ही उसका कार्यक्षेत्र है। रंगमंच से वह कुछ समय तक अलग रह कर पूरा ध्यान दूरदर्शन धारावाहिकों तथा फिल्मों पर लगाना चाहती है। 'यस सर' नामक धारावाहिक में वह शफी इनामदार के साथ आ रही है।

तड़फ, अम्बा, यह आग कब बुझेगी, सुजाता की आने वाली हिन्दी फीचर फिल्में हैं। सुजाता अपने बारे में जब भी बोलती है खुद को भविष्य में सर्वश्रेष्ठ नायिका घोषित करने में संकोच नहीं करती।

दीप्ति नवल

दो पाटों के बीच में



स्मिता पाटिल और शबाना आजमी जैसी तारिकाओं के दौर में **दीप्ति नवल** का उदय हुआ। यही वजह रही है कि अपने सौंदर्य तथा सीरत में उम्दा होने के बावजूद उसे अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी।

अमृतसर में जन्मी दीप्ति की शिक्षा अमेरिका में हुई। वह मनोविज्ञान में बी.ए. है। फिल्मों में आने से पहले वह पेंटर बनना चाहती थी। वैसे वह अनाउंसर रह चुकी है। न्यूयार्क रेडियो पर हिंदी के कार्यक्रम अपने अध्ययन के दौरान प्रस्तुत करती रहती थी। विनोद पांडे के संपर्क में आने से उनकी लंदन में निर्मित हिंदी फिल्म **एक बार फिर** में दीप्ति नायिका बनकर आई और सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इसके पहले श्याम बेनेगल की फिल्म **जुनून** में वह छोटे से रोल में आई थी।

दीप्ति को शास्त्रीय तथा विदेशी दोनों प्रकार के नृत्य आते हैं। हालांकि नृत्य कला प्रदर्शन के अवसर उसे नहीं के बराबर मिले हैं। गुलजार के संपर्क में आने से उसकी कवयित्री को अवसर मिला। लम्हा-लम्हा नाम से उसका एक संग्रह भी बाजार में आया है। फारुख शेख के साथ उसकी जोड़ी खूब जमी, मगर वे तमाम फिल्में मीडियाकर किस्म की थीं। **हिप-हिप हुर्रे** के निर्माण के दौरान वह प्रकाश झा के इतने नजदीक पहुँच गई कि दोनों ने शादी कर ली। प्रकाश झा की फिल्म **दामुल** में दीप्ति का महत्वपूर्ण रोल है। वैसे उनकी शादी टिकाऊ नहीं हुई और तलाक के रास्ते पर दोनों चल पड़े हैं।

दीप्ति की विशेषता अपने चरित्र को संवेदनशील बनाने की है। केतन मेहता की फिल्म मिर्च-मसाला हो या बासु भट्टाचार्य की पंचवटी, दीप्ति ने अभिनय का जादू चरित्रों के जरिए छोड़ा है। अपने छोटे कद, लंबे बाल, गोल चेहरे व हीरे की तरह जड़ी गई आँखों से वह दर्शक को ठग लेती है। स्मिता और शबाना की उपस्थिति ने उसके कद को और बौना बना दिया, वरना लंबी परछाई की योग्यता उसमें है। हाल ही में उसकी कन्नड़ फिल्म **माणे** काफी चर्चित हुई है। पंजाबी फिल्म मढ़ी-दा-दिवा को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। सुधीर मिश्रा की अप्रदर्शित फिल्म **मैं जिंदा हूँ** में उसका अभिनय पक्ष सशक्त है। दीप्ति के पल्लू में अधिकतर कला फिल्में ही आईं, इसलिए भी वह सिर्फ चर्चित होकर रह जाती है।

अमृता सिंह

एंग्री यंग-गर्ल

जोर-शोर और धूम धड़ाके के साथ फिल्मी संसार में प्रवेश करने वाली अमृता सिंह को अब तक अपेक्षित यश और सफलता नहीं मिल पाई है। अपने फिल्मी कैरियर के बारे में पाने और खोने का लेखा-जोखा प्राप्त करने की कोशिश की गई है। उस रूबरू चर्चा में जिसके अंश प्रस्तुत हैं।

आपका फिल्मी कैरियर कैसी प्रगति कर रहा है?

पिछले वर्ष 'बँटवारा' और 'हथियार' प्रदर्शित हो चुकी हैं। जैकी के साथ 'अकेला' प्रदर्शन की प्रतीक्षा में हैं। 'मौत का फरिश्ता', 'सच्चाई की ताकत', 'साधु-संत' तैयार है। धर्म संकट में मैं विनोद खन्ना के साथ आ रही हूँ। लोगों का यह सोचना कि कम फिल्में हाथ में रहना मेरे कैरियर के असफल होने की निशानी है, गलत है। मैं चाहूँ तो एक साथ बीसियों फिल्म साइन कर सकती हूँ मगर मेरा सिद्धांत है कि पाँच में काम करो तो पाँचों को हिट बनाओ। मेरी नजरों में संख्या का नहीं बल्कि गुणवत्ता का महत्व ज्यादा है।

इतने अच्छे विचारों के बावजूद आप शीर्ष पर नहीं पहुँच पाईं?

मैंने अपने तई पूरी कोशिश की मगर डाइरेक्टरों के काम में दखल देने का दुस्साहस नहीं किया। यह तो उनका दायित्व है कि मेरी प्रतिभा का सही उपयोग करें। अपने सहयोगी अभिनेताओं को नीचा दिखाने की कोशिश भी मैंने कभी नहीं की। कभी डायलाग नहीं बदले। कभी कैमरे का कोण बदलवाने की कोशिश नहीं की मगर साथ ही किसी को खुद पर हावी भी नहीं होने दिया। जहाँ तक शीर्ष पर पहुँचने का सवाल है मेरा यह लक्ष्य कभी रहा ही नहीं। मैंने सदा कर्म पर विश्वास रखा फल का फैसला परमेश्वर पर छोड़ दिया। मैं तो यही चाहती हूँ कि एक बढ़िया अभिनेत्री के रूप में जानी जाऊँ। यदि मेरे अभिनय में जान नहीं होती तो अब तक मुझे इस उद्योग से बाहर कर दिया गया होता।

आप अपनी भूमिकाओं का चुनाव कैसे करती हैं?

जितनी फिल्मों को मैं अब तक ठुकरा चुकी हूँ वह अपने आप में कीर्तिमान है। मैं निर्माता या निर्देशक का नाम देखकर फिल्म स्वीकार नहीं करती। इतनी रोकथाम के बावजूद मैंने कई गलत भूमिकाएँ स्वीकार कर ली थीं।

अभिनेत्री के रूप में आप खुद को कितना सफल मानती हैं। क्या आप में और भी बेहतर अभिनय क्षमता है?

मैं तो यह सोचती हूँ कि मूल रूप से मैं डाइरेक्टरों की कठपुतली हूँ। यदि डाइरेक्टर खुद अपने पात्रों के चरित्र को विकसित करने के बारे में गंभीरता से कोशिश न करें तो इसमें अभिनेताओं का क्या दोष। जहाँ तक मेरे खुद के बारे में ख्याल है मैं एक अच्छी अभिनेत्री और मेहनती कलाकार हूँ। मैं तो एक मशीन की तरह हूँ जिसका संचालन डाइरेक्टर के हाथ में रहता है। फिल्म के निर्माण में डाइरेक्टर की भूमिका जहाज़ के कप्तान की सी होती है। यदि वह मुझे अच्छी कलाकार समझ कर फिल्म में रोल देता है तो उसे काम लेना भी आना चाहिए।

'एंग्री यंग-गर्ल' वाली आपकी छवि कैसे बनी?

इस उद्योग में बहुतेरी ऐसी चीजें हैं जो गलत हैं। कुछ डाइरेक्टरों की आदतें बड़ी विचित्र हैं। वे रिहर्सल में कुछ और करते हैं तथा शूटिंग के अंतिम चरण में कुछ और। कभी वे संवाद बदल देते हैं, कभी हाव-भाव में तब्दीली करते हैं। कभी

- मैंने सदा कर्म पर विश्वास किया है और फल का फैसला परमेश्वर पर छोड़ दिया है।
- मैं तो डायरेक्टर के हाथ की कठपुतली हूँ। वह जैसा कराता है, करती हूँ।
- मुझे लोगों की यह आदत भी पसंद नहीं है कि वे मेरे अभिनय की समीक्षा करने के बजाए, मेरी निजी जिंदगी में झाँकें।



ऐसी अजीब अपेक्षाएँ करते हैं जिनका दृश्य से कुछ लेना देना नहीं। कभी-कभी स्टार को खुश करने के लिए पूरा दृश्य ही बदल दिया जाता है। ऐसी स्थिति में मैं आपा खो देती हूँ। मैं सुबकने और शिकायतें करने की बजाए साफ-साफ दो टूक बातें कर लेती हूँ। अपने काम के प्रति मेरे दिल में अटूट श्रद्धा है। निजी जिंदगी और काम दोनों अलग हैं। मुझे लोगों की यह आदत भी पसंद नहीं कि वे अभिनय की समीक्षा करने की बजाए निजी जिंदगी में झाँकें।

अपने सह अभिनेताओं के बारे में आपका क्या विचार है?

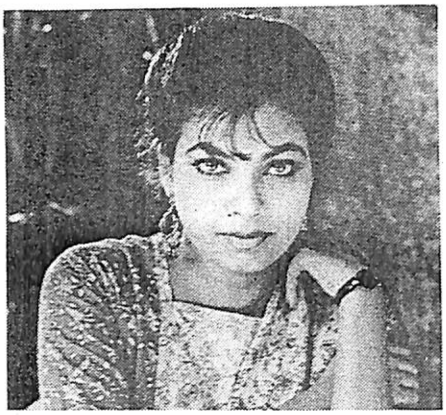
उनमें से ज्यादातर अपने काम के प्रति गैर जिम्मेदार हैं। वे सेट पर सह अभिनेताओं के साथ सहयोग का रुख नहीं रखते। अपने थोथे दंभ और अहंकार में पीड़ित रहकर वे सेट पर तनाव का वातावरण बना देते हैं। ऐसे सह अभिनेताओं के साथ काम करते वक्त मैं उनकी उपस्थिति को नकार कर अपना पार्ट ही अदा करना ठीक समझती हूँ। अपने आस-पास के उद्योग से जुड़े लोगों को देखकर मुझे अचरज होता है कि इनमें से ज्यादातर के पास न तो महत्वाकांक्षा है और न ही कोई व्यावसायिक ईमानदारी है।

इस स्थिति में सुधार कैसे हो सकता है?

नारी केन्द्रित विषयों पर जब कभी फिल्म निर्माण का काम हाथ में लिया जाए तो ऐसी फिल्म की नायिका के रूप में मेरी नजर में श्रीदेवी से बेहतर कोई अभिनेत्री नहीं हो सकती। जहाँ तक सुधार के लिए सुझाव की बात है मेरे ख्याल से यदि सभी लोग मेहनत करें तो हालत बेहतर हो सकती है। गलतियाँ करना तो मनुष्य का स्वभाव है, मगर उनमें सुधार करने की इच्छा मनुष्य का गुण। ■

हालाँकि किमी काटकर ने अपने फिल्मी सफर की शुरूआत 'पत्थर दिल' फिल्म में एक नए कलाकार के साथ एक रूमानी भूमिका के साथ की थी, बाद में बी. सुभाष की टार्जन , में कुछ दुःसाहसी दृश्य देने को वे जिस तरह राजी हुई, उससे उन पर 'सेक्स सिम्बल' का स्थाई ठप्पा लग गया। किमी को 'कहाँ है कानून' जैसी फिल्मों में भली भूमिकाएँ भी मिलती रही हैं, मगर ज्यादातर निर्माता उनके पास पहली श्रेणी की फिल्में लेकर ही आते रहे हैं। इस मुलाकात में किमी एक अभिनेत्री होने की कठिनाइयों और परेशानियों की चर्चा कर रही हैं।

टार्जन-कन्या किमी काटकर



फिल्म-उद्योग में आपका प्रवेश कैसे हुआ?

जब मैं सोफिया कॉलेज में पढ़ती थी, मुझे प्रसिद्ध उत्पादों के लिए मॉडलिंग करने तथा सौंदर्य प्रतियोगिताओं में भाग लेने का शौक था। कई फिल्म निर्माताओं का ध्यान मेरी तरफ गया। लेकिन सुरेन्द्र मोहन ने पहली बार मुझे 'पत्थर दिल' के लिए अनुबंधित किया।

पहली बार कैमरे का सामना करते हुए आपको कैसा महसूस हुआ?

'बहुत ही रोमांचक।' आपको पता है, अधिकांश शूटिंग गुजरात की सीमा पर आउटडोर में हुई। कुछ दृश्यों के लिए मुझे दूर-दूर दौड़ना पड़ा। लेकिन मैं आज भी महसूस करती हूँ कि अमरीश पुरी, डैनी डेंगजोंग्पा तथा अन्य लोगों के साथ काम करते हुए सारी मेहनत वसूल हो जाती थी। मगर नए अभिनेता जैनेंद्र के बारे में कुछ न कहना ही बेहतर होगा। वे बहुत सी खुशफहमियाँ तथा ग्रंथियाँ पाले हुए थे।

मॉडेल से फिल्म स्टार बनने के तजुर्बे के बारे में कुछ बतलाइए।

देखिए, मेहनत दोनों कामों में खूब लगती है। यदि आप मॉडेल हैं तो आपको विज्ञापन एजेंसियों, फोटोग्राफरों, मुवक्किलों तथा अन्य मॉडलों के साथ समन्वय बिठाने के लिए हजारों चीजों के बारे में सोचना पड़ता है। किसी तस्वीर के लिए 'पोज' देते समय कई बार अपने किसी साथी के साथ आप सुविधाजनक महसूस नहीं कर पाते। जब भी ऐसा मौका आता है, दोनों को ही थोड़ा बहुत समझौता करना पड़ता है। विज्ञापन एजेंसियों के बॉसों की उम्मीदें पूरी करनी पड़ती हैं तथा कई बार बेमौके भी शूटिंग करनी पड़ती है। सफल मॉडेल होने के लिए आपको अपने चेहरे और फीगर का पूरा रखरखाव करना पड़ता है। मैं अपनी पसंद की चीजें नहीं खा पाती थी, क्योंकि मेरी माँ मुझे हमेशा डराती रहती थी कि मेरा वजन बढ़ जाएगा। हालाँकि यही सब बातें फिल्मों पर भी लागू होती हैं। यहाँ आपको मेहनत और भी ज्यादा करनी पड़ती है। हमें निर्माताओं तथा सह-कलाकारों की सनकों को बर्दाश्त करना पड़ता है। बेशक, यह सब मुझे शुरू-शुरू में ही महसूस हुआ। बाद में 'टार्जन' जैसी एक-दो फिल्मों के हिट होने पर चीजें अपने आप आसान होती गई।

हेमंत बिरजे के साथ क्या झगड़ा था?

ओह, वह सारा मामला प्रेस ने बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया था। वास्तव में हुआ यह था कि कुछ ऐसे दृश्य करते हुए मैं हेमंत के साथ सहज नहीं रह पा रही थी। मैंने यह बात निर्माता बी. सुभाष से कही। जब उन्होंने हेमंत से जरा सहज होने को कहा, तो हेमंत को बुरा लगा और मेरे मित्रों से मैंने सुना कि उसने मेरे बारे में काफी ऐसी-वैसी बातें कहीं। मैंने भी बदले में एक इंटरव्यू में कह दिया कि हेमंत अपने को बहुत कुछ समझते हैं। मगर पत्रकारों ने जो कुछ मैंने कहा था, उसे काफी तोड़-मरोड़ कर पेश किया। जो भी हो हेमंत-अध्याय अब बंद हो चुका है।

क्या आप अपने फिल्म कैरियर से संतुष्ट हैं?

किसी दूसरे व्यक्ति से यह पूछना बहुत आसान है कि वह संतुष्ट है या नहीं! ! व्यक्तिगत रूप से मुझे इस बात का संतोष है कि मैं एक सफल अभिनेत्री हूँ और मेरी फिल्में बिकती हैं। जब तक मेरी फिल्में बिकती रहेंगी या जनता मुझे पसंद

फरीदा जलाल
अभिनय का कमाल

मद्रास में 'गोपी' की शूटिंग के समय फरीदा ने इतना अच्छा अभिनय किया कि दिलीप के मुँह से यह शब्द निकल पड़े–

"एक अजूबा, करिश्मा, कमाल
अल्लाह अल्लाह फरीदा जलाल"

फरीदा के अभिनय की प्रशंसा पूरे फिल्म उद्योग ने हमेशा की, परंतु दुर्भाग्यवश वह कभी सितारा नहीं बनीं। दरअसल अभिनेताओं में जो स्थान मोतीलाल और संजीव कुमार का रहा, वही स्थान अभिनेत्रियों में फरीदा का रहा। फरीदा, गीताबाली और तनूजा की परंपरा की अभिनेत्री है।

यूनाइटेड प्रोड्यूसर और फिल्मफेयर ने नए चेहरों की तलाश के लिए एक स्पर्धा की थी जिसमें राजेश खन्ना और फरीदा जलाल सफलतम रहे। इसी प्रतियोगिता में बेबी सारिका भी अपने आयु समूह में प्रथम आईं थीं।

फरीदा को पहला अवसर के. आसिफ ने अपनी फिल्म "सस्ता खून महँगा पानी" में दिया था। परंतु दुर्भाग्यवश फिल्म अधूरी ही रह गई। राजश्री की 'तकदीर' फरीदा की प्रदर्शित पहली फिल्म थी और इसी फिल्म में आज के प्रसिद्ध निर्देशक सुभाष घई ने भी अभिनय किया था। याकूब हसन रिजवी की फिल्म "बहारों की मंजिल" में फरीदा ने महान मीनाकुमारी की पुत्री की भूमिका की थी। फरीदा मीनाजी की परमभक्त प्रशंसिका थीं और मीना ने भी उसे भरपूर प्यार दिया था। नारी सिप्पी की 'पारस' में फरीदा को सहनायिका का फिल्मफेयर पुरस्कार मिला। 'पारस' से फरीदा भारतीय फिल्मों की छोटी बहन की छवि में ढल गई। इस तरह फरीदा ने नंदा के स्थान को प्राप्त किया। व्यावसायिक सिनेमा में 'छोटी बहन' की छवि ने ही फरीदा की अपार अभिनय प्रतिभा का बहुमुखी विकास नहीं होने दिया। सफलतम फिल्म **'आराधना'** में फरीदा राजेश की प्रेमिका बनी थी परंतु इसके बाद भी उसके पास नायिका की भूमिकाओं के बदले सहनायिका की भूमिकाएँ ही आईं।

राजकपूर ने फरीदा को **'बॉबी'** में एक अर्ध-विकसित दिमाग वाली लड़की का रोल दिया जिसे फरीदा ने बहुत अच्छे ढंग से किया। सत्यजीत राय ने 'बॉबी' देखने के बाद फरीदा को फोन किया और **'शतरंज के खिलाड़ी'** में एक महत्वपूर्ण भूमिका दी। दिलीप कुमार की छोटी बहन की भूमिका (गोपी) में फरीदा ने इतना मार्मिक अभिनय किया कि भेड़चाल वाली फिल्मी दुनिया नें उसे हर नायक की बहन की ही भूमिका दी। विवाह के पश्चात फरीदा ने फिल्मों में काम करना बंद कर दिया। जब फरीदा को स्वर्गीय राजकपूर की आखिरी फिल्म 'हिना' में एक महत्वपूर्ण भूमिका के लिए आमंत्रित किया गया तो फरीदा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। आजकल फिल्म उद्योग में प्रतिभा का अकाल है। ऐसे समय में फरीदा जलाल की वापसी आनंद का विषय है।

प्रमुख फिल्में : * तकदीर * बहारों की मंजिल * पारस * देवी * बॉबी * गोपी * नया दौर * काला सोना * आराधना * अमर प्रेम * धर्मात्मा * जीवन रेखा * लोफर * हीरा * खुशबू * अचानक * दो जासूस * शायद * कन्हैया * जिंदगी-जिंदगी * बुनियाद * याराना * शतरंज के खिलाड़ी * आलाप * पुष्पक और हिना।

खालिद समी

- **मैं अपने सारे प्रशंसकों से प्यार करती हूँ, मगर कृपया कोई शरारत न करें।**
- **मर्लिन मनरो, सोफिया लारां और लिज टेलर ने जो हॉलीवुड में किया, वही मैंने भारत में कर दिखाया।**
- **फिल्मों में काम करना कोई फूलों की सेज जैसा नहीं है।**
- **शादी के बाद पति चाहेंगे, तो फिल्मों में काम करूँगी।**

करती रहेगी, मैं फिल्मों में रहूँगी। बेशक, यह इस पर भी निर्भर करेगा कि शादी के बाद मेरे पति मुझे फिल्मों में काम करने देते हैं या नहीं।

आपको किस प्रकार की भूमिकाएँ पसंद हैं?

'कहाँ है कानून' में दुःखी पत्नी की भूमिका करना मुझे अच्छा लगा था। हालाँकि उस फिल्म ने पैसा ज्यादा नहीं कमाया। मैंने वह फिल्म, निर्देशक दीपक बलराज विज की वजह से स्वीकार की थी, जो कि मेरे एक परिचित के मित्र हैं। मगर 'टार्जन' मुझे हमेशा याद रहेगी। उसमें असली रोमांच और सनसनी थी। जंगली जानवरों और लोकेशन का भी आनंद था। कई बार मुझे डर लगता था कि कहीं हाथी मुझे अपनी सूँड से उठा कर जमीन पर न पटक दे। मुझे 'रामा ओ रामा' में काम करते हुए भी काफी आनंद आया, जो कि एक प्रेम कहानी थी और मैंने उसमें काम भी अच्छा किया। मैं प्रेम कहानियाँ पसंद करती हूँ, लेकिन वे मुझे ज्यादा नहीं मिल रही हैं।

"ऐसा क्यों? क्या इसलिए कि लोग आपको बेहतर जानते हैं और सेक्स प्रतीक की तरह ही लेते हैं?

सच पूछिए तो यह बात एक हद तक सही है। मगर मैं एक आधुनिक लड़की हूँ और खुले दृश्य करने में मुझे कोई खराबी नहीं नजर आती। आपको साफ ही कहूँ, मैं कुछ-कुछ हॉलीवुड की मेरिलिन मुनरो, सोफिया लारां ,लिज टेलर तथा ग्रेटा गार्बो जैसी भड़कीली नायिकाओं से भी प्रभावित रही हूँ। इन सभी ने सुपर स्टार का दर्जा बेबाक दृश्य तथा अंग प्रदर्शन करते हुए ही प्राप्त किया था। बेशक, हिम्मत के अलावा उनमें ढेर सी प्रतिभा भी थी, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। मगर भारत में मामला अलग है। कई लोग अब भी अपने पुराने मूल्यों को सेंत कर रखे हुए हैं और वे नायिका द्वारा परदे पर खुद को उघाड़ना बर्दाश्त नहीं कर पाते। मैं तो सिर्फ ईश्वर से यही प्रार्थना कर सकती हूँ कि वह निर्माताओं का हृदय परिवर्तन करे और उन्हें बतलाए कि मैं कपड़े उतारने के अलावा भी बहुत-कुछ कर सकती हूँ। सेक्स-प्रदर्शन मेरे तईं कोई पाप नहीं है, लेकिन कई बार जब मैं अच्छे रोल दूसरे कलाकारों के पास जाते देखती हूँ तो मुझे बड़ी निराशा होती है। मेरे ख्याल से, मिलने पर कुछ भूमिकाएँ मैं बेहतर ढंग से कर सकती थी।

क्या प्रतियोगिता से आप डरती हैं?

शुरू में मुझे लगता था कि क्या लोग मुझे तब भी पसंद करेंगे, जबकि पड़ोस के थिएटर में रेखा या हेमामालिनी की फिल्म चल रही हो। मगर बाद में मुझे अपनी खासियतें भी धीरे-धीरे पता चलती गईं और सब-कुछ रातों-रात बदल गया। मैं अपने आप से कहती थी, 'आगे बढ़ो, सोचो, आखिर तुम कोई बदशक्ल नहीं हो।' इस तरह मैंने अपनी ग्रंथियों से छुटकारा पाया।

अपने 'प्रसंगों' तथा मित्रताओं के बारे में आप क्या सोचती हैं?

मैंने ऐसा दावा कभी नहीं किया कि मैं बड़ी सती सावित्री हूँ। मैंने कुछ दो चार प्यार के सिलसिले चलाए, लेकिन उनमें से किसी ने भी कोई कड़वाहट पीछे नहीं छोड़ी। बात सिर्फ इतनी थी कि मैं इतनी नादान थी कि मैंने सोचा कि अपने जीवन के उस खास दौर में मैं उनमें से हर-एक से निपट सकूँगी। मेरे ख्याल से स्थितियों से निपटने का माद्दा अब मुझमें कुछ ज्यादा आ गया है।

अपने प्रशंसकों को कोई संदेश देना चाहेंगी...?

"हाँ। मैं उनसे खासतौर से जो फिल्म लाइन में आना चाहते हैं, कहना चाहती हूँ कि स्टार होना कोई फूलों की सेज नहीं है। जब कोई फिल्म रिलीज होने वाली होती है, तो चिंता के मारे हमारी जान निकली जाती है कि पता नहीं फिल्म चलेगी या नहीं। एक और बात भी मैं कहना चाहूँगी और वह यह कि किमी आपको पसंद करती है और कृपया कोई शरारत न करें!! ■





परदे की परियों को कागज़ पर उतार लाने के लिये **नईदुनिया** को साधुवाद! उम्मीद है कि आने वाले समय में भी रजतपट के अनछुए पहलुओं का साक्षात्कार कराएगा हमें **नईदुनिया प्रकाशन**।

शुभेच्छु

प्रीमियर इंडस्ट्रीज (इंडिया) लि.

चेतक सेंटर, आर.एन.टी. मार्ग, इन्दौर

RAAG-307

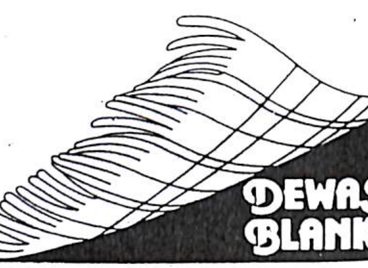
हिन्दुस्तानी फ़िल्में .....
हमारे परिवेश और हमारी संस्कृति की चश्मदीद गवाह रही हैं। इन्सानी रिश्तों को फ़िल्मों ने अलहदा ज़ुबान दी है।
काश................
परदे पर फिल्माई गई करूणा और मानवीयता को हम अपनी ज़िंदगी में भी उतार पाते।

शुभाकांक्षी

दीपक वूलन्स प्रायवेट लिमिटेड

चेतक सेंटर, आर.एन.टी. मार्ग, इन्दौर

RAAG-306



DEWAS BLANKETS

आयुर्वेदिक दवाइयों का विशाल भण्डार

प्रसिद्ध आयुर्वेदिक कम्पनियों की सभी दवाइयां हमेशा मिलती हैं.

इन्दौर में प्रतिदिन निःशुल्क चिकित्सा परामर्श उपलब्ध!

जवाबी पत्र भेजकर औषधि का मूल्य मालूम कीजिए. एवं मनीआर्डर से राशि भेजकर 'पोस्ट पार्सल' से घर बैठे औषधि प्राप्त कीजिए.

लक्ष्मी मेडिकल हॉल

यशवन्त रोड चौराहा, इन्दौर 452004 फोन नं. 65781.

8, मारवाड़ी रोड, **भोपाल** फोन नं. : 543580

39, एम.एल.ए. क्वाटर्स नार्थ टी.टी. नगर, **भोपाल** फोन नं. 61669.

- **कृष्ण गोपाल कालेड़ा धूतपापेश्वर, ऊंझा, झंडू, आफाली, चरक, साण्डू, डाबर, बैधनाथ आदि एवं सभी अन्य प्रसिद्ध आयुर्वेदिक कम्पनियों की दवाइयां उपलब्ध!**

विशेष: **'निरोगधाम'** में प्रकाशित समस्त दवाएं हमेशा उपलब्ध.

फरहा

बराबरी की दावेदार

'फासले' और 'लव ८६' से लेकर 'यतीम' तथा 'नकाब' तक फरहा के फिल्मी कैरियर में भी उतार-चढ़ाव आए हैं। यह तो सुविदित है कि फरहा कराटे की शौकीन है। मगर वह उतनी ही माहिर अपने प्रेमी बदलने में भी है। आपने बॉय फ्रेंडों की सूची से उदीयमान निर्देशक राजेश सेठी को खारिज करने के बाद इस समय उसका सिलसिला और कहीं चल रहा है। मगर फरहा इस तथ्य से भी खुश है कि लोग फिल्मों में उसके काम की भी चर्चा कर रहे हैं।

■ आप हमेशा यह जाहिर करने की कोशिश करती नजर आती हैं कि सारा फिल्म उद्योग पाखंडियों से भरा है।

□ मेरे ख्याल से इसीलिए मेरी ख्याति कुछ इस तरह की है कि मैं हर किसी के लिए अपशब्दों का प्रयोग करती हूँ। मगर मेरे साथ बदसलूकी करने के बाद मुझसे बचकर कोई नहीं जा सकता। यदि आप मेरे साथ अच्छे हैं, तो मैं भी बहुत बढ़िया रहूँगी, लेकिन यदि किसी ने बदतमीजी की तो फिर उसकी खैर नहीं।

■ क्या लोग आपकी अभिनय क्षमता पर शक करते हैं?

□ हाँ, बदकिस्मती से कुछ लोगों को अब भी इसमें शंका है। मगर 'नकाब' के बाद, उम्मीद हं मुझे ऐसी फिल्में नहीं मिलेंगी जिनमें नायिका को सिर्फ तीन गाने गाना होता है। ऐसी भूमिकाएँ मुझे बड़ी 'बोरिंग' लगती हैं।

■ तो फिर आप ऐसी फिल्में लेती ही क्यों हैं?

□ यदि मुझे इंडस्ट्री में टिके रहना है तो मुझे ऐसा करना ही होगा। यदि मैं असल हिन्दी फिल्मों की नायिका जैसे रोल स्वीकार नहीं करूँगी तो यहाँ के लोग मुझे निकाल बाहर कर देंगे। मान लीजिए मैं अच्छे रोल वाली सिर्फ चार फिल्में ही स्वीकार करती हूँ और खुदा-न-खास्ता इनमें से एक भी फिल्म पिट गई तो, सहारे के लिए मेरे पास तीन ही फिल्में बचेंगी। इसीलिए समझदारी इसी में है कि बहुत सारी फिल्में 'साइन' करो ताकि यदि एक आध फिल्म फ्लॉप हो जाए तो दूसरी बहुत-सी में से कोई न कोई सफल हो ही जाएगी। फिर भी मुझे इस बात से तसल्ली है कि मेरे वर्ग की अभिनेत्रियों में नायिका-उन्मुख फिल्में सबसे ज्यादा मेरे ही पास हैं। वैसे मैं इस तथ्य से भी इंकार नहीं करूँगी कि यदि मेरे पास शक्तिशाली भूमिकावाली दस फिल्में हैं तो चालीस में, छोटी-छोटी भूमिकाएँ ही हैं।

■ अब तक का आपका सर्वश्रेष्ठ प्रयास कौन सा है?

□ मेरे विचार से 'नकाब' मेरी सबसे अच्छी फिल्म है। इसमें मेरी शानदार दोहरी भूमिका थी और उससे मैंने काफी उम्मीदें लगा रखी थी। ऐसा नहीं है कि इस फिल्म के कारण मेरे कैरियर में कोई नाटकीय परिवर्तन आया। लेकिन मुझे पता है कि इसके बाद लोग मुझे एक अभिनेत्री के रूप में गंभीरता से लेने लगेंगे।

■ अपनी 'इमेज' (छवि) के बारे में आपकी क्या राय है?

□ मैं एक बहुत ही भावुक इंसान हूँ। यदि कोई मेरे सामने आकर रोने लगे तो शायद मैं भी रोने लगूँगी। मेरा दिल भी बहुत बड़ा है। यदि कोई मुझसे पैसा उधार माँगता है तो मैं बगैर हीले-हवाले के उसे पैसा दे दूँगी। मगर मुझसे चालाकी या धोखेबाजी बरदाश्त नहीं होती। सामने से आप कितने ही वार कर सकते हैं मगर किसी की पीठ में छुरा मारना मुझे कतई गवारा नहीं, और एक बार अपना आपा खोने के बाद फिर मुझसे बुरा कोई नहीं।

- **मैं सिर्फ भगवान और अपनी माँ से डरती हूँ।**
- **फिल्म लाइन में बने रहने की समझदारी इसी में है कि ढेर सारी फिल्में साइन करते रहो।**
- **फिल्मी दुनिया में पाखण्डियों की कमी नहीं है। ऐसे लोग मेरे पास आकर कहते हैं- 'फरहा हम तुम्हें पसंद करते हैं।'**
- **मैं चित्रकारी की शौकीन हूँ। हिन्दी में कविता लिखती हूँ और कराटे में बेहद दिलचस्पी है।**
- **बराबरी की मैं इस हद तक दावेदार हूँ कि यदि मेरा पति मुझे चाँटा मारेगा, तो मैं भी वैसा करूँगी।**



■ क्या आप खुद को दुनियादार कहेंगी?

□ मैं ज़रा मूडी जरूर हूँ, लेकिन खिसकी हुई नहीं। सफलता और शोहरत सब भगवान के हाथ है। मेरे ख्याल से यदि आपके पास भावनाएँ नहीं हैं तो आप दूसरों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकते। यदि मुझे कोई भावुक दृश्य करना है तो जब तक मैं उस पात्र के सरोकारों को गहराई के साथ नहीं महसूस करूँगी तब तक मेरे अभिनय में असर पैदा नहीं होगा। सिर्फ आँखों में ग्लिसरीन की मिकदार बढ़ा देने से ही सब ठीक नही हो जाता। वैसे, मैं मानती हूँ कि मैं बहुत जज्बाती हूँ और ऐसे लोगों को बहुत तकलीफें उठानी पड़ती हैं। शायद इसीलिए मैंने भी उठाई है।

■ क्या आप खुद से संतुष्ट हैं?

□ हाँ, मैं खुश हूँ। हर रोज नए-नए लोगों से मुलाकात होती है। हम उनके अनुभवों के भागीदार बनते हैं और इसी प्रक्रिया के चलते हमारा विकास होता है। दौलत, शोहरत, इज्जत सब मिलता है। इसके अलावा किसी को और



चाहिए भी क्या? मुझे यह भी पता है कि इस लाइन में पाखंडियों की कमी नहीं है। कई लोग मेरे पास आकर कहते हैं 'फरहा हम तुम्हें बहुत पसंद करते हैं' मगर मुझे पता है कौन सचमुच ऐसा सोचता है और कौन सिर्फ कहने के लिए कहता है।

■ क्या आपको ऐसा लगता है कि आप यहाँ सिर्फ एक सीमित दायरे में ही सीमित हो गई हैं?

□ यह निर्भर इस बात पर करता है कि आप किस प्रकार का वार्तालाप पसंद करते हैं। यह सही है कि यहाँ ज्यादातर बातचीत काम से संबंधित ही होती है। मगर यह भी तो है कि अपने क्षेत्र में सफल होने के लिए उसकी पूरी जानकारी होना भी जरूरी है। मेरे हिसाब से तो अपने क्षेत्र की अच्छी जानकारी रखना अन्य क्षेत्रों के बारे में परेशान होने से कहीं अच्छा है। वैसे मैं चित्रकारी की शौकीन हूँ। इसमें मुझे स्वर्ण पदक मिल चुका है। मैं हिन्दी में कविता भी लिखती हूँ। फुर्सत कम मिलती है। मगर मिलने पर मैं 'पेंट' करती हूँ। फिर मुझे द्वंद्व कलाओं में भी दिलचस्पी है। अत: आप यह नहीं कह सकते कि मैं सिर्फ फिल्मों तक ही सीमित हूँ। मगर मेरी इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं कि राजीव गाँधी ने क्या कहा या इस्पात के नवीनतम भाव क्या है? इन चीजों से मुझे कोई सरोकार नहीं।

■ आपकी महत्वाकांक्षाएँ क्या है?

□ 'मैं अभी नंबर एक की 'पोजीशन' पर नहीं पहुँची हूँ, मगर मैंने शिखर पर पहुँचना कभी चाहा भी नहीं। मैं एक अच्छी अभिनेत्री के रूप में जानी जाना चाहती हूँ। पेड़ों के इर्द-गिर्द दौड़ कर चोटी पर पहुँच जाना ही मेरा लक्ष्य नहीं है। मुझे वैसी सफलता नहीं चाहिए। अव्वल नंबर की अभिनेत्री बनने में मुझे हर्ज नहीं है। मगर उस

नटखट तारिका

पद्मिनी कोल्हापुरे

देवआनंद की 'इश्क इश्क इश्क' में बच्चों की भीड़ में पाँच वर्ष की पद्मिनी भी एक चेहरा थी। राजकपूर ने **'सत्यम् शिवम् सुंदरम'** में पद्मिनी को नायिका के बचपन की भूमिका दी जिसे उसने यादगार बना दिया। सावन कुमार टाक ने पद्मिनी को 'साजन बिना सुहागन' में कैंसर से पीड़ित बालिका की भूमिका दी। बी.आर. चोपड़ा की 'इंसाफ का तराजू' में पद्मिनी ने तेरह वर्षीय बालिका की भूमिका अभिनीत की जिसका बलात्कार होता है।

एक वयस्क नायिका के रूप में राजकपूर ने पद्मिनी को प्रेम रोग में प्रस्तुत किया। प्रारंभ की रीलों में उसे ओस की बूँद की तरह पवित्र और मासूम लड़की का अभिनय करना था। इन्हीं रीलों में वह बड़े राजा ठाकुर के लाड़ के कारण जिद्दी लड़की बन गई है। इसी फिल्म की बाद की रीलों में वह युवा विधवा है। पद्मिनी ने इस कठिन भूमिका को इतने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया कि उसका अभिनय लोगों को पाँचवें दशक की महान अभिनेत्रियों की याद दिलाने लगा। प्रेम रोग उसकी पहली और सर्वोत्तम फिल्म है। पद्मिनी के भाग्य थे जो उसे हिंसा के दौर में नायिका प्रधान 'प्रेम रोग' मिली और राजकपूर जैसे निष्णात निर्देशक।

पद्मिनी की 'प्यार झुकता नहीं' अत्यंत सफल फिल्म थी। इसी फिल्म से के.सी. बोकाड़िया ने उद्योग में पैर जमाए और अब बोकाड़िया एक फिल्म फैक्टरी हो चुके हैं। टीनू आनंद ने ऋषि कपूर और पद्मिनी को लेकर 'ये इश्क नहीं आसाँ' बनाई जो घोर असफल रही। 'सौतन' में टीना मुनीम का रोल बड़ा था परंतु अभिनय पद्मिनी कोल्हापुरे ने ही किया। शादी के बाद पद्मिनी फिल्म निर्माण में लगी हैं, परंतु उनके नाम की कहानी प्रेम रोग से शुरू होकर प्रेम रोग पर ही समाप्त होती है। मिथुन के साथ उसकी कई फिल्में सफल रहीं। पद्मिनी के अभिनय में गीताबाली और तनूजा के नटखटपन की झलक मिलती है। ब्रिटेन के राजकुमार चार्ल्स जब भारत आए थे, तो पद्मिनी ने आगे बढ़कर उनका चुम्बन ले लिया था, जो दुनिया भर की प्रेस में काफी चर्चित हुआ।



मुकाम पर पहुँचने के बाद मैं नहीं चाहती कि लोग यह कहें कि मैं सिर्फ सुंदर दिखती हूँ और नृत्य अच्छा कर लेती हूँ। मैं चाहती हूँ कि लोग मुझे सक्षम अभिनेत्री भी मानें। मसलन श्रीदेवी को ही लीजिए। वह बहुत ही 'ग्लेमरस' लड़की है। मैं यह भी जानती हूँ कि वह बहुत खूबसूरत भी है। नृत्य भी अच्छा करती है, लेकिन वह मीना कुमारी नहीं है। बल्कि नरगिस भी नहीं। मैं चाहती हूँ कि मेरे इंडस्ट्री छोड़ने के बाद भी लोग मुझे याद रखें। हो सकता है कि कुछ लोग श्रीदेवी को भी याद रखें, लेकिन मैं उनमें नहीं हूँ। मुझे उसकी सिर्फ 'सदमा' फिल्म पसंद है जिसमें उसका अभिनय बढ़िया था। उसकी कोई अन्य फिल्म मुझे याद नहीं आती। यदि आप में प्रतिभा है तो आपको अच्छी फिल्मों में काम करना चाहिए। अच्छी भूमिकाएँ स्वीकार करना चाहिए और सिर्फ नाचने-गाने वाले रोल ही नहीं करने चाहिए। मुझे समझ में नहीं आता ये लड़कियाँ क्यों अपने आपको नीचा गिराती हैं। हमें यह साबित कर दिखलाना चाहिए कि नायिका-प्रधान फिल्में भी टिकट खिड़की पर सफल होती हैं। क्या हाल ही में रेखा ने दो 'हिट' फिल्में नहीं दीं? नायक और नायिका, दोनों के साथ एक जैसा सुलूक होना चाहिए। मेरे जीवन की सबसे बड़ी खुन्नस यही है।

■ क्या आप समानता में विश्वास करती हैं?

□ हाँ, और यही वजह है कि मेरे रिश्ते सफल नहीं हो पाते। मैं निरंतर समान दर्जा प्राप्त करने की कोशिश में लगी रहती हूँ। यदि मेरा आदमी मुझे चाँटा लगाने की ताकत रखता है तो मुझमें भी ऐसा कर सकने की सामर्थ्य होनी चाहिए। कई बार तो मैं महसूस करती हूँ कि मेरी शादी भी सफल नहीं होगी क्योंकि मैं ऐसा जीवनसाथी चाहती हूँ जो मेरे मूड के प्रति उसी तरह संवेदनशील हो जैसे मैं उसकी हर इच्छा पूरी करने की कोशिश करूँगी। किसी भी दंपति में पूरी 'अंडरस्टेंडिंग' होनी चाहिए। वैसे यह असंभव नहीं। मैंने ऐसी कई शादियाँ देखी हैं।

■ आपके दारासिंह के बेटे विंदू के साथ कैसे संबंध हैं।

□ जब मेरे कुछ पत्रकार मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि वे विंदू और मेरा एक 'फोटो-सेशन' करना चाहते हैं तो मैंने हाँ कर दी। मैंने किसी भी पत्रिका से यह नहीं कहा कि वह ये तस्वीरें छापे। मैंने यह तथ्य छुपाने की कोशिश कभी नहीं की कि मैं विंदू से प्यार करती हूँ। बल्कि मैं तो चाहती हूँ कि लोगों को इसका पता चल जाए। मैं नहीं चाहती कि लोग सोचें कि मैं अब भी 'छड़ी' हूँ। कम से कम इस तरह कोई मेरे से नाजायज फायदा तो नहीं उठाएगा। यदि कोई मेरे ऊपर डोरे डालने की कोशिश करेगा तो विंदू जाकर उसे दुरुस्त कर देगा। आखिर वह दारासिंह का बेटा है। और देखिए, सेट्स पर आने के बाद मैं अपना काम ढंग से करती हूँ। मगर काम के बाद मैं क्या करती हूँ, किसके साथ अपना वक्त बिताती हूँ, यह पूछने का हक किसी को नहीं है। मैं 'ड्रिंक' भी ले सकती हूँ, किसी 'डिस्को' में भी जा सकती हूँ। इससे किसी कमबख्त को कोई लेना-देना नहीं है। मैं सिर्फ अपनी माँ और भगवान से डरती हूँ। ■

*हाँगकाँग में रहने वाले एक व्यापारी की बेटी नीलम वहीं बड़ी हुई और वे एक बैले-नर्तकी बनना चाहती थीं। उन्होंने इसके लिए प्रशिक्षण भी लिया। लेकिन जब उनकी मुलाकात निर्माता रमेश बहल से हुई तो उन्होंने अपना इरादा बदल दिया और उनकी फिल्म **'जवानी'** में किशोर नायिका की भूमिका स्वीकार कर ली। इसके बाद उन्होंने **पाप की दुनिया, आग ही आग, इल्जाम** जैसी सफल फिल्मों में काम किया और फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा।*

फिल्मी अंगूठी में जड़ी

हाँगकाँग की नीलम

फिल्मों में प्रवेश कैसे हुआ?

मेरा परिवार पश्चिमी रंग-ढंग का है। हम लोग हमेशा सलीके और सही ढंग से रहते हैं और यह फिल्म उद्योग बिलकुल अलग है। शुरू में मुझे न तो हिन्दी समझती थी, न मैं ज्यादा हिन्दी फिल्में देखती थी। मगर मैं अमिताभ बच्चन की बहुत बड़ी फैन थी। मैं और मेरा भाई उन्हें बहुत पसंद करते थे। रमेश बहल जो कि उसी बिल्डिंग में रहते थे जिसमें मेरी मौसी शहनाज रहती हैं, मेरे माता-पिता से मिले और उनसे पूछा कि क्या वे मुझसे मिल सकते हैं और क्या मैं उनकी अगली फिल्म **'जवानी'** में काम करूँगी। मेरे माता-पिता राजी हो गए और इस तरह मैं फिल्मों में आ गई।

एक अभिनेत्री के रूप में फिल्मी दुनिया तुम्हें कैसी लगती है?

ओह, देखिए यह उतनी बुरी नहीं है। शुरू में मेरा इरादा सिर्फ एक फिल्म कर हाँगकाँग वापस लौट जाने का था। पर घटनाएँ कुछ अलग ढंग से घटीं। जब मेरी पहली फिल्म रिलीज होकर पिट गई तो मुझे बहुत बुरा लगा और मैंने तय किया कि एक फ्लॉप फिल्म अपने पीछे छोड़कर मैं वापस नहीं लौटूँगी। मैंने सोचा एक हिट फिल्म बनाने के बाद मुझे फिर इतना बुरा नहीं लगेगा। एक अभिनेत्री के रूप में मुझे अपने संवादों की अदायगी में सुधार लाना है। कई बार अपने संवाद खुद डब न कर पाना बहुत बुरा लगता है, क्योंकि कोई दूसरा हमारे संवादों के साथ पूरा न्याय नहीं कर सकता। उनमें आत्मा ही नहीं होती। आपकी आवाज के बगैर आपका प्रदर्शन अधूरा ही रहता है। अतः अपनी पहली दो फिल्मों के बाद मैंने तय किया कि चाहे जो भी हो इसके बाद अपने संवादों की डबिंग मैं खुद करूँगी। मैंने हिन्दी सीखने के लिए एक ट्यूटर रखा और अब मैं अच्छी तरह बोल लेती हूँ। मेरे ख्याल से मेरे कैरियर का प्रारंभिक दौर ही सबसे अच्छा था। भाषा तथा एडजस्टमेंट की सारी समस्याओं के बावजूद मेरी पहली कुछ फिल्मों में काम करते हुए मुझे सबसे ज्यादा मजा आया। वह पूरा तजुर्बा मेरे लिए बिलकुल नया था। शुरू में जो जोश और रोमांच था वह धीरे-धीरे घटता गया और सारा मामला एकरस होता गया। फिर भी अपनी पहली हिट फिल्म 'इल्जाम' से जो खुशी मुझे हुई उसे मैं कभी नहीं भूल सकती। मैं वाकई बहुत खुश थी।



अपने सह-कलाकारों के साथ आपको कोई दिक्कत तो नहीं होती?

सिवा फरहा के मुझे किसी के साथ कोई समस्या नहीं है। मुझे पता नहीं मगर ठेठ 'लव-८६' के दिनों से ही वह न जाने क्यों मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ी हुई हैं और हर तरह से परेशान करती हैं। लोग मुझसे कहते हैं कि मैं उसे गंभीरता से न लूँ। मैं संयत लड़की हूँ और काफी कुछ सहन कर जाती हूँ।

क्या तुम्हें सही किस्म की भूमिकाएँ मिल रही हैं?

देखिए, मेरे पास इस समय सबसे चुनिंदा रोल है। विष्णुदेवा, विलेन, टाईम, वार-पे-वार, चोर पे मोर, अफसाना प्यार का, देवा ही देवा, धर्म शक्ति, रणभूमि, के. बाप्पैया और सलीम की अगली फिल्में। शंकरा और सीना जोरी जैसी ढेर-सी फिल्में मेरे पास हैं। प्यार का कर्ज और जख्म रिलीज हो भी चुकी हैं। धर्म शक्ति और साहब-जादे में भी मेरे बढ़िया रोल हैं। कई बार मुझे फिल्मों में आने का अफसोस भी होता है। आपको पता है 'पुष्पक' में अमला वाली भूमिका पहले मुझे दी गई थी। बल्कि 'त्रिदेव' में सोनम की भूमिका भी पहले मुझे प्रस्तावित की गई थी। मगर मैंने



नीलम...

कभी नसीरुद्दीन के साथ काम नहीं किया था। इसलिए मैंने उससे इंकार कर दिया। इसी तरह मैंने सोचा कमल हासन की फिल्में फ्लॉप हो रही थीं उनके साथ काम करने में जोखिम है, अतः मैंने 'पुष्पक' भी ठुकरा दी। मेरे ख्याल से गोविंदा के साथ बहुत ज्यादा फिल्में न करने से कुछ फायदा ही हुआ है। दर्शकों में हमें फिर से एक साथ देखने की उत्सुकता बढ़ी है। मैं यह मानती हूँ कि गोविंदा की और मेरी नृत्य में जोड़ी जमती है। हम दोनों एक ही ताल और लय में चलते हैं। गोविंदा ने कहा था कि मेरे साथ काम करने के बाद वह अब दुनिया का कोई भी लहजा समझ जाता है। उसके हिसाब से तो अच्छा हुआ, लेकिन जहाँ तक मेरा सवाल है, उसके साथ इतने दिनों तक काम करने के बाद भी मेरी हिंदी नहीं सुधर पाई। इतने बरसों के अनुभव के बाद अब मुझे लगता है कि अच्छे बैनर के बजाए अच्छी भूमिका ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। वैसे मुझे युवा भूमिकाएँ करनी अच्छी लगती है। लेकिन मैं परिपक्व रोल भी करना चाहूँगी। मुझे तो पूरा विश्वास है कि मैं उन्हें कर सकती हूँ मगर सवाल यह है कि दर्शक मुझे उनमें स्वीकार करेंगे या नहीं।

तुम्हें इस समय किस चीज की कमी सबसे ज्यादा महसूस होती है?

अपनी प्रायवेसी। अभी तो हालत यह है कि मैं बगैर लोगों के ध्यान में आए एक भी काम नहीं कर पाती। जहाँ भी मैं जाती हूँ लोग मुझे देखते ही चिल्ला पड़ते हैं 'देखो वो नीलम जा रही है।' शुरू में यह सब बड़ा अच्छा लगता था। मगर अब मैं इससे तंग आ चुकी हूँ। दूसरे मुझे अपनी पढ़ाई पूरी न कर सकने का भी बहुत अफसोस है। जब मैं फिल्मों में आई ही थी, मैंने इसकी ज्यादा परवाह नहीं की। मगर अब मैं सोचती हूँ मुझे अपनी पढ़ाई कम से कम पूरी कर लेना चाहिए थी। अपने स्कूली जीवन की मेरी यादें बहुत महत्वपूर्ण हैं। व्यक्तिगत रूप से मुझे कोई भी चीज पाने की तीव्र लालसा नहीं है। जो कुछ मेरे पास है उसी से मैं संतुष्ट रहती हूँ। मैं मानती हूँ कि मेरा कैरियर इस समय अच्छा नहीं चल रहा है तथा अपनी फिल्मों के पिटने का असर मुझ पर भी होता है। आखिर मैं भी इंसान हूँ। कई बार परेशान हो जाती हूँ। मैं एकदम निराश नहीं होती। सफलता

कल्पना अय्यर
तारिका बनने की बेचैनी



फिल्मी दुनिया में उत्तेजक नृत्य करने तथा खलनायिका की भूमिका के लिए **कल्पना अय्यर** का नाम पहचाना और प्रसिद्ध है। यह एक विडम्बना ही है कि अपने कैरियर की शुरूआत नायिका से करने के बावजूद एक अभिनेत्री के रूप में उसे ज्यादा प्रतिष्ठा और पहचान न मिल सकी। राजकिरण के साथ **'मनोकामना'** में नायिका के रूप में पर्दे पर आने के बाद भी जब उन्हें लंबे समय तक दूसरी फिल्मों में नायिका की भूमिका नहीं मिली, तब उन्होंने फिल्म **'लूटमार'** में एक सेक्सी नृत्य पेश करना स्वीकार कर लिया। इस नृत्य की सफलता ने उन्हें अभिनेत्री से नृत्यांगना बना दिया। इसके बाद उन्हें चरित्र अभिनेत्री की भूमिकाएँ तो मिलीं पर लोकप्रियता और कामयाबी जिस्म दिखाऊ नाचों के कारण ही बढ़ती रही। पूनम, वारदात, चोर सिपाही आदि फिल्मों में वे छोटी मोटी भूमिकाएँ करती रहीं। निर्माता ब्रज कल्याण की छोटे बजट की फिल्म 'कानून कानून है' में उन्हें नायिका का रोल मिला मगर फिल्म पूरी होने में आने वाली अड़चनों के कारण यह अवसर भी व्यर्थ ही गया।

सेक्सी छवि से अलग भूमिका करने का अवसर उन्हें 'अमीर आदमी, गरीब आदमी' में मिला। जीनत अमान, परवीन बॉबी, शत्रुघ्न सिन्हा और कादर खान जैसे सितारों वाली इस फिल्म में वे अपनी नई छवि बनाने की जी तोड़ कोशिश में रत रहीं। एक भिखारिन की भूमिका करते-करते जब वे एक राह चलते कार वाले के पास पहुँची तब उसने उन्हें सचमुच की वक्त की मारी औरत समझ कर एक रुपए की भीख दे दी।

हिन्दी फिल्मों के अलावा कल्पना ने तमिल फिल्म में रजनीकांत के साथ काम किया है। मलयालम भाषा की एक फिल्म में भी वे भूमिका कर चुकी हैं। इसके अतिरिक्त भोजपुरी भाषा की एक फिल्म में भी वे नायिका के रूप में चुनी गई। हिन्दी फिल्म 'देखा प्यार तुम्हारा' में भी अपनी भूमिका को वे महत्वपूर्ण मानती हैं।

कल्पना को पूरा विश्वास है कि वे दर्शकों के हृदय से अपनी सेक्सी डान्सर वाली छवि को दूर करने में कामयाब हो जाएँगी। इस मंजिल तक पहुँचने के लिए वे जरूरत पड़ने पर खुद ही फिल्म निर्माण के क्षेत्र में कूद पड़ने की हिम्मत भी रखती है। कैबरे जैसे कपड़ा उतार नृत्यों को पेश करते समय उनकी शर्त रहती है कि कोई अन्य नृत्यांगना साथ न हो। इस शर्त को अब तक सिर्फ दो फिल्मों में ही नजरअंदाज किया गया। लूटमार में उनके साथ सिम्पल थी तथा अरमान में प्रेमानारायण के साथ वे नृत्य कर चुकी है।

कल्पना को प्रति वर्ष लगभग २० फिल्मों में नृत्य या छोटी मोटी भूमिकाएँ मिल जाती हैं। किंतु वे इस उपलब्धि से खुश नहीं हैं। उनका कहना है कि जब उनसे कई गुना कम प्रतिभाशाली लड़कियाँ नायिका के रूप में सफल हो चुकी है तो एक दिन उनका भी आएगा।

और असफलता इस खेल का हिस्सा है। किसी भी हाल में मैं अपनी भावनाओं में नहीं बह जाती। जहाँ तक पैसे का सवाल है मैं अपनी कीमत बराबर वसूल करना चाहती हूँ। मैं फिल्मों में पैसा कमाने आई हूँ। दान-धर्म करने नहीं।

भविष्य की योजनाएँ क्या हैं?

मैं बहुत भरवाँ भूमिकाओं के पीछे नहीं भागती। मैं उनका इंतजार करते हुए बैठी नहीं रहती। मुझे फिल्मों में और चार वर्ष काम करना है। उसके बाद मैं यह लाइन छोड़ दूँगी, भले ही शादी करूँ या न करूँ। मैं सोचती हूँ किसी लड़की को एक उम्र के बाद काम नहीं करना चाहिए। फिल्में मेरे लिए सिर्फ समय बिताने का साधन है और मैं एक दिन में सिर्फ एक शिफ्ट करती हूँ। मेरे विचार से मैं एक हद तक भाग्यशाली हूँ। मैं अपने माता-पिता पर भी निर्भर हूँ। मेरे आचार-विचार पर उन्हीं का सबसे ज्यादा असर है। उनके साथ केवल एक बार मेरे मतभेद तब हुए थे जब मैं फिल्मों में आना चाहती थी। वे नहीं चाहते थे। मगर अब और किसी वैचारिक टकराव की संभावना नहीं है। फिल्मी दुनिया खराब जगह तो नहीं है लेकिन लड़कियों के हिसाब से बहुत अच्छी भी नहीं। यहाँ उनके शोषण की भी संभावनाएँ रहती हैं। अभिनेत्रियों का नाम किसी के साथ जोड़ा जाता है और इसका असर उसके जीवन पर पड़ता है। क्या कोई भी नायिका अपनी पहली और बाद की फिल्मों में एक जैसी लगी है? जब भी मुझे दूसरों की खातिर ऐसे बहुत से काम करना पड़ते हैं जिनके बदले में मुझे कुछ नहीं मिलता तो मुझे लगता है कि मैं अपना समय उन चीजों पर बर्बाद कर रही हूँ जो मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं है। इन्हीं समस्याओं को मुझे सबसे पहले सुलझाना है।

फिल्मों में आने का तुम्हें कोई अफसोस तो नहीं है?

इस सवाल के जवाब में पहले मैं आपको बतलाना चाहूँगी कि कोई भी जन्म से अभिनेत्री नहीं होती। हमें यह गुण विकसित करना पड़ता है। मेरा ख्याल है जो काम मुझे करने के लिए कहा जाता है उसे जल्दी से सीख लेने का मुझमें जन्मजात गुण है और मैं बहुत सीमित समय के लिए काम करती हूँ। मैं वह कर देती हूँ जो मुझसे कहा जाता है। दौलत और शोहरत के नाम पर फिल्मों से बहुत कुछ मिलता है, लेकिन मेहनत भी बहुत करना पड़ती है। मुझे खुशी है कि मैं ऐसे परिवार से हूँ जिसने मुझे अपना संतुलन बनाए रखने में काफी मदद की। छह साल से मैं यहाँ हूँ और इस बीच मैंने बहुत कुछ सीखा है। मैं यह समझ गई हूँ कि यहाँ हमें कूटनीति से काम लेना पड़ता है। यदि आप स्पष्टवादी हो जाते हैं तो लोग आपके बारे में गलत राय बना लेते हैं। यहाँ मैंने अपनी तुनक मिजाजी को काबू में रखना भी सीखा है। मगर एक बार गुस्सा आने पर मैं आपे से बाहर हो जाती हूँ। कभी-कभी फिल्मों में आने का अफसोस भी होता है। कई बार इच्छा होती है बिलकुल अकेली रहूँ। मगर इस धंधे में यह संभव नहीं है। फिर भी प्रसिद्धि मुझे अच्छी लगती है। ■



पल्लवी जोशी

अब पुष्पित और फलित

नवेंदु घोष की चर्चित **तृषाग्नि** की चर्चित नायिका **पल्लवी जोशी** इस फिल्म के स्नान दृश्य के कारण काफी बोल्ड मानी जाने लगी थी। राष्ट्रीय स्तर पर पल्लवी को ख्याति भी मिली और आलोचना भी मिली। लोगों को विश्वास नहीं हुआ कि दूरदर्शन धारावाहिकों में छोटी-मोटी भूमिकाएँ करने वाली पल्लवी ऐसे दृश्य कैसे दे सकती है। किंतु पल्लवी के अनुसार यह दृश्य इतना आपत्तिजनक नहीं था कि उस पर इतनी बहस की जाए। यह फिल्म ही अलग प्रकार की थी और वह दृश्य उस फिल्म की आवश्यकतानुसार था। धारावाहिक कब तक पुकारूँ में पल्लवी के उत्कृष्ट अभिनय की छाप मिलती है। कजरी की भूमिका को उन्होंने जैसे आत्मसात कर लिया था। फिल्म **अंधायुद्ध** में अपाहिज लड़की की उनकी भूमिका को भी काफी सराहा गया था। खुले बाल, नीली जींस एवं टी-शर्ट में पल्लवी जोशी एक आम कॉलेज गर्ल जैसी लगती है। किंतु उनकी मुस्कराहट उन्हें औरों से अलग करती है। इस कॉलेज गर्ल की यह सफलता ही है कि अब उसकी एक अलग पहचान बन चुकी है। खुशमिजाज पल्लवी अपने अभिनय के प्रति ईमानदार एवं समर्पित है।

◆◆◆

पल्लवी जोशी की मुस्कराहट उन्हें सबसे अलग करती है। खुले बाल, नीली जींस और टी-शर्ट पल्लवी की पसंदीदा पोशाक है, जिसमें कॉलेज-कन्या का भ्रम होता है। खुशमिजाज पल्लवी पूरी ईमानदारी से चरित्र को परदे पर प्रस्तुत करने के लिए संकल्पित रहती है।

पल्लवी का फिल्मी दुनिया में प्रवेश सरलता से हुआ। उसके भाई मास्टर अलंकार ने बाल कलाकार के रूप में कई फिल्मों में अभिनय किया। उसकी दादी मराठी नाटकों की अभिनेत्री रह चुकी हैं तथा उसके पिता मराठी रंगमंच के जाने माने पटकथा लेखक हैं। पल्लवी की माँ मराठी नाटकों की सुप्रसिद्ध संगीत निर्देशिका है, एवं जीजाजी विजय कदम हास्य कलाकार के रूप में और बहन मराठी रंगमंच में काफी सक्रिय है।

पल्लवी ने फिल्मों में एक बाल कलाकार के रूप में कार्य करना आरंभ किया था। लेकिन तब वह ज्यादा लोकप्रिय नहीं थीं। उन्होंने लगभग पंद्रह फिल्मों में बाल कलाकार का अभिनय किया। जिनमें दो मराठी और तीन गुजराती फिल्में शामिल हैं। जब उनके पास बाल कलाकार के काफी प्रस्ताव आ रहे थे तब ही उन्होंने प्रस्तावों पर रोक लगा दी थी। पल्लवी ने थिएटर में ग्यारह वर्ष की उम्र से लेकर सोलह वर्ष की उम्र

शताब्दी राय

यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं

● असीम चक्रवर्ती

__श__ताब्दी राय को यदि बंगला फिल्मोद्योग की __श्रीदेवी__ कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन दिनों सर्वाधिक फिल्में उसकी झोली में है। साधारण से नयन-नक्श की इस अभिनेत्री ने अपनी मासूम अदाओं से दर्शकों के बीच अपना एक विशिष्ट स्थान बना रखा है। तपन सिन्हा की __आतंक__ में शताब्दी पहली बार दिखाई पड़ी थी। तभी से अपने इनोसेंट फेस की वजह से उसे दर्शकों का विशेष प्यार मिला। अब शताब्दी ने हिंदी फिल्मों की तरफ भी अपना कदम बढ़ा दिया है। उसकी पहली प्रदर्शित हिंदी फिल्म होगी __जहर__। पेश है, उसके साथ हुई बातचीत के अंश :—

■ ***आपका संपर्क अभी अपनी स्कूल-कॉलेज की सहेलियों के साथ है या नहीं?***

□ *रखना तो चाहती हूँ लेकिन समय ही नहीं मिलता। फिर ग्लैमर की दुनिया ऐसी है जहाँ आते ही अपने आप सबके साथ संपर्क टूट जाता है।*

■ ***इस नई दुनिया में भी आपको दोस्त मिले होंगे?***

□ *नहीं। इस फिल्मी दुनिया में कोई किसी का दोस्त नहीं होता। सच्चे दोस्त के अलावा यहाँ सब कुछ मिलता है।*

■ ***क्या सभी ऐसे हैं?***

□ *जी हाँ। पुरुष प्रधान इस इंडस्ट्री में सभी नायकों की पसंद की अभिनेत्रियाँ हैं। मुझे मालूम है सब कुछ तय होने के बाद भी कई बार मुझे हटाकर किसी दूसरी नायिका को चुन लिया गया और यह नायक के इशारे पर ही किया गया था।*

■ ***अब तो आप बंबई की हिंदी फिल्मों में भी काम कर रही हैं? क्या आप वहाँ की नायिकाएँ सोनम, सोनू, किमी जैसे गेटअप में आने का साहस कर पाएँगी?***

□ *हरगिज नहीं। अब जैसे कि जहर फिल्म को ही ले लीजिए। उसमें एक्सरसाइज कास्ट्यूम पहनकर एक छोटा सा दृश्य देना था। राजी नहीं हुई। मैं ड्रेस के मामले में कोई समझौता करने को तैयार नहीं होती हूँ।*

■ ***तब क्या बोल्ड दृश्यों में आप उनका मुकाबला कर पाएँगी?***

□ *अब बंगला फिल्मों में भी ऐसे दृश्य देने पड़ रहे हैं। फिल्म आघात में ऐसा ही एक दृश्य मैंने किया था। लेकिन इसके प्रशंसकों के सैकड़ों पत्रों से मुझे मालूम हुआ कि वे मुझे ऐसे दृश्य में देखना पसंद नहीं करते हैं।*

■ ***बंगला फिल्मों की स्थिति इस समय कैसी है?***

□ *बहुत ही दयनीय। एक के बाद एक फिल्में फ्लॉप होती जा रही हैं।*

■ ***आप अपने अभिनय में किस अभिनेत्री की छाप महसूस करती हैं?***

□ *किसी की भी नहीं। लेकिन हाँ, अभिनेत्रियों में सुचित्रा सेन, सुप्रिया देवी और कावेरी बसु के अभिनय की मैं भक्त हूँ।*

■ ***इन दिनों उत्तम-सुचित्रा जैसी रोमांटिक जोड़ी क्यों नहीं बन पा रही है?***

□ *दरअसल, इन दिनों फिल्मों में न तो वैसी कहानी है और न ही वैसा संगीत। उत्तम और सुचित्रा की पूँजी थी, एक दूसरे का सुंदर तालमेल, जो इस समय किसी भी फिल्मी जोड़ी में नहीं है।*

तक काम किया। थिएटर में पल्लवी को काफी अच्छी भूमिकाएँ करने का मौका मिला। उन्हें सबसे ज्यादा मजा मोहन राकेश के **आधे अधूरे** नाटक करने में आया उसमें युवा पुत्री की भूमिका उन्होंने की थीं। थिएटर में काम करना मशीन जैसा होता है। सब कुछ बँधा बंधाया और पल्लवी अपनी इच्छानुसार चलने वाली लड़की है इसलिए उन्होंने थिएटर छोड़ दिया।

पल्लवी को टी.वी. धारावाहिकों में फिल्मों की अपेक्षा भूमिकाएँ सरलता से मिल गई। 'एक कहानी' धारावाहिक की निर्मात्री मंजूसिंह को एक युवा लड़की की तलाश थी। फिल्म 'दादा' वाली भूमिका देखकर मंजूसिंह ने उसे बुलाया और उसके कुछ एपीसोड्स में पल्लवी ने काम किया। दयालु निहलानी एक कहानी के कुछ एपीसोड्स के निर्देशक थे। श्याम बेनेगल ने इस धारावाहिक में पल्लवी का अभिनय देखकर अपनी फिल्म 'सुस्मन' के लिए उसे चुन लिया। इसी के बाद बेनेगल ने **'भारत एक खोज'** धारावाहिक में भी उन्हें लिया। सुस्मन में उसने ओमपुरी और शबाना आजमी की पुत्री का अभिनय किया है। वे यह बात जानती हैं कि सुस्मन ज्यादा लोगों ने नहीं देखी किंतु 'कथा सागर' धारावाहिक ने उन्हें पहचान देना शुरू कर दिया। इसके बाद से उनका अभिनय कैरियर निर्बाध गति से आगे बढ़ने लगा।

'भारत एक खोज' में शकुंतला की भूमिका के लिए पल्लवी काफी शंकित थीं। वे जानती थीं कि शकुंतला बहुत उलझी कठिन भूमिका थी। किंतु दर्शकों ने उनकी यह भूमिका पसंद की। पल्लवी को शकुंतला के नाम से जाना जाने लगा। कुछ लोग तो यहाँ तक कहने लगे कि कालिदास द्वारा शकुंतला लिखते समय शायद पल्लवी की छवि



उनके दिमाग में रही होगी। यह उसके लिए बड़े गर्व की बात है।

पल्लवी ने एक मलयालम फिल्म **'थीरथम्म'** में अभिनय किया है। उसमें एक नंबूदरि ब्राह्मण लड़की की भूमिका थी। फिल्मकार अरविंदन की बहुत बड़ी फैन है पल्लवी। जब उन्हें यह पता लगा कि उन्होंने ही के. मोहन को उसका नाम प्रस्तावित किया था तो मारे प्रसन्नता के वे आश्चर्यचकित रह गई। पल्लवी गुजराती, मराठी, फ्रेंच और थोड़ा-थोड़ा बंगला भाषा भी बोल लेती है। वे विभिन्न भाषाओं वाली फिल्मों में काम करने की इच्छुक है।

अभिनय के अतिरिक्त पल्लवी गाती है और पटकथा लिखती है। उनकी लिखी एक स्क्रिप्ट उनके पिता को अत्यंत पसंद आई। वे इस पर एक फिल्म बनाना चाहते हैं।

कमल हासन उसके प्रिय कलाकार हैं। कमल हासन की फिल्में पल्लवी को बहुत अच्छी लगती हैं क्योंकि वे सभी प्रकार की भूमिकाएँ कर सकते हैं। उसकी यह दिली ख्वाहिश है कि कमल हासन के साथ काम करने का एक अवसर मिल जाए।

अब तक पल्लवी कई फिल्मों में अभिनय कर चुकी हैं और कर रही हैं। इनमें सुल्तान अहमद की 'दाता', उमेश मेहरा की 'मुजरिम', अनजान बोस की 'इन्सानियत', दयाल निहलानी की 'गुरु दक्षिणा' और रवि टंडन की 'जंजीरें' शामिल हैं। ■

■ ***किन-किन फिल्मों में काम करके आपको अच्छा लगा?***

□ *पिछले साल बिदाय, मने-मने, अग्नितृष्णा, मर्यादा और अंगार में काम करके अच्छा लगा था। इस साल आपन आमार आपन, अभिमन्यु और आविष्कार इन तीन फिल्मों को लेकर मेरे मन में अनेक आशाएँ हैं।*

■ ***आपके पास अच्छे काम करने का क्या अनुभव है?***

□ *सबसे पहले जब मैं तपन सिन्हा की आतंक फिल्म के लिए चुनी गई, तब मैं कक्षा दसवीं की छात्रा थी। उन्होंने मुझे साड़ी पहनाकर हेयर स्टाइल बदलवाकर और सूक्ष्म मेक-अप के द्वारा एम.ए. की छात्रा में परिवर्तित कर दिया था। एक तरह से उस चरित्र को मेरे मन में इस तरह बसा दिया था कि मुझे एक बार भी ऐसा नहीं लगा कि मैं छात्रा नहीं हूँ। इसके बहुत से संवाद मुझे आज भी याद हैं। तरुण मजूमदार के पास काम सीखना भी एक बहुत बड़ा अनुभव है। चिरंजीत राय और विप्लव दा के निर्देशन में भी काम करके मुझे बहुत अच्छा लगा, ये लोग बिना किसी परेशानी के अच्छा काम करवा लेते हैं। ऐसे ही प्रभात राय, सलिल दत्त, वीरेश चटर्जी हैं। इन लोगों के पास भी मैंने बहुत काम सीखा।*

■ ***यह बात तेजी से सुनाई पड़ रही है कि इन दिनों टालीगंज में नायिका का बहुत संकट है?***

□ *यह बात ठीक है कि टालीगंज में नायक और नायिका दोनों का ही बहुत संकट है किंतु दूसरी ओर देखें तो यह संकट नजर भी नहीं आता है। क्योंकि नायक-नायिका बनने लायक कई लड़के-लड़कियाँ हैं जो मौका न मिलने के कारण प्रतिभा को दिखा नहीं पा रहे हैं।*

■ ***आपको बंबइया फिल्मों में कैसे मौका मिला?***

□ *एकदम अचानक। मेरी फिल्म का एक कैसेट देखकर निर्देशक ज्योति स्वरूप ने मुझसे फोन पर बातचीत की। मैंने बंबई जाकर उनसे पूरी स्क्रिप्ट सुनी। जहर एक त्रिकोण प्रेम की कहानी है। मुझे कहानी पसंद आई और निर्देशक को मैं पसंद आ गई। बस सब कुछ तय हो गया।*

■ ***अब तो बंबई में भी शूटिंग कर रही हैं? वहाँ का माहौल कैसा लग रहा है?***

□ *बहुत अच्छा। बंबइया फिल्मोद्योग पक्का प्रोफेशनल है। यहाँ जैसा घरेलू नहीं है। वैसे भी मैं अपने सहयोगियों के अलावा बहुत कम लोगों को पहचानती हूँ। दो नायक हैं- उत्तम महंति और अर्जुन। उत्तम तो उड़ीसा के उत्तम कुमार हैं और अर्जुन भी अच्छा काम करते हैं। इसके अलावा महाभारत के अर्जुन के रूप में विख्यात हैं। उन लोगों के साथ काम करते हुए बहुत अच्छा लग रहा है।*

■ ***दूसरी किसी फिल्म का ऑफर मिला?***

□ *अभी तक नहीं।*

■ ***क्या आप छोटे परदे में काम करने के लिए ज्यादा इच्छुक हैं?***

□ *बहुत ज्यादा नहीं। ऑफर आते हैं लेकिन मैं वापस कर देती हूँ।*

■ ***आपको इंडस्ट्री में आए बहुत दिन हो गए। यहाँ आपको ऐसा क्या मिला जिसे पाकर आप खुश हैं?***

□ *फैन, प्रशंसकों के प्यार से ही मैं खुश हूँ।*

■ ***आपके प्रेम संबंधों को लेकर कई बार बहुत बातें सुनने को मिलती हैं।***

□ *सब बकवास है। अभी तक किसी से मेरा कोई प्रेम संपर्क नहीं बना है। यदि मैं किसी के प्रेम में पड़ी तो छिपाऊँगी नहीं।*

■ ***आप कब तक शादी कर रही हैं?***

□ *फिलहाल दो-तीन साल तक नहीं। लेकिन जब भी शादी करूँगी, मेरा पति इंडस्ट्री के बाहर का ही कोई व्यक्ति होगा।*

■ ***फिल्म इंडस्ट्री के किसी व्यक्ति से क्यों नहीं?***

□ *मुझे डॉक्टर और फिल्म इंडस्ट्री के लोग दोनों ही नापसंद हैं।*

प्रदीप्ता

बंगाल से एक और उपहार

● सुषमा त्रिपाठी



*इन दिनों फिल्मों में एक अजीब-सा माहौल बना हुआ है। कई फिल्म निर्माता और कलाकारों के लड़के-लड़कियाँ फिल्मों में अपना स्थान बनाने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ अपने उद्देश्य में सफल हैं, तो कुछ अभी भी संघर्षरत हैं। व्ही. शांताराम, शशिकपूर, जगदीशराज के बाद अब विश्वजीत की बेटी **प्रदीप्ता** भी फिल्मों में अपना अलग मुकाम बनाने जा रही है। बतौर नायिका आज उसके पास 'पापी', 'कलंक', 'अमर प्रेम' और चार-पाँच बंगाली और एक हिंदी फिल्म 'तेरी तलाश में' है।*

*पिछले दिनों पवन कुमार की फिल्म '**तेरी तलाश में**' के सेट पर प्रदीप्ता से मुलाकात हुई।*

आपके पिता विश्वजीत और भाई प्रसन्नजीत पहले से ही फिल्मों में हैं, इसलिए आपने भी फिल्मों में कैरियर बनाने की बात सोची या कोई अन्य वजह...?

माना कि मेरा जन्म फिल्मी माहौल में हुआ। लेकिन, यह कहना कि मेरे पिताजी या मेरे भैया फिल्मों में हैं, इसलिए मैं भी फिल्मों में आई हूँ, गलत है। सच तो यह है कि पिताजी से हमारे संबंध काफी समय पहले से ही खराब हैं। मैं तो अपनी माँ और भैया के साथ कलकत्ता में रह रही हूँ। फिल्मों में काम करने के संबंध में तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था। मैं तो अपनी कॉलेज की पढ़ाई करने में ही व्यस्त थी। अचानक एक दिन शांतिरंजन घोष परेशानी की अवस्था में मेरी मम्मी से मिलने आए। उनकी बंगाली फिल्म 'कलंक' का सेट लगा हुआ था और नई हीरोइन ने किन्हीं कारणों से फिल्म में काम करने से इंकार कर दिया था। उन्हें तुरंत नई लड़की की तलाश थी। घोषजी की परेशानी को समझ कर मेरी मम्मी ने उनसे हाँ कर दी। इस तरह मैं फिल्मों में आ गई। इसके बाद मुझे प्रभात रॉय की फिल्म **'पापी'** व अन्य कई फिल्में मिलीं।

हिंदी फिल्म 'तेरी तलाश में' के लिए आपका चयन कैसे हुआ?

'तेरी तलाश में' मेरी पहली हिंदी फिल्म है जो तैयार है। लगभग छह-सात माह पहले की बात है। इस फिल्म के निर्माता पवन कुमार को अपनी फिल्म के लिए नए कलाकारों की तलाश थी। इस संबंध में उन्होंने कई लोगों से बात की। तब उनको बंगाल के एक मित्र ने मेरा नाम सुझाया और जब वे कलकत्ता आए तो घर पर मुझसे व मेरी मम्मी से मिले। हम लोगों की बातचीत हुई और फिर मैं 'तेरी तलाश में' की नायिका बन गई।

इस फिल्म में आपकी भूमिका?

मैं फिल्म की नायिका हूँ, इसका अर्थ तो यही हुआ कि लोगों को मेरी तलाश है। इससे ज्यादा कुछ बताना ठीक नहीं होगा, क्योंकि यह एक संगीत व सस्पेंस फिल्म है। वैसे मेरी भूमिका बहुत अच्छी है। मुझे भी काम करने में बड़ा मजा आया। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह फिल्म तीन महीने के अंदर ही पूरी हो गई।

आजकल देखा जा रहा है कि जितनी भी नई हीरोइनें आ रही हैं वे सभी कपड़े उतारने में ही लगी हुई हैं। अंग प्रदर्शन के बारे में आपका क्या ख्याल है?

मैं 'एक्सपोजर' के खिलाफ नहीं हूँ, लेकिन एक सीमा तक ही। 'लिमिट' से बाहर जाकर मैं भी 'एक्सपोज' नहीं करूँगी। लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं कि मैं 'ग्लैमरस' भूमिका नहीं करना चाहती। मैं ग्लैमरस भूमिका भी करना चाहती हूँ, और कर भी रही हूँ। जहाँ तक दूसरी अभिनेत्रियों का सवाल है तो यह उनका अपना सोचने का तरीका है। मैं उस 'एक्सपोजर' के खिलाफ हूँ जो 'चीप पब्लिसिटी' पाने के लिए की जाती है। कहानी की माँग हो तो एक सीमा तक 'एक्सपोज' करने में कोई एतराज नहीं है।

किन निर्देशकों के साथ काम करना चाहती हैं?

यह तो फिल्म के 'सब्जेक्ट' और इस बात पर निर्भर करता है कि मुझे किन फिल्मों के ऑफर मिलते हैं। वैसे मैं तो सभी निर्देशकों के साथ काम करना चाहती हूँ।

किस तरह की फिल्मों में काम करना चाहती हो?

मैं तो हर तरह की फिल्मों में काम करना चाहती हूँ। मैं तो फिल्मों में अंगप्रदर्शन की बजाए अपनी अभिनय क्षमता के बल पर मीना कुमारी, नूतन, वहीदा रहमान की तरह लोगों के दिलों में एक उच्चकोटि की अदाकारा के रूप में स्थान बनाना चाहती हूँ।

आपके भैया प्रसन्नजीत बंगाली फिल्मों में काफी व्यस्त हैं। क्या उनके साथ भी कोई फिल्म कर रही हो?

जी हाँ। अपने भैया के साथ फिल्म 'अमर प्रेम' में काम कर रही हूँ। लेकिन, उस फिल्म में मेरे अपोजिट हीरो दूसरा है। इसमें भैया के 'अपोजिट' हीरोइन जूही चावला है। अर्थात् इस फिल्म में दो हीरो, दो हीरोइन हैं। हम दोनों निजी जिंदगी में भाई-बहन हैं, इसलिए किसी भी फिल्म में रोमांटिक लीड में काम करना संभव नहीं है। भविष्य में भी हम दोनों एक साथ काम कर सकते हैं, लेकिन मेरा हीरो कोई दूसरा होगा। ■

*मात्र अट्ठारह वर्ष की आयु है **सुपर्णा आनंद** की। उन्होंने अपने कैरियर की शुरूआत दक्षिण भारतीय फिल्मों से की और सफल तेलुगु फिल्म **'वैशाली'** में काम कर उन्होंने काफी नाम कमाया। हिंदी फिल्मों में उन्होंने बाल-कलाकार की तरह शुरूआत की मगर अब वे नायिका की तरह उभर रही हैं। इस साक्षात्कार में वे अपने बारे में सब-कुछ बता रही हैं।*

सुपर्णा आनंद

खुली आँखों के सपने

काम के प्रति तुम्हारा क्या रवैया है?

"मेरे ख्याल से प्रतियोगिता तो काफी है लेकिन प्रतिद्वंद्विता जैसी कोई बात नहीं है। मुझे किसी से कोई जलन नहीं होती। मैं भाग्य पर तो भरोसा करती हूँ मगर मैं अपने काम पर भी काफी ध्यान देती हूँ। फिल्मों में अपना कैरियर योजनाबद्ध तरीके से नियोजित करने की गुंजाइश नहीं होती। उतार-चढ़ाव यहाँ काफी आते हैं। मसलन, यदि मेरी कोई फिल्म पिट जाती है तो वैसी ही दूसरी फिल्म स्वीकार करने के पूर्व मैं दो बार सोचूँगी। इसी तरह आप अपनी कोई निश्चित छवि बनाने के बारे में भी नहीं सोच सकते। मुझे काम करने की लगन है। मैं १५ वर्ष की उम्र से काम कर रही हूँ। सब कुछ 'पब्लिक' और ईश्वर पर निर्भर करता है कि मेरी फिल्में सफल हों। पढ़ाई में मैं शुरू से अच्छी थी। हिंदी और गणित में मुझे उच्चतम अंक मिलते थे। स्कूल में मैं नाटकों में भी काफी काम करती थी। दिल्ली छोड़ने के बाद से ही मैं लगातार व्यस्त रही हूँ।"

आपके पिता दिल्ली के एक बड़े नामी 'बिल्डर' हैं फिर आप फिल्मों में कैसे आ गईं? क्या उनका ग्लेमर आपको खींच लाया?

मेरे पिता भवन-निर्माता हैं तथा मेरे बड़े भाई के साथ कंस्ट्रक्शन्स कंपनी चलाते हैं। शुरू में मेरे माता-पिता ने मेरे फिल्मों में जाने पर काफी आपत्ति उठाई मगर बाद में मेरे बहुत जोर देने पर वे धीरे-धीरे मान गए। मैं फिल्मों में शुद्ध तकदीर के बल पर आई। नीतूसिंह की माँ और मेरी माँ की अच्छी मित्रता है। हम लोग बंबई में 'चोरनी' की शूटिंग देखने गए थे। उन लोगों को एक बाल-कलाकार की जरूरत थी और उन्होंने आग्रह किया कि मैं उस फिल्म में काम करूँ। अब देखिए, मैं काफी साहसी किस्म की व्यक्ति हूँ। यदि कोई मुझे चुनौती देता है कि क्या तुम यह कर सकती हो, तो मैं तत्काल कहूँगी, 'अरे क्यों नहीं'? बाद में हमारी मुलाकात निर्माता एस.के. कपूर से हुई। उन्होंने हमारा हौसला बढ़ाया और अपनी फिल्म में काम भी दिया। बाद में एक शादी के सिलसिले में फिर बंबई जाना हुआ। एक बंगले में शूटिंग देखने भी हम लोग गए। वहाँ भी लोगों ने कहा कि तुम फिल्मों में काम क्यों नहीं करतीं? बस, हम लोगों ने एक फोटो-सेशन किया, एक वीडियो फिल्म भी बनवा ली ताकि बार-बार स्क्रीन-टेस्ट देने की मेहनत से बचा जा सके। नहीं मैं फिल्मों में पैसे के लिए नहीं आई। मैं तो ग्लैमर और शोहरत के लिए यहाँ आई हूँ।

क्या तुम अंग प्रदर्शन के लिए तैयार हो जाओगी?

मैं अभी से कुछ नहीं कह सकती। हर चीज दृश्य की जरूरत और निर्देशक द्वारा मुझे यह



◆ ◆ ◆

- **धर्मेन्द्र और रेखा मेरे प्रिय कलाकार हैं।**
- **श्रीदेवी से भी मैं आगे जाना चाहती हूँ।**
- **दक्षिण में काम के प्रति समर्पण है और बंबई में मक्कारी।**

हुमा खान

टेढ़े आँगन में नाचने की लाचारी



पाँच साल पहले फरहा नाज जब पाकिस्तान से भारत आई थीं तब बकौल उनके हिन्दुस्तान में हवा थी कि पाकिस्तान से एक खूबसूरत लड़की फिल्मी दुनिया में आई है। फरहा नाज से हुमा खान बनकर कामोत्तेजक नृत्यांगना तथा खलनायिका के रूप में प्रतिष्ठित हो रही इस अभिनेत्री की खासियत है दिल की बात को बेहिचक जाहिर कर देना। खलनायिका और नृत्यांगनाओं के कपड़ों की कमी तथा जिस्म की बढ़ती नुमाइश की वकालत करते हुए वे तर्क देती हैं- 'आजकल की हीरोइनें उन पुरानी हीरोइनों से बिल्कुल अलग हैं, जो अपने यौवन को ढाँक कर रखती थीं। आज तो नायिका भी 'सेक्सी' नजर आने के लिए कपड़े उतारती जा रही है। ऐसी हालत में अगर हम डान्सरों को जिन्दा रहना है तो उनसे भी ज्यादा जिस्म को उघाड़ना पड़ेगा।

हेलन और बिंदु को आदर्श खलनायिका और नृत्यांगनाएँ मानने वाली हुमा का कहना है कि फिलहाल उभरती नृत्यांगनाओं में वे अव्वल हैं। अपनी जल्दबाजी पर उन्हें सिर्फ एक बार पछतावा हुआ था जब फिल्म **'बेताब'** में धरमजी ने उन्हें सनी के साथ नायिका के रूप में चुन लिया था। मगर चूँकि वे बिल्कुल नई लड़की चाहते थे। मगर हुमा कुछ फिल्मों में छोटी-मोटी भूमिका कर चुकी थी। इसलिए उसकी जगह बाद में अमृता को ले लिया गया।

हुमा ने दिलीप जैन नामक एक पड़ोसी से विवाह भी किया मगर यह रिश्ता टिकाऊ नहीं रहा। उसे मर्दों की दोस्ती से कोई एतराज नहीं है। वे स्वीकार करती हैं कि कई मर्दों से प्यार के रिश्ते रख चुकी है तथा मर्जी होने पर और भी लोगों से दोस्ती कर लेगी। रेखा को वे सहृदय नायिका मानती है मगर श्रीदेवी को बेहद घमण्डी तथा अकड़ू घोषित करती है। वे दुबई में कई नृत्य कार्यक्रम पेश कर चुकी है।

मंदाकिनी और मंदाकिनी

● फिरोज रंगूनवाला

भारतीय सिनेमा में आधुनिक और पुरातन की प्रतीक, **मंदाकिनी** नाम की दो नायिकाएँ हुई हैं। वर्तमान पीढ़ी जिस **मंदाकिनी** से सुपरिचित है वह राजकपूर की फिल्म **राम तेरी गंगा मैली** की हिमालय से झरते कोहरे में डूबे, जलप्रपात में **'मिनी साड़ी'** पहने नहाती नायिका है। इस मंदाकिनी के माध्यम से ७५ वर्ष पुराने भारतीय सिनेमा ने 'टॉप लेस्' होकर नए सिरे से जवान होने की कोशिश की थी। राजकपूर ने मंदाकिनी के जरिए शायद भारतीय सिनेमा को सेंसर के बंधनों से मुक्त करने का प्रयास भी किया। अन्य नायिकाएँ मंदाकिनी की सीमाओं तक न भी पहुँची हों, फिर भी उसके बाद नायिका के नहाने का दृश्य हिंदी फिल्मों में अनिवार्य-सा हो गया।

अपने शैशवकाल में, १९१२-१३ के समय भारतीय सिनेमा और उसकी नायिकाएँ बिल्कुल भिन्न होती थीं। वे अपने काम के प्रति पूरी तरह समर्पित तो थी हीं, वे 'स्वदेशी' सिनेमा की खातिर बड़े से बड़ा त्याग करने को भी तत्पर रहती थीं। मजे की बात यह है कि भारतीय सिनेमा में स्टार का दर्जा पाने वाली पहली अभिनेत्री का नाम भी **मंदाकिनी** ही था। यह उसका असली नाम था और वह भारतीय सिनेमा के जनक दादा साहेब फालके की बेटी थीं।

इस नन्हीं मंदाकिनी को दर्शकों को आकर्षित करने के लिए भड़कीली वेषभूषाओं या इसके विपरीत अंग-प्रदर्शन की जरूरत नहीं पड़ती थी। अपनी प्रतिभा और स्वाभाविक आकर्षण के द्वारा ही वे दर्शकों को मोह लेती थीं। उन्होंने भारतीय सिनेमा के शैशवकाल की कुछ



सफलतम फिल्मों में अभिनय किया था। दादा साहब फालके ने मंदाकिनी को सन् १९१८-१९ में **'कालिया-मर्दन'** तथा **'कृष्ण जन्म'** जैसी मूक फिल्मों में बालकृष्ण के रूप में प्रस्तुत किया था। उनके पहले फिल्मों में स्त्रियाँ काम करने से ही कतराती थीं और अधिकांश स्त्री-पात्रों की भूमिकाएँ भी पुरुषों को ही करनी पड़ती थीं। लेकिन, मंदाकिनी सही अर्थ में पहली सितारा अभिनेत्री थीं। बाद के वर्षों में, फालके शताब्दी के समय जो लोग उनसे मिले उन्होंने उन्हें बहुत ही विनम्र पाया। अपने ऐतिहासिक स्थान का उन्हें कोई अहसास नहीं था। वे बहुत कम बोलती थीं तथा उस युग की याद दिलाती थीं जब स्टार अभिनेत्रियाँ भी न तो कोई नखरे दिखलाती थीं न पैसे के लिए अपने निर्माताओं को ब्लैक-मेल करती थीं। आजकल की तरह वे शादी करके या विदेशों में बस अपनी फिल्में अधूरी नहीं छोड़ देती थीं। यदि हम अतीत से कोई सबक नहीं ले सकते तो इतनी सारी रजत, स्वर्ण या प्लेटिनम जुबलियाँ मनाने का क्या फायदा?

राजकपूर की मंदाकिनी का असली नाम यास्मीन है। चतुर व्यवसायी राजकपूर ने सोचा कि चूँकि उन्हें पवित्र गंगा नदी को प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करना है, उनकी नायिका का नाम भी यास्मीन या माधुरी नहीं चलेगा। देवी गंगा का ही मंदाकिनी नाम उनकी नायिका को शोभा देगा यह सोचकर उन्होंने यास्मीन को मंदाकिनी बना दिया। बेशक उन्हें यह भी पता था कि फालके की बेटी ने इसी नाम से परदे पर लोकप्रियता प्राप्त की थी। यास्मीन, मंदाकिनी और मंदाकिनी से गंगा बन गई और इस धार्मिक नामधारी नायिका के अंग-प्रदर्शन का भी भारत की धर्मप्राण जनता पर कोई विपरीत असर नहीं हुआ क्योंकि यहाँ धर्म के नाम पर कुछ भी करते हुए लोग बेदाग बरी हो जाते हैं।



समझा देने पर ही निर्भर करेगा कि खुला-सीन आवश्यक है। मैंने 'प्रकोप' में एक बलात्कार का दृश्य किया है क्योंकि वह कहानी का अविभाज्य हिस्सा है।

एक नवागंतुक के रूप में तुम फिल्मों के बारे में क्या सोचती हो?

मैं एक लगनशील अभिनेत्री हूँ और काफी कड़ी मेहनत कर रही हूँ। सोचने-समझने के लिए ज्यादा वक्त नहीं है। जब मेरी पहली बड़ी फिल्म 'फैसला हम करेंगे' जिसमें मैं मिठुन और पद्मिनी कोल्हापुरे के साथ काम कर रही थी, किसी की मृत्यु के कारण बंद हो गई तो मुझे बड़ी निराशा हुई थी। फिर मैंने रमेश तलवार की 'तेरा नाम, मेरा नाम' की, जो १९८२ में ही पूर्ण हो गई। 'प्रकोप' प्रदर्शन व्यवस्था में है। 'जुल्म को जला दूँगा' में मैं नसीरुद्दीन शाह की गूँगी प्रेमिका बनी हूँ तथा 'तेजाब' में अनिल कपूर की बहन, उसका चंकी पांडे के साथ रूमानी रिश्ता है। इनके अलावा मैंने दक्षिण भारत की 'वैशाली', 'उत्तरम्' (तेलुगु), द्रविड़न (तमिल) तथा 'दादा' (कन्नड़) में भी काम किया है। इस समय मैं पद्मालय की नवीनतम फिल्म में काम कर रही हूँ जिसके निर्देशक टी. राजेंदर हैं।

आप अपने किसी प्रिय कलाकार से भी प्रेरणा लेती हैं?

धर्मेंद्र तथा रेखा मेरे प्रिय कलाकार हैं लेकिन मैं प्रेरणा किसी से नहीं लेती। किसी जमाने में मैं मुमताज की प्रशंसक थी जिन्होंने बहुत छोटी फिल्मों से शुरूआत कर एक नंबर की पोजीशन हासिल की। मेरी महत्वाकांक्षा है कि मैं भी श्रीदेवी की तरह एक नंबर की जगह पर पहुचूँ और उनसे भी ज्यादा लोकप्रिय होऊँ। तब तक मैंने शादी न करने का फैसला किया है। इस समय तो मैं संघर्ष कर रही हूँ। इसके अलावा मैं अपने पिता की इस शर्त के तहत फिल्मों में काम कर रही हूँ कि वे जब कहेंगे तब मैं दिल्ली उनके पास पहुँच जाऊँगी।

तुम अपने किन गुणों को अपने लिए लाभदायक मानती हो?

मेरे ख्याल से मैं भावाभिव्यक्ति अच्छे ढंग से कर सकती हूँ। गोपीकृष्ण और उमा शर्मा से दिल्ली में शास्त्रीय नृत्यों का प्रशिक्षण भी मैंने लिया है। और यह मत भूलिए कि मैं एक परिश्रमी तथा लगनशील लड़की भी हूँ।

तुम कैसी भूमिकाएँ करना पसंद करोगी?

मुझे ठोस भूमिकाएँ पसंद हैं। मलयालम 'वैशाली' में एक नर्तकी की बेटी की मेरी भूमिका ऐसी ही थी। 'मुकद्दर का बादशाह', जिसमें विनोद खन्ना हैं, आसिफ के साथ मेरी 'सेकंड लीड' है। मेरे ख्याल से यह भी अच्छी भूमिका है। लोगों का ध्यान मेरी तरफ अवश्य जाएगा। फोन-कॉल तथा प्रशंसकों के पत्र तो मुझे दक्षिण की 'वैशाली' के बाद से ही मिलने लगे थे। ■

RAAG-309

Apple

C.O.M.P.U.T.E.R E.D.U.C.A.T.I.O.N

ALANKAR CHAMBERS, 2ND FLOOR, A2, RATLAM KOTHI, A.B.ROAD, INDORE 452 001.TEL: 4519

किसानों का सच्चा साथी



कास्ता®

''मेहता चेम्बर्स'' 34, सियागंज, इन्दौर 452 007

RAAG-308

शुभकामनाओं सहित

मेसर्स **सहयोग कंस्ट्रक्शन**

ए–3 कांट्रेक्टर, सिंचाई विभाग,
पेटलावद, जिला झाबुआ

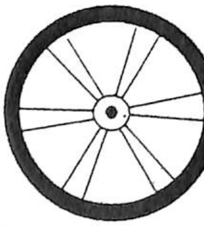
फोन : पेटलावद– 12
–122
डाबरीय – 32

नईदुनिया के फिल्म विशेषांक 'परदे की परियाँ' के प्रकाशन के अवसर पर

ब्यावरा नगर के छबिगृहों की ओर से

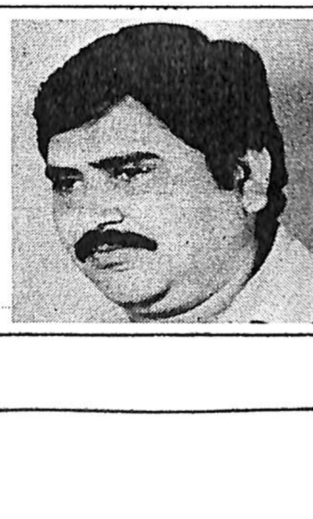
हार्दिक अभिनन्दन !

विवेक सिनेमा * पुनीत टाकीज * प्रभात टाकीज



किसानों, मजदूरों, गरीबों व सामान्यजनों की
सेवा में दिन-रात सेवारत

रामचन्द्र पवैया
महामंत्री
राजगढ़ जिला जनता दल
रविशंकर नगर, **ब्यावरा**
दूरभाष –167



श्रीदेवी

फिल्माकाश की जगमग तारिका

● के.एल. अरोरा

श्रीदेवी अब पहले जैसी बिना बोलती गुड़िया नहीं रही। पिछले वर्षों में उसमें गहरा आत्मविश्वास जगा है तथा अब वह दुनिया के किसी भी मर्द या औरत का सामना हिम्मत के साथ कर सकने की क्षमता रखती है। पत्रकारों के सामने पहले की तरह सहम जाना खत्म हो चुका है तथा उनके हर टेढ़े-मेढ़े यहाँ तक कि निजी जिन्दगी से ताल्लुक रखने वाले सवालों का जवाब वह बेबाकी से देती है। आत्मविश्वास तथा खुलकर बात करने की क्षमता का प्रमाण यह साक्षात्कार है जो विगत एक अप्रैल को जयपुर के सिसौदिया गार्डन में लिया गया। यहाँ श्रीदेवी हरमेश मल्होत्रा द्वारा निर्देशित फिल्म ***'बंजारन'*** *की शूटिंग के लिए आई थी। हरमेश मल्होत्रा उन निर्देशकों में से हैं, जिन्होंने श्रीदेवी को 'सुपरस्टार' बनाने में अहम् भूमिका अदा की है। उनकी फिल्म 'नगीना' तथा 'निगाहें' में श्रीदेवी ने इच्छाधारी नागिन का रोल किया है।*

हल्के नीले रंग के शिफोन की बंजारन वाली वेशभूषा तथा वैसे ही आभूषणों वाले मेकअप में हमारी मुलाकात बाग के एक कोने में श्रीदेवी से हुई। काफी देर तक चलने वाले इस वार्तालाप में इस सुपर स्टार की विनोदप्रियता की झलक बार-बार मिली।

सवालों-जवाबों का सिलसिला कुछ ऐसा रहा—

क्या आप 'चालबाज' की तरह और भी दुहरी भूमिकाएँ कर रही हैं?

हाँ, 'खुदा गवाह' तथा 'गौरव' में मेरा डबल रोल है।

'चाँदनी' और 'चालबाज' में अपने अभिनय को तुलनात्मक रूप से आप कसौटी पर कैसे कसती हैं?

प्रस्तुति के हिसाब से 'चालबाज' को मैं चाँदनी से बेहतर मानती हूँ। 'सीता और गीता' की तर्ज पर बनी इस फिल्म में मैंने कुछ-कुछ हेमामालिनी को दुहराया है, मगर कई पहलुओं से उनसे हटकर भी अभिनय किया है। अच्छी और बुरी जुड़वाँ बहनों का किरदार मैंने काफी मेहनत से अदा करने की कोशिश की है।

क्या इस दुहरी भूमिका को करने के लिए बतौर तैयारी आपने 'सीता और गीता' देखी थी।

मैं जब छोटी थी, तब इस फिल्म को देखा था तथा हेमाजी का अभिनय मुझे बहुत पसन्द आया था। 'चालबाज' में काम करते वक्त उस फिल्म की कतई याद नहीं थी। जो कुछ मैंने किया स्वप्रेरणा से किया। किसी की नकल करने की कोशिश नहीं की।

हास्य प्रसंगों में आप इतना स्वाभाविक अभिनय कैसे कर सकीं?

क्योंकि मैं स्वभाव से ही नटखट हूँ।

क्या आपको फिल्म की पटकथा पहले से ही मिल गई थी?

बंबई में पटकथा लिखने का रिवाज नहीं है। यह सारा काम ऐन वक्त याने शूटिंग से कुछ समय पूर्व ही किया जाता है।

अब तक आपने ज्यादातर रोमांटिक भूमिकाएँ ही की हैं, क्या आप कोई गंभीर भूमिका भी करना चाहती हैं?

मैंने तोहफा में निहायत गंभीर भूमिका अदा की है तथा **'सदमा'** में भी कमल हासन के साथ गंभीर भूमिका की है। वैसे कोई खास या विशेष भूमिका नहीं है, जिसे अदा करने की तमन्ना मेरे दिल में हो।

'चाँदनी' और 'चालबाज' दोनों ही नायिका प्रधान फिल्में हैं, क्या आप ऐसी अन्य फिल्मों में भी अभिनय कर रही हैं?



हाँ, एक तेलुगु फिल्म में चिरन्जीव (तेलुगु सुपरस्टार) के साथ।

कोई तमिल फिल्म?

फिलहाल तो नहीं। वक्त मिलने और मौका आने पर यह भी मुमकिन है।

खुद को सुपर स्टार कहे जाने पर आपको कैसा लगता है?

मैं रोमांचित हो जाती हूँ तथा महसूस करती हूँ कि कड़ी मेहनत का यथोचित पुरस्कार मिल गया।

क्या आप चाँदनी की तरह खुद गीत भी गाएँगी?

यदि निर्माता अवसर देगा तो मैं जरूर गाऊँगी। एकाध बार ऐसा प्रयोग करने में क्या हर्ज है।

क्या आप थिएटर जाकर फिल्म देखती हैं?

कभी नहीं। मैं घर पर ही देखना पसन्द करती हूँ। थिएटर में जाकर फिल्म देखना संभव ही नहीं है। दर्शकों को पता चल जाए तो वे सामने देखने की बजाए मुझे ही देखते रहेंगे।

बाल कलाकार के रूप में आपने कितनी फिल्मों में काम किया है?

मैंने चार वर्ष की उम्र से बाल कलाकार के रूप में काम करना शुरू कर दिया था। अधिकतर कृष्ण तथा मुरुगन की भूमिकाएँ कीं और करीब एक सैकड़ा फिल्मों में काम किया है।

क्या आप उस दौरान अन्य अभिनेताओं के हाव-भाव पढ़कर उनका उपयोग अपने भावी कैरियर में करने का सोचती थीं?

कतई नहीं, मैं सैकड़ों कलाकारों से मिलती थी। मगर उनमें से किसी की भी अभिनय शैली की नकल करने की बात मैंने कभी नहीं सोची।

◆◆◆

- **जब तक दर्शक बोर नहीं हो जाते, मैं फिल्मों में काम करती रहूँगी।**
- **शादी करूँगी जरूर, मगर प्रेम-विवाह नहीं।**
- **कमल हासन के साथ काम करने में बड़ा मजा आता है।**
- **खाना बनाना नहीं आता, लेकिन खाने का बेहद शौक है।**

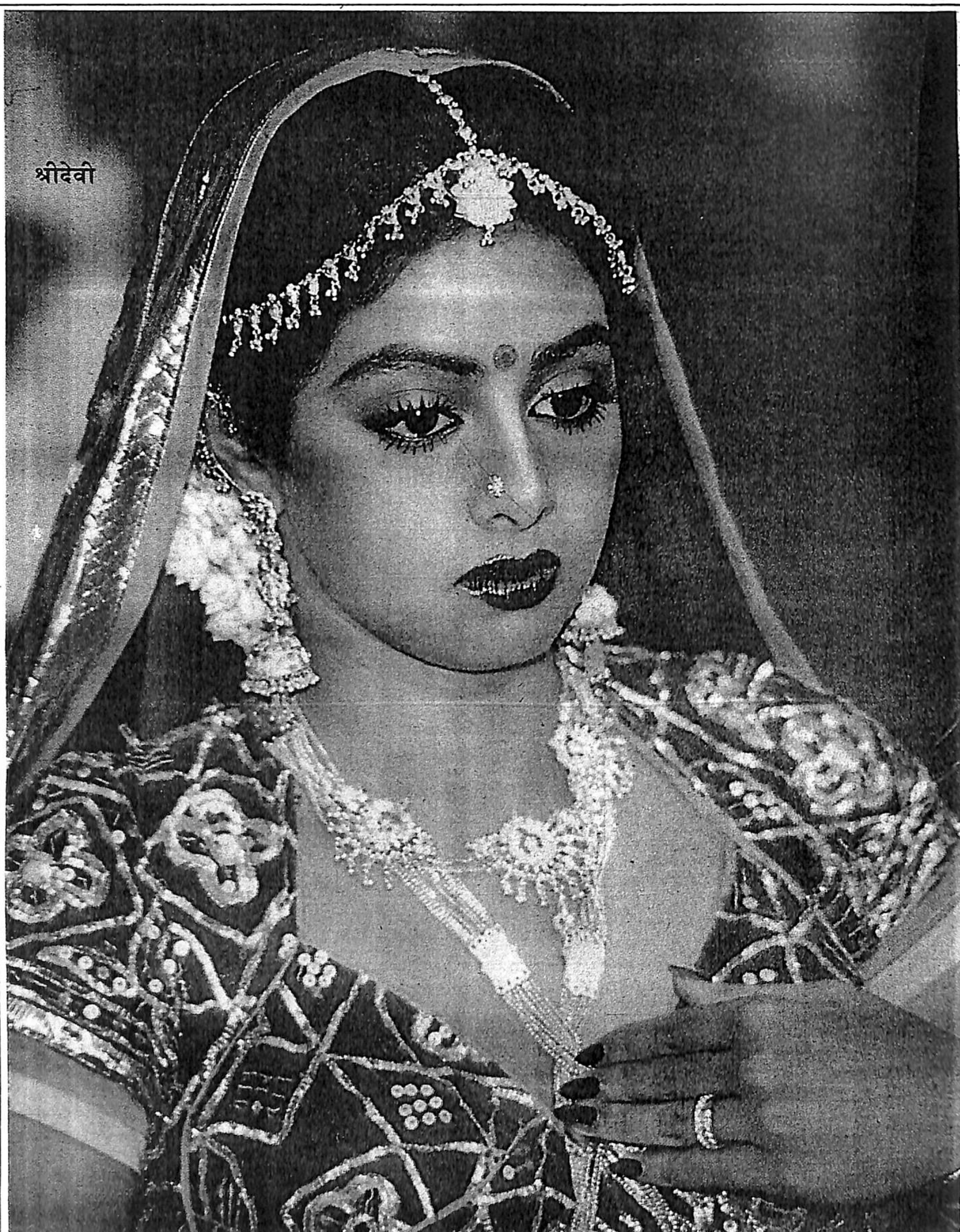


आपके प्रिय डाइरेक्टर कौन हैं?

मैंने जितने निर्देशकों के साथ काम किया, सभी अच्छे थे तथा सभी शीर्षस्थ निर्देशकों के साथ काम करने का मुझे मौका भी मिला।

कमल हासन के साथ आपकी जोड़ी दक्षिण में काफी लोकप्रिय हुई?

उन्हें मैं काफी पसन्द करती हूँ, जिन फिल्मों में मैंने उनके साथ काम किया, सभी हिट रहीं। दरअसल उनके साथ काम करने में मुझे मजा आता है। कई गंभीर भूमिकाएँ भी उनके साथ की हैं।



श्रीदेवी

ज्यादातर बालू महेन्द्र के निर्देशन में?

हाँ, भारती राजा तथा के. बालचन्द्र के निर्देशन में भी मैंने कमल हासन तथा रजनीकांत के साथ काम किया है।

बाल कलाकार तथा वयस्क नायिका के बीच की अवधि क्या ज्यादा लम्बी रही?

नहीं। दूसरे कलाकारों की तरह मेरे साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ। मैं बाल कथाकार से सीधे नायिका बन गई। जरा भी वक्त इंतजार में नहीं काटना पड़ा।

पहली वयस्क भूमिका कौनसी थी?

'अनुराग' के तेलुगु संस्करण में मैंने अंधी लड़की की भूमिका की थी। ग्यारह वर्ष की आयु में की गई इस भूमिका को हिन्दी संस्करण में मौसमी चटर्जी कर चुकी थीं।

फिल्मों में ग्लेमर का क्या महत्व है?

हिन्दी फिल्मों में ग्लेमर का बहुत महत्व है। दर्शक मनोरंजन चाहते हैं। नृत्य, गीत संगीत और भव्यता देखना चाहते हैं और थोड़ी बहुत भावुकता भी। सफेद साड़ी पहने रुआँसी शक्ल वाली नायिका को देखना उन्हें कतई नहीं भाता। दर्शकों को थिएटर में रुलाकर वापस घर भेजना अच्छा भी नहीं है।

आपका आदर्श और प्रिय कलाकार कौन है, मीनाकुमारी, मधुबाला या नरगिस?

सच कहूँ तो कोई नहीं। मैं खुद ही अपनी आदर्श और प्रिय हूँ।

क्या आप सक्रिय राजनीति में हिस्सा लेना पसन्द करेंगी?

राजनीति के बारे में बात करना भी मुझे पसन्द नहीं, मुझे तो राजनीति शब्द के सही हिज्जे भी नहीं मालूम।

किन्तु आपने 'इंका' के प्रचार अभियान में सक्रिय भाग लिया था।

वे दिन बीत गए।

क्या आप निजी जिन्दगी में सादी घरेलू लड़की की तरह रहती हैं और इस रूप में आपको देखकर फिल्मी प्रशंसकों को खासी निराशा होती है?

मैं आपका मतलब नहीं समझी।

मेरा मतलब है कि फिल्मों में आप ग्लेमर सुन्दरी याने अप्सरा नजर आती हैं, मगर असली जिन्दगी में ऐसा नहीं है।

याने असलियत में मैं बंदसूरत हूँ।

अभिनेत्रियों को दादा फालके अवार्ड

- □ १९६९: देविकारानी
- □ १९७३: सुलोचना (रुबी मेयर्स)
- □ १९७६: कानन देवी
- □ १९८३: दुर्गा खोटे
- □ १९८९: लता मंगेशकर (गायिका)

नहीं, मेरा मतलब है सीधी सादी, घरेलू लड़की।

(सिर्फ बेबाक हँसी)

शारीरिक और मानसिक रूप से कड़ी मेहनत करते रहने के बावजूद आप अपनी चुस्ती और फुर्ती को कैसे बरकरार रखती हैं?

जब आपको काम करने में मजा आता है तो थकावट महसूस नहीं होती। चाहे शारीरिक हो या मानसिक। यदि आपके सहकर्मी भले और परिचित हों तो और भी मजा आता है।

दिनचर्या में सबसे बढ़िया काम कौनसा लगता है?

काम पूरा करने के बाद घर लौटकर दूसरे दिन के लिए तैयारी करने याने आराम करने में मजा आता है।

आपको वर्तमान नायिकाओं में सर्वोत्तम नृत्यांगना माना जाता है। क्या आपने शास्त्रीय नृत्य की कोई विधिवत शिक्षा पाई है?

मैंने किसी संस्था में नाच नहीं सीखा। जब मैं सेट पर जाती हूँ नृत्य निर्देशक 'स्टेप्स' तथा 'मूवमेन्ट्स' समझा देते हैं। मैं उनके निर्देशों का पालन करती हूँ तथा स्वाभाविक रूप से नाचने की कोशिश करती हूँ। कभी-कभी अभ्यास भी करना पड़ता है। मैंने दक्षिण भारत तथा बंबई के कई नृत्य निर्देशकों के साथ काम किया है, इसलिए अब मुझे खास दिक्कत नहीं होती।

नाकाबन्दी में आपने पुरानी नायिकाओं की नृत्य शैली तक ही खुद को सीमित रखा है।

हाँ, और ऐसा करने में मुझे मजा भी आया। मीनाकुमारी, मधुबाला, मुमताज को दुहराना मजेदार लगा।

भूमिका करने से पहले आप क्या पूर्व तैयारी करती हैं?

लगभग नहीं के बराबर। हमें पहले से पटकथा यदा-कदा ही मिलती है। लोकेशन पर हमारी उपस्थिति में दृश्य लिखा जाता है। संवाद सेट पर पहुँचने पर मिलते हैं। जो कुछ स्वाभाविक रूप से बन पड़ता है, करते चले जाते हैं। हो सकता है पूर्व तैयारी करने से इतनी स्वाभाविकता न आ पाए। मैं तो यही सोचती हूँ कि ईश्वर ने मुझे अभिनय की क्षमता दी है, इसलिए इस क्षमता का उपयोग स्वाभाविक रूप से ही करूँ।

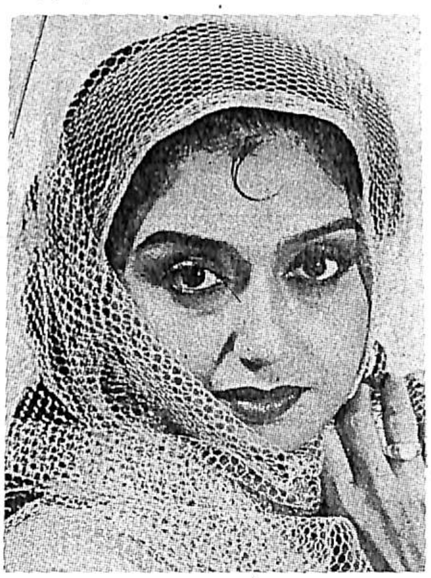
आप स्वयं कैसी फिल्में देखना पसन्द करती हैं?

मुझे डरावनी, रोमांचक तथा परीकथा किस्म की फिल्में अच्छी लगती हैं।

हॉरर फिल्मों से लगाव कब से हुआ?

ऐसी फिल्में मुझे बचपन से ही पसन्द हैं।

बीना: नंबर तीन



दूरदर्शन पर प्रसारित बैरिस्टर विनोद, कथा-सागर, अदालत, कशमकश, हम हिंदुस्तानी व कंजूस मक्खीचूस में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ करने वाली बीना ने १९७७ में राजश्री फिल्म्स की **शिक्षा** में सहनायिका की भूमिका से अपना फिल्मी कैरियर शुरू किया। इसके बाद वे १९७९ में अनिल कपूर की नायिका बन **रचना** में आई तथा **लवर्स** में कुमार गौरव के साथ काम किया। अपने जमाने की कई सफल फिल्मों के नायक रहे प्रदीप कुमार की इस जिद्दी बेटी ने पिता की मर्जी के खिलाफ अपने से उम्र में कई साल बड़े गैर बिरादरी के **अजय विश्वास** के साथ प्रेम विवाह किया। पिता की भविष्यवाणी सही निकली और बीना बेटे के साथ पति को छोड़कर मायके लौट आई। चार साल तक अलहदा रहने के बाद खुद के पैरों पर खड़े होने का फैसला किया तथा जीविका कमाने के लिए फिल्मी दुनिया में प्रवेश करने की ठानी। पिता ने इस फैसले का भी विरोध किया तथा **बालिका वधू** के बंगाली संस्करण में बीना को पेश की गई नायिका की भूमिका अपने प्रभाव का उपयोग कर रद्द करवा दी। इरादे की पक्की बीना ने हिम्मत नहीं हारी व राजश्री फिल्म्स की शिक्षा में सह नायिका बनकर पर्दे पर आने का सपना पूरा कर लिया। यह फिल्म चर्चित नहीं हुई तथा ऐसा ही अंजाम रचना का हुआ जिसमें वह अनिल कपूर के साथ नायिका थी।

इसके बाद बीना ने चरित्र अभिनेत्री की भूमिकाएँ स्वीकार करना शुरू किया। हुकूमत, मेरी जंग, कर्मा, महावीरा, कयामत से कयामत तक, वह फिर आएगी आदि में उनका अभिनय सराहा गया। इंदौर में निर्मित वीडियो फिल्म जैक पॉट टू करोड़ में भी उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

असफल विवाहित जीवन की त्रासदी झेलने वाली बीना अपने १४ वर्षीय बेटे बॉबी को संसार की सबसे प्यारी नियामत मानती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर उनके प्रिय लेखक हैं तथा गुलजार आदर्श निर्देशक। हास्यप्रधान फिल्मों में भूमिका करना उनकी दिली ख्वाहिश है तथा एक बार आत्मनिर्भर होने के बाद परिपक्व समझ वाले मर्द के साथ दुबारा घर बसाने का इरादा भी वे रखती हैं। अपने इरादों में कामयाबी की उन्हें पूरी उम्मीद है क्योंकि संघर्ष से पीछे हटने की आदत उनमें नहीं है।

फिल्म असफल होने पर क्या आप असफलता के कारणों की विवेचना करती हैं?

असफल फिल्मों को तो मैं भूलना ही बेहतर समझती हूँ। मगर फिल्म देखने पर अपने अभिनय में सुधार की गुंजाइश के बारे में गंभीरता से सोचती हूँ।

एक समय में एक साथ आप कितनी फिल्में स्वीकार कर लेती हैं?

सात के आसपास। मैं दिन में सिर्फ एक ही शिफ्ट में काम करती हूँ।

यदि आप सुपर स्टार नहीं होतीं तो क्या बनना पसन्द करतीं?

एक अभिनेत्री। बचपन से ही मुझे नृत्य का शौक था तथा फिल्म देखने का चस्का था। कैमरे के सामने मेरा चेहरा अच्छा लगता था तथा मुझे डर भी नहीं लगता था। इसलिए यह कहना बेकार है कि मैं डॉक्टर या इंजीनियर होना पसन्द करती।

क्या आप जैसा सफल कलाकार पुराने भूले बिसरे फिल्मी कलाकारों की सहायता के काम में रुचि लेना पसन्द करेंगे।

बेशक हमें ऐसा करना चाहिए। यदि फिल्मी दुनिया के दिग्गज इस काम में पहल करें तो मैं अपना योगदान अवश्य दूँगी।

आपकी रुचियाँ क्या हैं?

जी भर के सोना तथा अँगरेजी और तमिल के उपन्यास पढ़ना।

क्या आप स्वयं कोई फिल्म बनाने का इरादा रखती हैं?

फिलहाल ऐसा कोई इरादा नहीं है।

कला फिल्मों में अभिनय करने के बारे में आपका क्या ख्याल है?

यदि अच्छा प्रस्ताव मिला तो जरूर करूँगी।

टी.वी. सीरियल?

कोई इरादा नहीं।

क्या आप खाना खुद पकाती हैं?

मुझे खाना, खाना आता है, पकाना नहीं।

क्या आप विवाह करेंगी?

हाँ करूँगी, मगर प्रेम विवाह नहीं।

फिल्मों में आप कब तक काम करना जारी रखेंगी।

जब तक दर्शक बोर नहीं हो जाएँगे। ■

पत्रकार तारिकाएँ

- ☐ नरगिस: मूवी टाइम्स (रिपोर्टर)
- ☐ स्नेहप्रभा प्रधान: मूवी टाइम्स (रिपोर्टर)
- ☐ शर्मिला ठाकुर: टेक-टू (सम्पादिका)
- ☐ हेमामालिनी: मेरी सहेली (सम्पादिका)
- ☐ अपर्णा सेन: सुनंदा (सम्पादिका)
- ☐ रोहिणी हट्टंगड़ी: चंदेरी (सम्पादिका)
- ☐ जीनत अमान: सेवी (एक अंक)
- ☐ शबाना आजमी: सेवी (एक अंक)

विश्वात्मा होगी सोनम की आखरी फिल्म

*बमुश्किल चंद फिल्मों पुरानी **सोनम** की राजीव राय से मुलाकात **'त्रिदेव'** के सेट पर हुई और वह पहली नजर का प्यार साबित हुई। इस फिल्म के पूरा हो जाने के बाद भी वे दोनों मिलते रहे। उचित समय आने पर सोनम राजीव के माता-पिता से मिलीं और यह तय हुआ कि आगामी दिसंबर में दोनों की शादी कर दी जाए। इस विशेष भेंट में ये दोनों प्यार के पंछी अपने प्रेम-प्रकरण और भविष्य की योजनाओं की चर्चा कर रहे हैं।*

आप दोनों की मुलाकात कैसे हुई?

"मैं उन दिनों कई नायकों, जिनमें ऋषिकपूर भी थे, जिनके साथ मैंने **'विजय'** में काम किया था, के प्रेम-प्रस्तावों को ठुकरा रही थी। बेशक, बाद में मैंने फिल्मों में अंग प्रदर्शन करने वाले दृश्य करने से भी इंकार कर दिया और इस वजह से काफी भूमिकाएँ खो दीं। 'त्रिदेव' के सेट पर मैं राजीव राय से मिली और वे मुझे बहुत पसंद आए। शूटिंग के दौरान हम लोग अक्सर बैठकर इधर-उधर की बातें करते थे और घर पहुँचने के बाद भी अक्सर मैं उन्हीं के बारे में सोचती रहती थी। जब फिल्म पूरी हो गई तो भी मैं उन्हें भूल नहीं सकी और उन्हीं के बारे में सोचती रही। इसके बाद मैं उन्हें फोन करने लगी और अपने मित्रों के साथ हम बाहर भी मिलने लगे। बाद में यह चीज जरा अखरने लगी और हम लोग अकेले ही जाने लगे।इस बीच मैंने एक भी व्यक्ति से यह राज नहीं बतलाया कि हम दोनों के बीच क्या चल रहा है। मेरी माँ, जो कि बहुत सख्त हैं, मुझसे पूछती रहती थीं कि मामला क्या है। शायद उन्हें लगा कि उनकी बेटी बिगड़ रही है और रास्ते से भटक जाएगी। बल्कि वे तो इतनी ज्यादा चिंतित हो गईं कि एक दिन उन्होंने आगरा के लिए मेरा सामान बाँध दिया। रोज-रोज की उनकी डाँट के कारण मुझे उन्हें सब-कुछ बतलाना पड़ा। ऐसा मुझे करना ही पड़ा, क्योंकि मैं उस शुद्ध शाकाहारी की तरह व्यवहार करने लगी थी, जिसे अचानक माँस बहुत रुचने लगा हो। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था।

राजीव राय बतलाते हैं– "सोनम के बारे में मुझे सबसे अच्छी बात यह लगी कि न तो उसमें कोई कुंठाएँ थीं, न कोई अहं जैसी बात। दूसरे वह बड़ी जीवट वाली लड़की है। उसने बहुत कम उम्र में एक सफल नायिका बनकर दिखलाया है। मेरे खयाल से सारे देश में वह अकेली ही है, जिसने इतनी कम उम्र में इतना कुछ हासिल करके दिखलाया। वह आमतौर से आपसे असहमत नहीं होगी, लेकिन आप उसे कठपुतली भी नहीं कह सकते। पहले वह सुनती है और फिर समन्वय करती है। यदि अगला आपके साथ एँडजस्ट करता है तो आपको भी स्वतः ही वैसा करना पड़ता है। मूलतः ऐसा करने से ही शादियाँ सफल होती हैं। मैं आपको बतलाऊँ, मेरी इतनी जल्दी घर बसाने की कोई योजना नहीं थी। मेरे मामले में 'जीवन में सैटल हो जाने' जैसी कोई बात नहीं है। मेरे लिए शादी का अर्थ सैटल हो जाना नहीं होता। मैं तो पहले से 'जमा' हुआ हूँ। शादी के बाद भी मेरी जीवन-शैली में कोई फर्क नहीं आने वाला है।

किसी ने भी यह नहीं सोचा था कि आप दोनों इतनी जल्दी शादी कर लेंगे। ऐसा हो कैसे गया?

सच तो यह है कि अब सोचने पर लगता है कि मुझे राजीव की हर चीज पसंद है। उनकी हर क्रिया मुझे भाती है। किसी एक गुण को रेखांकित करने का मतलब है, आप उनके अन्य सद्गुणों के साथ अन्याय कर रहे हैं। उनकी सभी बातें बढ़िया हैं, अर्थात् उनमें वे सभी गुण हैं, जो कोई भी औरत अपने पति में देखना चाहती है। फिल्म की



प्यार की शुरूआत किसी रासायनिक परिवर्तन की तरह किसी लड़की से मिलते ही शुरू हो जाती है। सोनम और राजीव राय में ऐसा ही हुआ। छोटी सी उम्र में सोनम ने मिट्टी से सोना हासिल कर शोहरत तथा दौलत कमाई, जो आम तौर पर उसकी उम्र वाली लड़की को नसीब नहीं होता। वह फिल्मी दुनिया में आँधी की तरह आई और तूफान की तरह जा रही है।

शूटिंग के दौरान तो मैं अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकी, क्योंकि यहाँ इस लाइन में स्कूल या कॉलेज की तरह अपने जज्बातों को व्यक्त करना आसान नहीं है। और फिर वे अपने काम में व्यस्त भी बहुत थे। उन दिनों तो वे स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे कि मैं उनके बारे में क्या महसूस करती हूँ। यह इसलिए भी कि मैंने उनके साथ, जिसे 'फ्लर्ट' करना कहते हैं, वह कभी नहीं किया। मैं बस बैठी-बैठी उन्हें ताका करती थी और जैसे ही वे मेरी तरफ देखते थे, मैं अपनी निगाहें नीची कर लेती थी। एक बार हम लोग कुछ दोस्तों के साथ डिनर पर गए थे और वहाँ मैंने देखा कि उनमें कितनी शालीनता है। इसके बाद तो हमने अक्सर साथ-साथ जाना शुरू कर दिया। मगर चूँकि प्यार करने का मुझे कोई तजुर्बा नहीं था, मैं बहुत शर्माती थी। आखिर एक दिन वह भी आया जब बड़ी हिम्मत करके मैंने उनसे कह दिया, "मैं आपसे प्यार करती हूँ।" वे एकदम से सकते में आ गए। मगर उन्होंने इस बात पर ध्यान जरूर दिया....।

राजीव का जवाब मिला– बेशक हम लोग शादी करने जा रहे हैं, मगर मेरा ख्याल है लोग अब भी सारे मामले को शंका की नजर से देख रहे हैं, क्योंकि पहले कई बार हम लोग इसका खंडन कर चुके हैं। मगर ऐसा हमने रिश्तेदारों की खातिर किया था। तब उसका उचित मौका नहीं आया था।

प्यार की शुरूआत किसी रासायनिक परिवर्तन की तरह किसी लड़की से मिलते ही शुरू हो जाती है। आप जन्मदिन की तरह उसकी कोई निश्चित तारीख नहीं बतला सकते। सोनम और मुझमें यह क्रिया एक साथ ही शुरू हुई थी, गो कि उसके बाहरी लक्षण दिखलाई नहीं दे रहे थे। उसे विकसित होने में वक्त लगा और मुझे उसका काफी बाद में अहसास हुआ। 'त्रिदेव' के सेट पर तो कुछ भी नहीं हुआ। बल्कि तब तो ऐसा कोई विचार भी मेरे दिमाग में नहीं आया। मैं उस तरह का व्यक्ति नहीं हूँ, जो अपनी हीरोइनों के साथ कोई बात सिर्फ इसलिए करे कि वह ऐसा करने की स्थिति में है। आखिर मैं तीन-तीन शानदार हीरोइनों के साथ काम कर रहा था और यदि कोई शरारती खयाल मेरे दिमाग में आया भी होगा तो वह सिर्फ खयाल ही बना रहा। उस वक्त तो वह केवल मेरी हीरोइन थी और मैं उनका निर्देशक, बात खत्म।

आपकी भविष्य की योजनाएँ क्या हैं?

मुझे अब भी विश्वास नहीं आ रहा है कि हम अगले दिसंबर में प्रणय-सूत्र में बँध जाएँगे। मुझे याद है मैं उनसे पहली बार दो वर्ष पूर्व मिली थी, जब मैंने फिल्मों में प्रवेश किया था। मैं उनके दफ्तर में 'त्रिदेव' में कोई भूमिका प्राप्त करने के इरादे से गई थी और तभी वे मुझे बहुत अच्छे लगे थे। सबसे पहली बात जिसने मुझे प्रभावित किया, वह यह थी कि वे इंग्लिश बहुत अच्छी बोल रहे थे। वे बहुत ही सुसंस्कृत और आधुनिक लगे और मैं बस तभी से उन्हें पसंद करने लगी। शूटिंग के दौरान अच्छे लगने की यह भावना और भी पुख्ता हुई। मैंने अपनी भावनाएँ अपने तक ही सीमित रखीं। वह मेरा रहस्य था और बाद में यही भावनाएँ प्यार में बदल गईं।

राजीव ने कहा, : मैं सोनम के परिवार वालों से अभी तक भी ज्यादा घनिष्ठ नहीं हुआ हूँ। मैं उसकी माँ से एक-दो बार तथा आँटी से कई बार मिला हूँ, लेकिन उसके पिता से मैं कभी नहीं मिला। शादी का फैसला सोनम और मैंने मिलकर ही किया और ज्यादा लोग इसमें शामिल नहीं थे। ऐसा नहीं है कि मैं किसी को नापसंद करता हूँ, लेकिन मैं ज्यादा रिश्तेदारों का एक साथ सामना नहीं कर पाता। मैं किसी के भी साथ बनावटी बातें नहीं कर पाता। मैं बहुत ज्यादा मिलनसार आदमी नहीं हूँ और बड़ी पारिवारिक स्थितियों में असहज हो जाता हूँ। बहुत ज्यादा अंतर्मुखी होने के कारण मैं लोगों के सामने जल्दी खुल नहीं पाता। अतः यह एक तरह से अच्छा ही है कि सोनम इकलौती संतान है। वैसे सगाई की कोई औपचारिक रस्म तो नहीं हुई है, फिर भी मेरी अँगूठी उसकी अँगुली में है। यदि इसे आप सगाई मानते हैं तो वैसी ही बात है। मगर शादी में अभी कुछ वक्त लगेगा। मैंने उसके साथ शादी की कोई चर्चा नहीं की थी, अतः जैसा कि मैंने आपको बतलाया, जब सोनम ने मेरे पास आकर कहा कि वह मेरे साथ शादी करना चाहती है तो मैं चौंक पड़ा। देखिए मैं रोमांटिक न भी होऊँ, मगर सोनम अपने दिल में कहीं न कहीं रोमांटिक जरूर है। बहरहाल, जहाँ तक शादी का सवाल है, मेरा विचार आगामी नवंबर-दिसंबर में वैसा करने का है। हो सकता है, इसमें कुछ और विलंब भी हो जाए। संयोगवश विश्वात्मा सोनम की अंतिम फिल्म होगी। वह कोई नई फिल्में नहीं ले रही है। मेरी तो इच्छा है कि मैं कोर्ट में संक्षिप्त सी शादी करूँ, मगर इससे बहुत से लोगों को ठेस लगेगी, अतः मैं वही करूँगा जो मेरे परिवार वाले चाहेंगे। ■



*ब्रितानी माता और पठानी पिता से जन्मी **जेबा बख्तियार** सौंदर्य और बौद्धिकता का अद्भुत संगम है। खूबसूरती की इस मलिका ने पाकिस्तान विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र और अँगरेजी साहित्य में स्नातक की उपाधि प्राप्त की है। कला की शौकीन जेबा एक पाक दूरदर्शन धारावाहिक में कार्य करने के बाद इस झिलमिल दुनिया में पहचानी जाने लगीं। रणधीर कपूर जिन्होंने आर.के. की परंपरा को कायम रखने का दायित्व लिया है, वे जेबा को पाक टी.वी. धारावाहिक अनारकली में देखकर प्रभावित हुए। उन्हें महसूस हुआ कि आखिर वह स्वप्न सुंदरी मिल गई जिसकी राजकपूर को तलाश थी। जेबा ने एक ब्रितानी टी.वी. धारावाहिक में भी काम किया है। उसमें ब्रिटेन के नव आप्रवासी पाकिस्तानियों की समस्याओं का जिक्र था। इस धारावाहिक की तीखी आलोचना हुई। स्व. राजकपूर की महत्वाकांक्षी फिल्म **"हिना"** के बारे में वे प्रशंसा करते नहीं थकतीं। इस फिल्म के सहारे वे अपने सुनहरे भविष्य के प्रति आशांवित हैं।*

सपनों की हिना : जेबा बख्तियार

रीमा कश्यप

आपने "हिना" में प्रमुख भूमिका निभाने के लिए रणधीर कपूर का अनुरोध कैसे मान लिया?

रणधीर ने मुझे लंदन बुलवाया और कहा कि मैं बंबई आऊँ ताकि "हिना" की प्रमुख भूमिका के बारे में विस्तृत चर्चा हो सके और उसे अंतिम रूप दिया जा सके। जब मैं बंबई पहुँची तो रणधीर ने मुझे फिल्म की कहानी सुनाई और मेरी क्या भूमिका होगी इसकी भी जानकारी दी। बाद में मेरा स्क्रीन टेस्ट भी लिया गया। हिना की कहानी



बहुत ही अच्छी है। मैंने इसे लाजवाब पाया। चूँकि इसकी कहानी पाक नागरिकों की भावनाओं के प्रतिकूल नहीं है। इसलिए मैंने स्वीकृति दे दी।

कहा जाता है कि पाक टी.वी. सीरियल में आपकी निभाई गई भूमिका से प्रभावित रणधीर कपूर ने आपको "हिना" का ऑफर दिया। क्या यह सच है?

सच है। रणधीर ने मुझसे मिलने के पहले मेरा किरदार देखा होगा। लंदन में शूटिंग करने के बाद जब मैं पाकिस्तान गई तो वहाँ मेरी मुलाकात पाक टी.वी. सीरियलों की इज्जदार लेखिका बेगम हसीना मोईन से हुई। वे एक ऐतिहासिक धारावाहिक लिखने में व्यस्त थीं। वे चाहती थीं कि मैं इस सीरियल में किरदार निभाऊँ। उसी दौरान बेगम हसीना की मुलाकात रणधीर से हुई। उन्होंने रणधीर से मेरा जिक्र किया और हमारी चर्चा के बाद और स्क्रीन टेस्ट के बाद मैं हिन्दी फिल्म की अदाकारा बन गई। इस प्रकार यह एक बहुत अच्छा अनुभव रहा।

क्या आप अपने बारे में कुछ बता सकती हैं- व्यक्तिगत और व्यावसायिक भी?

मेरे पिता पठान और माँ ब्रितानी हैं। परिवार में मैं सबसे छोटी हूँ। मेरी एक बहन और दो भाई हैं। हमारा परिवार खुली मानसिकता का है इसलिए फिल्मों में मेरे अभिनय का उन्होंने बुरा नहीं माना। खुली मानसिकता होने के बाद भी मैं किसी भी फिल्म में निर्लज्जतापूर्वक अभिनय नहीं करने वाली हूँ। हमारा पैतृक गृह क्वेटा में है। लेकिन हम हमेशा इधर-उधर घूमते रहते हैं इसकी वजह यह है कि मेरा भाई विदेश में रहता है। मेरे पिता इस्लामाबाद की राजनीतिक हस्ती हैं।

मुझे कला से सदैव प्रेम रहा है। चित्रकारी, कविता, साहित्य और अन्य वे सभी चीजें जो रचनात्मकता को जन्म देती हैं, मुझे पसंद है। '८८ में मुझे एक पाक टी.वी. सीरियल में कार्य करने का मौका मिला। आश्चर्यजनक रूप से उसे पाकिस्तान में अच्छी सफलता मिली। इसके बाद मैंने आई.टी.वी. लंदन के लिए टेली सीरियल की। जिस दिन मैंने शूटिंग पूरी की उस दिन रणधीर का फोन आया और अब मैं यहाँ मौजूद हूँ।

क्या आपने पूर्व में अभिनय का प्रशिक्षण लिया था?

नहीं, पाकिस्तान में कोई अभिनय का स्कूल नहीं है।

क्या आप पहली मर्तबा भारत आईं?

मैं अगस्त १९८९ में पहली बार स्क्रीन टेस्ट देने के लिए भारत आई थी। हमारा पहला शूटिंग शेड्यूल अक्टूबर व नवंबर में मनाली में था। मैंने पाया कि सभी भारतीय अतिथि सत्कार में पारंगत होते हैं।

भारतीय फिल्मोद्योग में कार्य करके आपने कैसा महसूस किया?

बहुत अच्छा। पहली मर्तबा मैं कोई फिल्म कर रही हूँ। इसके पूर्व टेलीविजन पर जरूर कार्य किया। मुझे फिर से सब कुछ सीखना पड़ा, क्योंकि फिल्में टी.वी. से काफी भिन्न होती हैं। मुझे सभी का सहयोग मिला। रणधीर प्रतिभावान निर्देशक हैं। कलाकारों को वे ऐसे नियंत्रित रखते हैं कि आप पर कार्य का बोझ नहीं आएगा। मेरे सहयोगी कलाकार सईद जाफरी, फरीदा जलाल, किरण कुमार और ऋषि कपूर काफी सहयोगी प्रवृत्ति के हैं। उन्होंने काफी मदद की। इस प्रकार बहुत अच्छा अनुभव रहा।

"हिना" में आपकी क्या भूमिका है?





"हिना" वास्तव में "जिप्सी" समुदाय की एक पहाड़ी लड़की की कहानी है। उसके वालिद कबीले के प्रमुख हैं। उसकी माँ नहीं है। हिना का स्वभाव बच्चों जैसा है। वह बहुत ही मासूम है। फिल्म प्रेम पर आधारित है।

पाक जनता का व्यवहार कैसा रहा यह जानते हुए कि आप एक हिंदी फिल्म में काम कर रही हैं?

प्रतिक्रिया सकारात्मक थी। जब मैं वापस लौटी तो लोगों ने मुझसे भारतीय कलाकारों और फिल्म उद्योग की जानकारी ली। पाकिस्तान में वैसे भी भारतीय फिल्म पत्रिकाओं से काफी जानकारी मिल जाती है।

यदि कोई अन्य भारतीय फिल्म निर्माता का 'ऑफर' मिले तो क्या आप उस फिल्म में काम करेंगी?

अवश्य। यदि वे अच्छी फिल्म बना रहे होंगे। उसकी स्क्रिप्ट अच्छी होगी तो अभिनय नहीं करने का सवाल ही नहीं उठता है। मैंने पाकिस्तान और इंग्लैंड में अभिनय किया है। यदि अच्छा 'ऑफर' मिले तो मैं कहीं भी काम कर सकती हूँ।

हमने सुना है कि भारतीय फिल्में पाकिस्तान में काफी लोकप्रिय हैं। क्या यह सच है?

सही सुना है। न केवल फिल्म बल्कि भारतीय फिल्मी सितारों के प्रति भी वहाँ काफी जिज्ञासा है।

क्या आप विवाह और कामकाजी महिला के बारे में अपने विचार व्यक्त कर सकती हैं?

अकसर विवाह सामाजिक दबाव के कारण होते हैं। मैं महसूस करती हूँ कि शादी तभी करनी चाहिए जब उसे शादी की इच्छा महसूस हो। ऐसी शादी निजी पसंद की और बगैर दबाव की होना चाहिए। मैं नहीं मानती कि शादी ही किसी महिला की जिंदगी का अंतिम लक्ष्य होती है। विकसित राष्ट्रों में कामकाजी महिलाओं की जिंदगी लगभग एक जैसी है। यह आप पर निर्भर है कि आप स्वयं को कैसे नियंत्रित रखती हैं और इसी पर लोगों का आपके प्रति व्यवहार निर्भर है।

भविष्य की योजना?

पहला लक्ष्य तो "हिना" को पूर्ण करना है। मैं बहुत आगे की योजनाएँ अभी से नहीं बनाती हूँ।

(टी.डब्ल्यू.) ■

·स्वादिष्ट·जायकेदार·मजेदार·



उच्च क्वालिटी का नमकीन

शुद्ध मीठे तेल से निर्मित

22. आलापुरा (जूनी इन्दौर)
इन्दौर-(म.प्र.)
✆ 67248

स्वच्छता एवं शुद्धता ही
हमारा ध्येय है।

TELEPHONES:
28191-28195 (5 Lines) Mills
23270-Executive Director-Office
23274-Executive Director-Res.

GRAM: "BINOD"
TELEX: 0733-205

With Best Compliments from:

THE BINOD MILLS COMPANY LIMITED, UJJAIN

(Including: BIMAL MILLS)

SPECIALISED IN MANUFACTURING:

* POLYESTER SHIRTING & SUITING * POPLIN * BLEACHED LONGCLOTH * RUBIA * PATTA
* PRINTED DRESS MATERIAL
AND
* YARN

कार्यालय देवास विकास प्राधिकरण, देवास "विकास भवन" ए.बी. रोड, देवास

देवास में पूर्ण क्रय आधार पर भवनों का पंजीयन

विकास प्राधिकरण देवास द्वारा विकसित विकास नगर (बावडिया) में एच. आय. जी. भवनों का पंजीयन पूर्ण क्रय आधार पर किया जाना है। भवनों का पंजीयन किया जा रहा है। योजना का विवरण निम्नानुसार है:–

भवन श्रेणी व संख्या	भूखंड आकार	निर्मित क्षेत्रफल	अनुमानित लागत	पंजीयन राशि
एच.आय. जी. ९	१२ मी. १८ मीटर	२,४२,५००/- वर्ग मीटर	९८	१०,०००/- भवन की शेष राशि भवन आधिपत्य के पूर्व देय होगी।

१. भवन की उपरोक्त लागत अनुमानित है। वास्तविक मूल्य के आधार पर राशि देय होगी। २. भवन का भूखंड प्रथमतः ३० वर्ष की लीज पर है इसके पश्चात् ३०-३० वर्ष की अवधि के लिए लीज का नवीनीकरण किया जाएगा। ३. भूखंड के आकार में परिवर्तन होने पर वास्तविक आकार के अनुसार ही राशि का भुगतान करना होगा। ४. पंजीयन की वरीयता "प्रथम आगम प्रथम सेवा" के आधार पर होगी। ५. भूखंड की कीमत का २ प्रतिशत लीजरेंट के रूप में प्रति वर्ष नियमानुसार देय होगी। ६. आवेदन पत्र नगद रुपए २०-०० का भुगतान करने पर कार्यालय से प्राप्त किए जा सकेंगे। ७. आवंटन लॉटरी से किया जावेगा।

मुख्य कार्यपालन अधिकारी, देवास विकास प्राधिकरण, देवास

देवास विकास प्राधिकरण के प्रयास एवं उपलब्धियों पर "विहंगम दृष्टि"

देवास विकास प्राधिकरण देवास के बहुमुखी नियोजित विकास हेतु सतत विकासोन्मुखी प्रगति पर अग्रसर है:–

१. **नवीन जिला चिकित्सालय भवन:–** देवास में २५० शैया वाले नवीन जिला चिकित्सालय भवन का निर्माण पूर्णता की ओर। २. **कर्मचारी राज्य बीमा चिकित्सालय:–** देवास में ५० शैया वाले आधुनिक सर्व सुविधायुक्त रिकार्ड समय में पूर्णता की ओर। ३. **विजयनगर आवासीय योजना:–** देवास में प्रथम आधुनिक आवासीय योजना जिसमें विभिन्न श्रेणी के ३८७ भवन व १६८ भूखंड का निर्माण/विकास पूर्णता की ओर। ४. **चामुण्डा काम्पलेक्स आवासीय योजना:–** शहर के मध्य आवासीय २५ भवनों का निर्माण किया गया तथा फ्लेट्स का निर्माण प्रगति पर है, यह इस प्रकार का देवास में प्रथम प्रयास है। ५. **प्राधिकरण मार्केट:–** शहर के मध्य व्यावसायिक गतिविधियों के केंद्र बिन्दु पर अत्याधुनिक सर्व सुविधायुक्त मार्केट का निर्माण पूर्ण कर व्यावसायिक गतिविधियों के लिए स्वर्णिम उपादान के रूप में उपलब्ध है। ६. **चामुण्डा काम्पलेक्स:–** आगरा बाम्बे रोड पर स्थित देवास का प्रथम बहु-मंजिला बहुउद्देशीय भवन शोरूम, कार्यालय आदि के लिए उपलब्ध है। ७. **आवास नगर:–** आगरा बाम्बे रोड पर विभिन्न श्रेणी के ११३७ भवनों का समावेश सहित महती योजना आकार ले रही है। ८. यातायात के नियमित संचालन हेतु स्वचलित विद्युत सिग्नल व्यवस्था की गई है।

मुख्य कार्यपालन अधिकारी, देवास विकास प्राधिकरण, देवास



रति अग्निहोत्री के साथ कमल हसन

टीना मुनीम/ रति अग्निहोत्री / पूनम ढिल्लो

'फास्ट-फूड' पीढ़ी की नायिकाएँ

मध्यम वर्ग के गुजराती परिवार में सातवीं पुत्री हुई तो उन्होंने ईश्वर के इस अंतिम वरदान का नाम रखा निवृत्ति। बम्बई वालों को निवृत्ति बोलने में कठिनाई होती थी- अतः पुकारता नाम रखा **टीना।** अभिनय का शौक टीना को देव आनंद के पास ले गया जो जीनत की **बेवफाई** से खिन्न नए चेहरे की तलाश में थे। देव ने टीना को **'देस परदेस'** में प्रस्तुत किया। फिल्म के एक दृश्य में टीना शराब के टब से बाहर निकलती है। टब से निकलकर टीना नामक नशा सीधे दर्शकों के सिर पर सवार हो गया। ढेरों फिल्मों के अनुबंध कर टीना रातों रात सितारा बन गई। टीना सातवें दशक के ''फास्ट-फूड'' की तरह चट-पट सितारा थी। **''सौतन''** की सफलता ने फिल्म उद्योग में कुछ स्थायित्व दिया परन्तु टीना को कुछ और की तलाश थी।

सातवें दशक की लड़कियों के मन में कभी कोई संशय या दुविधा नहीं होती। उन के पूर्व निर्धारित लक्ष्य उन्हें हमेशा स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। टीना 'फास्ट-फूड' युग की प्रतिनिधि लड़की थी। संजय दत्त के साथ पुराने रिश्ते को 'रॉकी' के बाद उसने तोड़ दिया क्योंकि हशीश के शिकार के साथ उसने कोई भविष्य नहीं देखा। कैरम बोर्ड की गोटी की तरह वापसी में राजेश खन्ना से टकराई परन्तु गुजरे जमाने के सुपर स्टार के साथ उसके गौरवमय अतीत के गलियारों में उसका दम घुटने लगा। राजेश का कोई भविष्य नहीं था और टीना को भूतकाल की फिक्र नहीं थी। रिलायबल अनिल अंबानी वर्तमान था और उसके सान्निध्य में भविष्य सुरक्षित था।

टीना ने अपने नाम को सार्थक करते हुए फिल्म उद्योग छोड़ दिया। टीना का फिल्मों में कैरियर ऐसा रहा जैसे किसी गाने का सिर्फ मुखड़ा हो और अंतरा न हो। इस मुखड़े और अंतरे के अन्तराल में राजेश खन्ना के खाली घर में पैठ कर उसने एक ब्रश से चौसठ दाँत साफ किए। दाँत मांजने की यह अंतरंगता भी काम न आई और फिल्म अलग-अलग के बाद वे अलग-अलग हो गए।

पंजाब की **रति अग्निहोत्री** ने वाया दक्षिण भारतीय फिल्मों से हिंदी फिल्मों में प्रवेश किया। दक्षिण के निष्णात निर्देशक के.बालचंदर ने एल.वी.प्रसाद की **'एक दूजे के लिए'** में कमलहसन के साथ रति को प्रस्तुत किया। फिल्म को अपार सफलता मिली। रति को अमिताभ के साथ कुली जैसी बड़ी फिल्म मिली। धर्मेन्द्र के साथ 'बेगाना'। उसने हास्य फिल्म 'शौकीन' में बहुत अच्छा अभिनय किया। एक गंभीर नायिका के रूप में ''तवायफ'' में रति को बहुत प्रशंसा मिली। रति एक मेहनती अभिनेत्री थी और सभी प्रकार की भूमिकाओं को निष्ठा से निभाती थी। रति भी टीना की तरह जल्दी ही उद्योग छोड़कर चली गई, उद्योगपति की बहूरानी बन गई।

सातवें दशक की ''तिकड़ी'' की अन्य कड़ी है **पूनम ढिल्लो** जिसका सुंदर चेहरा ही उसका परिचय है। पंजाब की पूनम को ''त्रिशूल'' में अमिताभ और शशिकपूर की बहन का छोटा सा रोल मिला। फिर यश चोपड़ा के प्रमुख सहायक रमेश तलवार की सहायता से वह ''नूरी'' बनी। सुंदर तारिकाओं के अकाल के युग में पूनम का चेहरा पाँचवें दशक के परदे की परियों जैसा था। बदले और हिंसा की धुरी पर घूमती हुई कथाओं में नायिका की भूमिका ही बहुत सीमित हो गई थी। पूनम ढिल्लो ने बहुत सी सफल फिल्मों (कसम, कर्मा) में कार्य किया परन्तु वे सब बहुसितारा फिल्में हैं। शादी के बाद पूनम ने ''वेनिटी'' नाम की वैन तैयार की है जो सितारों के लिए चलता-फिरता वातानुकूलित मेकअप रूम है। पूनम 'नूरी' और ''वेनेटी'' के लिए याद रहेगी। उसने ''सवेरे वाली गाड़ी'' और ''एक चादर मैली'' में सशक्त अभिनय प्रदर्शित किया, परन्तु फिल्में नही चलीं। भारतीय पारम्परिक सौंदर्य के मानदंडों पर खरा उतरने वाला चेहरा बहुल सितारा भीड़ में खो गया। ■



पूनम ढिल्लो



-जूही चावला के साथ आमीर खान

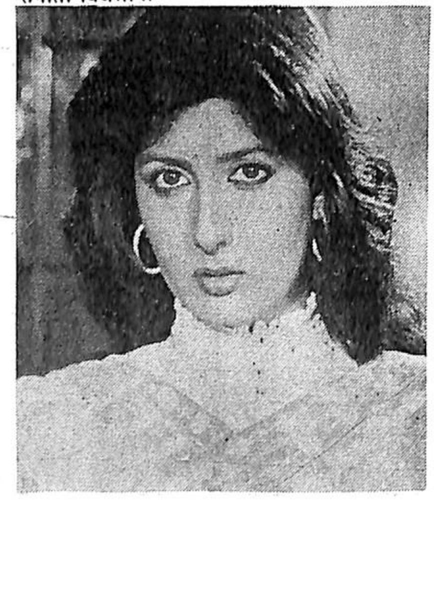
नई उमर की नई फसल

पिछले कुछ वर्षों से हिन्दी फिल्में घटियापन के दौर से गुजर रही हैं। निर्माण और निर्देशन के क्षेत्र में प्रतिभा के अकाल के कारण 'डांस-मास्टर' और 'फाइट-मास्टर' अस्सी प्रतिशत फिल्म बनाते हैं और बीस प्रतिशत दृश्य लेने वाला अपने आपको निर्देशक कहता है। इस वातावरण में नायिका के लिए अभिनय क्षमता दिखाने का कोई मौका नहीं है। सिर्फ 'पोज' देने भर से काम चल जाता है। मॉडलिंग करने वाली लड़कियाँ विज्ञापन की दुनिया से सीधे फिल्मों में आ रही हैं। **मॉडलिंग में वे जड़ बनी रहती हैं व मूवी (चलायमान) में भी 'स्थिर' की जड़ता ले आती हैं।**

ये नई लड़कियाँ जीनत अमान की परम्परा में आती हैं। अभिनय को छोड़कर हर कार्य में पारंगत ये लड़कियाँ बहुत महत्वाकांक्षी हैं और दुस्साहसी भी। नैतिकता के संकीर्ण और कठोर अनुशासन से पूरी तरह मुक्त ये लड़कियाँ रातों-रात 'स्टार' हो जाना चाहती हैं। **इन बेखौफ बेलौस बालिकाओं को अपनी मंजिल का पूरा ज्ञान है और शार्टकट की हर पगडंडी पर ये दौड़ पड़ती हैं।** ये लड़कियाँ नरगिस, मीनाकुमारी या मधुबाला नहीं बनना चाहतीं। इन्हें राजकपूर, गुरुदत्त या महबूब खान की जरूरत नहीं है। ये एक अदद गॉड फादर और प्रचार मैनेजर के सहारे 'बिल बोर्ड' पर चढ़ जाना चाहती हैं। इनके आत्मविश्वास के सामने पाँचवें दशक की नायिकाएँ अत्यंत अबोध बालिकाएँ सिद्ध होती हैं।

इस नई पौध में गजब की स्फूर्ति और उत्साह है। पैकेजिंग और रैपर के महत्व से बखूबी परिचित इन कन्याओं को विज्ञापन और घटियापन के दौर में कोई नहीं रोक सकता। इस दौर का प्रारंभ हुआ रमेश बहल की **'जवानी'** से, जिसमें हांगकांग से आई **'नीलम'**। बैले नृत्य का थोड़ा अनुभव था। परदे पर इसकी चपलता ने युवा दर्शकों का मन जीता पहलाज निहलानी की 'इल्जाम' से और फिर इसने पहलाज की पाँच फिल्मों में कार्य किया। गोविंदा की 'हत्या' में अभिनय का मौका था, परन्तु उसे हाथों से गिरा दिया, क्योंकि थिरकते हुए पैरों ने 'पाप की दुनिया' में धूम मचा दी थी–गीत था "चोरी-चोरी यूँ जब आँखें चार.... क्या होता है.... दीवाना दिल जब धड़के पहली बार क्या होता है।" नीलम के चेहरे पर उमर थम गई है, इसलिए उसे आज भी कम उम्र वाली भूमिकाएँ मिलती हैं। 'इंद्रजीत' में नीलम ने अमिताभ के साथ महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त कर ली है। **नई पौध की नायिकाएँ कई प्रकार के आश्चर्य प्रस्तुत करने में सक्षम हैं।**

संगीता बिजलानी -

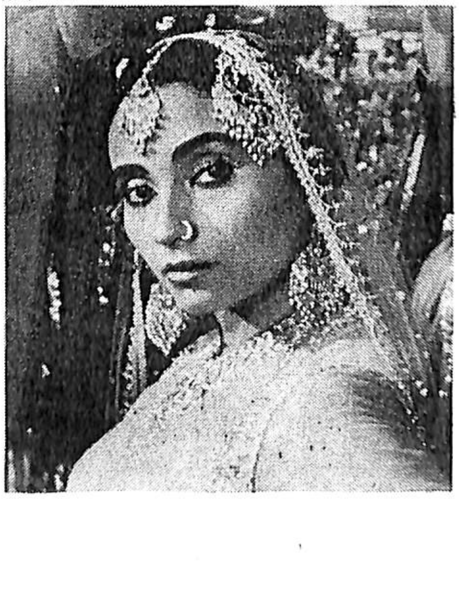


यश चोपड़ा की 'विजय' में रजा मुराद की भांजी सोनम ने लघुतम बिकनी पहनकर अपने कैरियर का प्रारंभ किया। अपनी उम्र से कम कपड़े पहनकर सोनम ने सनसनी फैला दी। शरीर को सिक्का बनाकर फिल्म दर फिल्म सोनम चलाती रही और **'मिट्टी और सोना'** में उसने अच्छा अभिनय करके अपने ऊपर लगी मुहर को हटाने का प्रयास किया। सोनम की पहचान बनी 'त्रिदेव' में **'ओए ओए'** गाकर। शशिकपूर की 'अजूबा' में ऋषिकपूर के साथ सोनम ने जोरदार नृत्य प्रस्तुत किया। सोनम ने 'त्रिदेव' के निर्देशक राजीव राय से विवाह कर फिल्में छोड़ने का निश्चय किया है। इस माने में सोनम पाँचवें दशक की आशा माथुर की तरह है–थोड़े समय में जलवा दिखाया और गायब।

संगीता बिजलानी का आगमन ही एक विवाद के साथ हुआ। जे.पी. दत्ता ने डिम्पल को हटाकर संगीता को **'हथियार'** में लिया। बहुत छोटा सा रोल था, परन्तु प्रचार खूब हुआ और अनेक फिल्मों के अनुबंध कर लिए, जिनमें से अधिकांश दूसरी और तीसरी श्रेणी की फिल्में हैं- मसलन 'हातिमताई'। 'त्रिदेव' में सोनम, माधुरी दीक्षित और संगीता तीन नायिकाएँ थीं। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि स्थापित सितारा माधुरी की भूमिका सबसे छोटी थी। सोनम और संगीता ही को लोकप्रिय गीत भी मिले थे। संगीता अपनी भूमिकाओं से ज्यादा सलमान खान से अपने प्रेम के लिए चर्चित है। नौ साल पहले संगीता 'मिस इंडिया' चुनी गई थीं और फिर मॉडलिंग से फिल्मों में आई हैं।

किमी काटकर की माँ फिल्मों में जूनियर कलाकार थी अर्थात् नायिका बनने का एक असफल सपना। किमी ने मॉडलिंग की और सुरेन्द्रमोहन की फिल्म 'पत्थर दिल' में नायिका बनकर आई। इस असफल फिल्म के बाद उसने बी सुभाष की टारजन में शरीर प्रदर्शन का नया रिकॉर्ड बनाकर लगभग पचास फिल्मों के अनुबंध किए। अब तक प्रदर्शित लगभग तीस फिल्मों में किमी ने कहीं भी अभिनय का प्रयास नहीं किया। सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि किमी काटकर

सलमा आगा



अमिताभ बच्चन के साथ 'हम' में नायिका बनी है।

जूही चावला और करण कपूर दोनों ही मॉडलिंग की दुनिया से मुकुलदत्त की **'सल्तनत'** में आए। फिल्म की असफलता ने करण को तो डुबा ही दिया, परन्तु जूही को भाग्य से **'कयामत से कयामत तक'** मिल गई, जिसने उसे सितारा बना दिया। इस फिल्म के बनते समय बी.आर. चोपड़ा ने जूही को 'महाभारत' में द्रौपदी के रोल के लिए लिया था। 'कयामत' के बाद जूही ने 'द्रौपदी' के लिए समय देने से इंकार कर दिया। 'लव-लव-लव' और 'जहरीले' की असफलता से जूही के कैरियर पर कोई ख़ास असर नहीं हुआ, क्योंकि निर्माणाधीन ३० फिल्मों में से एक भी चल जाए तो फिर २० फिल्में मिल जाएँगी। **नई पौध ने अपने लिए संख्या के स्वर्ग रच लिए हैं।**

'मिस इंडिया' सोनू वालिया ने मॉडलिंग से सिनेमा के चिर-परिचित रास्ते से 'खून भरी माँग' में काम किया। यह एक नकारात्मक भूमिका थी, जिसमें कबीर बेदी ने काम किया था। स्वयं कबीर भी पहले मॉडल थे। सोनू वालिया ने 'तूफान', 'महादेव', 'आकर्षण', 'अपना देश पराए लोग' और 'महासंग्राम' में काम किया है। नई पौध की सोनू वालिया का **कमाल है कि पहली ही फिल्म 'खून भरी माँग' में श्रेष्ठ सह-अभिनेत्री का फिल्म फेयर पुरस्कार प्राप्त कर लिया।**

अर्चना पूरनसिंह ने अभिन्न मित्र पंकज पाराशर निर्देशित **'जलवा'** में नायिका की भूमिका अभिनीत की। 'लड़ाई', 'अग्निपथ' और 'आग का गोला' में भी कार्य किया। **सोनिका गिल** ने 'कच्ची कली' से कार्य आरंभ किया, परन्तु 'बी' श्रेणी की फिल्म 'तू नागिन मैं सपेरा' में भारी सफलता अर्जित की। अपने बजट से दस गुना व्यवसाय करने वाली फिल्म थी। 'रामलखन' जैसी बड़ी फिल्म में छोटा सा रोल करने वाली सोनिका ने 'नागिन' के रूप में अपने भविष्य को सुरक्षित कर लिया।

नई लड़कियों में **भाग्यश्री** ने 'मैंने प्यार किया' में काम करने के बाद उद्योग छोड़ दिया। आज मनमोहन देसाई भाग्यश्री को दस लाख रुपए का लालच देकर भी असफल हुए हैं। मैंने प्यार किया के पहले अमोल पालेकर की टी.वी. सीरियल 'कच्ची धूप' में वह पहली बार कैमरे के सामने आई थी।

ऋचा शर्मा अमेरिका से सितारा बनने के लिए भारत आई और देवआनंद की **'हम नौजवान'** में काम किया। सड़क छाप, अनुभव, आग ही आग और इंसाफ की आवाज में काम किया। संजयदत्त से शादी करके ऋचा ने उद्योग छोड़ दिया। दुर्भाग्यवश उन्हें कैंसर हो गया है और वे जिंदगी और मौत के बीच झूल रही हैं।

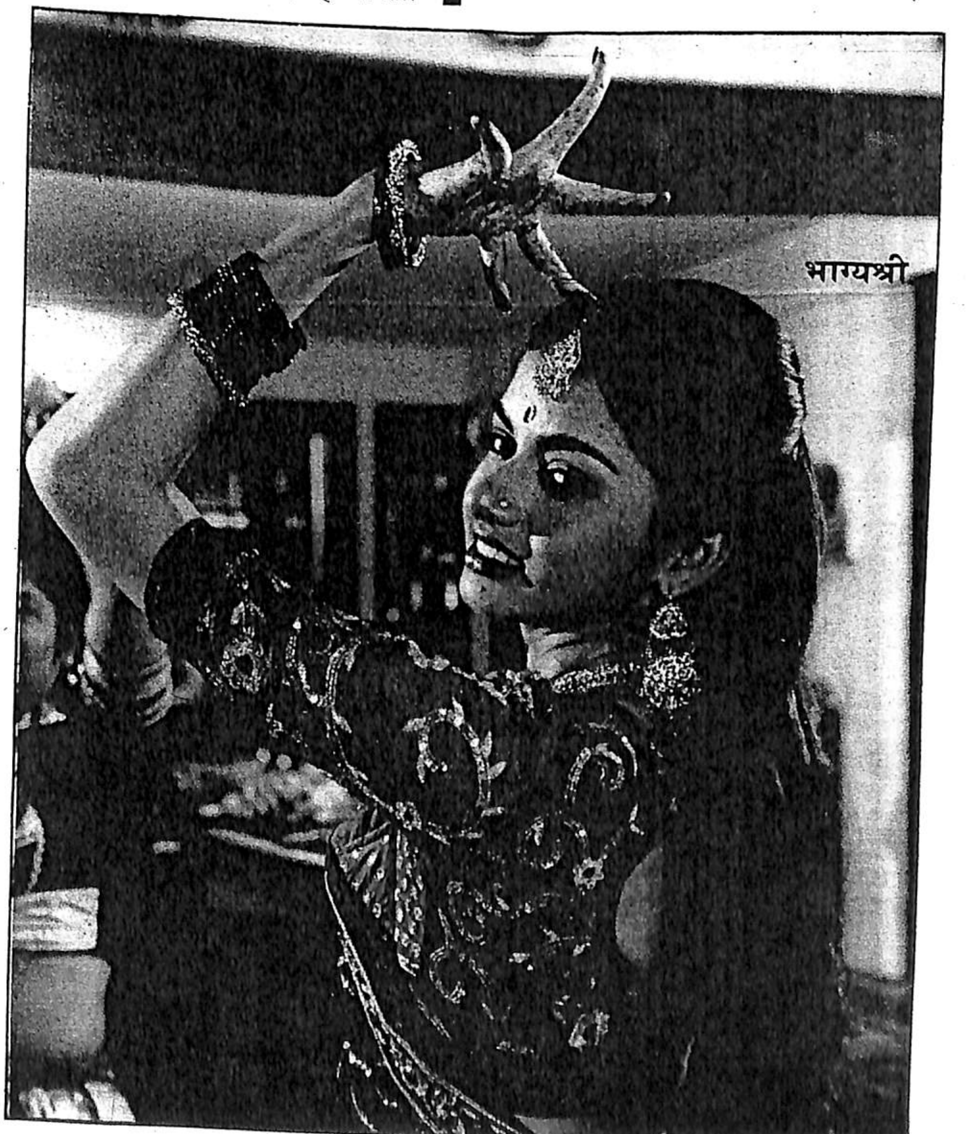
पाकिस्तान से आई **सलमा आगा** ने अपनी पहली फिल्म **'निकाह'** में अभिनय के साथ ही गीत भी गाए और सुरैया की परम्परा को जीवित करने का प्रयास किया। अगर वे 'निकाह' की परम्परा की फिल्में करतीं तो शायद बात बन जाती, परन्तु डिस्को संस्कृति के प्रभाव ने उन्हें अपनी नैसर्गिक कला को भाँजने का अवसर नहीं दिया। 'निकाह' के कुछ जादू सलमा ने पति-पत्नी और तवायफ में जगाने की कोशिश की है।

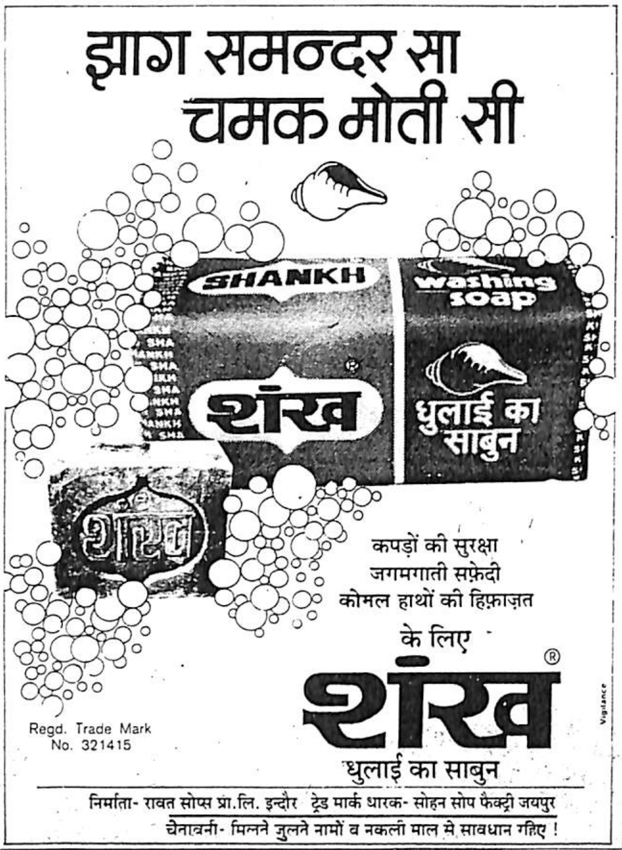
इस नई पौध में समय की परीक्षा में कितनी तारिकाएँ सफल होकर आने वाले दशक की सितारा बनेंगी-यह आज कोई नहीं जानता। ■



सोनू वालिया




भाग्यश्री


झाग समन्दर सा
चमक मोती सी
SHANKH
washing soap
शंख
धुलाई का साबुन
कपड़ों की सुरक्षा
जगमगाती सफ़ेदी
कोमल हाथों की हिफ़ाज़त
के लिए
शंख®
धुलाई का साबुन
Regd. Trade Mark
No. 321415
निर्माता- रावत सोप्स प्रा.लि. इन्दौर ट्रेड मार्क धारक- सोहन सोप फैक्ट्री जयपुर
चेतावनी- मिलते जुलते नामों व नकली माल से सावधान रहिए !
Vigilance


Summer Collection
of Gents
& Ladies
Cotton Shirts,
Salwar Suit,
Nighty,
Trouser
Beggi
वेश भूषा
490 M.G. ROAD, INDORE.


कुशल गृहणियों की पहली पसंद !
हर्ष
ब्ल्यू डिटर्जेन्ट पावडर एवं टिकिया
धुलाई की महाशक्ति
बढ़िया क्वालिटी
वाज़िब दाम
धुलाई की महाशक्ति
हर्ष ही हर्ष
हर्ष
डिटर्जेंट टिकिया
HARSHVARDHAN
हर्षवर्धन केमिकल्स एण्ड मिनरल्स लि.
अहमदाबाद का उत्कृष्ट उत्पादन
इन्दौर ऑफिस : २५/१, शिरीष चेम्बर, यशवंत निवास रोड, इन्दौर-३
Vigilance

परदे के अदाकारों का संघर्ष शब्द से खासा वास्ता रहता है। यह वह शब्द है जो कलाकार में जीवटता भी लाता है और प्रेरणा-स्रोत भी है। बंबई पहुँचने वाली करीब हर गाड़ी में औसतन एक व्यक्ति जरूर उतरता होगा, जिसकी ख्वाहिश परदे पर अपनी कला का सिक्का जमाने की होती है। हिंदी फिल्मों के ७७ साला इतिहास में सैकड़ों दर्जन कलाकार ऐसे आए जो आए तो परदे को फतह करने की नीयत से थे पर एक चमक दिखाकर गुमनामी के अंधेरों में खो गए। अब तक कितने कलाकारों ने यह करिश्मा किया इसका कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यदि

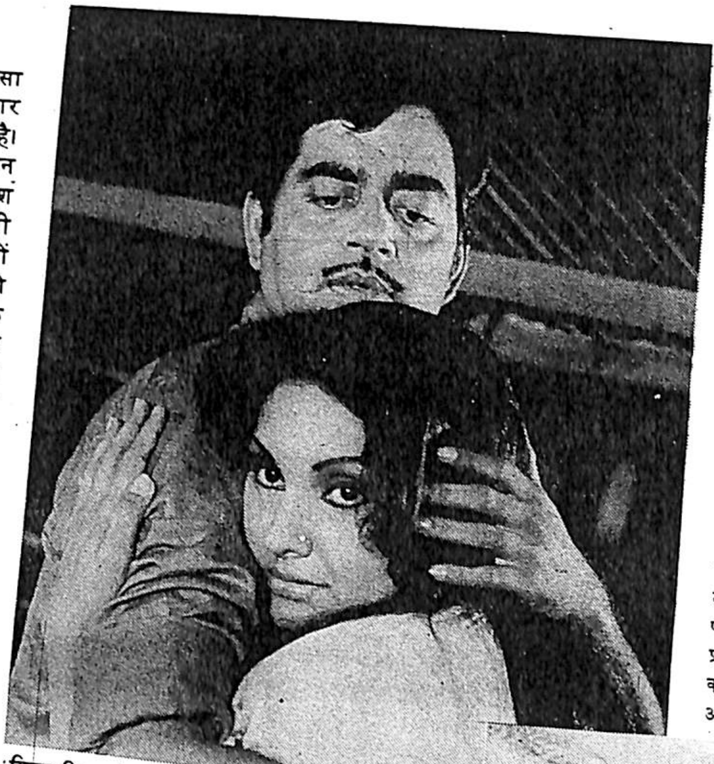
तारिकाएँ, जो टिमटिमा कर रह गईं

से कलाकारों का हिसाब भी रखा जाता तो उस हरिस्त के पुख्ता होने का दावा नहीं किया जा कता। क्योंकि सफल होने वाली हर दूसरी फिल्म एक ऐसे कलाकार का जन्म होता है जो शिखर पहुँचने की कोशिश तो करता है पर अनिश्चित-ओं की इस दुनिया के वक्त के थपेड़े उसके मानों के महल को चकनाचूर करने में देर नहीं ते।

बात यदि सिर्फ एक-दो बार चमक दिखाकर हो जाने वाली अभिनेत्रियों की की जाए तो ड़ों ऐसे नाम जेहन में उभरेंगे जो अब या तो से मुँह मोड़ चुके हैं या अस्तित्व की लड़ाई में पीछे छूट गए हैं। इस लेख में ऐसी चंद नेत्रियों की याद को फिर से ताजा करने की श की गई है जो कुछ दिन में तो खासी चर्चा हीं पर धीरे-धीरे उनकी ख्याति को वक्त की ढँक लिया।

त की शुरूआत की जाए **रंजीता** से जो कई फिल्मों में काम करने और बेहतरीन त्री का खिताब पाने के बाद भी अचानक हो गई। सत्तर के दशक के मध्य में राहुल की **लैला-मजनूँ** और राजश्री की **अँखियों खों से** सेल्युलाइड के परदे पर छा जाने यह अभिनेत्री बाद में **तराना** में चमकी। की इस फिल्म की सफलता का कारण ा, पर सारा श्रेय गया रंजीता के खाते में। अचानक वक्त ने पलटा खाया और रंजीता सफलता के शिखर से फिसलने लगा। साथ जोड़ी बनाकर कई फिल्मों में काम बावजूद आज रंजीता क्या कर रही है ोई नहीं जानता।

ी की ही एक देन थी **जरीना वहाब**।



विद्या सिन्हा के साथ शत्रुघ्न

अमोल पालेकर और विजयेन्द्र के साथ **चितचोर** से अपना कैरियर शुरू करने वाली जरीना में लोगों ने जया जैसा अश्क देख लिया था। राजश्री की पारंपरिक सामाजिक कहानियों वाली कई फिल्मों में काम करने के बाद भी जरीना को दूसरे निर्देशकों ने ज्यादा प्रोत्साहित नहीं किया, इसका नतीजा यह हुआ कि जरीना ने छोटे परदे (दूरदर्शन) की तरफ रुख कर लिया और आज वो बजाए एक अभिनेत्री के आदित्य पंचोली की पत्नी के रूप में ज्यादा पहचानी जाती है।

इसी दशक में आई रजनीगंधा (बासु भट्टाचार्य) ने एक नई अभिनेत्री **विद्या सिन्हा** को जन्म दिया था। सीधे-सादे सहज अभिनय वाली इस अभिनेत्री ने बाद में कई बड़े-बड़े कलाकारों और निर्देशकों के साथ काम किया। राजेश खन्ना और शबाना आजमी के साथ फिल्म **कर्म** में उसके अभिनय को सराहना भी मिली पर बात बनी नहीं। बाद में एक दूरदर्शन धारावाहिक 'सिंहासन बत्तीसी' बनाकर विद्या ने अपने अस्तित्व को बचाए रखने की काफी कोशिश की, लेकिन बतौर अभिनेत्री तो लोग उनकी पहचान को भुला ही चुके हैं।

बात सहज अभिनय करने वाली अभिनेत्रियों की चल रही है तो सफल होकर खो जाने वाली अभिनेत्रियों में एक नाम **रामेश्वरी** का भी है। संयोग कहा जाए या दुर्भाग्य रामेश्वरी का कैरियर भी राजश्री की फिल्म **दुल्हन वही जो पिया मन भाए** से शुरू हुआ था। यह वह दौर था जब जया भादुड़ी ने फिल्मों को हमेशा के लिए अलविदा कह दिया था। इस फिल्म की सफलता ने रामेश्वरी को चर्चित कर दिया था। फिल्म समीक्षकों ने इस अभिनेत्री को उस कुर्सी पर बैठा दिया जो जया भादुड़ी ने खाली की थी। रामेश्वरी के बारे में यह तक कहा जाने लगा कि उनके अभिनय से उन निर्देशकों की इच्छा पूरी हो सकेगी जो जया को लेकर फिल्म बनाना चाहते थे। लेकिन रामेश्वरी अपनी इस सफलता को भुना नहीं सकी और अपनी इमेज तोड़ने की कोशिश में **सुनयना** की शूटिंग में घोड़ा चढ़ते समय घायल हो गई। इस दुर्घटना ने रामेश्वरी की एक आँख में स्थाई खोट पैदा कर दिया। आज रामेश्वरी बड़े परदे की जगह छोटे परदे के दोपहर के प्रसारण को संचालित करती ज्यादा नजर आती है।



तुराब

सत्तर के दशक के उत्तरार्ध की सफल फिल्मों में ताहिर हुसैन की **हम किसी से कम नहीं** भी थी। ऋषि कपूर के साथ इसमें **काजल किरण** को भी सफलता का श्रेय मिला। पर बाद में काजल के खाते में कोई सफल फिल्म नहीं रही। फिल्मों में छोटे-छोटे रोल करने के बाद आज काजल के पास कोई बड़ी फिल्म नहीं है।

राजेन्द्र कुमार ने कुमार गौरव के लिए **लव स्टोरी** बनाई थी, लेकिन इस फिल्म से कुमार गौरव से ज्यादा फायदा अभिनेत्री **विजेयता पंडित** को हुआ। पहली फिल्म की सफलता के बाद विजेयता को कई प्रेम प्रधान फिल्में मिलीं पर लव स्टोरी की सफलता का दोहराव नहीं हो सका। इस अभिनेत्री की एक फिल्म **कार-थीफ** देवआनंद के लड़के सुनील आनंद के साथ बनकर तैयार है पर खरीददार नहीं मिल रहा है।

अस्सी के दशक में चर्चित अभिनेत्री होने के बाद असफलता का मुँह देखने वाली एक अभिनेत्री **अनिता राज** थी। राज बब्बर के साथ दूल्हा बिकता है, अच्छा-बुरा और प्रेमगीत फिल्मों के

तारिकाओं

● स्वरूप वाजपेयी

एक साथ रिलीज होने के बाद अनिता का नाम चल पड़ा। बिंदास अभिनेत्री के रूप में अनिता की एक अलग पहचान बन रही थी कि वक्त ने करवट ली और अनिता असफलता के खाते में दर्ज हो गई। एक दर्जन से ज्यादा फिल्मों में नायिका की भूमिका करने वाली इस अभिनेत्री का बाजार अचानक गिर क्यों गया, इसका जवाब किसी के पास नहीं है। खुद अनिता भी यह नहीं जानती, लेकिन यह निश्चित है कि अनिता राज के शादी के फैसले का इसमें बहुत बड़ा हाथ है।

विजेयता पंडित की ही बड़ी बहन सुलक्षणा पंडित भी उन अभिनेत्रियों की फेहरिस्त में दर्ज हैं जो चंद सफल फिल्मों में काम करने के बाद 'एरीना' से बाहर हो गई। संजीव कुमार के साथ 'उलझन' में काम करने के बाद सुलक्षणा की पहचान संवेदनशील अभिनेत्री के रूप में होने लगी थी। 'अपनापन' ने तो सुलक्षणा को खासा प्रसिद्ध कर दिया पर गायिका और नायिका बनने की जिद ने सुलक्षणा को हमेशा के लिए भुला देने के लिए मजबूर कर दिया।

मुनमुन सेन भी उन अभिनेत्रियों में से एक है जो एक झलक दिखाकर ओझल हो गई। वैसे मुनमुन के खाते में एक भी सफल हिंदी फिल्म नहीं रही पर बंगाली फिल्मों की सफलता ने उन्हें हिन्दी में चर्चित कर दिया था। अंदर-बाहर, मुसाफिर, शीशा, चमक-दमक और सुर्खियाँ समेत कई फ्लॉप फिल्मों के बाद आज मुनमुन दूरदर्शन के दूसरे दर्जे के धारावाहिकों और विज्ञापनों में मॉडलिंग कर रही है।

'घुंघरू' और 'मेरी अदालत' के जरिए फिल्मों में पदार्पण करने वाली **कोमल महुआकर** भी आज कहाँ, क्या कर रही है इसका ठीक-ठाक पता नहीं है। यही हाल सुनील दत्त की फिल्म 'दर्द का रिश्ता' में बाल कलाकार की भूमिका करने वाली **खुशबू** की भी है। 'दर्द का रिश्ता' में तो खुशबू के अभिनय की अच्छी तारीफ हुई पर बतौर नायिका 'तनबदन' और 'जानू' की असफलता ने खुशबू की खुशबू को सीमित कर दिया। मजबूर होकर खुशबू ने हिंदी फि ों से विदाई लेकर दक्षिण की भाषाओं की ों में काम ढूँढना शुरू कर दिया।

इसके अलाव। भी सैकड़ों अभिनेत्रियाँ ऐसी हैं जो एक चमक भर दिखाकर लुप्त हो गई। इनमें से कुछ हैं **गीता काक** (गर्म हवा), **रजनी शर्मा** (बालिका वधू), **सुधा चंद्रन** (नाचे मयूरी, पति परमेश्वर), **रमा विज** (टैक्सी-टैक्सी, और पल दो पल का साथ), **साधना सिंह** (नदिया के पार), **बिंदिया गोस्वामी** (दादा और अन्य फिल्में), **सारिका** (गीत गाता चल), वगैरा। ■

रामेश्वरी



रंजीता



जरीना वहाब



सारिका



फिल्मी दुनिया में अनेक ऐसी भी नायिकाएँ हुई हैं जिन्हें फिल्में तो खूब मिलीं किंतु उन्हें वह शोहरत तथा दौलत प्राप्त नहीं हो सकी, जो उनकी समकालीन बटोर गईं। मसलन शोभना समर्थ या नूरजहाँ की तुलना में मुमताज शांति अथवा मुनव्वर सुल्ताना या साधना, आशा पारिख, शर्मिला टैगोर और सायरा के दौर में इंद्राणी मुखर्जी, सईदा खान, विजया चौधरी या प्रवीण चौधरी वगैरह। प्रस्तुत है कुछ ऐसी ही नायिकाएँ—

मुमताज शांति

पाँचवें दशक की ऐसी अभिनेत्री, जिसने उस दौर के प्रमुख अभिनेताओं- मोतीलाल (पगली दुनिया), सुरेन्द्र (चाँद-चकोरी), चंद्रमोहन (मगधराज, श्रवण कुमार), वास्ती (दीवानी), अशोक कुमार (पद्मिनी), कुमार (दूसरी शादी) और दिलीप कुमार (घर की इज्जत)- के साथ फिल्में कीं। कुछ एक चली भी पर एक क्रेज, जो किसी नायिका का बन जाता है, वह उनके साथ नहीं बन पाया।

मुनव्वर सुल्ताना

सहगल के सोज को थामकर एक गीत १९४५ में बहुत अधिक मकबूल हुआ था। अनिल दा के निर्देशन में मुकेश ने गाया 'दिल जलता है तो जलने दे, आँसू न बहा फरियाद न कर' फिल्म थी पहली नजर। मोतीलाल एवं वीना थे नायक-नायिका और इसी में मुनव्वर सुल्ताना भी थीं। दर्द में सुरैया और बाबुल में नरगिस के साथ सहनायिका। वे नायिका भी बनीं, प्रसिद्ध हीरो श्याम के साथ मजबूर, दादा, कनीज, रात की रानी, सुरेन्द्र के साथ ऐलान और मेरी कहानी, मजहर खान के साथ नैया और सोना तथा याकूब के साथ निस्बत फिल्मों में वे आई। लगभग तीस फिल्मों की चर्चा भी उन्हें चर्चित कतार में न रख सकी।

मनोरमा

एक कॉमेडियन तथा खलनायिका, कुटिल चाची, मामी अथवा हँसने-हँसाने का वर्तमान दौर में रोल अदा करने वाली गोल-मटोल **मनोरमा** किसी वक्त में फिल्मों में नायिका के किरदार भी बड़ी ही खूबी से अंजाम दे चुकी हैं। १९४५ में परदे पर आई चंपा में बबीता के पिता हरि शिवदासानी मनोरमा के नायक थे। बदनामी में मजनूँ, खामोश निगाहें में अलनासिर, चुनरिया में वास्ती को हीरो के रूप में कबूल करती मनोरमा ने राजन हक्सर से विवाह रचा लिया। पंछी, शुक्रिया, रेहाना, चाँद-सितारे, प्यार की जीत, सुहागी, चकोरी, सच्चा प्यार, सरताज, माँ का

की छाँव में खड़ी तारिकाएँ

प्यार, मनोरमा की वे फिल्में हैं जिनमें वे नायिका या सहनायिका के रूप में परदे पर आई हैं। बाद में चरित्र भूमिकाओं में विभिन्न चरित्रों को जीते-जीते उन्हें एक जमाना हो गया है और तमाम फिल्में उनके नाम पर दर्ज हैं।

यशोधरा काटजू

एक छोटी सी शख्सियत जिसने फिल्मों में गंभीरता का कम, हास्य का अधिक सृजन किया, उसका नाम यशोधरा काटजू है। पाँचवें और छठे दशक में काटजू की अधिकांश फिल्में आईं नीलम, देवर, आँखें, ढोलक, नौजवान, दामाद, चक्रधारी, चाँदनी चौक, शबाब, तीरंदाज, मदभरे नैन, एक ही रास्ता और किस्मत के खेल उनमें प्रमुख हैं। मासूमियत के साथ शरारत वाला अंदाजेबयाँ लेकर अपना रोल अदा करना उनकी विशेषता रही।

शीला रमानी

आज की शीला रमानी को देखकर हालाँकि कल की रमानी की कल्पना नहीं की जा सकती किंतु छरहरे बदन की इस सिंधी कन्या ने अपने तई अच्छी फिल्में छठे दशक तक दी हैं। शांताराम के तीन बत्ती चार रास्ता के भारतीय परिवार की एक बहू अथवा टैक्सी ड्राइवर की क्लब डांसर या अंजलि की बौद्धयुगीन बाला रमानी ने गुलाम, बेगम, बादशाह, जंगल किंग, सुल्ताना डाकू, मि. सुपरमैन की वापसी जैसी स्टंट फिल्में भी दी हैं तो जोरू का भाई, गुरु घंटाल और फंटूश जैसी हास्य फिल्में भी। सुरंग, कलाकार, नौकरी, घमंड सी सामाजिक फिल्में भी उनके नाम हैं। देव आनंद, बलराज साहनी, किशोर कुमार, भारत भूषण, रजीत, मोतीलाल, जयराज, सुनीलदत्त, चेतन आनंद और दलजीत उनके नायक रहे हैं।

स्मृति विश्वास

तीन बत्ती... से मॉडर्न गर्ल तक का सफर स्मृति विश्वास ने तय किया। निर्माता-निर्देशक स. डी. नारंग से विवाह किया। हमदर्द (निम्मी-खर) तथा हमसफर (देव आनंद-कल्पना र्तिक), बाप रे बाप (किशोर-चाँद उस्मानी), गमभाग (किशोर-भगवान), चाँदनी चौक मीना कुमारी-शेखर), दिल्ली का ठग (नूतन-शोर) स्मृति की सहनायिकाओं वाली लेखनीय फिल्में हैं।

त्रा

चोर बाजार (शम्मी कपूर) की नायिका ा ने विशेष दर्शक वर्ग अपने लिए बनाया और लंबे अरसे तक उस वर्ग की लोकप्रिय नायिका । दलजीत, महिपाल और आजाद के साथ ा ने अपने फिल्मी जीवन की अधिकांश फिल्में दलजीत के साथ बगदाद का चोर, रूप बसंत, हातिम, आलमआरा, इंद्रसभा, बसरे की हूर, सरदार, बंसरी बाला, शान-ए-हातिम, महिपाल के साथ अलादीन का बेटा, खुल जा सिमसिम, सुल्तान-ए-आलम, शाही बाजार। लगभग सात-आठ वर्षों तक चित्रा का स्टंट फिल्म संसार में एक छत्र राज्य रहा।

कृष्णा कुमारी

यदि फिल्मों की संख्या की दृष्टि से बात करें तो चित्रा और शकीला जैसी समर्थ अभिनेत्रियों की तुलना में कृष्णा कुमारी ने अधिक फिल्में दी हैं किंतु लोकप्रियता के दृष्टिकोण से कृष्णा कुमारी उनसे पीछे ही रहीं। बतौर सहायक अभिनेत्री कृष्णा काफी सफल रही। दामाद, नया रास्ता, धूप-छाँव, नागिन, लाड़ला, देवता, भागवत महिमा, श्रीकृष्ण भक्ति, नागमणि, नागलोक, श्रीगणेश, रामभक्त विभीषण, चीनी जादूगर, तिलस्मी दुनिया, स्टेट एक्सप्रेस, ब्लैक राइडर, मि. तूफान और सजनी, कृष्णा की उल्लेखनीय फिल्में हैं।

अमिता

काफिला में अशोक कुमार-नलिनी जयवंत के साथ शामिल **अमिता** एक लंबे अरसे तक फिल्म निर्माण की फैक्टरी फिल्मिस्तान से जुड़ी रहीं तथा मुनीमजी (देव-नलिनी), हम सब चोर हैं (शम्मी कपूर-नलिनी), अभिमान (शेखर), जमाना (कमलजीत), हम भी कुछ कम नहीं (रंजन), आँगन (रहमान), मैंने जीना सीख लिया (रवीन्द्र कपूर) तथा सबसे बढ़कर तुमसा नहीं देखा (शम्मी कपूर) फिल्मों से जुड़ी। तुमसा नहीं देखा, अमिता के कैरियर की सर्वाधिक हिट फिल्म थी। गूँज उठी शहनाई (राजेन्द्र कुमार), छोटे नवाब (महमूद) और मेरे महबूब (राजेन्द्र कुमार) ने भी अमिता को उभारा। किंतु अमिता के हिस्से में बी ग्रेड फिल्में ही अधिक आईं या फिर सहायक भूमिका और इसलिए उनके कैरियर पर स्टार का



मुनव्वर सुल्ताना *पूर्णिमा*



शीला रमानी

सुमित्रादेवी





ठप्पा नहीं लग सका।

आशा माथुर

कालीघटा में किशोर साहू ने आशा माथुर को ब्रेक दिया। हमारी दुनिया और मयूर पंख में भी वे किशोरजी के साथ थीं। पर कालीघटा में आशा के साथ बीना राय भी थीं और इसलिए बाद की भी अधिकांश फिल्मों में आशा माथुर को नायिका का महत्वपूर्ण किरदार मयस्सर न हुआ और जो चरित्र मिले भी, उनमें भी शिखर पर जाने वाली बात न आ सकी। पूनम (कामिनी कौशल), आलिफ लैला (निम्मी), टूटे खिलौने (पूर्णिमा), विल्व मंगल (सुरैया), अमानत (चाँद उस्मानी), गंगा मैया (सुमित्रा देवी), नकाब (मधुबाला), राज दरबार (निरुपारॉय) ऐसी ही फिल्में थीं जिसमें आशा माथुर थीं भी और नहीं भी। अंततः उन्होंने मोहन सहगल (नई दिल्ली के निर्माता निर्देशक) से विवाह रचा लिया और फिल्मों से विदा ले ली।

सईदा खान

अपना हाथ जगन्नाथ में किशोर कुमार के साथ आकर सईदा ने अपने तई अच्छा अभिनय किया था किंतु बाद में जो भी फिल्में मिलीं उनमें वे आती रहीं तथा अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं बना सकीं। फ्लेट नं. ९, काँच की गुड़िया, मॉडर्न गर्ल में क्रमशः अशोक, मनोज, प्रदीप के साथ आकर भी सईदा फिसल गई तथा बाद में चार दरवेश, मैं हूँ अलादीन, बेखबर, मैं शादी करने चला, सिंदबाद अलीबाबा अलादीन जैसी फिल्मों की होकर रह गईं।

विजया चौधरी

सट्टा बाजार, बड़ा आदमी, सहेली फिल्में अच्छी थीं पर विजया का किरदार था छोटा और उन्होंने भी अपने लिए एक नया आँगन तलाश लिया। परिणामतः रूपलेखा, भूतनाथ, नागमोहिनी, रुस्तम-ए-बगदाद, बिरजू उस्ताद, रुस्तम-ए-रोम, जंतर-मंतर, नाग मंदिर, प्रोफेसर एक्स, शीबा एंड हरक्यूलिस, जादूनगरी जैसी फिल्मों ने विजया को अपने जाल में जकड़ लिया। सरस्वतीचंद्र, आरती और संबंध का सहायक रोल भी उनके काम न आ सका।

प्रवीण चौधरी

शम्मी कपूर की फिल्म प्रोफेसर जिन्हें याद है वे यह भी जानते हैं कि कल्पना, शम्मी के साथ थीं और प्रवीण चौधरी का रोमांस (फिल्मी) सलीम (प्रोफेसर में सहनायक) के साथ चल रहा था। फिर तेरे घर के सामने, शहनाई, सगाई, झुक गया आसमाँ, पूर्णिमा जैसी फिल्में आईं जिसमें बतौर सहनायिका प्रवीण थीं। बात कुछ बन न सकी और उन्हें भी एक और रॉबिन हुड, पंचरतन, शेरदिल, इंसाफ और तीन सरदार सी फिल्मों का सहारा लेना पड़ा।

सोनिया साहनी

'जौहर मेहमूद इन गोआ' जिसमें आई. एस. जौहर ने सिम्मी के साथ सोनिया को भी लिया था, किस्मत और संयोग से अचानक हिट हो गई और जौहर ने इस मौके को अपने ढंग से कैश कराना चाहा। सोनिया को लेकर उन्होंने जौहर इन काश्मीर, जौहर इन बॉम्बे और मेरा नाम जौहर बना डाली। सोनिया की इमेज इस जौहर में कैद हो गई और बाद में वे कोई जौहर नहीं दिखा सकीं। कहने को अक्लमंद, बंदिश, दर्पण, रात के अंधेरे में, कौन हो तुम और शराफत में भी वे दिखाई पड़ी थीं।

श्यामा

श्यामा में शोखी और चुलबुलापन भले ही न रहा हो जितना कि मधुबाला या गीताबाली में नजर आता था। संजीदगी भी हालाँकि कम ही थी जिसे नरगिस या मीना कुमारी ही अदा कर सकती थी। पर श्यामा, श्यामा थीं और यदि यह कहा जाए कि उन्होंने अपनी अदाकारी को बहुआयामी बना डाला तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। उन्होंने सामाजिक, स्टंट, वेशभूषा प्रधान, ऐतिहासिक, हास्य, गरज कि प्रत्येक तरह की फिल्मों में भूमिकाएँ कीं। उनके नायकों में अगर जॉनी वॉकर थे तो अशोक कुमार भी। बलराज साहनी थे तो देव आनंद भी। भगवान दादा थे तो तलवारबाज रंजन भी। मोतीलाल थे तो राजकुमार भी और सुरेश थे तो सज्जन भी। तात्पर्य यह कि श्यामा इस बात का कदाचित दावा कर सकती है कि उन्होंने ही फिल्म संसार में अधिकतम नायकों के साथ काम किया और फिल्में भी इतनी अधिक कीं कि अच्छी-अच्छी नायिकाओं ने नहीं कीं।

फिल्म जीनत की कव्वाली 'आहें न भरी शिकवे न किए कुछ भी न जुबाँ से काम लिया' में श्यामा के भी दृश्य थे और १९५१ के बाद तो श्यामा ने फिल्मों को कुछ इस तरह से पकड़ा कि आने वाले चौदह-पंद्रह वर्षों तक उसे छोड़ा नहीं। इन वर्षों में उन्होंने अपने समकालीन लगभग प्रत्येक नायक-नायिका के साथ अभिनय किया।

हास्य फ़िल्मों में श्यामा की शोखियों को परवान चढ़ाया कॉमेडियन जॉनी वॉकर ने- दुनिया रंग-रंगीली, माई-बाप, खोटा पैसा, छूमंतर, मुसाफिरखाना, मिस्टर कार्टून एम. ए. ऐसी ही फिल्में हैं और संयोग से उक्त फिल्मों को एक ही निर्देशक एम. सादिक ने निर्देशित किया है। हाहा-हीही-हूहू, मि. चक्रम, मक्खीचूस, पिलपिली साहब भी श्यामा के अभिनय में बँधी हास्य फिल्में थीं। गुल सनोवर, सल्तनत, तातार का चोर, शाही मेहमान, ताजपोशी, जबक, नागपद्मिनी, स्टंट और वेशभूषा प्रधान फिल्में रहीं तो भाई-भाई, भाभी, चंदन, प्यासे नैन, धूप-छाँव, ठोकर, दिल नादान, बरसात की रात, तराना और सजा जैसी सामाजिक तथा प्रणय फिल्मों में भी श्यामा वर्ण नुमायाँ हुआ है। ■





चित्रा कुलदीप कौर अमिता श्यामा





वैजयंतीमाला

शिखर पर संन्यास लेने का आत्म-संतोष

साक्षात्कार: शिखा परिहार

फिल्मों के गौरवशाली और स्वर्णिम इतिहास को अपने में समेटे अभिनेत्री **वैजयंतीमाला** पिछले दो लोकसभा चुनावों में लगातार चुनकर संसद में आ रही हैं। १३ अगस्त १९३३ को जन्मीं वे अभी अपनी उम्र से लगभग बीस वर्ष छोटी लगती हैं, जिसका श्रेय वे अपनी नृत्य साधना को देती हैं।

मद्रास के अपने चुनाव क्षेत्र की समस्याएँ, संसद और नृत्य कार्यक्रमों की व्यस्तताओं में दौड़-भाग करती वैजयंतीमाला से हर रोज फोन पर न, नुकुर और व्यस्तताओं का हवाला सुनते एक रात अचानक आठ बजे मैं उनके घर धमक जाती हूँ। कहीं जाने के लिए बाहर निकलते हुए वह ठिठक जाती हैं। 'परदे की परियों के लिए मेरी जरूरत है?' प्रश्न करती हैं। 'हाँ आपके बगैर तो परियों का गौरवमयी इतिहास अधूरा ही रह जाएगा।' मैं उनकी 'ना' के लिए मारे रास्ते बंद कर देती हूँ, और वे मुंस्करा पड़ती हैं। तुम मानोगी नहीं, लेकिन सचमुच वक्त नहीं है। नृत्य कार्यक्रम की मीटिंग है अभी वहाँ पहुँचना है, कब करोगी? मैं तपाक से कहती हूँ तो ठीक है आपको जहाँ जाना है, वहाँ तक मैं भी आपके साथ गाड़ी में चलती हूँ। रास्ते में बात कर लेंगे। और फिर साथ हो लिए।

फिल्मों में कैसे आईं आप?

कभी चाहा या सोचा नहीं था। चाहा तो बस नृत्यांगना बनना ही था। नृत्य जैसे मुझसे जन्मते ही जुड़ गया था। माँ वसुंधरा देवी हालाँकि दक्षिण भारत की प्रमुख फिल्म अभिनेत्री थीं, लेकिन मुझे बस नृत्य ही चमत्कृत करता था। छः वर्ष की थी तभी योरप की यात्रा की। वहाँ पोप के सामने नृत्य कर स्वर्ण पदक प्राप्त किया। ऐसे ही स्कूल में नृत्य कार्यक्रम पेश करते हुए एक निर्माता निर्देशक ने फिल्म का प्रस्ताव किया और मैं फिल्मों में आ गई। मेरी पहली दक्षिण भारतीय फिल्म थी 'वाड़के' (जिंदगी)। निर्देशक एम.वी. रमण सर्वप्रथम मुझे हिन्दी फिल्म **'बहार'** (१९५१) में लाए जिसका निर्माण ए.वी.एम. ने किया था। यह फिल्म तीन भाषाओं में बनी थी और तीनों ही भाषाओं में इसे भारी सफलता मिली। **बहार** की सफलता देखकर निर्माताओं ने मुझे बंबई बुला लिया। दूसरी हिन्दी फिल्म **'अंजाम'** (१९५२) थी और तीसरी **'मिस माला'** (१९५४)। वैसे ये फिल्में ज्यादा सफल नहीं हो पाईं। लेकिन तब निर्माता आज की तरह सिर्फ बॉक्स ऑफिस की सफलता को ही पैमाना नहीं मानते थे। उन्हें कलाकार की परख थी। इन फिल्मों की असफलता के बाद भी मुझे फिल्में मिलीं और फिलिमस्तान की **नागिन** (१९५४) मेरे लिए मील का पत्थर साबित हुई। नागिन ने मुझे स्थापित कर दिया और फिर तो एक सिलसिला ही चल निकला। **मधुमती** (१९५८) **नया दौर** (१९५७) और बाद में **संगम** (१९६४) से **संघर्ष** तक।

अपने उस स्वर्णिम अतीत को कैसे याद करतीं हैं?

बहुत खूबसूरत और मधुर रहा है मेरा अतीत। बहुत संतुष्ट महसूस करती हूँ अपना समय याद करके। इतने अच्छे साथी कलाकार थे। निर्माता-निर्देशक सब कला के मुरीद, एक-एक सीन पर घंटों खुद भी मेहनत करते थे और हमसे भी करवाते थे, मुझे तो लगता है वह फिल्मों का गौरवशाली युग था, जिसने कई यादगार फिल्में इतिहास को सौंपी हैं। मेरे उस फिल्मी दौर की सबसे खास बात यह थी कि कथानक के साथ-साथ नृत्य- संगीत को भी बराबरी का दर्जा प्राप्त था। मेरी अधिकांश फिल्मों में मेरे लिए नृत्य प्रधान गीत खास तौर पर रखे जाते थे जिनका आधार शास्त्रीय होता था। उन दिनों फोटोग्राफी और अन्य तकनीक इतनी विकसित नहीं थी कि मनचाहे 'इफेक्ट' पैदा किए जा सकें। हर चीज के लिए हमें पूरी मेहनत करनी होती थी। मेरी रुचि भी नृत्यों में अधिक थी तो गीत के शब्दों के अलावा संगीत के समय भी कैमरा हम पर फोकस रहता था ताकि पूरा नृत्य हम दिखा सकें। मधुमती का लोकगीत पर आधारित नृत्य 'चढ़ गयो पापी बिछुआ' हो या कि ओठों पे ऐसी



◆◆◆

- **इंदिराजी के विचारों से ऐसी प्रभावित हुई कि राजनीति में आ गई।**
- **मैं लोकप्रियता के शिखर पर थी और मुझे लगा यही सही समय है दर्शकों से विदा लेने का और मैंने शालीनतापूर्वक विदा ले ली।**
- **आज सांसद के रूप में जरूरतमंदों की सेवा करने से मन को सुकून मिलता है।**

बात मैं दबा के चली आई' जैसे गीत हों आज भी याद किए जाते हैं।

साथी कलाकारों के बारे में कुछ बताएँ?

सभी बेहद अच्छे थे। दिलीप साहब, देव साहब और राज साहब। सभी एक से बढ़कर एक। और सभी ने मुझे भरपूर सहयोग दिया। हम सब वाकई अच्छे दोस्त थे। बेहद अपनापा था। वहीदाजी, नूतनजी, नरगिसजी और मीनाजी जैसी अभिनेत्रियाँ थीं।

उस बेहद अपनापे की वजह से शायद आपके या अन्य अभिनेत्रियों के नाम उनके साथी कलाकारों के साथ जुड़ते रहे हों।

मैं बाकी अभिनेत्रियों के बारे में तो कुछ नहीं कहूँगी, लेकिन जहाँ तक मेरा सवाल है, मुझे लगता है अच्छी फिल्मों के लिए सह कलाकारों से अपनापा, दोस्ती और सही ट्यूनिंग बेहद जरूरी है, फिर कलाकार भी इंसान ही होता है। मैं समझती हूँ उसकी निजी जिंदगी को सार्वजनिक जीवन से अलग रखने की छूट उसे मिलनी ही चाहिए।

फिल्में क्यों छोड़ दीं आपने जबकि आप शिखर पर थीं?

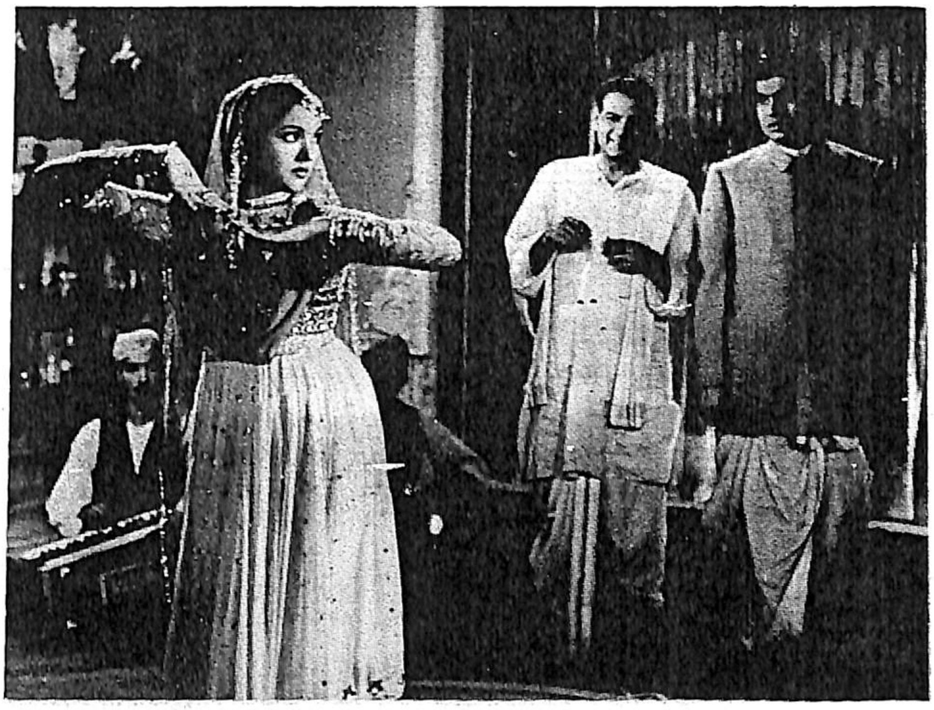
हाँ, सन् १९६८ में, मैंने फिल्में छोड़ दीं। **संघर्ष** मेरी अंतिम फिल्म थी। दो बातें हुईं। एक तो बाली साहब से शादी का प्रस्ताव था। शादी के बाद मैं स्वयं फिल्मों में काम नहीं करना चाहती थी। दूसरे उस समय मैं शिखर पर थी और मुझे लगा यही सही समय है, दर्शकों से बिदा लेने का और मैंने 'ग्रेसफुली' फिल्मों से बिदा ले ली। मुझे मालूम था कि मैं हमेशा शिखर पर नहीं रहूँगी। दो-चार- दस साल बाद मुझे अवश्य ही माँ की भूमिकाओं के प्रस्ताव आएँगे जो कि मैं कभी करना नहीं चाहती थी। आज भी लोगों को वही पुरानी वैजयंतीमाला याद है जो जवान थी नायिका थी लोगों के दिलों की धड़कन थी। आज भी चित्रहार में मेरे गाने आते हैं तो लोग यहाँ तक कि नई पीढ़ी के लोग भी मुझे फोन करते हैं। खत लिखते हैं। उनके सामने तो मेरी वही शख्सियत है। और बेशक एक कलाकार के लिए दर्शकों का यही प्यार और आकर्षण तो अमूल्य निधि होती है।

व्यक्तिगत जीवन कैसा रहा?

बहुत सुखी और अच्छा रहा। गृहस्थ जीवन के लिए ही मैंने फिल्में छोड़ दीं। बस नृत्य नहीं छोड़ा। नृत्य के कार्यक्रम करती रही। कुछ समय से अब बाली साहब नहीं रहे तो नृत्य कार्यक्रमों और जनता की सेवा में और अधिक व्यस्त हो गई हूँ। हाल ही में 'ओम शांति' नृत्य बैले काफी सफल रहा। अब और भी कार्यक्रमों की योजना बन रही है। नृत्य मेरे लिए पूजा है, ईश्वर है।

क्या आप मानती हैं कि फिल्मों का समाज पर असर पड़ता है? आजकल की हिंसक फिल्में क्या युवा पीढ़ी को गुमराह नहीं कर रहीं?

फिल्मों का समाज पर बहुत असर पड़ता है। खासकर युवा पीढ़ी तो कलाकारों की 'हेयर स्टाइल', बोलने, चलने सभी की हूबहू नकल करती है। हीरो या हीरोइन पर्दे पर जो करते हैं वही वे भी करना चाहते हैं। और मैं उन्हें इसके लिए दोषी भी नहीं मानती क्योंकि युवा मन होता ही इतना नाजुक है। मैं समझती हूँ ज्यादा जिम्मेदारी फिल्म बनाने वालों और कलाकारों की ही है कि वे मनोरंजन के नाम पर युवा पीढ़ी को गुमराह न करें। लोग अच्छी फिल्में ही देखना पसंद करते हैं। यदि ऐसा न होता तो अच्छी, भावना प्रधान फिल्में हिट न होतीं। मारधाड़ की कितनी फिल्में हिट होती हैं? आज अच्छी फिल्में दर्शकों को दी जा सकती हैं क्योंकि 'टेक्नीकली' सब कुछ बहुत तेजी से हो सकता है। आज प्रतिभा की भी कमी नहीं है लेकिन निर्माता निर्देशक और कलाकार 'शॉर्ट कट' अपनाते हैं। नतीजतन अच्छी फिल्में नहीं बन पातीं। (इतनी देर में वैजयंतीजी को जहाँ पहुँचना था वहाँ हम पहुँच जाते हैं। मेरे कुछ प्रश्न और बचे हैं। देखकर वे कहती हैं ठीक है मैं गाड़ी में ही बैठी हूँ, आप कुछ सवाल और कर लें)



'देवदास' में वैजयंती माला, मोतीलाल और दिलीप कुमार



राष्ट्रपति से संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्राप्त करते हुए।

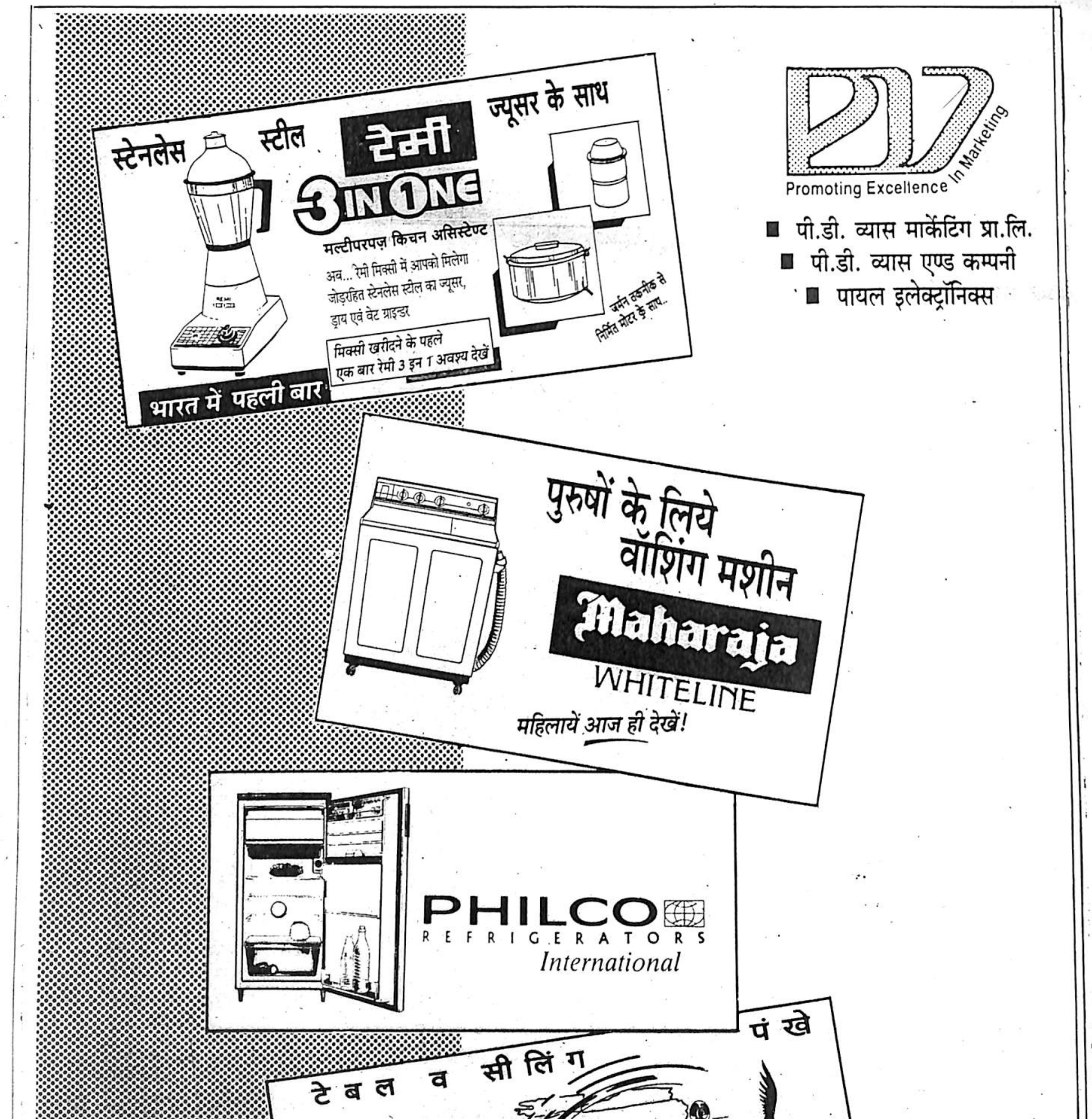
राजनीति में कैसे आईं, क्या राजनीतिक जीवन रास आया?

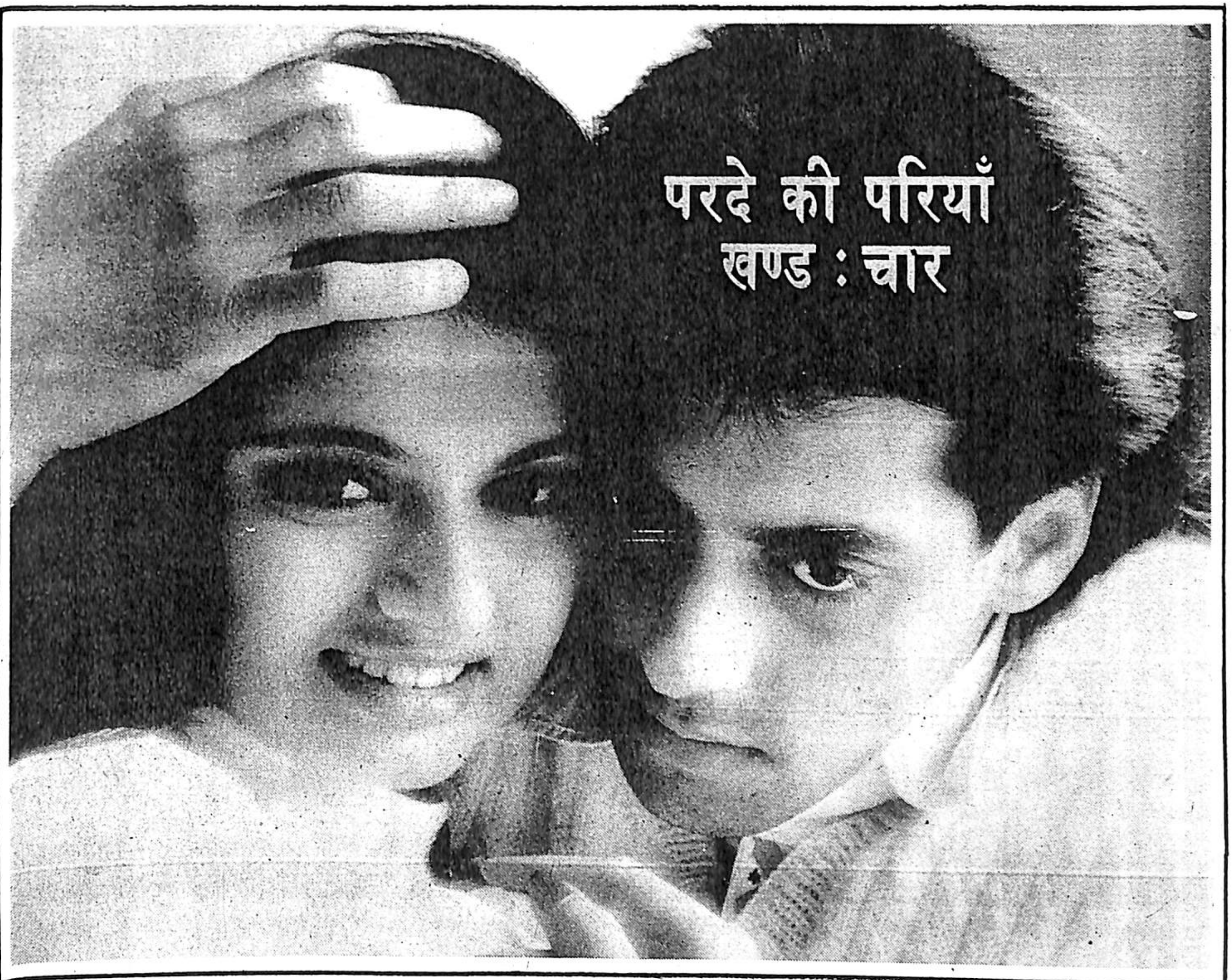
अपने खाली समय को लोगों की सेवा में लगाना चाहती थी। इंदिराजी से बेहद प्रभावित थी। कांग्रेस की आइडियोलॉजी से सहमत थी इसलिए कांग्रेस में आ गई। पति का भी बहुत सहयोग रहा। राजनीतिक जीवन है तो खतरों से भरा लेकिन जरूरतमंदों की मदद करने से सुकून मिलता है वो बयान नहीं कर सकती। नृत्य और लोगों की सेवा बस इसी में व्यस्त रहती हूँ। बहुत तरह के लोग बहुत तरह की समस्याएँ लेकर आते हैं। सब तो सुलझा नहीं सकते, लेकिन जितना मैं कर सकती हूँ जी जान से करती हूँ। अभी अपने निर्वाचन क्षेत्र से लौटी हूँ। बहुत से काम करवाने हैं। उसी में लगी हुई थी इसलिए आपको भी वक्त नहीं दे पा रही थी।

एक अंतिम प्रश्न, जीवन से कोई शिकायत है आपको?

कोई शिकायत नहीं। जिंदगी में जो बात, जो दुःख जो सुख जैसे मिला उसे वैसे ही अपनाया।

बातें बहुत थीं। उन्हें मीटिंग में जाना था, अगली बार बहुत देर तक मुझसे बातें करेंगी, इस बात का वादा करके, गले से लिपटाकर पारम्परिक रूप से बिदाई दी और बहुत से सवाल अपनी डायरी में समेटे मैं लौट आई। ■


स्टेनलेस स्टील
रेमी
ज्यूसर के साथ
3 IN 1 ONE
मल्टीपरपज़ किचन असिस्टेण्ट
अब... रेमी मिक्सी में आपको मिलेगा
जोड़रहित स्टेनलेस स्टील का ज्यूसर,
ड्राय एवं वेट ग्राइन्डर
मिक्सी खरीदने के पहले
एक बार रेमी 3 इन 1 अवश्य देखें
जर्मन तकनीक से
निर्मित मोटर के साथ..
भारत में पहली बार
पुरुषों के लिये
वॉशिंग मशीन
Maharaja
WHITELINE
महिलायें आज ही देखें!
PHILCO
REFRIGERATORS
International
टेबल व सीलिंग पंखे
आकाश
Promoting Excellence In Marketing
पी.डी. व्यास मार्केटिंग प्रा.लि.
पी.डी. व्यास एण्ड कम्पनी
पायल इलेक्ट्रॉनिक्स
Ankit-2796
राजवाड़ा, इन्दौर. फोन - 37155; 37151



'मैंने प्यार किया' (१९९०) के युवा प्रेमी: भाग्यश्री-सलमान खान

सात दशक में

फिल्म नायिका के बदलते रूप कितने झूठे, कितने सच्चे?

● फिरोज रंगूनवाला

जब हम भारतीय सिनेमा के प्रमुख प्रवाहों तथा अतीत के पैटर्नों की समीक्षा करते हैं तो पाते हैं कि हमारी नायिकाएँ कुछ विशिष्ट चरित्र-रूपों, विभिन्न छवियों, परिभाषाओं तथा गुणात्मक विशेषताओं के अनुकूल खुद को ढालती तो रहीं हैं, मगर हर टाइप अपने आप में एक अलग घेरा है और नायिकाएँ उसके भीतर ही घूमती रही हैं। इसीलिए नायिकाओं का विकास रेखात्मक न होकर वृत्तात्मक हुआ है।

और फिर हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हमारी परदे की नारियाँ कमोबेश वही हैं, जो पुरुषों ने उन्हें बनाना चाहा। फिल्म निर्माण में बहुत कम स्त्रियाँ उतरीं तथा जो उतरी भीं, उन्हें वितरकों-प्रदर्शकों तथा पैसे देकर फिल्में देखने आने वालों द्वारा तय किए गए खेल के नियमों का पालन करना पड़ा और इस वर्ग पर हमेशा पुरुष ही हावी रहा। यदा-कदा कोई एक-आध नायिका ने आगे बढ़कर परंपरा का विरोध अवश्य किया, मगर सामान्यतः फिल्मों में प्रदर्शित नारी एक मिथक, किवदंती, चाहे वह काल्पनिक हो या कोई अजूबा ही रही। जीवन की वास्तविक नारी का प्रतिनिधित्व परदे की नारी ने बहुत ही कम किया।

भारतीय सिनेमा के प्रारंभ में हम हरिश्चंद्र की तारामती को देखते हैं जो अपने पति की कठिन परीक्षाओं की घड़ियों में सिर झुकाकर चुपचाप उसका अनुगमन करती है। प्रारंभिक युग की मूक फिल्मों में सीता, सावित्री तथा पार्वती जैसी देवियाँ पूरी तरह सद्गुणों की अवतार सतियाँ थीं और वास्तविक जीवन में भी नारी की यही छवि आज तक बनी हुई है। यही नायिका **जय संतोषी माँ** जैसी धार्मिक फिल्मों में तो मौजूद है ही, उसे ही हम अत्याधुनिक परिधानों में 'मॉड', जूड़े तथा फैशनेबल ढंग की आज की हीरोइनों में भी छुपा हुआ देखते हैं।

भारतीय सिनेमा तथा समाज हमेशा से आधुनिकता और परंपरा के बीच संघर्ष प्रदर्शित करता रहा है और इस संघर्ष के केंद्र में भी हमेशा

भारतीय फिल्मों की नायिका में सन् १९१२ के बाद से कितने ही बाहरी परिवर्तन आने के बावजूद वह भीतर से कहीं बिल्कुल अपरिवर्तित ही रही है। इस अंतर्विरोध का कारण जहाँ काफी हद तक हमारे फिल्म निर्माताओं, लेखकों तथा अभिनेत्रियों की स्वयं को बदलने में अक्षमता रही है, वहीं इसके लिए हमारा परंपराओं से जकड़ा हुआ समाज तथा दर्शक समुदाय भी काफी हद तक उत्तरदायी रहा है। इन्हीं दो तत्वों के कारण वह एक बिंदु तक स्वयं को बदलने के बाद घूम-फिरकर अपने पुराने दायरे में लौट आती है।



हर किसी के इशारे पर नाचती है नायिका: पद्मा खन्ना



अंग प्रदर्शन की दौड़: जीनत अमान

नायिका को ही रखा जाता है। चाहे वह फिर १९२५ की मूक फिल्म **'सोसाइटी बटरफ्लाय'** (समाज की तितली) हो या १९७५ में बनी फिल्म **पोंगा पंडित** हो। प्रारंभ में यह जंग बिल्कुल सीधी तथा प्रत्यक्ष होती थी। जो कुछ पुराना है, वह आदर्श तथा हर नई चीज दुष्टतापूर्ण होती थी। आजकल यह संघर्ष थोड़ा नरम हो गया है तथा बीच के रास्ते भी तलाश किए जा रहे हैं। नई नायिका के सामने चुनौती यह है कि वह किस प्रकार आधुनिक रहते हुए भी दकियानूसियत को भी बनाए रख पाती है। कहानी के अंत में तराजू का पलड़ा परंपरावादिता के पक्ष में बुरी तरह झुका दिया जाता है। उसे हमेशा एक ही पुरुष के प्रति वफादार रहना है तथा अन्य पुरुषों से वह सिर्फ मित्रता रख सकती है।

ऐसा लगता है कि भारतीय पुरुष को अपनी स्त्री पर कभी पूरा विश्वास नहीं रह पाता, गो कि वह हमेशा पवित्र और वफादार रहती है। अतः नारी की नैतिकता और वफादारी को ही हमेशा नाटकीय दुविधा का बायस बनाया जाता है। यदि उसके कोई संतान होती है तो उसकी वैधता को भी कसौटी पर कसा जाता है, जैसा कि 'अग्नि-परीक्षा' की सीता के साथ हुआ। भारतीय मंच तथा सिनेमा ने इस संघर्ष को कई बार प्रस्तुत किया है और उसकी नायिका को या तो सीता या 'पाक दामन' की छवि में ढाल दिया जाता है।

नायिका अक्सर वह दुःखी प्रेमिका होती है, जिसे या तो उसका प्रेमी मिल नहीं पाता या उसे किसी अन्य (आमतौर से उससे उम्र में ज्यादा) व्यक्ति के साथ ब्याह दिया जाता है। इसकी सबसे अच्छी मिसाल **'देवदास'** में पार्वती की भूमिका है। सहगल के खिलाफ जमुना को यह भूमिका करते हुए हम देखते हैं कि बेचारी 'पारो' परंपरा के प्रति अपनी समस्त अवज्ञा के बावजूद परंपरा की बेड़ियों में जकड़े देवदास के साथ किसी तरह का रिश्ता बनाए रखने की जी तोड़ कोशिश करती है। 'वर्जित प्यार' के इसी विषय को हम बिब्बो के **'मनमोहन'** से लेकर स्वर्णलता के **'रतन'** तथा बिमल रॉय के 'देवदास' की सुचित्रा सेन तक दुहराया जाता देखते हैं।

'सोहनी-महिवाल', 'हीर राँझा' तथा 'लैला मजनूँ' की सनातन प्रेम-कथाओं के अनगिनत संस्करणों में भी यही विषय विस्तार पाता है। इन फिल्मों की मूल कथाओं या उनके संशोधित संस्करणों में अंत में प्रेमियों को सर्वस्व बलिदान करते हुए देखा जाता है। लैला की भूमिका को जहाँआरा, कज्जन तथा नूतन जैसे भिन्न व्यक्तित्व वाली अभिनेत्रियों ने साकार किया है। इनमें अब तक की सबसे लोकप्रिय प्रेम कहानी 'अनारकली' रही है, जिसे पुराने जमाने में सुलोचना, फिर बीना राय तथा अंत में **'मुगल ए आजम'** में मधुबाला ने अमरत्व प्रदान किया।

प्रेमिका का एक रूप थोड़े परिवर्तन के साथ उस नायिका का भी है, जो सब कुछ चुपचाप सहते हुए भी अपने उस प्रेमी का नाम कभी अपने ओंठों पर नहीं लाती जो उसकी गोद में अपना बच्चा डालकर परदेस चला जाता है। मंदिर में गंधर्व विवाह करके जाने वाले नायक के गम में जहाँ सागर कंपनी की **'जागीरदार'** में बिब्बो सब कुछ बर्दाश्त करती है, वहीं एवीएम की 'मैं चुप रहूँगी' में महान अदाकारा मीनाकुमारी भी इसी तथ्य को रेखांकित करती है कि नायिका सब कुछ चुपचाप ही झेलती है।

विवाह-पूर्व प्रेम तथा नायिका के गर्भ ठहर जाने के इस विषय के कई रूप-भेद थे, जिनमें सबसे प्रचलित उन्हें बहकाने और ठुकरा देने का था। मगर कई बार बलात्कार तथा उसके परिणामों का भी मर्मस्पर्शी चित्रण देखने में आया। **'पतिता'** में उषा किरण ने ऐसी ही नारी की यादगार भूमिका की थी। गुपचुप प्यार के द्वारा अवैध संतान का होना तथा पुत्र का बिल्कुल पिता के जैसा होना दुहरी भूमिका की संभावनाएँ पैदा कर देता था। **'आराधना'** में इसी विषय को उदात्त आधार प्रदान किया गया और नायिका शर्मिला टैगोर ने युवा प्रेमिका से बूढ़ी माँ तक की संवेदनशील भूमिका की। इन्हीं तत्वों तथा मधुर संगीत के कारण 'आराधना' साठ के दशक की लोकप्रियतम फिल्मों में गिनी जाती है। ऐसे सभी प्रकरणों में नायिका समाज के हाथों निंदित तथा दर्शकों द्वारा प्रशंसित होती है। यही समस्या एक भिन्न संदर्भ में दलित या अछूत नायिका द्वारा सवर्ण पुरुष से प्यार करने को लेकर **'अछूत कन्या'** या **'सुजाता'** में प्रस्तुत की गई। प्रथम फिल्म की नायिका देविका रानी तथा दूसरी की नूतन थी।

सिनेमा का एक अन्य प्रिय पात्र वह वेश्या या नाचने वाली होती है जो दिल से सती सावित्री होती है। प्रारंभिक दिनों में **'विश्व मोहिनी'** की गौहर से लेकर **'आदमी'** की शांता हुबलीकर तथा **'प्यासा'** की वहीदा रहमान से लेकर 'चेतना' की रेहाना सुल्तान तथा 'कॉल गर्ल' की जाहिरा तक, यह नायिका परदे पर उत्पीड़न तथा सिनेमा हॉल में सहानुभूति का पात्र बनती है। हालांकि वास्तविक जीवन में तो पवित्र वेश्या हजारों में एक होती होगी, सिनेमा ने हमेशा उसे पूजा है,

बशर्ते कि वह खलनायिका न होकर नायिका हो। इस दृष्टिकोण को उचित इस आधार पर ठहराया जाता है कि नायिका परिस्थितियों या तकदीर के हाथों इस दशा को प्राप्त होती है तथा उसका उद्धार किया जाना चाहिए। मगर **'साधना'** जैसे एक-आध अपवाद को छोड़कर, जिसमें नायिका वैजयंतीमाला का सुखांत होता है, ऐसे सभी किस्सों का अंत दुःखद तथा अप्रगतिशील ही दिखलाया जाता है। फिल्म-निर्माता किसी वेश्या को समाज या परिवार द्वारा अपना लिए जाने को प्रदर्शित करने की जोखिम ही नहीं उठाना चाहते। इसके बदले, दर्शकों के विरोध से डर कर वे ऐसे पात्र को उसकी मृत्यु या स्थाई विदाई के द्वारा कीर्ति-मंडित करना ही बेहतर समझते हैं। उसकी पीड़ा को अमर बना देने की यह तरकीब **'चेतना'** जैसी तथाकथित 'बोल्ड' तथा नई लहर की फिल्म में तक अपनाई गई।

नायिका तथा फिल्म-निर्माता की परेशानियाँ उस समय कुछ कम होती हैं, जब वह तकनीकी दृष्टि से केवल नर्तकी या कोठेवाली होती है और कई चकलों से गुजरने के बाद भी अपने कौमार्य को बचाए रखती है। दर्शकों के दिमागों में यह नारी हमेशा **'पाकीज़ा'** बनी रहती है। इसी नाम की फिल्म में मीनाकुमारी ने ऐसी ही जाल में फँसी एक औरत की भूमिका शानदार ढंग से अदा की थी, जो अंततः इस जाल से निकलने में सफल हो जाती है। लेकिन प्राचीनकाल की पृष्ठभूमि पर बनी **'चित्रलेखा'** (मेहताब और मीनाकुमारी), **'नर्तकी'** (लीला देसाई), **नाचवाली** (जद्दनबाई) या **'रामजोशी'** की तमाशा वाली हंसा वाडकर तथा **तीसरी कसम** (वहीदा रहमान) की नौटंकी वाली नायिकाओं का जीवन अस्तव्यस्त ही रहा।

फिर इससे कुछ ऊँचे वर्ग की नायिकाएँ होती हैं, वे रेडियो गायिकाएँ, मंच की अभिनेत्रियाँ या खुद सिनेमा स्टार, जिनके माध्यम से फिल्मी दुनिया प्रदर्शनकारी कलाकारों के समाज के साथ रिश्तों की व्याख्या करने के प्रयास करती हैं, वह यह दिखलाते हुए कि अपने पेशे की खातिर उन्हें कैसे-कैसे बलिदान करने पड़ते हैं, दर्शकों के मन में उनके लिए हमदर्दी का जज्बा पैदा करते हैं। इस प्रकार के भले लगने वाले पात्रों की रचना मुमताज शांति ने **'वसंत'** तथा **'किस्मत'** जैसी हिट फिल्मों में की। 'अजी बस शुक्रिया' में गीताबाली तथा 'सोने की चिड़िया' में नूतन के पात्र भी ऐसे ही थे।

थोड़े से परिवर्तन के साथ यही पात्र 'निडर नादिया' द्वारा सर्कस या नटों की दुनिया के कलाकारों के जीवन पर बनी फिल्मों में साकार किया गया। नायिका की यह छवि भी फंतासी जनित होने के बावजूद काफी लोकप्रिय हुई। इसी के आधुनिक रूप **'सीता और गीता'** में हेमामालिनी तथा 'जख्मी' में रीना रॉय के मोटर-साइकल के करतबों के रूप में अभिव्यक्त हुए। इसी से कुछ मिलती-जुलती इमेज 'जिप्सी गर्ल' (खानाबदोश लड़की) की भी है जो अपनी रंगारंग वेषभूषा, बिंदास लहजे तथा अजीबो-गरीब व्यवहार के द्वारा दर्शकों को गुदगुदाती है। वैसे इस पात्र को बड़ी मुश्किल से एक ही पुरुष के प्रति वफादार स्त्री के रूप में ढाला जा सका है। यहाँ तक कि **'जादू'** में नलिनी जयवंत को भी कार्मेन के भारतीय संस्करण में 'वफादार तितली' के रूप में ढालना पड़ा। पता नहीं भारतीय निर्माताओं को यदि कैमिल या क्लियोपाट्रा के भारतीय संस्करण बनाने पड़ें तो वे क्या करेंगे।

नायिका में सत् और असत् के मिश्रण की एक और तरकीब है, उनसे जुड़वाँ बहनों की दुहरी भूमिकाएँ करवाना। इसके जरिए दर्शकों को एक ही पात्र में नायिका और खलनायिका, दोनों का मजा मिल जाता है। **'अनहोनी'** की भली तथा बुरी बहनों तथा **'रात और दिन'** की विभाजित व्यक्तित्व वाली नायिका की भूमिकाएँ नरगिस ने शानदार ढंग से अदा कीं। 'अपना घर' (शांता आप्टे) तथा 'हम एक हैं' (दुर्गा खोटे) में नायिकाओं को एक प्रतीक या दृष्टांत के रूप में

पुरुष तारिकाः पुरुषोत्तम वैद्य

प्रथम महायुद्ध के अंतिम दौर १९१७ में फिल्मोद्योग आर्थिक मंदी के दौर से गुजर रहा था। फिल्म पितामह दादा साहब फालके उन्हीं दिनों इंदौर नरेश श्रीमंत तुकोजीराव होल्कर से मिले और अपनी कठिनाई बतलाकर उनसे सहायता माँगी। महाराजा ने उन्हें दस हजार रुपए की सहायता देकर अपनी कला मर्मज्ञता का परिचय दिया। (संदर्भ इंडियन सिनेमा फिरोज रंगूनवाला)। महाराजा के एक विशिष्ट दरबारी रायबहादुर डॉ. महादेव पृथ्वीनाथ के ज्येष्ठ पुत्र **पुरुषोत्तम वैद्य** शौकिया चित्रकार एवं छायाकार थे। सिनेमेटोग्राफी के प्रति भी स्वाभाविक रूप से उनका रुझान था। दादा साहेब फालके की दृष्टि उन पर पड़ी और वे पुरुषोत्तम वैद्य को नासिक लेकर चले गए। १९१८ में **'श्रीकृष्ण जन्म'** फिल्म में पुरुषोत्तम वैद्य ने कृष्ण-माता **देवकी** की भूमिका अभिनीत की। बंबई के अलेक्जेंडर और इंदौर के रॉयल सिनेमाघर में यह फिल्म प्रदर्शित हुई थी।

'वांडरिंग फेंटम' (१९२६), 'लेजरमेड' (१९२७), 'हिज फादर्स ऑनर' (१९२८) तथा 'पति पत्नी' (१९२९) पुरुषोत्तम वैद्य की कुछ उल्लेखनीय मूक फिल्में हैं, जिनमें उन्होंने स्त्री पात्रों की भूमिका निभाई है। चूँकि उनकी दिलचस्पी अभिनय के बजाए सिनेमेटोग्राफी की ओर अधिक थी इसलिए निर्देशक मोहन सिन्हा के साथ इंदौर के तुकोगंज क्षेत्र में एक स्टूडियो का निर्माण किया। स्वतंत्र रूप से एक फोटो-प्ले 'ए राजपूत स्टोरी' नामक फिल्म भी बनाई जो अधूरी रह गई। पुरुषों द्वारा स्त्री पात्रों की भूमिका को लेकर मर्द हीरोइन की हजामत से संबंधित उनका हास्य लेख **'अभिनेत्री की हजामत'** फिल्म इंडिया में छपा था जो बाद में १९४७ में इंदौर से प्रकाशित **'नवरस'** हिंदी फिल्म पत्रिका में अनूदित हुआ था।

● प्रस्तुतिः शशि शर्मा

स्नान जारी हैः फिल्म चित्रलेखाः तारिका मेहताब



जिस तरह प्रस्तुत किया गया, वह हिंदी फिल्मों में अपवाद ही माना जाएगा।

इनके अलावा भी कई प्रकार के नायिका-भेद थे, जो आते-जाते या दुहराए जाते रहे। अतीत में दलित या गलत समझी जाने वाली नायिका की भूमिकाएँ भी खूब चलन में रहीं। **'जीनत'** में नूरजहाँ, **'शमा'** में मेहताब तथा **'बिराज बहू'** में कामिनी कौशल ने जिन पात्रों को जीवंत किया, उन्हीं को मद्रास में निर्मित हिन्दी सामाजिक फिल्मों ने ऊँची पीढ़ी का पद प्रतिष्ठित किया। फिर वह सीधी सादी नायिका का पात्र भी है, जो अपना आदमी किसी अमीर लड़की के हाथों पहले खो देती है और बाद में अपने आपको उसके काबिल बनाकर उसे फिर से प्राप्त कर लेती है। यह फार्मूला भी **'गुण सुंदरी'** (गौहर और निरुपा रॉय) जितना पुराना है, मगर आज भी कारगर होता है। भोली-भाली, मासूम प्रेमिका की जिस सामान्य छवि को लीला चिटणीस ने बॉम्बे टॉकीज की उन सदाबहार फिल्मों **'कंगन'**, **'बंधन'** और **'झूला'** में लोकप्रिय बनाया था, उसके अलावा कुछ शिक्षित, बंधनमुक्त नारी के पात्र भी दिखलाई दिए, मगर उन्हें वह प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकी। **'डॉ. मधुरिका'** के रूप में सविता देवी तथा आजादी के ख्यालों से भरी **'मिस्टर एंड मिसेज फिफ्टी फाइव'** की अमीरजादी मधुबाला ऐसी ही नायिकाएँ थीं, लेकिन उन्हें बाद में वैसी ही भावुक तथा बुजदिल औरतों के रूप में खुद को बदलना पड़ा, जिन्हें प्यार और सुरक्षा की खातिर मर्दों का सहारा लेना पड़ा। फिर ऐसी कुछ अर्द्ध-विदेशी नायिकाएँ भी थीं, जो अँगरेजी बोल कर भारतीय जीवन और संस्कृति को पश्चिम के लिए ग्राह्य बनाती थीं। **'कर्म'** में देविका रानी ने यही किया तथा किशोर साहू के **'मयूर पंख'** की नायिका ओडेट फर्ग्यूसन तथा सिमी ने इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। बाद में परवीन बॉबी तथा जीनत अमान ने भी कमोबेश यही किया। महबूब खान जैसे भारतीय फिल्म निर्माताओं ने इस प्रवृत्ति पर भी **'अंदाज'** जैसी फिल्म बनाकर विराम लगाने की कोशिश की, जिसमें पश्चिमी रंग में रंगी नरगिस अपने दांपत्य जीवन को इसलिए नष्ट कर लेती है, कि उसका एक पुरुष मित्र भी है और वह इससे होने वाली दिक्कतों का सामना नहीं कर पाती। इसके विपरीत **'प्रेसिडेंट'** की कमलेश कुमारी, **'बहारें फिर भी आएँगी'** की मालासिन्हा, **'अनुराधा'** की लीला नायडू तथा **'आँधी'** की सुचित्रा सेन जैसी नायिका थीं जो कि या तो कामकाजी महिलाएँ थीं या कला के प्रति समर्पित प्रतिभाएँ थीं और उन्हें इनके कारण घरेलू या भावनात्मक टकराव का सामना करना पड़ा।



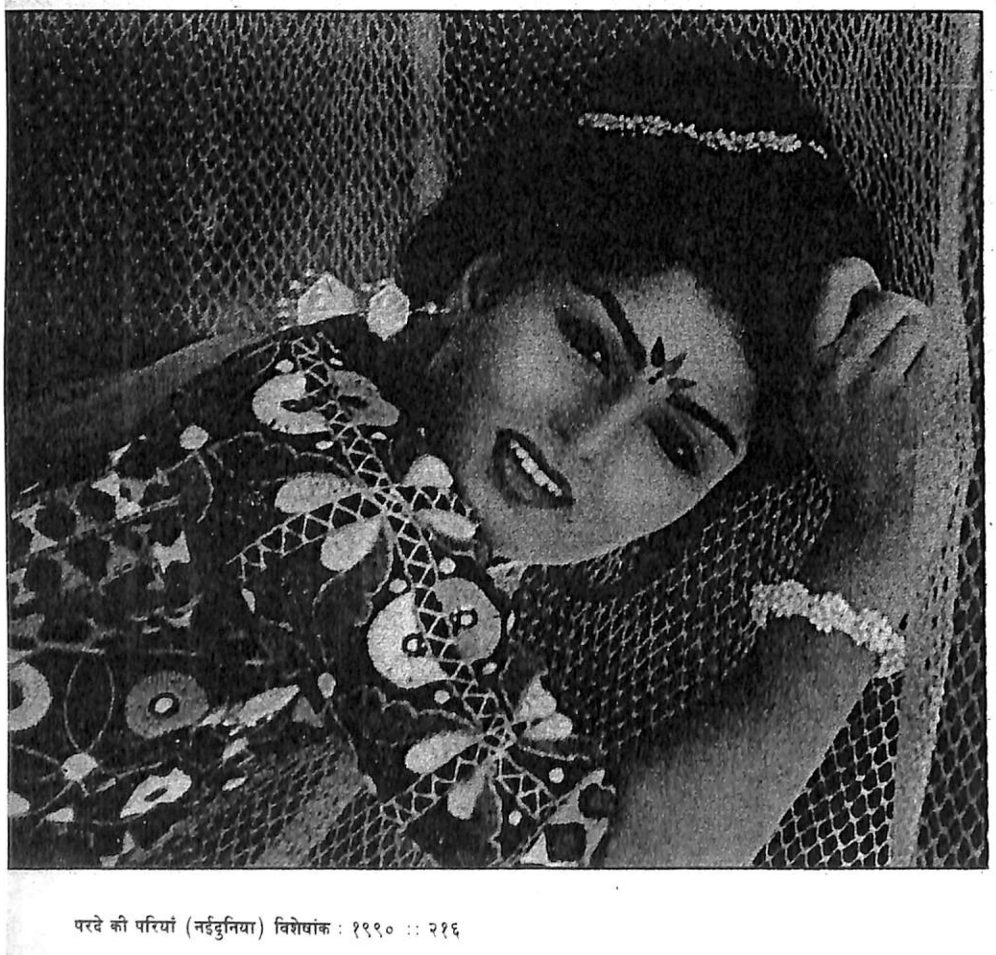
संसार से विरक्त नायिकाः फिल्म जोगन

कभी, बरसों में एक-आध बार, विरोध करती, आग उगलती, अपने आप को बंधन मुक्त करती नायिका भी भारतीय रजतपट पर दिखलाई पड़ जाती है। प्रभात की कुछ नायिकाएँ **'दुनिया न माने'** की शांता आप्टे तथा 'अमर ज्योति' की दुर्गा खोटे ऐसी ही नायिकाओं में से थीं। मगर ये नारी पात्र अपवाद स्वरूप थे। वे आदर्श ज्यादा थे, ऐसे वास्तविक चरित्र नहीं, जिनमें दर्शक खुद को पहचानें या जिनका अनुकरण कर सकें। इन फिल्मों में एक नई 'ज्योति' तो थी, मगर वह आम जनता के सर के ऊपर से निकल जाती थी। इसीलिए वह रोशनी जल्द ही गुल हो जाती थी।

बरुआ द्वारा 'जिंदगी' में प्रस्तुत मूर्तिभंजक तथा सामाजिक यायावर जैसे पात्र भी देखने में कभी-कभी आ जाते हैं। इस फिल्म की नायिका एक बेरोजगार युवक के साथ रहती है, वहीं विमल रॉय की **'हमराही'** (बाद में 'नया जमाना' के नाम से बनी) में उद्योगपति की बेटी एक बुद्धिजीवी मजदूर के साथ चल देती है। किशोर साहू की **'सावन आया रे'** में नायिका विवाह का ही विरोध करती है, तो 'स्वयंसिद्धा' में नायिका अपने बुद्धिहीन पति को 'सुधार' देती है। अपरंपरागत तथा मुक्त नारी-पात्रों की इसी सूची में 'आन' की बेरहम शहजादी, 'शिकस्त' की दृढ़ निश्चयी विधवा, अमिय चक्रवर्ती की 'सीमा' की विद्रोही समाज बहिष्कृत युवती, 'साहब, बीवी, गुलाम' की मदिरासक्त पत्नी, 'गाइड' की अपवित्र पत्नी तथा 'इंतकाम' की प्रतिशोध-रत नायिकाओं को भी शामिल किया जा सकता है। मगर ये सभी पात्र बेचारी और सहनशील नारियों के समुद्र में मात्र कुछ कतरों की तरह उछलते हैं।

कुछ अन्य पात्र भी हैं जो बार-बार दुहराए जाते हैं। मुस्लिम पृष्ठभूमि के रूमानी नाटकों की नायिकाएँ, लड़की से, बूढ़ी माँ बनने वाली नायिकाएँ (सरदार अख्तर-औरत तथा नरगिस-मदर इंडिया) 'हम एक हैं' या 'मेम दीदी' की तरह केंद्रीय भूमिका में माँ या उनके जैसा पात्र तथा 'घर' फिल्मों की 'घरेलू' नायिकाएँ, कमजोर व्यक्तित्व वाले नायक को दबाने वाली खिलंदड़ नायिकाएँ, जो किदार शर्मा की 'सुहाग रात' के तरह अंत में बड़े से बड़ा त्याग कर डालती हैं, 'सूरत और सीरत' तथा 'चार दिल चार राहें' की श्याम वर्णा नायिकाओं के अलावा है, अपने समस्त लावण्य, बेपरवाही, औद्धत्य तथा आक्रामकता के साथ आधुनिक नारी, जो सतह पर तो ये सब गुण प्रदर्शित करती हैं, मगर अंत में नैतिकता और भलमनसाहत के उसी खाँचे में आ बैठती है, जो वास्तव में भारतीय फिल्म नायिका की असली पहचान है। ■

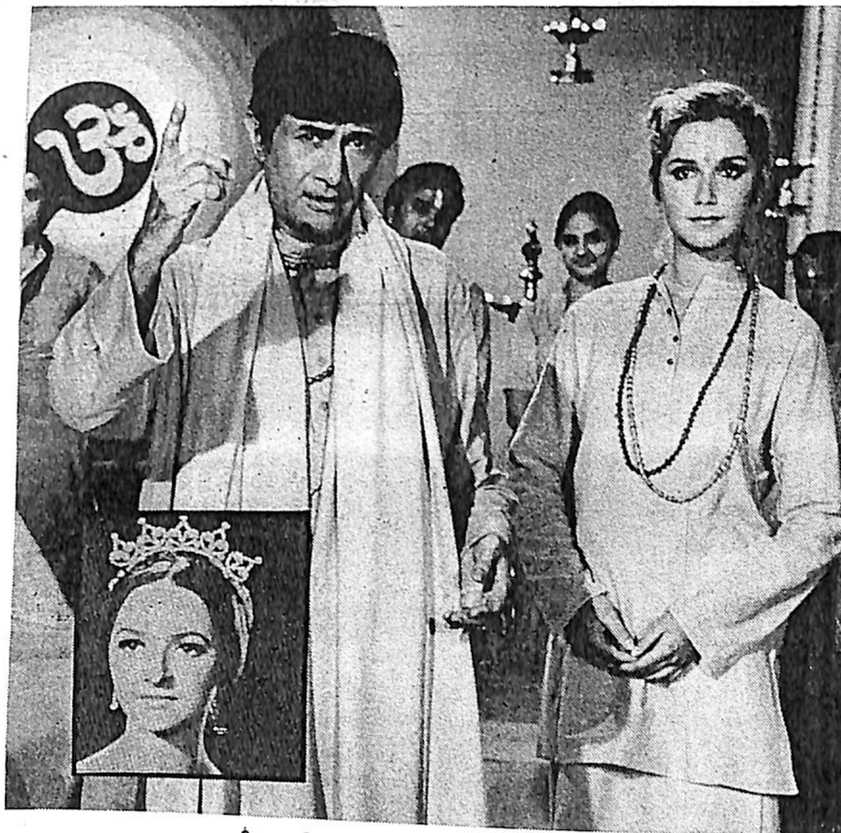
नई नायिका का लक्ष्य आगे बढ़ोः नीतापुरी



भारतीय फिल्माकाश में जगमग विदेशी तारिकाएँ

भारत के कई फिल्म-साजों ने यह सपना देखा पर उनमें से कुछ ही उसको पूरा कर पाए। विदेश की अभिनेत्री को हिंदुस्तानी फिल्मों में लाना जैसे एक अजूबा था। वे लोग न तो इस काम के लिए खास दिलचस्पी रखते थे और न हमारे निर्देशकों के पास ऐसे पात्र और ऐसी कहानियाँ हैं जिनसे वे आकर्षित हो सकें।

फिर भी मूक युग से इस कोशिश का सिलसिला चलता आया है। सुचेतसिंह नामक एक फिल्मकार ने १९२० में यह करिश्मा पहली बार कर दिखाया। वे खुद अमेरिका से तालीम लेकर आए थे। पहले तो वे अपनी फिल्म **शकुंतला** के लिए बहुत से विज्ञापन देते रहे-'एक मशहूर विदेशी अभिनेत्री के साथ काम करने के लिए आकर्षक कलाकार चाहिए।' बाद में उन्होंने ऐलान किया कि अमेरिका की मशहूर अदाकारा डोरोथी किंगडम उनकी फिल्म में चमक रही हैं।



स्वामीदादा फिल्म में देवआनंद के साथ क्रिस्टीन ओ'नील (इनसेट) मेरा नाम जोकर में रशियन अभिनेत्री रॉबीन किना

लेकिन भारतीय दर्शकों ने तो अपनी एक घरेलू अभिनेत्री द्वारा प्रस्तुत दूसरी शकुंतला पसंद की जो उसी वक्त मुकाबले के लिए पाटनकर भाइयों ने बनाकर रिलीज की थी। सुचेतसिंह ने और भी कोशिशें कीं कि दूसरे देशों का ज्ञान लाभ अपने फिल्म उद्योग को मिले। लेकिन एक ही साल में उनकी पाँचों फिल्में **निगेटिव** सहित बिक्री पर रखी गई। और फिर खबर आई कि एक हादसे में अचानक सुचेतसिंह की मौत हो गई।

कलकत्ता के मदन भाइयों की जबर्दस्त कंपनी मदन थिएटर्स के संबंध इटली की एक फिल्म कंपनी के साथ थे। लिहाजा उनके निर्देशक भारतीय धार्मिक फिल्में यहाँ आकर बनाते और शिवरात्रि में तो इटली की मशहूर अदाकारा मेनेलीस ने अपने पति के साथ कुछ मुख्य पात्र निभाए। मदनवाले अक्सर जोर देते रहे कि उनकी फिल्में स्वदेशी हैं और बंगाली कलाकार तथा बंगाली टाइटल कार्ड इनकी खास खूबियाँ हैं।

अपनी मूक फिल्म ***लैला मजनूँ*** में मदन बंधु अँगरेजी अदाकारा जेनेट शेरवीन को ले आए। फोटो प्ले सिंडीकेट ने **गुलाम की आत्मा** में ऑस्ट्रेलिया की रादील विलीसनवर्थ और विलायत की जून रिचर्ड्स को पेश किया। यह फिल्म योरप और अमेरिका में दिखाई और सराही गई।

तब मदन वालों ने एक अनोखी योजना बनाई। इटली की एक रोम स्थित कंपनी के साथ मिलकर एक सहयोगी फिल्म बनाई जिसका नाम सावित्री था। पहली बार भारत ने फिल्म निर्माण में किसी और देश के साथ कंधे मिलाए। और कयामत तो यह कि सावित्री का पात्र काउन्टेस रीना डी लीग्युआरो ने किया और सिनोरीटा टेरीबील्ली ने महारानी का रोल किया। शूटिंग भी इटली के कुछ लोकेशन पर की गई। भारतीय दर्शक को यह खिचड़ी कतई पसंद नहीं आई। और यही इतिहास बार-बार दोहराया गया। जिसने भी दो संस्कृतियों को मिलाने की कोशिश की, उसे निराशा ही मिली।

बंबई की शारदा फिल्म्स कंपनी की **बाजीराव मस्तानी** में योरप की अदाकारा मिस जोन्स मस्तानी बनकर आई। (मूक फिल्मों में तो संवाद बोलना नहीं था।) निरंजन पाल की नीडल्स आई में भी कुछ विदेशी बालाएँ चमकाई गईं। हिमांशु राय ने दूसरे देशों के साथ को-प्रोडक्शन आजमाए, पर छोटी-मोटी अदाकाराओं को छोड़कर उनकी नायिका सीतादेवी और बाद में उनकी पत्नी देविका रानी ही रही। वैसे सीता देवी भी एक एंग्लो-इंडियन लड़की थीं जैसे कई मूक हीरोइनें हुआ करती थीं। आर्देशीर ईरानी की इम्पीरियल कंपनी द्वारा निर्मित गोरी बला में वीनी स्टुअर्ट ने काम किया। यह एक ऐसी अँगरेज लड़की की कहानी थी, जिसको खासतौर से भारत भेजा जाता है, ताकि वह एक रियासत के महाराजा को बेवकूफ बनाकर कुछ भेद हासिल कर सके और दौलत भी लूट सके।

खान बहादुर ईरानी ने एक परशियन फिल्म 'रॉकी युग में दुखतरे नूर' भी बना डाली जिसमें ईरानियन भाषा के संवाद थे और जिसका प्रदर्शन ईरान में किया गया। इसमें भी परशियन हीरोइन रूह अंगेज थी और साथ में स्पेन्टा बतौर हीरो। वजीरी नामक एक ईरान की कलाकार ने भी कुछ परशियन फिल्में की हैं।

जब बोलती फिल्मों का बोलबाला हो गया तब संवाद और गीत का तकाजा बेतहाशा बढ़ गया। अब फिल्मों में जबरन भारतीयता आ गई। लोकगीत, गजल, तवायफ के गाने आदि काम में आने लगे और वैसी ही साफ जुबान में बोलती-गाती अभिनेत्रियाँ लोकप्रिय होने लगीं। फिर भी एक दबी हुई तमन्ना जरूर रह गई कि विदेशी कलाकारों को हमारी फिल्मों में शामिल किया जाए। यह हसरत राजकपूर और देवआनंद के युग तक चलती रही और शशिकपूर ने इसे साकार कर दिखाया।

वैसे ख्वाजा अहमद अब्बास ने समाजवादी होने के नाते रूस से तानाबाना बनाए रखा। और जब उन्होंने को-प्रो. बनाए जैसे 'परदेसी' तब रूसी तारिकाएँ भी उसमें दिखाई दीं। यही विरासत एफ. सी. मेहरा वालों ने अपना ली। उनकी 'अलीबाबा' और 'सोहनी महिवाल' जैसी फिल्मों में विदेशी अदाकाराएँ अपना फन दिखा गईं। अब शशिकपूर की 'अजूबा' और मेहरा की 'शिकारी' में वही हो रहा है।

बीच के युग में किशोर साहू ने एक प्रेम त्रिकोण 'मयूर पंख' बनाई। जिसमें एक भारतीय शादीशुदा राजकुमार एक विदेशी लड़की के प्यार में गिरफ्तार हो जाता है। विदेशी कलाकार ओडेट फरग्युसन ने इसमें काम किया और चुंबन भी

दिए। लेकिन हिंदी फिल्मों के रसिकों को इस फिल्म के सिर्फ गाने पसंद आए और फिल्म चली नहीं।

राजकपूर सोफिया लारेन को लाना चाहते थे और देव आनंद शर्ली मेक्लेन को। लेकिन बात जमी नहीं। हॉलीवुड के सितारों को मालूम था कि यहाँ किस स्तर की फिल्में बनती हैं और उन पर हीरो कितने हावी होते हैं। राज साहब को एक रूसी बैले नर्तकी रॉबीन किना पर ही संतोष करना पड़ा। जिसे वे **मेरा नाम जोकर** के लिए लाए और वह भी एक सर्कस की ट्रेपीज कलाकार बनाकर। देव साहब ने एक विदेशी फिल्म में एक हाँगकाँग की अभिनेत्री के साथ काम किया। यहाँ किसी ने उस फिल्म को नहीं देखा।

शशिकपूर और कुछ हद तक आई. एस. जौहर और कबीर बेदी ने विदेशी या को-प्रोडक्शन वाली फिल्मों में काम किया और सौ फीसदी असली विदेशी अभिनेत्रियों से कंधे मिलाए। इस्माइल मर्चेन्ट और जेम्स आइवरी तो हमेशा आधे-अधूरे ही रहे। इसलिए यहाँ के कलाकार वहाँ और वहाँ के कलाकार यहाँ करते रहे। हॉलीवुड की चोटी की अभिनेत्रियों ने उनकी फिल्मों में काम किया है यह कम गर्व की बात नहीं और शशि के साथ इन दोनों का अच्छा नाता रहा। 'हाउस होल्डर' से लेकर 'हीट एंड डस्ट' तक। फिल्म शालीमार के लिए सिल्विया मिल्स आदि आईं।

वैसे शशि की धर्मपत्नी जेनीफर केन्डल भी अँगरेज थीं और उसने '३६ चौरंगी लेन' में अपनी जिंदगी का बेहतरीन अभिनय किया। जेनीफर की बहन फेलीसीटी ने भी 'शेक्सपीयरवाला' में मुख्य काम किया। छोटे-मोटे कर्मशियल फिल्में बनाने वाले एक स्टंट के तौर पर विदेशी रक्कासाओं को बुलाते थे। एक बार स्व. बिमल राय ने भी यह किया। हाँगकाँग, सिंगापुर या कैरो की कुछ नर्तकियाँ भारतीय परदे पर चमकी हैं। जैसे लिली, मेत्ती, मारीया मीनाडो। बिमल राय वाली लिलियन, जो 'अपराधी कौन' में प्रस्तुत की गई थी।

अब्बास साहब ने 'राही' में एक अर्ध विदेशी लड़की केट सेठी को एक अँगरेज लड़की के पात्र में पेश किया था। यह सिलसिला भी चलता रहा। देव आनंद अक्सर अमेरिका यात्रा करते थे और वहीं से कुछ मिली-जुली लड़कियाँ ले आते- जैसे स्वामी दादा की क्रिस्टीन ओ'नील। दुःख की बात यह है कि बाद में ये भारतीय फिल्मों में कभी नहीं आईं।

हाल ही में मिथुन ने एक अजीब से मिले-जुले बंगाली-अँगरेजी चित्र में काम किया जिसमें एक जापानी हीरोइन थी। वरना विदेशी पात्र करने के लिए तो कुछ अर्ध गोरे इंडस्ट्री में ही मौजूद हैं- जैसे कि हेलेना ल्युक (मिथुन की पहली पत्नी)। और जहाँ पुरुष पात्रों का सवाल है, तो टॉम ऑल्टर से ही काम चलाना पड़ता है। लेकिन हमारे फिल्ममाज और फिल्मी हीरो हॉलीवुड या योरप की चोटी की अभिनेत्रियों को बुलाने का ख्वाब कभी नहीं छोड़ेंगे और उसके संबंध में ऐलान भी करते रहेंगे, इसमें कोई शक नहीं। ■



फिल्म प्रपंच (१९६१) में सुलोचना बाई और सीमा

मराठी फिल्मों की प्रधान तारिकाएँ

● **शशिकांत किणीकर**

चित्रपट सवाक् होने के पश्चात एक ही साल में प्रादेशिक भाषाओं में फिल्में बनाने की चेष्टा शुरू हो गई। तमिल भाषा में पहली फिल्म 'कालीदास' बनीं। बंगला भाषा में 'जमाई षष्ठी' मदन स्टूडियो ने बनाई। तेलुगु भाषा में बनी पौराणिक 'भक्त प्रल्हाद'। यह पहली फिल्म थी। ये सारी भाषाई फिल्में भारत में बनाई हुई पहली फिल्म के साल में ही-यानी की १९३१ में बन गई। मगर मराठी फिल्मों का इतिहास शुरू हुआ १९३२ के साल से जब राजापुरकर नाटक मंडली ने 'संत तुकाराम' का प्रदर्शन पूना के आर्यन सिनेमा में ३० जनवरी १९३२ को शुरू किया।

उसी के पश्चात सिर्फ एक हीं हफ्ते में यानी की छह फरवरी १९३२ को प्रभात फिल्म कंपनी का उपहार **'अयोध्याचा राजा'** मराठी भाषा में प्रदर्शित हुई। इस फिल्म को सारे महाराष्ट्र में कामयाबी मिली और उसकी प्रमुख नायिका दुर्गा खोटे, जिसने उससे पहले सिर्फ एक ही फिल्म में (और वो भी हिंदी भाषा की जिसका नाम था 'फरेबी जाल') काम करने के बाद पहली ही बार मराठी चित्रों में काम किया। वह सारे महाराष्ट्र में जानी-पहचानी हस्ती बन गई। 'अयोध्याचा राजा' हिंदी भाषा में भी बनी थी। दुर्गा खोटेजी को सारे भारतवर्ष में मान-सम्मान मिला। इस तरह अपनी पहली फिल्म से ही दुर्गा खोटे मराठी भाषी लोगों में मशहूर हो गईं। सही मान लिया जाए तो प्रभात की इस पहली सवाक् फिल्म के जरिए मराठी भाषा में चित्र-संसार की शुरूआत हो गई। 'अयोध्याचा राजा' के बाद यानी की १९३२ से १९८९ तक करीबन छह दशकों में लगभग आठ सौ पचास फिल्में बनी और उनके जरिए ढेर सारी अभिनेत्रियों ने अपनी अदाकारी का कमाल दिखाया। प्रेक्षकों का मन लुभाया और अमर बन गईं।

खोटेजी का सम्मान

'अयोध्याचा राजा' इस फिल्म की सफलता के कारण दुर्गा खोटे को मराठी फिल्मों की पहली नायिका का यह सम्मान मिला है। इसके पश्चात उन्होंने 'मायामच्छिंद्र' हिंदी/मराठी में बनी फिल्म में भी अभिनय किया। उनके अभिनय का निखार प्रभात की सिर्फ हिंदी भाषा में बनी फिल्म 'अमर ज्योति' से हुआ। फिल्म में उनका नाम था सौदामिनी और सारी की सारी फिल्म में वह सौदामिनी की भाँति अभिनय करती रही। इसका असर यह हुआ कि कलकत्ता के न्यू थिएटर्स ने उनकी फिल्में देखने के बाद उनको **'सीता'**, **'राजरानी मीरा'** और **'जीवन नाटक'** फिल्मों में काम करने के लिए आमंत्रित किया। उन फिल्मों को भी कामयाबी मिली। दुर्गा खोटेजी के अभिनय की गली-गली में चर्चा होने लगी।

इसके बाद दुर्गाजी फिर से सन् १९३७ में मराठी चित्र जगत में आईं। चित्रपट महर्षि बाबूराव पेंटर ने उनको **'प्रतिभा'** फ़िल्म की नायिका बनाने का प्रस्ताव किया। नटश्रेष्ठ नाना साहेब फाटक, केशवराव दाते, विष्णुपंत जोग, राजा परांजपे जैसे असामान्य कलाकारों के बीच

में दुर्गा खोटे का फन कमाल करता गया और उन्होंने अपना अभिनय कौशल दिखाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। १९४० में बनी सिर्को प्रॉडक्शन्स की फिल्म **'गीता'** (हिंदी/मराठी) बहुत ही महत्वपूर्ण थी। 'गीता' का तत्वज्ञान सामाजिक स्वरूप में सुप्रसिद्ध ध्वनिलेखक मीनू कात्रक ने बनाया था, जो उसके कथा लेखक थे। सदाबहार अभिनेता चंद्रमोहन ने उस फिल्म में डबल रोल किया था और नायिका थी दुर्गा खोटे। चंद्रमोहन एंटी-हीरो थे और दुर्गाबाई अपनी व्यावहारिक सादगी अपने अभिनय के जरिए पेश करती रही। भाग्योदय पिक्चर्स के ऐतिहासिक



मराठी फिल्मों का आम पारिवारिक दृश्य



जयश्री गड़कर: पारिवारिक चितवन

चित्र 'रायगढ़' की आखरी बार मराठी में नायिका बनने के बाद उन्होंने आचार्य अत्रेजी की फिल्म 'पायाची दासी' (मराठी) और 'चरणों की दासी' (हिंदी) फिल्म के साथ १९४१ में पहली बार चरित्र अभिनेत्री की भूमिका स्वीकार कर ली।

खोटेजी के फिल्मी जीवन ने 'पायाची दासी' फिल्म से मोड़ लिया और उसके पश्चात उन्होंने 'राम राज्य', 'भरत भेंट', 'अपुलेघर', 'महात्मा विदुर', 'रुक्मिणी स्वयंवर', 'मोरुची मावशी', 'सीता स्वयंवर', 'माया बाजार', 'कल्याण खजीना', 'मीदारु सोडली', 'जशासनसे', 'नंद किशोर' फिल्मों में सहायक अभिनेत्री का काम किया।

पुराने जमाने में, फिल्में एक साथ दो-दो भाषाओं में बनती थी, दुर्गाबाई को काफी सफलता हिंदी रजतपट पर ही मिली। इसलिए 'पृथ्वीवल्लभ', 'आगे बढ़ो', 'मुगल-ए-आजम', 'शिकस्त', 'हिंदुस्तान हमारा' जैसी हिंदी फिल्मों में ही उनका समय ज्यादातर व्यस्त होने लगा और मराठी उनकी मातृभाषा होते हुए भी उनको मराठी चित्रपटों में काम करने के लिए समय निकालना मुश्किल हो गया। अति सरल अभिनय, शुद्ध भाषा तथा अभिनय में सफाई यह दुर्गा खोटे जी की सफलता की तथा उनकी लंबी अभिनय यात्रा की विशेषताएँ हैं।

लुभावनी लीलाजी

प्रभात फिल्म कंपनी ने और एक नई अभिनेत्री की खोज की। उनका नाम था **लीला चंद्रगिरि।** लीलाजी मराठी फिल्म 'अग्निकंण' और उसकी हिंदी आवृत्ति 'जलती निशानी' (१९३२) फिल्म से पहली बार प्रेक्षकों के सामने आई। उसके बाद 'सिंहगढ़' ऐतिहासिक फिल्म में अदाकारी की। सन् १९३३ में बनी हुई पहली रंगीन सवाक् फिल्म 'सैरंध्री' में नायिका बनने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ। उसकी कथा, संवाद, पटकथा तथा गीतकार थे भालजी पेंढारकर। मजे की बात यह थी कि इस फिल्म के पश्चात् लीला चंद्रगिरि ने अपने अभिनय की सीमा सिर्फ भालजी पेंढारकरजी की फिल्मों तक ही सीमित की। गौरवर्ण, नाजुक सा बदन, भावनाशील मुद्रा यह उनके खास गुण थे। खुद अच्छा गाती भी थी। 'आकाशवाणी', 'सावित्री', 'भक्त दामाजी', 'कान्होपात्रा', 'राजा गोपीचंद', 'गोरखनाथ', फिल्मों में उन्होंने नायिका के रोल किए। साथ ही साथ भालजी पेंढारकरजी की ही 'सुवर्ण भूमि', 'महारथी कर्ण' और 'वाल्मिकी' जैसी हिंदी फिल्मों में उन्होंने नायिका रूप में बेहतरीन अभिनय किया। 'छत्रपति शिवाजी' (१९५२), जिसमें मराठा स्वराज्य संस्थापक शिवाजी महाराज का जन्म से राज्याभिषेक तक आलेख दिखाया गया था, उन्होंने दर्शकों को आखरी बार नायिका के रूप में दर्शन दिया। बाद में संन्यास ले लिया। अपने पति भालजी पेंढारकर के संसार में वे मशगुल हो गई।

लीलाजी ने हिंदी तथा मराठी इन दोनों भाषाओं की फिल्मों में काम किया। अपने अभिनय तथा गायन के जरिए सन् १९३२ से करीबन दस साल तक वे लोकप्रिय रहीं। भालजी पेंढारकर के साथ विवाह होने से उनका चित्र संसार सीमित रहा। मगर दर्शक आज भी उनके सुनहरे गीत तथा उनकी मोहमय और संयमपूर्ण मुद्रा भूल नहीं सकते।

अभिनय-बिजली शांता आप्टे

दादा साहेब तोरणे, जिन्होंने हिंदुस्तान में पहली फिल्म 'पुंडलिक' का निर्माण दादा साहेब फालके से एक साल पहले (१९१२) किया था। बाद में टॉकी मशीन्स की एजेंसी ली और पहली सवाक् फिल्म 'आलम आरा' के निर्माण में अर्देसीर ईरानीजी का हाथ बँटाया। उसके पश्चात उन्होंने प्रभात, रणजीत तथा अन्य कंपनियों को भी टॉकी मशीनरी उपलब्ध कराई। इसी दौरान वे कोल्हापुर की महाराष्ट्र फिल्म कंपनी को भी यही मशीनरी बेचना चाहते थे मगर किसी कारणवश उनका प्रस्ताव मंजूर नहीं हो सका। उन्होंने खुद

की ही कंपनी बनाई और उसका नाम रखा सरस्वती सिनेटोन। उनकी पहली तसवीर थी 'शामसुंदर'। इस फिल्म के लिए तोरणेजी ने शाहू मोडक और बाल कलाकार को बालकृष्ण की लीलाएँ पर्दे पर प्रस्तुत करने के लिए चुन लिया और नायिका के रूप में उतरी थी स्वर कोकिला **शांता आप्टे**।

अपनी पहली ही फिल्म से शांता आप्टे को काफी लोकप्रियता मिली। शामसुंदर बंबई के न्यू वेस्ट एंड सिनेमा हॉल में लगातार २७ हफ्ते चली। उस तरह सवाक् फिल्मों में पहला रौप्य महोत्सव प्राप्त करने वाली 'शामसुंदर' हो गई। केवल फिल्म ही नहीं उनके प्रमुख आर्टिस्ट शाहू मोडक तथा शांता आप्टे दोनों भी यकायक मशहूर हो गए।

शांता आप्टे का अभिनय और लुभावनी गायन कला प्रभात फिल्म कंपनी में फैल गई और उनको प्रभात ने **'अमृत मंथन'** (१९३४) में प्रधान भूमिका के लिए न्यौता दिया। शास्त्रीय गायिका हीराबाई बड़ोदेकर के भाई सुरेशबाबू इस फिल्म में हीरो बने थे। इन दोनों ने वी. शांताराम के निर्देशन में सहज अभिनय किया और संगीतकार केशवराव भोले के निर्देशन में अच्छे गाने गाए। लिहाजा 'शामसुंदर' से शुरू की हुई कैरियर को शांता आप्टे और आगे ले गईं। कहा जाता है कि उनकी दूसरी फिल्म 'अमृत मंथन' हिंदी भाषा की पहली फिल्म थी जिसका रौप्य महोत्सव हिंदुस्तान के उत्तर में हुआ था।

इस तरह दोनों फिल्मों में सफलता पाने के बाद शांता आप्टे ने प्रभात की मराठी फिल्म 'कुंकू' और उसकी हिंदी आवृत्ति 'दुनिया न माने' (१९३७) में अदाकारी की। यह पहली फिल्म थी जिसमें स्त्री को अबला का रूप नहीं दिया था। बूढ़े पति को अपनाने के बजाए यह स्वतंत्र मनोवृत्ति की स्त्री बगावत कर देती है और अन्याय का बदला सामाजिक परिवर्तन से लेना चाहती है। फिल्म में पहली बार शांता आप्टे ने अपने अभिनय का अलगपन दिखाया। इस फिल्म में मराठी गानों के अलावा शांताबाई ने लाँग फेलो की अँगरेजी कविता अपनी आवाज में पेश की थी। यह प्रयोग भी काफी सफ़ल रहा। इस तरह शांता आप्टे के अभिनय की धूम सारे भारतवर्ष में पहुँच गई।

प्रभात फिल्म कंपनी का और एक चित्रपट था 'गोपाल कृष्ण' (१९३६) जिसमें राम मराठे के साथ शांताजी ने अभिनय किया। इस चित्र के संगीतकार थे मा. कृष्णराव तथा निर्देशक दामले और फत्तेलाल। इस मराठी फिल्म के गाने काफी मशहूर हो गए। साथ ही साथ उन्होंने हिंदी भाषा में बनी 'अमर ज्योति' (१९३६) में भी काम किया।

उनकी लोकप्रियता, आनंददायी गाने तथा अभिनय कुशलता इतनी आगे बढ़ी कि उनको पंचोली जैसे निर्माताओं ने बुलाया और 'जमींदार' जैसी फिल्मों में काम करने का अवसर दिया। नंदलाल जसवंतलाल के निर्देशन में 'कादंबरी' में पहाड़ी सन्याल के साथ काम मिला। संगीतकार सी. रामचंद्र के संगीत निर्देशन में 'सावन' (१९४५) में उन्होंने अभिनय करने के साथ-साथ गाने भी गाए। मा. विनायक ने अपनी स्टार स्टडेड फिल्म 'सुभद्रा' में उनको प्रधान भूमिका दी। भालजी पेंढारकर ने उनको 'वाल्मिकी' में पृथ्वीराज कपूर के साथ अभिनय करने का मौका दे दिया। 'मैं अबला नहीं हूँ' फिल्म में अभिनय के साथ-साथ उन्होंने गाने गाए और उस फिल्म का संगीत भी सँवारा। 'स्वयसिद्धा' में फिर एक बार शेरनी के रूप में उसने रंजतपट पर दर्शन दिया।

मराठी रंजतपट इस दौरान उन्नत नहीं था। फिर भी उन्होंने सिर्को प्रॉडक्शन्स के 'अपुलेघर' (मराठी) और 'अपना घर' (हिंदी) में १९४२ में काम किया। १९४९ में 'जागा भाडयाने देणे आहे', १९५० में 'जरा जपून', १९५१ में 'कुंकवाचा धनी' 'शिलंगणाचे सोने' (१९४९) इत्यादि महत्वपूर्ण चित्रों में भूमिका निभाई। 'ताई ते लीण' (१९५३) यह उनकी शायद आखरी मराठी फिल्म थी। उसके पश्चात् उन्होंने एस.ए. कंसर्स नाम की संस्था खोल दी और रंगमंच पर नाटक में भूमिका करने लगी।

उनका जीवन बहुत ही कष्टमय रहा। उनके भाई बाबूराव आप्टे ने उनको कभी स्वतंत्रता नहीं दी। इसलिए वह अपने जीवन से ऊब गई थी। चित्रपट सृष्टि के बारे में अपने विचार तथा अनुभव उसने 'जाऊ मी सिनेमान' किताब में लिखे हैं जिसमें फिल्म इंडस्ट्री में उनको दिया हुआ व्यवहार, उन पर हुआ अन्याय तथा झुंझलाहट का प्रदर्शन है।

विनायक की मीनाक्षी

अभिनेत्री **मीनाक्षी शिरोडकर** का नाम हमेशा के लिए उनके बहुचर्चित फिल्मों के निर्देशक स्व. मास्टर विनायक के साथ जोड़ा जाता है। इसका कारण यह है कि मा. विनायक मीनाक्षी को पहली बार फिल्म में लाए। उनको कामयाबी दिलाई और जब विनायक फिल्मों से हटे तो मीनाक्षी ने भी चित्र-संसार से संन्यास ले लिया।

फिल्मों के जरिए उनका पहला परिचय हुआ कोल्हापुर में बनी हंस चित्र की **'ब्रह्मचारी'** (१९३८) फिल्म से। इस फिल्म के लिए मीनाक्षी को खासतौर पर गोआ से लाया गया। इस चित्र के एक भागीदार तथा मा. विनायक के बड़े भाई बाबूराव पेंढारकर मीनाक्षी के पति पांडुरंग शिरोडकर को जानते थे। उसी के कारण मीनाक्षी को 'ब्रह्मचारी' की नायिका की भूमिका दी गई और ब्रह्मचारी नायक मा. विनायक के दिल पर चित्र में तथा उनके निजी आयु में भी मीनाक्षी ने अकस्मात कब्जा कर लिया। 'ब्रह्मचारी' मीनाक्षी का पहला ही चित्रपट था। उसको इतनी लोकप्रियता हासिल हो गई कि पूना के आर्यन सिनेमा में वह लगातार एक साल (यानी कि ५२ हफ्ते) चली। इस चित्र में मीनाक्षी ने खुद ही गाने गाए थे। उनके गाए गीत खूब चले और बिक्री ने उच्चतम रेकॉर्ड बनाया।

उसके पश्चात 'ब्रांडीची बाटली (मराठी) तथा 'ब्रांडी की बोतल' (हिंदी) सन् १९३९ में आई। मराठी चित्र के नायक थे दामुआण्णा मालवणकर तथा हिंदी के नायक स्वयं निर्देशक विनायकजी थे। यह फिल्म नशे के खिलाफ थी और व्यंगपूर्ण तरीके से पेश की गई थी। मीनाक्षी ने उस फिल्म में भी बेहतरीन अदाकारी की। इसी साल में आई फिल्म 'देवता' सिर्फ मराठी में बनी थी। हमेशा हँसाने वाले विनायक ने इस फिल्म में एकदम सीरियस काम किया। 'अर्धांगी' (मराठी) तथा 'घर की रानी' (हिंदी), 'अमृत', 'माझंबाव', सुभद्रा', 'बड़ी माँ', मा. विनायक के निर्देशन में बनी उनकी अन्य फिल्में थीं। सन् १९४७ में मा. विनायक की मौत के पश्चात् मीनाक्षी ने 'मेरी अमानत' एक ही फिल्म में अदाकारी की। 'सोनेरी सावली' (१९५३) यह उनकी आखरी फिल्म थी जिसके पश्चात् उन्होंने

उषा चव्हाण: दादा जिन्दाबाद!



रंजना: फिल्म सुशीला (१९७९)



चित्र से संन्यास ले लिया।

राजा परांजपे दिग्दर्शित 'पेडगावचे शहाणे' मराठी फिल्म में उन्होंने जिंदगी में सिर्फ एक ही बार पार्श्व गायन भी किया। बंबई में अपनी सत्तर वर्ष की आयु में आज भी शास्त्रीय संगीत का अभ्यास कर संगीत कक्षाएँ चला रही हैं।

शांता हुबलीकर

दादा साहेब फालके की पहली सवाक फिल्म 'गंगावतरण' (१९३७) में पहली बार एक्स्ट्रा के रूप में शांता हुबलीकर पर्दे पर आई। इसी साल में बनी 'कान्होपात्रा' में भालजी पेंढारकर ने उनको पहली बार अच्छी भूमिका दी। उनकी यह भूमिका प्रभात के लोगों को भाई और उनके मित्र सुरेशबाबू माने से (हीराबाई बड़ोदकर के भाई) परिचय पत्रिका लेकर उन्होंने प्रभात में पहली बार 'माझा मुल्गा' (मराठी) तथा 'मेरा लड़का' (हिंदी) फिल्म में १९३२ में काम किया। उसके पश्चात् प्रभात ही की सदाबहार तसवीर 'माणूस' (मराठी) तथा 'आदमी' (हिंदी) फिल्म में अगले साल में उन्होंने अपना अभिनय इतनी चरम सीमा पर ले लिया कि उसे सिनेरसिक कभी भूल नहीं सकते। प्रभात छोड़ देने के बाद उन्होंने बंबई में विष्णु कुमार व्यास के निर्देशन में 'प्रभात', 'मालन' आदि हिंदी फिल्मों में प्रधान भूमिकाएँ कीं। फिल्मिस्तान कंपनी द्वारा बनाई हुई 'सौभाग्यवती भव' (१९५८) फिल्म में उन्होंने आखरी बार रजतपट पर अपने दर्शन दिए। इसमें उन्होंने चरित्र अभिनेत्री का रोल किया।

सुहासिनी मुल्ये: फिल्म रामनगरी



निजी जीवन में उनकी बहुत ट्रैजडी हुई। उनके पति तथा लड़के ने उनकी कमाई हुई सारी दौलत उड़ा दी और उनको कंगाल बना दिया। जीवन से ऊबकर वे अनाथाश्रम में रहने लगी। हाल ही में वे फिर एक बार प्रेक्षकों के सामने आई थी। उनकी यह हालत देखकर उनके चाहने वालों ने उनके लिए चंदा दिया मगर अपने लड़के के सामने विवश होने के कारण फिर से वह लुट गई और फिर से निर्धन बन गई। आजकल वे पूना में फिर से अनाथाश्रम में अपनी बाकी जिंदगी गुजार रही हैं। उनका लिखा हुआ आत्मचरित्र 'कशाल उधाची बात' जो उनका गाया हुआ बहुत ही लोकप्रिय गाना (फिल्म: मायूस) था, शीघ्र ही प्रकाशित हो जाने वाला है।

माँ तथा दादी की भूमिकाएँ

हिंदी और मराठी फिल्मों में भाभी, माँ, दादी माँ तथा अन्य भूमिका निभाने वाली **सुलोचना** का असली नाम था रंगूबाई जिन्हें फिल्मों में लाने का तथा सुलोचना यह नाम देने का श्रेय जाता है भालजी पेंढारकर को। सन् १९४६ में भालजी पेंढारकर ने 'सासुरवास' नाम की मराठी फिल्म बनाई और इससे पहले रंगू को जो एक्स्ट्रा में काम करती थीं, पहली बार नायिका के रूप में पेश किया।

उनकी पहली ही फिल्म कुछ सीमा तक लोकप्रिय हो गई और उन्होंने उस दिन से कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। 'जिनाचा सखा', 'सीता स्वयंवर', 'मठियाकर', 'देव पावला', 'बाला जो जो रे', 'स्त्री जन्मा ही तुझी कहाणी', 'बादल', 'महाराणी येसूबाई', 'मी तुलस तुझ्या अंगणी' यह उनकी चंद नायिका की हैसियत से प्रमुख फिल्में थी। उसके बाद उन्होंने चरित्र अभिनेत्री की भूमिकाएँ स्वीकार करना मंजूर किया। 'धाकटी जादू', 'आकाशगंगा', 'सांगत्ये ऐका', 'पतिव्रता', 'मोलकरीण', 'साधी माणसं', 'बावख' आदि उनकी प्रमुख फिल्में हैं। हिंदी फिल्मों में भी उन्होंने शुरू से ही छोटी-मोटी भूमिकाएँ निभाई, जिसमें 'महारथी कर्ण', 'वाल्मिकी', 'नन्हे-मुन्हें', 'बिंदिया', 'अब दिल्ली दूर नहीं', 'सुजाता', 'झूला', 'शादी', 'आई मिलन की बेला', 'बहारों के सपने', 'मेहरबान', 'आदमी', 'संघर्ष', 'साजन' वगैरह महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

विजया मेहता: नायिका भी निर्देशिका भी



सुलोचना का वर्ण साँवला मगर उनका चेहरा इतना संवेदनशील था कि प्रेक्षक उनकी दर्दभरी भूमिका देखकर खुद रोने लगते। उनकी उन दुखभरी भूमिकाओं के कारण उनको आमतौर पर गमगीन और दुखभरी भूमिकाएँ ही ज्यादा प्रदान की गई और उनके साथ उन्होंने न्याय किया।

उषा कॉल की छाया

सन् १९४८ के बीच में सुप्रसिद्ध नर्तक उदयशंकर ने स्टेज और स्क्रीन संस्था की तरफ से **'कल्पना'** नाम की फिल्म बनाई। कथा कल्पना नृत्य के जरिए विशद करने का उनका यह एक असाधारण प्रयोग था। इस फिल्म में मद्रास से पद्मिनी और महाराष्ट्र से **उषा किरन** पहली बार स्क्रीन पर आई।

बाद में 'कुबेर', 'माझा राम', 'सीता स्वयंवर', 'माया बाजार', 'श्रीकृष्ण दर्शन' फिल्मों में उनको छोटी-छोटी भूमिकाएँ निभानी पड़ीं। 'श्रीकृष्ण दर्शन' में वह सेकंड हीरोइन थी और उनके इस रोल की काफी प्रशंसा हुई। 'श्रीकृष्ण दर्शन' हिंदी भाषा में भी बनी थी जिसे हिंदी फिल्म जगत के निर्देशक अमिय चक्रवर्ती ने देखा और उनको उषा किरन का अभिनय इतना अच्छा लगा कि उन्होंने उनके बारे में पूछताछ करके उनको पहली बार 'गौना' (१९५०) हिंदी फिल्म में हीरोइन के रोल के लिए चुना। पहले पहल उषा किरन उषा मराठे इस नाम से स्क्रीन पर आया करती थी। उनको 'स्क्रीन नेम' दिया वह भी अमिय चक्रवर्ती ने।

उषा किरन का पर्दे पर नाम बदलते ही उनको हिंदी/मराठी भाषा में प्रधान नायिकाओं के रोल आने लगे। 'जशास नसे' उनकी पहली नायिका प्रधान फिल्म १९५९ में पच्चीस हफ्ते से भी ज्यादा चली। उसके बाद उन्होंने 'मर्द मराठा', 'बेलभंजर', 'स्त्री जन्मा ही तुझी कहाणी', 'दूधभात', 'पोस्टातील मुलगी', 'कलगीतुरा', 'प्रीति संगम' 'शिकलेली बाय को', 'कन्यादान' वगैरह गिने-चुने चित्रों में नायिका प्रधान भूमिकाएँ कीं।

हिंदी रजतपट पर उनका प्रवास ज्यादातर रहा। 'दाग', 'पतिता', 'बादबान', 'झांझर', 'परिवार' आदि फिल्मों में की हुई अदाकारी को दर्शकों ने काफी सराहा। 'बादबान' चित्रपट के लिए उनको फिल्म फेअर 'सर्वोत्तम सहायक अभिनेत्री' का पारितोषक भी मिला। 'मुसाफिर' और 'दाग' में दिलीपकुमार के साथ, 'पतिता' में देव आनंद के साथ, 'समाज' में अशोक कुमार के साथ तथा 'नजराना' में अशोक कुमार के साथ

नायिका के रूप में आने वाली उषा किरन पहली और आखरी मराठी नायिका थी। आजकल उनकी लड़की तनवी आजमी दूरदर्शन के सीरियल में छोटी-मोटी भूमिकाएँ कर रही है तथा उषा किरन ने चित्रसेसंन्यासले लिया है।

अन्य नायिकाएँ

मराठी फिल्मों में बहुत सारे कलाकारों ने नायिका की भूमिकाएँ निभाई हैं। ललिता पवार, जयश्री शांताराम, शकुंतला, वनमाला, जयश्री गड़कर, संध्या, उषा चव्हाण, सुषमा शिरोमणी, सीमा, आशा काले, सुमति गुप्ते, उषा नाईक, रंजना, स्मिता पाटिल, जयश्री टी, निवेदिता, सविता प्रभुणे, रत्नमाला, अलका कुबल, मधु कांबीकर, सुप्रिया वगैरह। शोभना समर्थ, नूतन, तनूजा, नलिनी जयवंत व हिंदी फिल्म जगत की मान्यवर अदाकाराएँ मराठी फिल्मों में ज्यादा आई ही नहीं। उससे भी और मजे की बात यह कि हिंदी फिल्मों में आज की माधुरी दीक्षित, किमी काटकर जैसी प्रमुख नायिकाओं ने एक बार भी मराठी रजतपट पर दर्शन नहीं दिया। आजकल मराठी फिल्मों में हिंदी जगत के जगमगाते सितारे लाने का प्रयास भी हो रहा है। 'महाभारत' और 'मंजिल अपनी अपनी' जैसी टी.वी. सीरियल में काम करने वाली अमराठी कलाकार चन्ना रूपारेल 'विधीलिखित' में आई। अनुराधा पटेल पहली बार 'इना मिना डिका' में आईं। विद्या सिन्हा ने 'विधीलिखित' में मराठी दर्शकों को दर्शन दिया। रति अग्निहोत्री आई फिल्म 'गुलछड़ी' में तो अभिनेत्री रेखा ने अपने सेक्सी रूप का दर्शन दिया 'फटाकडी' मराठी फिल्म में।

मराठी नायिकाओं का हिंदी फिल्म जगत को हमेशा सहयोग मिला है। हिंदी फिल्मी जगत की मान्यवर हस्तियाँ भी मराठी फिल्म जगत में उतरी हैं। ■

लीना चंदावरकर: छोटी पारी





मल्लिका साराभाई

गुजराती फिल्मों की नायिकाएँ

● यासीन दलाल

सन् १९३४ में एक फिल्म आई थी: **'संसार लीला'** इसमें परिवार की इज्जत, बहू का चित्रण किया गया था। कई प्रकार की विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए, मजदूरी करके भी, परिवार की प्रतिष्ठा बनाए रखे, ऐसी आदर्श नारी गुजराती फिल्मों में हमेशा से आती रही है। दुनिया के सारे गुण जिसमें एकत्र हो गए हों, वही 'गुणसुंदरी' होती है।

'गुणसुंदरी' गुजरात की प्रतिनिधि फिल्म है। फिल्म का नाम चाहे 'पानेतर' हो, 'मंगल फेरा' हो चाहे 'काशीनो दीकरो', उसमें एक गुणसुंदरी हमेशा मौजूद रहती है।

गुजराती फिल्मों में नारी पात्र कैसे होते हैं, इस बारे में अहमदाबाद की प्रो. इला पाठक और रक्षा शाह ने एक सर्वेक्षण किया है जिसके निष्कर्ष बहुत दिलचस्प हैं। कुल ४६ स्त्री पात्रों में से ३६ पात्र तो गृहिणियों के ही थे, उसमें से अधिकांश गृहिणियाँ परवश, बेचारी एवं लाचार थीं। हिंदी फिल्मों की गृहिणियों की तरह गुजराती नारी भी पति परायण, उसे परमेश्वर मानने वाली, उसके पैरों में गिरी आँसू बहाने वाली पराधीन नारी है। कुछ लोककथाओं में आने वाली राजपूतानियों के पात्र अपवादस्वरूप हैं। वर्ना नायिका दु:ख पड़ते ही प्रभु की मूर्ति के पास दौड़ी जाती है और भजन गाती है। शायद ही कोई स्त्री पात्र का स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है या वह कोई निर्णय अपनी तरफ से लेता है। स्त्रियों को चारदीवारी में बंद रखना, उनसे मारपीट करना यह सब सामान्य बातें हैं। पौराणिक तथा लोककथाओं पर आधारित फिल्में बे-सिर-पैर के चमत्कारों से भरपूर होती हैं।

सन् १९४० के अरसे में रणजीत कंपनी द्वारा निर्मित **'अछूत'** फिल्म हिंदी के बाद गुजराती में भी बनी और दोनों में नायिका की भूमिका **गौहरजान** ने की थी। इस हिसाब से गौहर ही गुजराती फिल्मों की पहली उल्लेखनीय अभिनेत्री ठहरती है। रणजीत के सरदार चंदूलाल शाह की वे प्रिय नायिका थीं। गौहरजान चूँकि सूरत की रहने वाली थीं, उनका गुजराती बोलना तो स्वाभाविक रहा। लेकिन, रणजीत की कई फिल्मों में शोभना समर्थ और मोतीलाल ने भी अभिनय किया था। मराठी-भाषी शोभना समर्थ कैसी गुजराती बोलती होंगी यह तो उन फिल्मों को आज फिर से देखने पर ही पता लग सकता है। गौहरजान निरुपाराय की तरह हिंदी और गुजराती दोनों भाषाओं में निपुण अभिनेत्री थीं। मगर सिर्फ गुजराती फिल्मों में ही काम करते हुए उन्हें विकसित किया हो ऐसी कितनी अभिनेत्रियाँ हैं? पता नहीं **तरला दलाल** भी हिंदी से गुजराती फिल्मों में आईं या गुजराती से हिंदी फिल्मों में।

गुजराती चलचित्र पर गुजरात के बाहर की अभिनेत्रियाँ बाद में बहुत आईं मगर प्रारंभिक युग की अधिकांश अभिनेत्रियाँ असल गुजरात की थी और ऐसी ही कई फिल्मों में आने वाली प्रभावशाली अभिनेत्री थी निरुपाराय। उनका कार्यकाल १९३६ में 'गुणसुंदरी' से शुरू होकर वर्षों चला। इस बीच गुजराती फिल्म निर्माण में मंदी का दौर आया और निरुपाबेन प्रादेशिक से राष्ट्रीय हस्ती बन गईं। फिर भी 'मंगलफेरा', 'गाडानो बैल', 'करियावर' जैसी फिल्मों में गरबा घूमती निरुपाराय गुजराती दिलों में बस गईं।

'काशीनो दीकरो' वाली रागिनी गुजराती फिल्मों की आदर्श नायिका बन सकती थी मगर उनकी पहली पसंद मंच है। रंगभूमि को होने वाला लाभ गुजराती फिल्मों की हानि बन गई। मल्लिका साराभाई भी एक परिपूर्ण प्रतिभा थीं। किरण कुमार और मल्लिका की जोड़ी एक जमाने में मशहूर हुई। परंतु, मल्लिका का रिश्ता गुजराती फिल्मों में क्षणिक ही रहा। उषाकिरण १९६० मेंदी रंग लाग्यो रे में राजेन्द्र कुमार के साथ आई और खूब सफल रहीं। उसके बाद वे गुजराती फिल्मों में दिखलाई नहीं पड़ीं। 'अखंड सौभाग्यवती' में आशा पारेख का प्रवेश भी धमाकेदार रहा क्योंकि निरुपाराय की तरह वे भी गुजराती ही थीं। उनका गुजराती होते हुए भी गुजराती फिल्मों से दूर रहना, इसे हम गुजराती फिल्मों की बदनसीबी कहें या कमनसीबी?

गुजराती फिल्मों के प्रारंभिक युग में जो स्थान निरुपाराय को प्राप्त था वही स्थान १९७० के दशक में स्नेहलता ने हासिल किया। मजे की बात यह है कि स्नेहलता भी गुजरात की न होकर कर्नाटक की हैं। उपेन्द्र त्रिवेदी और स्नेहलता की जोड़ी ने काफी समय तक गुजराती पर्दे पर राज किया। स्नेहलता ने अपने शारीरिक सौष्ठव और लावण्य के साथ ही धीरे-धीरे गुजराती भाषा पर जो अधिकार कर लिया उससे उनका स्थान गुजराती फिल्मों में मजबूत हो गया। गुजराती फिल्मों में काम करने वाली नायिकाओं को गरबे गाना और गुजराती शैली में तालियाँ देकर घूमना सीखना पड़ता है। १९७० के दशक में भारी संख्या में गुजराती फिल्मों में बाहर के कलाकार आए, इनमें स्नेहलता, असरानी एवं किरण कुमार के अलावा नसीरुद्दीन शाह तथा स्मिता पाटिल जैसे राष्ट्रीय कलाकार भी थे। संजीव कुमार भी हिंदी फिल्मों के साथ-साथ 'जीगर अने अमी' 'कलापी' और 'मारे जावुं पेले पार' जैसी गुजराती फिल्मों में आते रहे।

पिछले कुछ बरसों में हिंदी और गुजराती फिल्मों के बीच आना-जाना करने वाली अभिनेत्रियों में उल्लेखनीय नाम **अरुणा ईरानी** का है। असरानी और दूसरे अभिनेताओं के साथ उसने कई फिल्मों में काम किया। वे संजीव कुमार के साथ भी नायिका बनकर आईं। उसी अरसे में **जयश्री टी.** भी कुछ फिल्मों में आई थीं। 'सुहागन', 'चरोतरनी चंपा' और 'गंगापुरनी गंगा' आदि अरुणा ईरानी की उल्लेखनीय फिल्में है। जयश्री टी. 'घूँघट', 'विसाओ' जैसी फिल्मों में आई। रागिनी ने गुजराती फिल्मों में अपना नाम 'राखना रमकड़ा', 'राजे कुँवर', 'नसीबदार' और 'काशीनो दीकरो' द्वारा रोशन किया। 'भगत गोरा कुंभार' में सरला येवलेकर की भूमिका थी।

हिंदी फिल्मों से कुछ देर के लिए मन बहलाने



स्नेहलता

की खातिर गुजराती फिल्मों में आने वाली एक उल्लेखनीय अभिनेत्री **रीता भादुड़ी** भी है। उनकी उल्लखनीय फिल्में है, 'बाप-दीकरो',संसारछेचाल्या करे',' 'पाया वीरमगाम','अलख ने ओटले' 'पीठी पीली ने रंग रातो' इत्यादि हैं। हमारे सांस्कृतिक जगत की यह इतनी यशस्वी घटना है कि बंगाल की अभिनेत्री, बंबई के रास्ते गुजराती फिल्मों में प्रवेश करती हैं।

इसी तरह **विद्या सिन्हा** भी थोड़े समय के लिए आईं और चली गईं। 'रेतीनां रतन' जैसी फिल्मों में उन्होंने उपेन्द्र त्रिवेदी के साथ अपनी जोड़ी जमाई। इसी तरह कानन कौशल ने भी 'सती जसमा ओड्ज' तथा 'ताना रीटी' जैसी फिल्मों के जरिए कुछ समय के लिए गुजराती फिल्मों पर राज किया। 'पुत्रवधू' तथा 'रेतीनां रतन' में सुषमा वर्मा भी चमकीं। 'संत तुलसीदास' तथा 'कुलदीपक' जैसी अनेक फिल्मों में चमकने वाली मराठी अभिनेत्री अंजना देसाई का उल्लेख भी जरूरी है। अंजना में अभिनय प्रतिभा बहुत है और यह वही अंजना देसाई है जो आजकल **अंजना मुमताज** के नाम से टी.वी. शृंखलाओं में दिखाई पड़ती हैं। अंजना की प्रतिभा का गुजरात को काफी लाभ उठाना चाहिए। उषा सोलंकी भी 'संत रोहीदास' जैसी फिल्मों में नजर आ जाती हैं।

क्या गुजरात के अभिनय क्षेत्र में महिला प्रतिभाओं की कमी है? ऐसा होता तो हिंदी चित्रपट पर आशा पारेख, टीना मुनीम, बिंदु और डिंपल कापड़िया जैसी अभिनेत्रियाँ नहीं होतीं। हिंदी फिल्मों का आकर्षण बहुत है। ग्लेमर, दौलत और शोहरत वहीं है। शायद गुजराती फिल्मों में इस तरह की नायिकाओं लायक पात्र भी नहीं हैं। दूसरे गुजराती फिल्मों के लिए गुजरात में से ही शुद्ध गुजराती नायिका खोजने के कोई व्यवस्थित प्रयास भी नहीं किए गए इसीका नतीजा था कि महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब और कर्नाटक की अभिनेत्रियों का आयात गुजरात में 'ओपन जनरल लायसेंस' के तहत थोक के भाव में होता है। यह अभिनेत्रियाँ जब गुजराती भाषा बोलती हैं, तो विचित्र और बेढंगी लगती है। जब मालती जोशी 'आशापुरा मातानी चुंदड़ी में' आईं तो कुछ उम्मीद बँधी थी मगर गुजराती फिल्मों में प्रोत्साहन न मिलने के कारण वे बंबई की होटलों में गजलें गाने लगीं। मल्लिका साराभाई ने भी फिल्म अभिनय को गंभीरता से नहीं लिया। पद्मारानी और अरुणा ईरानी की गणना अपवादों



रागिनी

के रूप में की जाती है। मगर पद्मारानी अब चरित्र भूमिकाओं के ही उपयुक्त है और अरुणा ईरानी गुजराती फिल्मों में हिंदी फिल्मों से आई हैं। 'खम्मा मारा वीरा' जैसी फिल्मों में सारिका नायिका थीं तथा 'खेमरो लोड़ण' में बिंदिया गोस्वामी नायिका थीं। दूसरी तरफ झंखना देसाई और माधवी पंड्या भी नाटक और फिल्मों के बीच आती-जाती रहीं। यदि गुजराती मंच की समर्थ अभिनेत्री सरिता जोशी फिल्मों में आई होती तो उससे गुजराती चित्रपट को लाभ ही हुआ होता। सरिता जोशी, रागिनी या पद्मारानी जैसी अभिनेत्रियों की गुजराती फिल्मों को ज्यादा जरूरत थी। १९५०-६० के दशक के अभिनय और संगीत को पुनर्जीवित करने के लिए उनमें विविधता लाना जरूरी था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और वे एकरूपता का शिकार हो गईं। निरुपाराय, तरला मेहता और गौहरजान जैसी अभिनेत्रियों की पूर्ति के लिए यदि गुजराती फिल्म निर्माता-निर्देशकों ने पूरे उत्साह से प्रतिभा की खोज की होती तो गुजराती फिल्मों की नायिकाओं के विषय में और भी गौरवशाली ढंग से लिखने की प्रेरणा मिली होती। ■

दक्षिण भारत की तारिकाएँ और हिन्दी फिल्मों का आकाश

● रमेश वैद्य

किसी भी हिन्दी फिल्मप्रेमी से पूछिए कि उसकी प्रिय नायिका कौन है, फौरन जवाब मिलेगा 'श्रीदेवी'। दक्षिण से आई इस फाख्ता जैसी आँखों वाली, भोले चेहरे, मासूम अंदाज वाली लड़की ने लाखों दर्शकों के दिल की धड़कन को तेज करने में सफलता पाई है। फिल्मी दुनिया पर राज करने वाली इस नायिका की कामयाबी की कहानी १९८६ में शुरू हुई। 'मिस्टर इंडिया' की सफलता के बाद उसने अपनी कीमत प्रति फिल्म २५ लाख कर दी। सर्वाधिक मेहनताना लेने वाली इस नायिका को मुँहमाँगी कीमत मिली।

यह एक विचित्र तथ्य है कि विंध्याचल के उस पार से हिन्दी फिल्मों में आने वाले अभिनेताओं में से कोई सफलता की चोटी तक नहीं पहुँचा। बोलने का दक्षिण भारतीय लहजा उन्हें शीर्ष तक पहुँचने में बाधा पहुँचाता रहा। इसके ठीक विपरीत नायिकाएँ सदैव सफलता की चोटी पर पहुँचती रहीं। दक्षिण भारत की नायिकाओं की हिन्दी फिल्मों पर विजय यात्रा का सिलसिला **वैजयंतीमाला** के साथ शुरू हुआ। इसके बाद **पद्मिनी, जया प्रदा, भानुप्रिया** तथा **स्वप्ना** का प्रवेश हुआ।

वैजयंतीमाला अपने जमाने में बंबई की फिल्मी दुनिया की सर्वाधिक प्रिय नायिका रही। फिल्म साधना में उसने वेश्या की भूमिका को निहायत कुशलता से अदा किया। 'संगम' उसकी सफलतम फिल्मों में से एक थी। राजकपूर के साथ नायिका के रूप में काम करते हुए इस फिल्म की शूटिंग के



सुधा चन्द्रन

फिल्मफेअर पुरस्कार प्राप्त नायिकाएँ



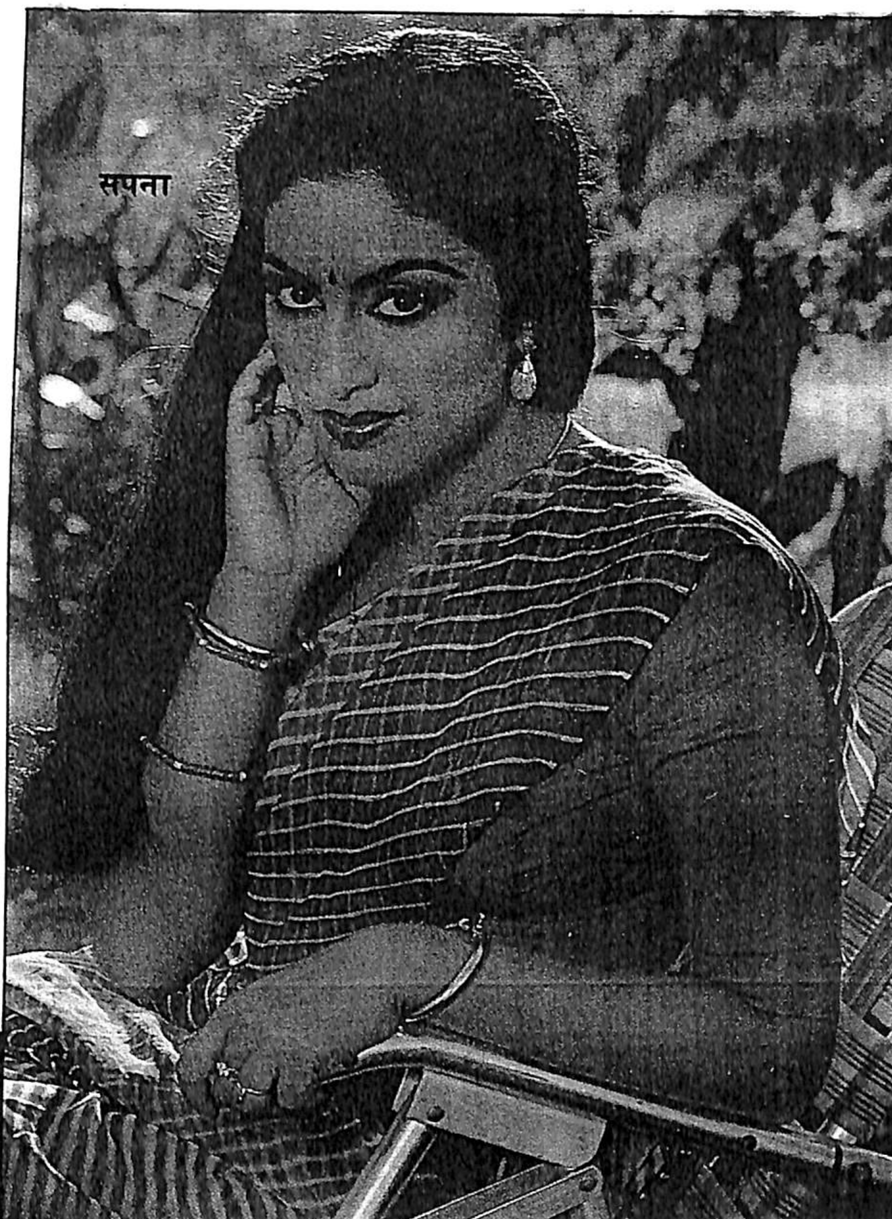
* १९५३ : मीनाकुमारी (बैजूबावरा)
* १९५४ : मीनाकुमारी (परिणीता)
* १९५५ : कामिनीकौशल (बिराजबहू)
* १९५६ : नूतन (सीमा)
* १९५७ : नरगिस (मदर इंडिया)
* १९५८ : वैजयंतीमाला (साधना)
* १९५९ : नूतन (सुजाता)
* १९६० : बीना राय (घूँघट)
* १९६१ : वैजयंतीमाला (गंगा जमुना)
* १९६२ : मीनाकुमारी (साहब, बीवी और गुलाम)
* १९६३ : नूतन (बंदिनी)
* १९६४ : वैजयंतीमाला (संगम)
* १९६५ : मीनाकुमारी (काजल)
* १९६६ : वहीदा रहमान (गाइड)
* १९६७ : नूतन (मिलन)
* १९६८ : वहीदा रहमान (नीलकमल)
* १९६९ : शर्मीला (आराधना)
* १९७० : मुमताज (खिलौना)
* १९७१ : आशा पारिख (कटी पतंग)
* १९७२ : हेमा मालिनी (सीता और गीता)
* १९७३ : डिम्पल (बॉबी)
  : जया भादुड़ी (अभिमान)
* १९७४ : जया भादुड़ी (कोरा कागज)
* १९७५ : लक्ष्मी (जूली)
* १९७६ : राखी (तपस्या)
* १९७७ : शबाना आजमी (स्वामी)
* १९७८ : नूतन (मैं तुलसी तेरे आँगन की)
* १९७९ : जया भादुड़ी (नौकर)
* १९८० : रेखा (खुशबू)
* १९८१ : स्मिता पाटिल (चक्र)
* १९८२ : पद्मिनी कोल्हापुरे (प्रेमरोग)
* १९८३ : शबाना आजमी (अर्थ)
* १९८४ : शबाना आजमी (भावना)
* १९८५-८६
* १९८७ : डिम्पल कापड़िया (सागर)
* १९८८ : रेखा (खून भरी माँग)

☐ प्रस्तुति : प्रकाश शर्मा

दौरान दोनों के रोमांस की खबरें भी काफी गरम रही। यह स्वाभिमानी नायिका अपनी प्रतिभा को पहचानती थी तथा अभिनेत्री के रूप में स्वयं को उत्तम समझती थी। जब **'देवदास'** में उसे सर्वश्रेष्ठ सह अभिनेत्री का फिल्मफेअर अवार्ड मिला, तो उसने यह कहते हुए उसे अस्वीकार कर दिया कि वह स्वयं को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री के अवार्ड के योग्य समझती है। प्रतिभाशाली एवं भरतनाट्यम में प्रशिक्षण प्राप्त इस नर्तकी-नायिका की श्रेष्ठ फिल्मों में 'आम्रपाली', 'औरत', 'ज्वेल थीफ', 'देवदास' हैं। अन्य हिट फिल्मों में 'लीडर', 'गंगा जमुना', 'नया दौर', 'मधुमती', 'साथी', 'गँवार' आदि शामिल हैं।

दक्षिण से आने वाली दूसरी सफल और कुशल नायिका **वहीदा रहमान** है। 'चौदहवीं का चाँद' से दर्शकों में लोकप्रिय हुई वहीदा रहमान ने गुरुदत्त के साथ 'प्यासा', 'कागज के फूल' तथा 'साहब बीवी और गुलाम' में नायिका का रोल अदा किया। सुनील दत्त के साथ वह 'रेशमा और शेरा' तथा 'मन की आँखें' में आई। 'गाइड' में वह देवानंद की नायिका बनी तथा 'ईमान धरम', 'अदालत' और 'कभी-कभी' में अमिताभ बच्चन के साथ मुख्य भूमिका में आई। 'त्रिशूल', 'महान' आदि फिल्मों में वह चरित्र अभिनेत्री के रूप में आई।

'सपनों का सौदागर' में राजकपूर ने **हेमामालिनी** को ड्रीमगर्ल के रूप में पेश किया। भरतनाट्यम की पारंगत युवा नर्तकी का चेहरा-मोहरा शुद्ध भारतीय था। हिन्दी के उच्चारणों की त्रुटियों को धीरे-धीरे सुधारकर यह युवा सुंदरी चोटी पर पहुँच गई। 'अभिनेत्री', 'खुशबू', 'अंदाज', 'सीता और गीता' में नाम कमाने वाली इस नायिका ने अपने समय के सभी लोकप्रिय नायकों के साथ नायिका का रोल किया। देवानंद, जितेन्द्र, राजेश खन्ना तथा धर्मेन्द्र। **धर्मेन्द्र** के साथ उसकी जोड़ी काफी सफल रही। 'शोले', 'नया जमाना' तथा 'ड्रीम गर्ल' में यह जोड़ी दर्शकों को काफी पसंद आई। 'मीरा' में मुख्य भूमिका के लिए हेमा को राष्ट्रीय अवार्ड मिला। राजेन्द्रसिंह बेदी की पंजाबी कहानी 'एक चादर मैली सी' में एक विधवा की भूमिका में वह काफी प्रभावशाली रही। 'शरारा', 'आवारगी' तथा 'सच का बोलबाला' के जरिए उसने फिल्म निर्माण में किस्मत आजमाई। 'नूपुर' के माध्यम से वह दूरदर्शन के धारावाहिकों के निर्माण के क्षेत्र में उतरी।

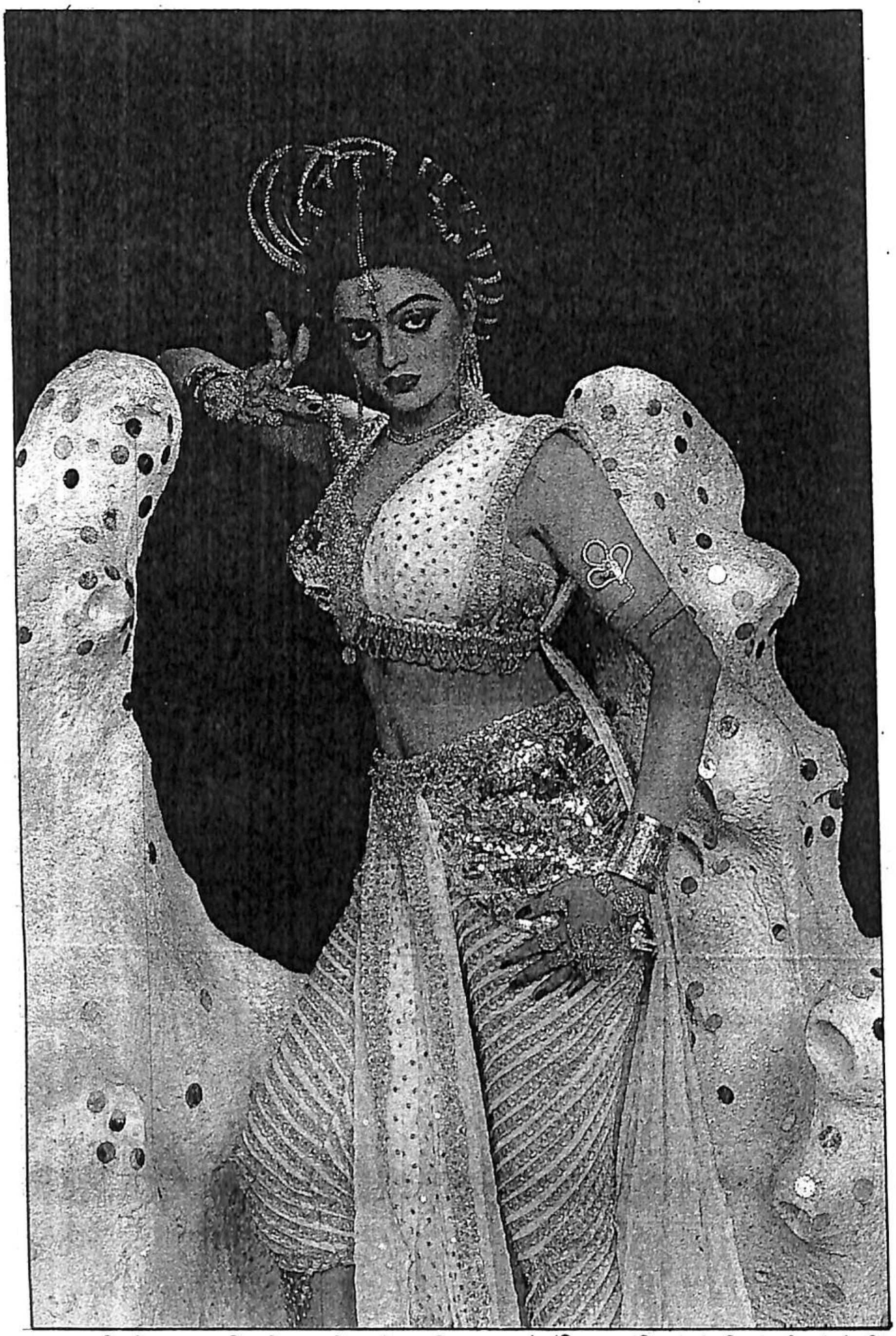


सपना

पद्मिनी



'सावन भादों' के माध्यम से दक्षिण की साँवली सलोनी किशोरी **रेखा** ने फिल्मी दुनिया में कदम रखा। दक्षिण के विख्यात निर्माता जेमिनी गणेशन की इस बेटी ने फिल्म 'अनोखा सफर' में अपने सह अभिनेता विश्वजीत का चुंबन लेकर तहलका मचा दिया। इसके बाद से वह किसी न किसी रूप में दर्शकों के बीच चर्चित रही। अमिताभ बच्चन, विनोद मेहरा, संजयदत्त तथा राज बब्बर के साथ उसके रोमांस की चर्चाएँ काफी फैली। उसका फिल्मी कैरियर भी काफी दिलचस्प रहा। 'ऐलान', 'प्राण जाय पर वचन न जाए' तथा 'कहानी किस्मत की' के बाद उसने ऋषिकेश मुखर्जी की फिल्म 'खूबसूरत' में बिलकुल नए तरीके की भूमिका की। 'नमक हराम' की इकहरी



बदन की रेखा पुरानी गोल–मटोल रेखा से बिलकुल अलग हो गई। इसके बाद उसकी लगभग सभी फिल्में हिट रहीं। अमिताभ के साथ वह 'नटवरलाल' तथा 'सिलसिला' जैसी सफल फिल्मों में आई। मुजफ्फर अली की 'उमराव जान' में अद्वितीय अभिनय करके उसने राष्ट्रीय अवार्ड जीता।

जब रेखा फिल्मों में अपनी भूमिका के बारे में सजग हो गई तथा चुनिंदा फिल्में ही स्वीकार करने लगी तब 'नंबर वन' नायिका की जगह पाने के लिए श्रीदेवी की कोशिशें शुरू हुई। अमोल पालेकर के साथ श्रीदेवी की पहली फिल्म 'सोलहवाँ सावन' फ्लॉप हो गई। श्रीदेवी ने हिम्मत नहीं हारी तथा 'हिम्मतवाला', 'भगवान दादा', 'मिस्टर इंडिया', 'नगीना' और 'चाँदनी' के जरिए सुपर स्टार बनने की राह पर चलती रही।

सर्वाधिक दमकते खूबसूरत चेहरे वाली, सत्यजीत रे जैसे विख्यात निर्माता से प्रशंसा प्राप्त **जया प्रदा** ने 'सरगम' में गूँगी-बहरी लड़की की भूमिका की और दर्शकों की चहेती बन गई। तेलुगु फिल्मों में 'स्टार' के रूप में प्रतिष्ठित जया प्रदा भी कुशल नर्तकी है। 'कामचोर', 'जीवन ज्योति' तथा 'संजोग' से लोकप्रियता की सीढ़ियाँ चढ़ने वाली जया प्रदा धीरे-धीरे पैर जमा रही है।

नंबर वन के स्थान पर पहुँचने की प्रतीक्षा करने वाली अन्य दक्षिण भारतीय नायिकाओं में 'मीनाक्षी शेषाद्रि' प्रमुख है। भारत सुंदरी का खिताब हासिल कर चुकने वाली यह नायिका भी कुशल नर्तकी है। 'पेन्टर बाबू' की असफलता के बाद 'हीरो' के जरिए उसने लोकप्रियता पाना शुरू किया। मीनाक्षी का कहना है कि 'स्वाति' में उसने सर्वोत्तम अभिनय किया है।

'एक दूजे के लिए' से रति अग्निहोत्री ने कमल हासन के साथ हिन्दी फिल्मों में प्रवेश किया। 'दोस्ती दुश्मनी' में जीतेन्द्र के साथ भानुप्रिया आई। दूरदर्शन धारावाहिक विश्वामित्र में मेनका के रूप में वह बेहद सफल रही। 'नसीब अपना-अपना' में **राधा** राधिका ने सहनायिका की भूमिका की तथा 'नाचे मयूरी' के जरिए कृत्रिम पैर वाली **सुधा चंद्रन** ने हिन्दी फिल्मों में प्रवेश किया।

अन्य नायिकाओं में बंगाली अभिनेत्री **अंजलि सेन** है, जो व्हाया दक्षिण भारत फिल्म लाखों की बात (फारुक शेख) में आई थी। **सिल्क स्मिता** दक्षिण भारत की हैरतअंगेज तारिका है। बंबई में पाँव रखते ही उसने अपनी माँसल देह से हंगामा बरपा दिया। इसके पहले **कल्पना अय्यर** सनसनी फैला चुकी थी। एक दिन बहू का, फिल्म से **स्वप्ना** ने भी कदम रखे, मगर दादा कोंडके जैसे निर्माता के चक्कर में पड़कर वह आगे की सोच नहीं सकी। समाज को बदल डालो से उर्वशी अवार्ड प्राप्त **शारदा** ने भी प्रवेश लिया था, मगर बात बनी नहीं। 'साधू और शैतान' की **भारती** को पिछले दिनों उत्तर-दक्षिण में देखा गया था। और पीछे जाया जाए तो बी. सरोजा देवी, पंढरीबाई, भानुमति, रागिनी, टी. राजकुमारी अपनी किस्मत आजमा चुकी है। दक्षिण से एक के बाद एक तारिकाओं की लहर आती है और वह सफल भी होती हैं। बंबई के फिल्माकाश में दक्षिण भारतीय तारिकाएँ कुछ ज्यादा ही जगमगाती हैं। ■

भानुमति



अभिनेत्रियाँ और सिनेमा के नारी पात्र

● कुमार शहानी

भारतीय सिनेमा में पिछले कुछ वर्षों में जो रेडिकल किस्म के फिल्मकार उभरे हैं उनमें कुमार शहानी का नाम प्रमुख है। उन्होंने अभी तक सिर्फ तीन ही कथा फिल्में बनाई हैं। १९७३ में उनकी पहली फिल्म **माया दर्पण** बनी थी और एक लंबे अंतराल के बाद बनी उनकी दूसरी फिल्म तरंग और ख्याल गाथा सिने प्रेमियों में चर्चा का विषय बनी हुई है। इन तीनों फिल्मों की बनावट काफी अलग है। इन फिल्मों को देखकर एक बात स्पष्ट है कि कुमार शहानी अपनी फिल्मों में नारी पात्रों को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। 'माया दर्पण' की अदिति हो या 'तरंग' की जानकी और हंसा-कुमार ने स्त्री पात्रों को केंद्र में रखकर अपनी बातें कही हैं। एक कारण यह भी है कि कुमार के प्रारंभिक जीवन में माँ की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। फिल्म अभिनेत्रियों और सिनेमा में नारी पात्रों की स्थिति को लेकर उनके विचार इस प्रकार हैं।

कुमार शहानी का मानना है कि भारतीय कल्पनाशक्ति में स्त्री को बहुत मजबूती से केंद्रीय स्थान दिया गया है। इसका संबंध भारतीय परंपरा से है। सांस्कृतिक स्तर पर इस छवि को काफी बल मिला है जबकि यहूदी, इस्लामी या क्रिश्चियन परंपरा के बारे में यह बात सच नहीं है। इन सभ्यताओं में स्त्री का स्थान प्रमुख नहीं रहा है। भारतीय सोच में कोसांबी से लेकर ऋत्विक घटक ने स्त्री की प्रतिमा को बिल्कुल अलग तरह से गढ़ा है। जाहिर है कि इस बात ने फिल्म की बनावट पर भी असर डाला है।

क्या एक पुरुष फिल्मकार स्त्रियों को सिनेमा के पर्दे पर बेहतर ढंग से प्रस्तुत कर सकता है? कुमार का मानना है कि स्त्री एक पुरुष को अधिक तीव्रता के साथ चित्रित कर सकती है। इसी तरह से स्त्री को एक पुरुष बेहतर ढंग से देख और समझ सकता है। महान लेखकों और महान फिल्मकारों ने स्त्रियों को बहुत गहराई और सार्थकता से चित्रित किया है। विस्कौंती की 'डैथ ऑफ वेनिस' सरीखी फिल्में अपवाद ही कही जाएंगी जिनमें समलैंगिक अनुभवों को केंद्रीय माना गया है।

पश्चिम के मुकाबले भारत में तो महिला चित्रकारों को भी विशेष दर्जा प्राप्त रहा है। इस प्रश्न पर कुमार शहानी ने अपने पास रखे एक फोल्डर को दिखाया जिसमें अमृता शेरगिल की पेंटिंग की अनुकृति थी। "हमारी संस्कृति में स्त्रियाँ मुख्य धारा में रही हैं। आप अपनी फिल्मों में एक अभिनेत्री से किस तरह से संवाद स्थापित करते हैं? कुमार ने बताया कि उनकी फिल्मों में अभिनेत्रियों से संवाद के तीन स्तर हैं। पहले तो उन्हें वह एक अभिनेत्री के रूप में देखते हैं, फिर एक स्टार के रूप में और फिर एक व्यक्ति के रूप में। यदि इन तीनों स्तरों के प्रति आदरभाव नहीं दिखाया जाए तो फिल्म के 'फार्म' के प्रति आदर दिखाना भी संभव नहीं है।यह जरूरी है कि एक फिल्मकार अपनी कला में तीनों चीजों का विवेकपूर्ण सम्मिश्रण करे। मिसाल के लिए 'माया दर्पण' फिल्म में केवल अभिनय के पक्ष पर ध्यान दिया जाता, तो शायद बात नहीं बनती।

कुमार का मानना है कि इधर भारतीय सिनेमा में सोच-विचार की संभावना काफी बड़ी है। वातावरण काफी बदला है। अपने समय में वहीदा रहमान, मीना कुमारी, गीताबाली आदि अभिनेत्रियाँ अभिनय के क्षेत्र में और भी ऊँचाइयाँ पा सकती थीं अगर उन्हें उचित वातावरण मिलता। इधर केवल फिल्म निर्देशन के क्षेत्र में ही उपलब्धियाँ सामने नहीं आई हैं बल्कि एक समग्र वातावरण बना है।



स्मिता पाटिल और अमोल पालेकर 'तरंग' (१९८४) में

तथाकथित एक्शन फिल्मों के छा जाने से स्त्रियों की भूमिकाएँ बहुत गौण हो गई हैं? "जंगली फिल्म के बाद से हमारे यहाँ फिल्मों में जो चीजें उभरी हैं उनका संबंध किसी भी परंपरा से नहीं है। वे न भारतीय परंपरा से जुड़ी हैं और न पश्चिमी परंपरा से। इस पृथ्वी की किसी भी चीज से उनका संबंध नहीं है।"

कुमार शहानी के अनुसार एक फिल्म में किसी अभिनेत्री के साथ संवाद स्थापित करने के लिए यह जरूरी है कि उसे व्यक्ति के रूप में भी वह अच्छी तरह से जानते हों। संबंध अकथित भी हो सकता है। "मुझे स्मिता पाटिल से सब कुछ कहना नहीं पड़ता था। बिना कुछ बोले हम दोनों की आँखों के बीच भी संवाद चलता था। स्मिता या अमोल जैसे अभिनेताओं से मैं बिना किसी रुकावट के संवाद स्थापित कर सकता हूँ। हमें अपनी जीवन शैलियों में कोई परिवर्तन नहीं करना पड़ता। मैं अपनी अभिनेत्रियों का चुनाव उनकी फिल्में देखकर नहीं बल्कि उनसे मिलकर करता हूँ।"

अंतरराष्ट्रीय सिनेमा की चर्चित अभिनेत्रियों के बारे में बात करते हुए कुमार शहानी ने बताया कि स्वीडन में तो फिल्म अभिनय की एक महान परंपरा है। वहाँ अभिनेता और अभिनेत्रियाँ मूक फिल्मों के समय से ही सच्चाई को अद्भुत ढंग से सिनेमा के पर्दे पर उभारती रही हैं। लेकिन विश्व सिनेमा में अभिनय की वास्तविक संभावनाएँ कार्ल ड्रेयर की फिल्म **'द पैशन ऑफ जॉन ऑफ आर्क'** की नायिका फालके नोती या 'संत तुकाराम' (निर्देशक : बी. दामले तथा एस फतहलाल) में विष्णुपंत पागनिस सरीखे अभिनेताओं ने उजागर की है। "अभिनेता अक्सर इस बात से डरते हैं कि वे कहीं अपने को एक्सपोज न कर दें। लेकिन स्टार बनने की सच्चाई इसी बात में है कि अपने अस्तित्व (बीइंग) को बाहर लाया जाए (ग्रेता गार्बो ने यह किया था) फ्रांसीसी फिल्मकार ब्रेसाँ ने अपनी फिल्मों में व्यक्ति के भावनात्मक अस्तित्व को उभारा है।"

अपने समय की अभिनेत्रियों में कुमार शहानी स्मिता पाटिल, शबाना आजमी और रोहणी हटंगड़ी आदि की अभिनय प्रतिभा से विशेष रूप से प्रभावित हैं। स्मिता को वे एक स्वाभाविक फिल्म अभिनेत्री मानते हैं। "उसने एक दो नाटकों में ही काम किया होगा। उसके अभिनय में लय और ताल का एक अद्भुत अहसास है। उसे अगर यह बताया जाएगा। कि यह करो यह न करो तो शायद अच्छे नतीजे सामने न आ पाएँ। जहाँ तक शबाना का सवाल है उसमें एक तरह की प्रेजेंस है जो लोगों को उसकी ओर खींचती है। कुछ खास क्षणों में शबाना अपने आपको पूरी तरह से बाहर लाने में सफल हो जाती है।" (दिनमान से) ■


FIRST TIME IN INDIA
Jet vaporiser

अतीत से अब तक

बंगला फिल्मों की नायिकाएँ

पिछले पचहत्तर वर्षों में बंगला फिल्मों की नायिकाओं की एक लंबी सूची है। बंगला फिल्मों ने न सिर्फ हिंदी सिनेमा को समर्थ नायिकाएँ दी हैं वरन् बंगला के समृद्ध साहित्य की नायिकाओं को जीवंत भी किया है। रवींद्रनाथ ठाकुर और **शरतचंद्र** चटर्जी की घर-घर में बसी नायिकाओं को परदे की इन्हीं परियों ने रूपायित किया है। कानन देवी, सुनंदा बनर्जी, सुमित्रा देवी, जमुना, सुचित्रा सेन, रेणुका राय, संध्या राय, माधवी मुखर्जी, कावेरी बसु, सुप्रिया, अपर्णा सेन, मंजू डे, अरुंधती देवी, महुआ राय चौधरी से बढ़ता यह कारवाँ देबाश्री राय, शताब्दी राय, पापिया अधिकारी, श्रीला मजूमदार, मुनमुन सेन और रूपा गांगुली तक आ पहुँचा है। इन नायिकाओं ने अपने सौंदर्य, अभिनय और भावाभिव्यक्ति से दशकों तक दर्शकों का मनोरंजन किया, साथ ही भारतीय नारी के बदलते जीवन मूल्यों को इतिहास की तरह सुरक्षित भी रखा है।

● असीम चक्रवर्ती

बात की शुरूआत १९३७ में प्रदर्शित कानन देवी की बंगला फिल्म **मुक्ति** की चर्चा से शुरू करना बेहतर होगा। दरअसल इससे एक साल पहले ही कानन देवी ने राधा फिल्म्स से अपना रिश्ता तोड़कर न्यू थिएटर्स से गाँठ बाँध ली थी। बस इसके बाद ही जैसे बंगला फिल्मोद्योग का स्वर्ण युग शुरू हुआ। एक तरह से बंगला फिल्मों ने यहीं से एक अच्छी रफ्तार पकड़ ली थी। मुक्ति में प्रमथेश बरुआ के साथ नायिका के रूप में कानन देवी ने दर्शकों के दिलों में जो अमिट छाप छोड़ी थी, वह बहुत कम नायिकाओं के हिस्से में आती है। यही वजह है कि पचास, साल बाद आज भी यदि मुक्ति दूरदर्शन पर दिखाई जाती है, तो दर्शक एक सम्मोहन में बँधा इस फिल्म को देखता है। इनमें से बहुत सारे दर्शक ऐसे भी होते हैं जो मुक्ति के प्रदर्शन से पहले जन्मे भी न थे, पर मुक्ति उन्हें भी समान रूप से आकर्षित करती है। अब यदि इसका कारण ढूँढ़ने जाएँ तो सिर्फ कानन देवी ही हमें नजर आती हैं, जो मुक्ति की जान हैं, मुक्ति की आशातीत सफलता में कानन देवी का असीमित सौंदर्य ही नहीं, उनके चरम व्यक्तित्व का भी महत्वपूर्ण योगदान था। वैसे तो इस फिल्म में प्रमथेश बरुआ भी थे और इसमें उनके सहज अभिनय पर कोई प्रश्नचिह्न भी नहीं उठता है, पर इसकी सफलता में प्रमथेश से लाख गुना ज्यादा योगदान कानन देवी का था।

यही कानन देवी बाद में **'विद्यापति'** फिल्म में एक बिल्कुल नए किरदार में नजर आती हैं। मुक्ति में वे जहाँ शहर की आधुनिक लड़की बनी थीं, वहीं **विद्यापति** में गाँव की सीधी-सादी ग्राम बाला की भूमिका को कर उन्होंने झट अपनी छवि बदल दी। मध्य वर्ग की कन्या के रूप में **शेष उत्तर** में उनका अंदाज फिर भिन्न नजर आता है और यह दर्शकों को पूरी तरह से स्वीकार भी है। यह भिन्नता उनकी हर फिल्म में कम या ज्यादा अवश्य देखने को मिलती है। दुःखी माँ, सुख-दुःख में साथ देने वाली पतिव्रता पत्नी, प्रेम की आग में जल रही प्रेयसी, गायिका आदि ऐसी दर्जनों भूमिकाएँ हैं, जिसे सिर्फ कानन देवी के भाव प्रवण अभिनय ने जीवंत कर दिया। यही वजह थी कि 'श्रीकांत ओ अन्नदा दीदी', 'अभया', 'श्रीकांत' आदि कुछेक फिल्मों के बाद ही कानन देवी को कालजयी नायिका के रूप में स्वीकृति मिल गई थी। इस स्वीकृति की एकमात्र वजह यह थी कि किसी भी भूमिका को सहजता के साथ पेश करने के बावजूद कानन देवी कभी टाइप्ड नहीं हुई। किसी खास मैनरिज्म के गिरफ्त में उन्हें कभी नहीं आना पड़ा।

कानन देवी के बाद जिस बंगाली नायिका पर ध्यान जाता है वह है संध्यारानी। 'बेकार नासन' फिल्म में संध्या नर्तकी की भूमिका में दिखाई पड़ी थीं। तब उनका नाम था आँगूर, नरेश मित्र ने उन्हें अपनी फिल्म 'बांग्लार मेये' की नायिका के रूप में चुन लिया और उनका नाम रख दिया संध्यारानी। उसके पूरे व्यक्तित्व में कमनीयता का अंश बहुत ज्यादा है। इसलिए ग्राम बाला या गाँव की सरल महिला की भूमिका में वे सबसे ज्यादा सफल रहीं। उनकी यह कमनीयता बाद के वर्षों में माँ की ममता के रूप में परिवर्तित हुई। वर्तमान में स्नेहशील माँ की भूमिका के लिए वे सबसे ज्यादा विश्वास-योग्य अदाकारा हैं।

अब यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि पिछले ७५ वर्षों में बंगला फिल्मों में आने वाली नायिकाओं की एक लंबी सूची है। इसलिए इसमें शामिल सारी नायिकाओं की चर्चा करना व्यर्थ है। इसकी बजाए ऐसी नायिकाओं की चर्चा करना जरूरी है, जिन पर बंगला फिल्मोद्योग आश्रित रहा है। जिनके अभिनय की विशेष धारा से बंगला फिल्मोद्योग आगे बढ़ा है।

इस चर्चा की शुरूआत अभिनेत्री **सुनंदा बनर्जी** से करना ज्यादा मुनासिब होगा। नई पीढ़ी के बहुत कम लोगों को उनका नाम याद है। शायद पुरानी पीढ़ी के बहुत लोगों ने उनका नाम भुला दिया होगा। उनके अभिनय से नारी के व्यक्तित्व की दृढ़ता का एहसास होता था, जिन्होंने उनकी

अपूर संसार का एक दृश्य





नयना दास

फिल्म **अंजनगढ़** देखी है, उनमें से अधिकांश का मत है कि यदि इस फिल्म के नायक राजा गाँगुली की अकाल मृत्यु न होती तो सुनंदा और राजा की जोड़ी लोकप्रियता का एक इतिहास लिखती। इसके सामने उत्तम-सुचित्रा की जोड़ी कहीं नहीं ठहरती।

'संधि' फिल्म में सुमित्रा देवी पहली बार नजर आई थीं। वे सुंदर ही नहीं, व्यक्तित्व संपन्न भी थीं। लेकिन धनी नायिका का किरदार ही उन पर ज्यादा फबता था। इसलिए किसी अन्य भूमिका के मामले में निर्माता उन पर कम ही विश्वास करते थे। विमल मित्र की कहानी पर आधारित 'साहब-बीवी और गुलाम' में सुमित्रा देवी ने पटरानी की भूमिका में असाधारण अभिनय किया था। बंगला के विख्यात लेखक ताराशंकर बंद्योपाध्याय की **कवि** के द्वारा अनुभा गुप्त ने तत्कालीन दर्शकों के बीच अपनी एक विशेष जगह बना ली थी। अनुभा ने 'कवि', 'रत्नदीप' जैसी कुछेक गिनी-चुनी फिल्मों में ही काम किया था, परंतु इन फिल्मों के सहारे आज भी उन्होंने बंगाली दर्शकों के बीच अपनी मौजूदगी बना रखी है।

पाँचवें दशक में कुछ और नायिकाओं ने अपने आपको बंगला फिल्मों में स्थापित करने की कोशिश की थी। इनमें से कुछ सफल भी हुईं, लेकिन **सुचित्रा सेन** ने अपनी अद्भुत प्रतिभा और विशेष दक्षता के सहारे अपनी निराली छाप छोड़ी। सुचित्रा के साथ-साथ उस दौड़ में **रेणुका राय** और **भारती राय** ने भी अपने-अपने अभिनय से दर्शकों का मन जीत रखा था। पर सुचित्रा के सामने ये नायिकाएँ टिक नहीं पाईं। इसकी वजह थी इनका एक ही ढंग का अभिनय। अभिनय की एक ही धारा में इन्होंने अपने आपको ढाल रखा था। एक खास तरह की रोमांटिक प्यारी नायिकाओं के पात्रों में ही ये ज्यादा फबती थीं। शैलजा नंदन की 'डॉक्टर' फिल्म में ज्योति प्रकाश के साथ भारती राय का मुहब्बत से लबरेज नायिका का किरदार आज भी दर्शकों के जेहन में मौजूद है। रेणुका राय भी शैलजा नंदन की फिल्म 'शहर थेक दूरे' में पहली बार दिखाई पड़ी थीं और उनकी ही अधिकांश फिल्मों में उन्होंने काम



सुमित्रा मुखर्जी

किया था। शुरू-शुरू में भारती राय की तरह उनके अभिनय का अंदाज भले ही रहा हो, पर बाद में उन्होंने अपने अभिनय की धारा को संपूर्ण बदल दिया था। रोमांटिक नायिका के रूप में शोहरत पाने वाली रेणुका को बाद में दर्शकों ने कलहप्रिय नायिका के रूप में भी सराहा। अपने अभिनय की इस विशेषता के कारण ही वे दर्शकों के बीच भारती राय की अपेक्षा ज्यादा विश्वास योग्य बन गई थीं।

सावित्री, संध्या राय और सुचित्रा सेन समकालीन नायिकाएँ हैं। इससे पहले कुछेक फिल्मों में वीनता राय ने भी बतौर नायिका काम किया। फिल्म 'हृदयेर पथे' के अलावा उनकी कोई भी फिल्म ऐसी नहीं है, जिसे याद किया जाए। नायिका के रूप में उनका कैरियर ज्यादा लंबा

कल्पना कीजिए कि बंगाल की उर्वरा माटी से हिंदी सिनेमा संसार को सुचित्रा सेन, अपर्णा सेन, शर्मिला ठाकुर, राखी, जया भादुड़ी, माला सिन्हा और मौसमी चटर्जी जैसी भाव प्रवण तारिकाओं का उपहार न मिला होता, तो क्या पारिवारिक और संवेदनशील फिल्में बंबई के कारखानों से बनकर बाहर आ पातीं?

नहीं चल पाया। जहाँ तक सावित्री चटर्जी का सवाल है, वे एक असाधारण अभिनय क्षमता की मालकिन थीं। सुचित्रा सेन के चरम युग में भी वे पूरी शान के साथ विविधता से भरी भूमिकाओं में नजर आती रहीं। किसी खास तरह की भूमिका में वे कभी टाइप्ड नहीं हुईं। शहर की तड़क-भड़क वाली नायिका की भूमिका हो या गाँव की भोली-भाली लड़की का किरदार, सावित्री ने हर पात्र को अपने अभिनय से इतना सार्थक बना दिया कि दर्शक उसी भूमिका में रच-बस गए। उनके अभिनय की विस्तृत रेंज को समझने के लिए **गृहदाह** में की गई उनकी भूमिका को याद



श्रीला मजूमदार

करना ही काफी होगा।

संध्या राय को निर्देशक सलिल सेन ने ताराशंकर बंद्योपाध्याय की **नागिनी कन्यार काहिनी** में पहली बार पेश किया था। इसी फिल्म में मंजुला बंद्योपाध्याय भी दिखाई पड़ी थीं। पर उन्हें ज्यादा दिन तक अभिनय रास नहीं आया। संध्या राय आज भी फिल्मों में नजर आ रही हैं। साधारण गृहस्थिन, ग्राम वधू, अशिक्षित महिला आदि भूमिकाओं को सार्थक करने में संध्या का कोई जोड़ नहीं है। पर जहाँ भी वे शहरी रंग-ढंग में रंगी भूमिकाओं में दिखाई पड़ीं, तुलनात्मक रूप से वे ज्यादा विश्वसनीय नहीं साबित हुईं। शहरी जीवन से जुड़ी फिल्मों में भी वे फिट बैठ सकती हैं, बशर्ते ऐसी फिल्मों में उनका किरदार ऐसा हो, जिसमें गाँव की लड़की जैसी सरलता हो। यही वजह है कि 'संसार सीमांते' जैसी फिल्म में भी उनका असाधारण अभिनय दर्शकों को देखने को मिला। जबकि, यह फिल्म पूर्णतया शहरी जीवन से जुड़ी हुई थी। संध्या राय की 'गणदेवता' वह उल्लेखनीय फिल्म थी, जिसमें संध्या राय के साथ एक नई अभिनेत्री माधवी मुखोपाध्याय भी दिखाई पड़ी थीं। अपनी-अपनी भूमिकाओं में दोनों ने ही दर्शकों का दिल जीत लिया था। आगे चलकर माधवी ने यह साबित कर दिया कि किसी खास तरह की भूमिकाओं के दायरे से वे बाहर हैं। विविधता भरी भूमिकाओं में ही वे ज्यादा सफल हैं। यह उन्होंने निर्देशकों को जल्दी ही समझा दिया। जहाँ 'गणदेवता' में गाँव की अशिक्षित, लड़ाकू औरत की भूमिका में वे सफल रहीं, वहीं ऋत्विक घटक की 'सुवर्णरेखा' में एकदम अलग-थलग भूमिका करके उन्होंने अपने अभिनय की अविस्मरणीय पहचान छोड़ी, दूसरी ओर सत्यजीत राय की 'चारूलता' में रुचि संपन्न शिक्षित परिवार की महिला के रूप में माधवी ने कमाल कर डाला। कुछ लोग इस फिल्म में उनके इस उत्कृष्ट अभिनय को सत्यजीत राय के निर्देशन का कमाल मानते हैं। इस प्रसंग में उनकी इस धारणा को तोड़ने के लिए विभूति लाहा और अग्रदूत की फिल्म 'छद्मवेशी' का उदाहरण देना ही काफी होगा। इस फिल्म में विदुषी शिक्षित महिला के किरदार को बहुत ही विश्वस्त ढंग से

उन्होंने पेश किया था। दूसरी ओर **महानगर** में मध्य वर्ग की शिक्षित नौकरी करने वाली नायिका के पात्र को करके उन्होंने फिर अपने बारे में कोई धारणा नहीं बनने दी। यह शायद बहुत कम लोगों को पता है कि हीरेन नाग की 'थाना थेके आसही' में माधवी ने सहज भाव अभिव्यक्ति की अद्भुत सृष्टि की थी। अफसोस, यह फिल्म बॉक्स ऑफिस पर लुढ़क गई।

सुचित्रा सेन और अपर्णा सेन की चर्चा से पहले सुप्रिया, कावेरी बसु तथा कुछ अन्य अभिनेत्रियों की चर्चा करना जरूरी है। जिन्होंने ऋत्विक घटक की 'मेघे ढाका तारा' देखी है, वे सब एक स्वर में सहमत होंगे कि सुप्रिया एक अत्यंत प्रतिभा संपन्न अभिनेत्री थीं। सुप्रिया की समकालीन कावेरी बसु ने ताराशंकर की 'राइकमल' में काम कर दर्शकों का अटूट स्नेह अर्जित किया था। पर कावेरी के अभिनय का रेंज कुछ ज्यादा विस्तृत नहीं था। इसलिए कुछ विशेष ढंग की भूमिकाओं में ही वे अपने आपको आदर्श पाती थीं। इसके विपरीत सुप्रिया के हिस्से में कई विविधता भरी भूमिकाएँ आई, लेकिन सुप्रिया और उत्तम कुमार का आत्मीय रिश्ता और साथ सुप्रिया के अभिनय रेंज को कम कर आँकने में सहायक बना। जिन्होंने सुप्रिया और उत्तम कुमार की फिल्म 'जीवन-मृत्यु' देखी है, उन सभी का मानना है कि इस फिल्म में नायिका गोपा के रूप में वे अत्यंत संयत और बेजोड़ नजर आती हैं। पूरी फिल्म उत्तम कुमार के इर्द-गिर्द घूमती है, इसलिए सुप्रिया के अभिनय की ओर दर्शकों का कम ध्यान जाता है। दर्शकों की ऐसी बेरुखी कभी-कभी कई आश्चर्यजनक प्रश्न खड़ा कर देती है, क्योंकि कुछ साल पहले बनी इसी फिल्म के हिंदी रूपांतर में काम करके राखी ने अपनी एक विशिष्ट छाप छोड़ी थी, जबकि यह राखी की पहली फिल्म थी। इसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्देशक और कहानी ही किसी कलाकार को प्रतिष्ठित करते हैं। **लिली चक्रवर्ती** इसी वज़ह से अपनी कोई विशेष पहचान कभी नहीं बना पाई। लिली के भीतर अभिनय की अगाध प्रतिभा मौजूद है। अवसर के अभाव में उसकी प्रतिभा का समुचित विकास संभव नहीं हुआ। एक और अभिनेत्री



मुनमुन सेन



राखी

शर्मिला टैगोर को यदि हिंदी फिल्मों ने पनाह न दी होती तो आज बंगला फिल्मों की झोली में एक और प्रतिभाशाली अभिनेत्री होती। निर्देशक अजय कर ने **प्रभातेर रंग** फिल्म में विश्वजीत और शर्मिला की जो मजबूत जोड़ी बनाई थी, वह यदि स्थायी होती तो इस बात की संभावना ज्यादा थी कि बंगला फिल्मोद्योग और बलिष्ठ होता।

मंजू डे और अरुंधती देवी ने भले ही कुछ गिनी-चुनी फिल्मों में काम किया हो, पर विविधता भरी भूमिकाओं में काम कर उन्होंने भी अपनी अलग छाप छोड़ी थी। मंजू डे ने 'काबुलीवाला' और 'लौह कपाट' में एकदम विपरीत तरह की भूमिकाओं को कर दर्शकों का भरपूर विश्वास जीता। दूसरी ओर **अरुंधती देवी** के चेहरे से उच्च शिक्षिता नारी की झलक मिलती थी। इसलिए 'किढ़ुखण' फिल्म से अपना कैरियर शुरू करने वाली अरुंधती देवी ने 'चलाचल', 'पंचथापा', 'विचारक', 'जंतुग्रह', 'सिस्टर निवेदिता' जैसी फिल्मों में काम किया। उन सभी में उनके इस व्यक्तित्व का पूरा इस्तेमाल किया गया।

अब बारी आती है सुचित्रा सेन और अपर्णा सेन की। बंगला फिल्मोद्योग के फलने-फूलने में सुचित्रा का जो योगदान है, उसकी चर्चा हमेशा अलग से होगी। एक श्रेष्ठ अभिनेत्री के पास सिर्फ सौंदर्य ही नहीं व्यक्तित्व की पूँजी भी होनी चाहिए। सुचित्रा इसकी अच्छी मिसाल है। उत्तम-सुचित्रा की जोड़ी की दर्जनों फिल्में आज भी बंगला दर्शकों के बीच अपना सर्वश्रेष्ठ मुकाम रखती हैं। पूरे भारतीय फिल्मोद्योग में भी ऐसी श्रेष्ठ जोड़ी बहुत कम ही मिलेगी। सबसे दिलचस्प तथ्य तो यह है कि बंगला फिल्मों के एक अत्यंत प्रतिभासंपन्न नायक के साथ जोड़ी बनाने के बावजूद सुचित्रा का अभिनय किसी भी फिल्म में उनके सामने उन्नीस नहीं पड़ा। उनके निर्देशक भी इस बात को अच्छी तरह से समझते थे। यही वजह है कि उत्तम-सुचित्रा की जोड़ी की ऐसी फिल्में एक-दो ही मिलेंगी, जिसमें सुचित्रा की भूमिका उत्तम से थोड़ी कमजोर रही और जिसके चलते उत्तम कुमार की तरफ दर्शकों का ध्यान ज्यादा गया। सुचित्रा के नाम ऐसी दर्जनों फिल्में हैं, जिसे सुचित्रा के उत्कृष्ट अभिनय के कारण दर्शकों ने बार-बार देखा। उनकी दो फिल्मों की

चर्चा करना बहुत जरूरी है, क्योंकि सुचित्रा सेन अपनी इन दोनों फिल्मों को बहुत पसंद करती हैं। ये फिल्में हैं-'सात पाके बाँधा' और 'देवी चौधुरानी।' 'सात पाके बाँधा' फिल्म में शिक्षित, व्यक्तित्व संपन्न और अभिमानी नायिका के रूप में सुचित्रा दिखाई पड़ी थीं। इस एकमात्र फिल्म के आधार पर उन्हें विश्व की श्रेष्ठ अभिनेत्री का सम्मान हासिल हो गया था। शायद इसकी मुख्य वजह थी सुचित्रा का असाधारण अभिनय, जो नायिका के सौंदर्य और ग्लैमर से भी बहुत ऊपर है। अच्छे अभिनय की सृष्टि को देखते ही दर्शक ये सब बातें भूल जाते हैं। इसी तरह बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की 'देवी चौधुरानी' में नायिका प्रफुल्ल की अति चुनौतीपूर्ण भूमिका को सफलतापूर्वक करके सुचित्रा ने अदम्य साहस का परिचय दिया था, क्योंकि बंकिम बाबू ने अपने उपन्यास 'देवी चौधुरानी' में नायिका प्रफुल्ल की जिस उम्र का उल्लेख किया है, उसमें और सुचित्रा की वास्तविक उम्र में एक बहुत बड़ा फर्क था। लेकिन सुचित्रा के सहज अभिनय ने इस फासले को कहीं भी महसूस नहीं होने दिया। 'देवी चौधुरानी' में बंकिम की प्रफुल्ल जब डकैत सरदार देवी चौधुरानी का रूप अख्तियार करती है, तब उसका पति बृजेश्वर भी उसे पहचान नहीं पाता है। इस अंतर को सुचित्रा ने इतने सशक्त ढंग से पेश किया था कि दर्शक भी इस परिवर्तन को महसूस करते हैं। इस सफलता में निश्चित रूप से निर्देशक दीनेन गुप्त के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। वैसे दीनेन गुप्त ने कुछ ऐसा साहस अपर्णा के मामले में भी दिखाया था। उनकी फिल्म 'इंदिरा' में अपर्णा सेन ने अभिनय की चरम बुलंदी को एक झटके में छू लिया था। कुछ ऐसी बात अपर्णा की 'अपरिचिति', 'कलंकित नायक', 'विजयिनी' आदि फिल्मों में नजर आती है। आज भी अपर्णा नायिका के रूप में दिखाई दे रही हैं। पर अब वे एक अच्छी निर्देशिका के साथ-साथ बंगला की एक महिला पाक्षिक की सफल संपादिका भी हैं।

कुछ पुरानी अभिनेत्रियों ने बढ़ती उम्र के सामने घुटने टेककर चरित्र अभिनेत्री का जामा पहन लिया। सुचित्रा सेन ने अपनी फिल्मों की संख्या कम करनी शुरू कर दी, लेकिन इससे भी जमावड़े की चमक कम नहीं हुई। सुप्रिया, संध्या, अंजना, शर्मिला पूरी तरह जमकर काम कर रही थीं। इसी दौरान माधवी मुखोपाध्याय जैसी प्रतिभाशाली अभिनेत्री का भी उदय हुआ। इनकी ख्याति जब चरम पर थी, तभी अपर्णा सेन भी आ गईं। इसके कुछ दिनों बाद मौसमी का आगमन हुआ। दूसरी ओर बंबइया फिल्मों की चमक ने माला सिन्हा को अपनी गिरफ्त में ले लिया। माला के बाद शर्मिला गई, फिर मौसमी चटर्जी ने भी बंबई का रास्ता पकड़ा। जया भादुड़ी थोड़े दिनों के लिए बंगला फिल्मों में आईं, फिर हिंदी फिल्मों के सम्मोहन ने उन्हें भी अपनी तरफ खींचा। इस तरह सत्तर के दशक के मध्य तक आते-आते यह जमावड़ा खतम होने की हालत में पहुँच गया। सच कहा जाए तो उस समय सही अर्थ में एकमात्र अपर्णा सेन का ही राज था, क्योंकि उम्र बढ़ जाने के कारण सावित्री, सुप्रिया, संध्या और माधवी को बतौर नायिका साइन करने में निर्माताओं की दिलचस्पी घटने लगी थी। ऐसे में कुछ नई नायिकाओं सुमित्रा, राजश्री, महुआ, जयश्री आदि के आगमन से फिर एक संभावना जगी, पर सुमित्रा के अलावा इनमें से कोई भी टिकी नहीं रही। दूसरी ओर पाँव जमाने के लिए महुआ राय चौधुरी का संघर्ष जारी था। अस्सी के अंत तक आते-आते जब सुमित्रा उम्र के हाथों मजबूर होकर नायिका की भूमिका लेने से कतराने लगी थीं, तब तक महुआ एक भाव प्रवण अभिनेत्री के रूप में अपना स्थान बना चुकी थीं। अपर्णा के बाद निर्माताओं की दूसरी पसंद महुआ ही थी। अचानक महुआ की अकाल मृत्यु के बाद फिर एक शून्यता आ गई। वैसे महुआ के जीवित रहते ही कई और नई तारिकाएँ बंगला फिल्मों में नजर आई थीं, पर महुआ की उपलब्धियों से ये बहुत पीछे थीं। देबाश्री राय, मुनमुन सेन, शताब्दी राय, पापिया अधिकारी आदि नई अभिनेत्रियों में निर्माताओं की दिलचस्पी भले ही बढ़ी, लेकिन अपर्णा सेन का दबदबा बदस्तूर बना रहा। सन् ८७ तक अपर्णा पूरी शान के साथ नायिका के रूप में काम करती रहीं। ८७ में प्रदर्शित उनकी फिल्म 'एकांत आपन' की आशातीत सफलता इस बात का अच्छा प्रमाण है कि अपर्णा यदि चाहतीं तो आज भी टालीगंज (कलकत्ता का एक विख्यात इलाका, जहाँ अधिकांश स्टूडियो और कलाकारों का निवास स्थान है) की शीर्ष नायिका के रूप में विराजमान रह सकती थीं। इसके अलावा दो और नायिकाएँ कुछ अलग ढंग की फिल्मों में ही फिट बैठती हैं। ये हैं-**ममता शंकर** और **श्रीला मजूमदार**। नयना दास, देविका मुखर्जी, इंद्राणी दत्त, चुमकी चौधरी, रूपा गांगुली, राजेश्वरी राय चौधुरी जैसी एकदम नई नायिकाएँ आई हैं, उनकी प्रतिभा का विश्लेषण करना अभी ठीक नहीं होगा। फिर वर्तमान में बंगला फिल्मों का ट्रेंड जिस तरह से बदला है, उसमें नायिकाओं के लिए कुछ खास करने को नहीं रह जाता है।

ऐसी स्थिति में आज जिन नायिकाओं को परदे पर नियमित रूप से देखा जा रहा है, उनमें देबाश्री राय, शताब्दी राय, पापिया अधिकारी, मुनमुन सेन, रूपा गांगुली आदि प्रमुख हैं। देबाश्री तरुण मजूमदार की खोज हैं। तरुण दा की तीन फिल्मों 'दादार कीर्ति', 'मेघमुक्ति', 'भालोभासा-भालोभासा' में देबाश्री ने काम किया। इन तीनों फिल्मों में ही देबाश्री अच्छी लगी। अजयकर की 'वृषवृक्ष' में उसके अभिनय की ज्यादा प्रशंसा हुई थी। **देबाश्री के चेहरे की जितनी प्रशंसा होती है, उतनी उसके संपूर्ण व्यक्तित्व की नहीं होती। फिर नई नायिकाओं की अपेक्षा देबाश्री का आकर्षण बहुत ज्यादा है।**

जहाँ तक व्यस्तता का सवाल है, इन दिनों सबसे ज्यादा व्यस्त हैं **शताब्दी राय**। तपन सिन्हा की 'आतंक' ने उसे रातोंरात बहुत प्रसिद्धि दी है। इस फिल्म में शताब्दी ने अपनी अभिनय क्षमता का भरपूर प्रदर्शन किया था। बतौर अभिनेत्री तेजी से पाँव फैलाने के बावजूद यह कहना अभी ठीक नहीं होगा कि कलकत्ता का फिल्मोद्योग शताब्दी के अभिनय की कद्र कर रहा है। क्योंकि, 'आतंक' के बाद किसी भी फिल्म में शताब्दी के अभिनय की श्रेष्ठता नजर नहीं आई। देखने में शताब्दी का

देबाश्री राय

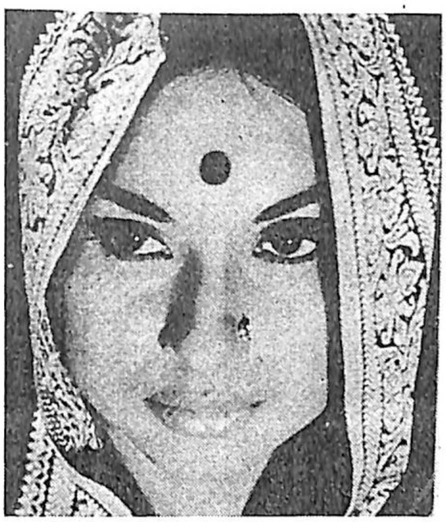


अपर्णा सेन



सुचित्रा सेन





माधवी चक्रवर्ती

चेहरा बहुत ज्यादा फोटोजनिक नहीं है। फिर उन्हें इतनी सारी फिल्में कैसे मिल गईं? इस संबंध में फिल्मोद्योग के कुछ जानकारों का कहना है कि शताब्दी का पारिश्रमिक उसकी अन्य समकालीन नायिकाओं की अपेक्षा बहुत कम है। कुछ इसे सिर्फ भाग्य का खेल मानते हैं। वैसे **अंजन चौधरी** की **गुरु दक्षिणा** के बाद शताब्दी ने 'लकी' नायिका के रूप में अपनी पहचान बनाई है। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि उनके पास काम की तो कोई कमी नहीं है, पर अच्छी भूमिकाओं का अभाव है। कुछ इसी तरह पापिया अधिकारी ने भी **सोनार संसार** में अपनी अभिनय प्रतिभा से भरपूर आकर्षित किया था। पर 'सोनार संसार' के बाद किसी भी फिल्म में उनकी प्रतिभा का सही इस्तेमाल नहीं हुआ। पापिया एक अत्यंत प्रतिभाशाली अभिनेत्री है, इसे बताने की कोई जरूरत नहीं है। छोटे परदे के दर्शक एक अरसे तक उसकी प्रतिभा के सम्मोहन में बँधे रहे। यहाँ उसे मौका भी भरपूर मिला।

जहाँ तक अभिनय का प्रश्न है **मुनमुन सेन** से यह हमेशा समांतर चल रही है। आज तक मुनमुन अच्छी अभिनेत्री के रूप में अपने आपको साबित क्यों नहीं कर पाई? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। लेकिन, इसके लिए पूरी तरह से मुनमुन सेन को दोषी नहीं माना जा सकता, क्योंकि टालीगंज के निर्देशकों की रुचि शुरू से ही मुनमुन के ग्लैमर को ज्यादा से ज्यादा भुनाने में रही है। कैमरे के सामने कैसे संवाद अदायगी का अंदाज होना चाहिए, कैसे चलना-फिरना चाहिए आदि बातों को समझाने की न उन्होंने जरूरत समझी और न ही मुनमुन ने, एक जिज्ञासा भाव ही दिखाया। इनके बाद हाल के वर्षों में जो नायिकाएँ आई हैं, उनमें **रूपा गांगुली** ही लंबे रेस की दौड़ाक लगती है। **महाभारत** की द्रौपदी के रूप में मिली ख्याति का उसने पूरा लाभ उठाया है। आज डेढ़ दर्जन बंगला फिल्मों में ही नहीं, कई टी.वी. सीरियलों में भी वह व्यस्त है। इस बीच 'मानसी' जैसी फिल्मों में उसकी अभिनय की भरपूर तारीफ हुई है। रूपा के चेहरे में एक अलग आकर्षण है। विविधता भरी भूमिकाओं में वह अपना एक अलग रंग बिखेर सकती है। वैसे मृणाल सेन जैसे विख्यात निर्देशकों की फिल्में भी उसकी झोली में हैं। रूपा द्रौपदी से मिली ख्याति को हिंदी फिल्मों में भी भुनाना चाहती है। रूपा के अलावा नयना दास के पास भी कई फिल्में हैं। पर वह अभिनेत्री कैसी है, यह साबित करना अभी बाकी है। यही बात इंद्राणी दत्त के बारे में भी कही जा सकती है। सबसे ज्यादा सफल फिल्म देने वाले अंजन चौधरी ने अपनी बेटी चुमकी चौधरी को फिल्म हीरक जयंती में धूमधाम से पेश किया है।

इन दिनों बंगला फिल्मोद्योग की नायिकाओं के लिए बंबइया नायिकाएँ भी एक संभावित खतरे के रूप में पनप रही हैं। अब कुछ निर्माता कहानी सुनने के बाद ही झट यह तय कर बैठते हैं कि नायिका बंबई से लाएँगे। विजयेता पंडित ने दीप्तिपाल की 'अमर संगी' में काम करके यहाँ के दर्शकों के बीच में एक विशिष्ट पहचान बनाई थी। यह फिल्म पचास हफ्ते तक चली। वैसे इसकी लोकप्रियता में इसके संगीत का भी अभूतपूर्व योगदान था। दीप्ति पाल की ही 'आमार तुमि' में फराह नजर आई, पर वह कुछ और फिल्मों में काम कर रही है। जूही चावला ने 'अमर-प्रेम' में प्रसन्नजित के साथ काम किया है। मंदाकिनी ने अभी-अभी तापस पाल के साथ 'अंतरेर भालोभासा' पूरा किया है। जया प्रदा को भी दीप्ति पाल अपनी एक फिल्म में पेश कर रहे हैं। यानी बंगला फिल्मों में बंबइया नायिकाएँ धड़ल्ले से आ रही हैं। बंबइया नायिकाओं के प्रति **निर्माताओं के इस झुकाव की एकमात्र वजह है वर्तमान में बंगाली नायिकाओं का एक सीमित दायरे में कैद होना। बंगाल की नायिकाओं को इस बात को ध्यान में रखना होगा कि सामाजिक मूल्यबोध में** बदलाव आया है। गाँव की जीवनधारा बदली है। यदि इन सब बातों को बंगाली नायिकाएँ अच्छी तरह से समझने की कोशिश करें तो वह दिन दूर नहीं, जब इसी बंगाल से ऐसी हिंदी-बंगला फिल्में बनेंगी, जो सारे भारतवर्ष के दर्शकों को आकर्षित करेंगी। जैसा कभी न्यू थिएटर्स ने किया था। ■



रूपा गांगुली

फिल्मी सितारों की

लोकप्रिय जोड़ियाँ और जोड़ियाँ

● बच्चन श्रीवास्तव

आरंभ से ही भारतीय सिनेमा का मुख्य प्रेरणा स्रोत पश्चिम का सिनेमा रहा है। भारतीय सिनेमा के पितामह दादा साहेब फालके ने ईसा मसीह पर बनी एक फिल्म को देखकर, भारत की पहली फीचर फिल्म **'राजा हरिश्चंद्र'** का निर्माण किया था। यही थी वह फिल्म जिसने हमारे देश में फिल्म व्यवसाय की आधारशिला रखी। इसी तरह **'सिंगिग फूल'** ने इम्पीरियल फिल्म कंपनी के आर्देशिर ईरानी को भारत की प्रथम सवाक् फिल्म **'आलम-आरा'** बनाने की प्रेरणा दी। भारत में फिल्मों में नायक-नायिकाओं की जोड़ियों को प्रस्तुत करने का प्रचलन भी पश्चिम से ही प्रेरित हुआ है। जब हॉलीवुड में ग्रेटा-गार्बो और जॉन गिलबर्ट तथा ग्लोरिया और हरबर्ट मार्शल की जोड़ियों को दर्शकों में प्रसिद्धि मिली, तो भारतीय निर्माताओं ने भी इस ढंग से सोचना शुरू किया। इस सोच का परिणाम यह हुआ कि सवाक् युग के आरंभ से पूर्व भारतीय फिल्मों में कुछ जोड़े चर्चा का विषय बन गए थे।

आरंभ में ये जोड़ियाँ इसलिए बनीं कि जोड़ी वाले नायक-नायिका मासिक वेतन पर किसी संगठन विशेष में कार्य करते थे। जिस नायक-नायिका की फिल्म टिकट खिड़की पर सफलता प्राप्त करती, निर्माता उन दोनों ही को बार-बार प्रस्तुत करते और इस प्रकार जोड़ी की लोकप्रियता का आर्थिक लाभ उठाते। इम्पीरियल ने इसीलिए **सुलोचना** और **डी. बिलिमोरिया** की जोड़ी का लाभ उठाया। रंजीत ने **गौहर** और **ई. बिलिमोरिया** को छह-सात वर्ष तक बराबर प्रस्तुत किया। बॉम्बे टॉकीज वालों ने **देविका रानी** और **अशोक कुमार** को सात फिल्मों में नायक-नायिका के रोल दिए।

वे जोड़ियाँ इनसे भी अधिक लोकप्रिय हुईं जिनके प्रणय संबंधों के चर्चे पर्दे के बाहर भी सुनने को मिलते। कारण उनके व्यक्तित्व में दर्शक अपने और अपनी प्रेमिका को देखते। उनकी कल्पना करते तथा उनके व्यवहार में अपने काल्पनिक व्यवहारों की संतुष्टि पाते।

प्रथम सवाक् फिल्म **'आलम-आरा'** १९३१ में बनी। परंतु, हमारे देश में मूक फिल्मों का निर्माण १९३४ तक होता रहा। जिस समय हमारी फिल्मों को वाणी का वरदान मिला, कुछ जोड़ियाँ मूक फिल्मों के माध्यम से लोकप्रिय हो चुकी थीं। गौहर और ई. बिलिमोरिया की जोड़ी १९२९ में बनी 'राजरानी' से लोकप्रिय हो चुकी थी तथा दोनों को 'पहाड़ी कन्या', 'दिलवर' तथा 'देव-देवियानी' ने प्रसिद्धि दिलाई थी।

ललिता पवार के नाम से आज के दर्शक भली प्रकार परिचित हैं। मूक फिल्मों में यही **'ललिता पवार'** अम्बू नाम से हीरोइन के रोल करती थीं। उनकी और चंद्रराव की जोड़ी भी चर्चित थी।



कामिनी कौशल-दिलीप कुमार

दोनों पहले **'नेक दोस्त'** में आए। फिर दोनों ने **'देवी खजाना'**, **'प्यारी कटार'** तथा **'जलवा-ए-जिगर'** में काम किया। इस जोड़ी की सवाक् फिल्म भी बनी। इसका नाम था, **'हिम्मत-ए-मर्दा।'** सन् '३५ में बनी इस फिल्म में ललिता पवार ने नायिका, नायिका की माँ और खलनायिका तीनों की भूमिकाएँ निभाई थीं।

जिल्लो और **पृथ्वीराज** 'विजय कुमार', बैंड फार द थ्रोन आदि मूक फिल्मों में जोड़ी बना चुके थे। इसीलिए तो आर्देशिर ईरानी ने 'आलम-आरा' में जुबेदा और मास्टर विट्ठल के साथ पृथ्वीराज और जिल्लो को भी पेश किया था। सुलोचना और डी. बिलिमोरिया की जोड़ी **'मेवाड़ का मोती'**, **'ख्वाब-ए-हस्ती'**, **'पंजाब मेल'** और **'नूरी आलम'** जैसी मूक फिल्मों ही के द्वारा दर्शक-प्रिय बन गई थीं। इतना ही नहीं ई. बिलमोरिया माधुरी के साथ भी 'बगदाद की बुलबुल', 'माई हीरो', 'सिपहसालार' तथा 'विजयलक्ष्मी' जैसी साइलेंट फिल्मों के जरिए नाम कमा चुके थे।

ये थीं सितारों की वे जोड़ियाँ जो दर्शकों की प्रिय बन चुकी थीं। मूक फिल्मों का निर्माण धड़ल्ले से हो रहा था। तभी 'आलम-आरा' आई क्रांति की तुरही बजाती। उसने तीन वर्षों के भीतर मूक युग को ताबूत में सुला दिया और उस पर अपनी सफलता की ऐसी कीलें जड़ीं कि फिर वह साँस भी नहीं ले सका।

सवाक् युग गया तो इम्पीरियल, रंजीत, सागर और मदन थिएटर्स ने उन नायक-नायिकाओं को, जो जोड़ी बनकर लोकप्रियता प्राप्त कर चुके थे, लेकर सवाक् फिल्में बनाई। चंदूलाल शाह ने गौहर और ई. बिलिमोरिया को लेकर कई फिल्में बनाईं। इनमें 'मिस १९३३', 'विश्व मोहिनी', 'गुण सुंदरी', 'तारा सुंदरी' 'तूफानी तरुणी', 'बैरिस्टर की बीवी', 'देशवासी', कीमती आँसू', प्रभु का प्यारा' तथा 'राज रमणी' प्रमुख हैं। १९३७ में दोनों 'परदेसी पंछी' में नायक-नायिका बनकर आए।

गौहर भावों की रानी कहलाती थी, तो रंजीत ही की माधुरी अपने रूप के लिए लोकप्रिय थी। माधुरी और डी. बिलिमोरिया को लेकर चंदूलाल शाह तीन-चार मूक फिल्में तो बना ही चुके थे। सवाक् युग में भी उन्होंने इस जोड़ी का लगभग आठ वर्ष और लाभ उठाया। सन् ३४ में उन्होंने दोनों को 'काश्मीरा', 'नादिरा', 'सितमगर', 'तूफान मेल' तथा 'वीर बब्रु वाहन' में प्रस्तुत किया। अगले वर्ष दोनों 'नूर-ए-वतन' में आए। इसके बाद सन् ३६ में 'लहरी लला' और 'रंगीला राजा' में चमके। अगले वर्ष 'जमीन का चाँद' आई। यहाँ तक कि १९३८ में भी उनकी दो फिल्में 'बन की चिड़िया' तथा 'पृथ्वीपुत्र' प्रदर्शित हुईं।

एम. भावनानी की खोज सुलोचना, माधुरी के समान एंग्लो-इंडियन थी और ई. बिलिमोरिया के भाई डी. बिलिमोरिया के साथ उनकी जोड़ी मूक युग में जम गई थी। सुलोचना का वास्तविक नाम रूबी मेयर्स था। अपने अनुपम सौंदर्य और सुंदर आँखों के कारण भावनानी ने उसका नाम सुलोचना रखा था। चार-पाँच मूक फिल्मों में अभिनय करने के बाद इस जोड़ी ने 'डाकू की लड़की', सौभाग्य सुंदरी' तथा 'सुलोचना' के साथ सवाक् युग में पदार्पण किया। सन् ३४ में दोनों फिल्म 'गुल सनोवर','इन्दिरा एम.ए.', 'ख्वाब-ए-हस्ती', 'पिया प्यारे' में आए और अगले वर्ष

'अनारकली', 'दो घड़ी की मौज' तथा 'पुजारिन' में। १९३६ में 'बंबई की बिल्ली' तथा 'जंगल क्वीन' आई। सन् ३७ में इस जोड़ी ने अपनी आखिरी फिल्में 'न्यू सर्च लाइट', 'बाहरी दुनिया' तथा 'प्रेम की ज्योति' पूरी कीं।

अभिनेता नजमुल हसन को हटाए जाने के बाद जब बॉम्बे टॉकीज ने देविका रानी को लेकर 'जीवन नैया' आरंभ की तो प्रश्न उठा हीरो कौन हो। यह १९३६ की बात है। उन दिनों बॉम्बे टॉकीज के एक प्रमुख कार्यकर्ता शशधर मुखर्जी ने अपने साले कुमुद कुमार गांगुली का नाम सुझाया जो उन्हीं दिनों स्टूडियो की लेब में एपरेंटिस होकर आए थे। हिमांशु राय ने कुमुद को बुलाया और हीरो बनाकर उनका नाम अशोक कुमार रख दिया। इस प्रकार 'जीवन नैया' से देविका रानी-अशोक कुमार की एक नई जोड़ी की शुरूआत हो गई।

अशोक-देविका ने अगले पाँच वर्ष में आठ फिल्में कीं। इनमें अधिक सफल और चर्चित 'अछूत कन्या' रही। इनके अतिरिक्त दोनों 'जन्म भूमि', 'इज्जत', 'सावित्री', 'निर्मला' तथा 'वचन' में आए। दोनों की अंतिम फिल्म 'अंजाम' १९४१ में बनी। इसके बाद देविका रानी ने केवल एक फिल्म 'हमारी बात' जयराज के साथ की और फिर अभिनय जीवन से संन्यास लेकर बॉम्बे टॉकीज का संचालन संभाल लिया।

इनके अतिरिक्त कुछ और जोड़ियाँ भी लोकप्रिय रहीं। जैसे पृथ्वीराज-जिल्लो 'द्रौपदी', 'आलम-आरा' तथा 'दगाबाज आशिक' में आए। मोतीलाल और सविता देवी ने कई फिल्में कीं उनमें 'तीन सौ दिन', 'आपकी मरजी' तथा 'प्रार्थना' की चर्चा हुई। मोतीलाल ने माधुरी के साथ भी कुछ फिल्में कीं जैसे 'दिवाली' और 'हकदार'। 'आलम-आरा' की जुबेदा और मास्टर विट्ठल ने 'मेरी जान' भी की और फिर जाल मर्चेंट के साथ प्रायः हर वर्ष एक फिल्म आई: 'खातून', 'माँ', 'औरत की जिंदगानी' तथा 'किसका प्यार।'

'आलम-आरा' की सफलता से प्रेरित होकर कलकत्ता के मदन थिएटर ने कज्जन और मास्टर निसार की जोड़ी को अपनी सवाक् फिल्म 'शकुंतला' में प्रस्तुत किया। ये दोनों 'शीरी-फरहाद' तथा 'लैला-मजनू' में आकर अपना रंग जमा चुके थे। दोनों अच्छे गायक थे इसलिए टॉकी के बाद उन्होंने चार-पाँच फिल्में कीं। 'शकुंतला' के अतिरिक्त कज्जन-निसार की जोड़ी 'बिल्व-मंगल' तथा 'इंद्रसभा' में आई।

निसार के साथ ,एक अन्य गायिका अभिनेत्री बिब्बो की जोड़ी भी खूब जमी। बिब्बो दिल्ली की रहने वाली थी। उसका पूरा नाम फरहत जहाँ बिब्बो था। निसार-बिब्बो ने साथ-साथ 'मायाजाल', 'रंगीला राजपूत' तथा 'सैर-ए-परिस्तान' की। इनके अतिरिक्त फीरोज दस्तूर और अभिनेत्री शरीफा की जोड़ी खूब जमी थी। गायक अभिनेता सुरेन्द्र और बिब्बो भी कुछ फिल्मों में आए। इनमें 'ग्रामाफोन सिंगर' और 'सेवा समाज' चर्चित रहीं। कज्जन के समान बिब्बो भी अच्छी गायिका थीं। इनकी लोकप्रियता का मुख्य कारण सुरीला कंठ था।



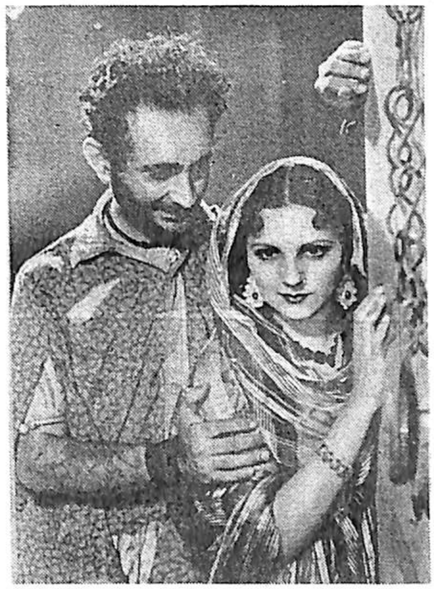
लीला चिटणीस-अशोक कुमार

चौथे दशक में देविका रानी के अतिरिक्त अशोक कुमार और लीला चिटणीस की जोड़ी भी बॉम्बे टॉकीज ने बनाई। दोनों ने प्रथम बार 'कंगन' में कार्य किया। फिर वे 'बंधन' और 'झूला' में आए। इसके अतिरिक्त दोनों ने किरण प्रोडक्शंस की फिल्म भी कीं।

नायकों में अशोक कुमार का कैरियर संभवतः सबसे लंबा रहा है। सन् ३६ में वे हीरो बने और कम से कम तीस वर्ष इस उत्तरदायित्व को निभाते रहे। यही कारण है कि देविका रानी या लीला चिटणीस के साथ ही नहीं उनकी जोड़ी अन्य कई अभिनेत्रियों के साथ भी बनी। इनमें नलिनी जयवंत, मधुबाला तथा मीना कुमारी को तो भुलाया नहीं जा सकता।

नलिनी जयवंत के साथ अशोक कुमार ने प्रथम बार 'संग्राम' में अभिनय किया और इस फिल्म से दाना मोनी का नाम प्रथम बार किसी स्केण्डल से जुड़ा। कहा गया कि दब्बू और सीधे-सादे अशोक कुमार को नलिनी के संपर्क ने तेज-तर्राट बनाया। इसके बाद दोनों ने 'समाधि' और 'नौबहार' की। इनके अतिरिक्त 'जलपरी', 'काफिला', 'सलोनी', 'लकीरें' तथा 'नाज' आई। 'महल' मधुबाला के साथ आई और दर्शक नलिनी जयवंत को भुलाकर अशोक कुमार और मधुबाला के सपने देखने लगे। 'एक साल', 'निशाना', 'हावड़ा ब्रिज' और 'चलती का नाम गाड़ी' ने दोनों की जोड़ी को लोकप्रिय किया।

'बैजू बावरा' ने भी मीना कुमारी को स्टार बना दिया तो उनकी इच्छा उस जमाने के सबसे जाने-माने हीरो अशोक कुमार के साथ नायिका बनने की हुई। कुछ समय बाद जब 'तमाशा' बनी तो उसके निर्माताओं ने मीना कुमारी से फिल्म में काम करने को कहा। बिना यह जाने की फिल्म में उसका रोल क्या है, हीरो का नाम सुनते ही मीना कुमारी ने स्वीकृति दे दी। अब विडम्बना देखिए की पूरी फिल्म में मीना कुमारी और अशोक



ई.बिलिमोरिया-माधुरी

कुमार का कोई संवाद नहीं था। केवल एक दृश्य था। उसमें भी मीना कुमारी को कमरे से आकर जाते हुए दिखाया गया था। वह फिल्म 'बादबान' थी जिसमें अशोक कुमार और मीना कुमारी हीरो-हीरोइन बनकर आए। इस फिल्म का निर्माण बॉम्बे टॉकीज के कर्मचारियों ने सहकारिता के आधार पर किया था। इसके बाद दोनों ने कई फिल्में कीं। इनमें 'परिणीता', 'आरती', 'बंदिश', 'पिंजरे का पंछी', 'एक ही रास्ता', 'भीगी रात', 'बेनजीर' 'शतरंज' आदि ही नहीं कमाल अमरोही की 'पाकीजा' भी थी।

यूसुफ खान सन् '४५ में प्रदर्शित 'ज्वार-भाटा' में दिलीप कुमार बने थे। पर उनकी पहली जोड़ी कामिनी कौशल के साथ बनी थी। दूसरी मधुबाला के साथ, तीसरी वैजयंतीमाला के साथ। चौथी वहीदा रहमान के साथ और पाँचवीं सायराबानो

के साथ। रोचक बात यह है कि सायराबानो के साथ तो उन्होंने 'गोपी' फिल्म पति बनने के बाद की। पर बाकी चारों के साथ उनकी जोड़ी ही नहीं बनी रोमांटिक किस्से भी जुड़े।

फिल्मिस्तान ने १९४८ में दिलीप कुमार और कामिनी कौशल को लेकर दो फिल्में बनाई। 'नदिया के पार' तथा 'शहीद'। दोनों फिल्मों ने टिकट खिड़की पर सफलता प्राप्त की और दोनों के रोमांटिक चर्चे जोर-शोर से होने लगे। इस बीच 'शबनम' भी आई। वह जमाना देश के विभाजन से लहू-लुहान माहौल का था। परिणाम यह हुआ कि हिंदू विवाहिता कामिनी कौशल और मुसलमान दिलीप के संबंधों को लेकर हंगामा मचने लगा। फिल्म इंडिया ने संपादकीय लिखकर उनके रिश्तों में आग में घी का काम किया। परिणाम यह हुआ कि किसी प्रकार शाहिद लतीफ की **'आरजू'** पूरी करने के साथ कामिनी पर परिवार वालों ने पहरा बिठा दिया। उसे दिलीप कुमार के साथ काम करने से ही नहीं रोका , कुछ समय के लिए कामिनी को फिल्मों से हटाकर विदेश भेज दिया गया।

अभी कामिनी कौशल की उपेक्षा से दिलीप कुमार दुखी थे कि उन्हें मधुबाला के साथ फिल्म 'संगदिल' मिल गई। दोनों अविवाहित, दोनों मुसलमान और दोनों कामयाब। 'संगदिल' अभी प्रदर्शित भी नहीं हुई थी कि दोनों को लेकर **'तराना'** आरंभ हो गई। दिलीप और मधुबाला एक-दूसरे की ओर आकर्षित हुए। इसी बीच के. आसिफ ने 'मुगल-ए-आजम' में दोनों को अनारकली और सलीम बना दिया।

दोनों की प्रेम-कहानी चर्चा का केंद्र बन गई। इस बीच बी.आर. चोपड़ा ने दोनों को 'नया दौर' में लिया। पर अभी यह फिल्म आरंभ भी नहीं हुई थी कि दिलीप-मधुबाला में झगड़ा हो गया। 'नया दौर' से मधुबाला को हटाकर उसमें वैजयंतीमाला को ले लिया गया। 'नया दौर' को लेकर लड़े गए मुकदमे में चोपड़ा की ओर से गवाही देते हुए बहस में दिलीप कुमार व मधुबाला दोनों ने अपने प्रेम को स्वीकार भी किया। पर फिर किसी तरह 'मुगल-ए-आजम' को पूरा करने के बाद वे साथ-साथ नहीं आए।

दिलीप कुमार वैजयंतीमाला के साथ 'देवदास' कर चुके थे। अतः मधुबाला के स्थान पर वैजयंतीमाला को ले लिया गया। 'नया दौर' अत्यधिक सफल रही। दिलीप कुमार और वैजयंतीमाला की एक नई जोड़ी दर्शकों में लोकप्रिय होने लगी। दोनों ने 'लीडर', 'मधुमती', 'गंगा-जमुना' की। एच.एस. रवैल की 'संघर्ष' दोनों की आखिरी फिल्म थी।

बी. नागीरेड्डी ने 'राम और श्याम' की शुरूआत दिलीप और वैजयंती ही को लेकर की थी। पर हीरो की वैजयंती से अनबन हो जाने के कारण दिलीप कुमार ने जिस प्रकार 'नया दौर' से मधुबाला को हटवा दिया था उसी प्रकार 'राम और श्याम' से वैजयंतीमाला को हटा दिया। बहाना यह किया गया कि निर्माता और नायिका की ड्रेस को लेकर मनमुटाव हो गया।

इसी बीच दिलीप कुमार वहीदा रहमान के साथ **'दिल दिया दर्द लिया'** में अभिनय कर रहे थे। 'राम और श्याम' में भी वैजयंतीमाला के स्थान पर वहीदा रहमान को ले लिया गया। फिल्म 'आदमी' में भी ये दोनों नायक-नायिका बने। दोनों अविवाहित तथा समान धर्मी थे। इसलिए प्रेम के चर्चे भी हुए। कुछ पत्रों ने दोनों के विवाह की भविष्यवाणी भी की पर ये जोड़ी तीन फिल्मों के बाद टूट गई।

इसके टूटने का मुख्य कारण था दिलीप कुमार और सायरा बानो की शादी। इस शादी के बाद दोनों ने 'गोपी' की, फिर 'सगीना' और 'बैराग' आई, इसके पश्चात सायरा बानो ने अभिनय से संन्यास ले लिया। कई वर्ष बाद दोनों 'दुनिया' में फिर दिखाई दिए थे।

जिस समय देव आनंद नायक बने, सुरैया नामवर हीरोइन बन चुकी थी। सुरैया के साथ देव आनंद सर्वप्रथम 'जीत' में आए। उसी के लगभग साथ-साथ दोनों ने 'विद्या' की। इन दोनों फिल्मों ने इन दोनों युवा कलाकारों को निकट ला दिया। इनके रोमांटिक चर्चों ने दोनों को एक और फिल्म दिला दी 'नीली'।

हालाँकि इन फिल्मों ने बहुत उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं की, पर रोमांटिक जोड़ी के रूप में दोनों के चर्चे खूब हुए। दोनों ने और फिल्में की जिनमें 'शायर', 'दो सितारे', 'सनम' प्रमुख थीं।

उसके बाद देव के जीवन में कल्पना कार्तिक आ गई। 'बाजी' में दोनों ने काम किया। मित्रता हो गई और अगली फिल्म 'टैक्सी ड्राइवर' की शूटिंग के दौरान दोनों पति-पत्नी बन गए।

देव आनंद की अगली जोड़ी कई वर्ष के अन्तराल के पश्चात जीनत अमान के साथ बनी। जीनत ने मिस इंडिया का ताज पहन कर सर्वप्रथम 'हलचल' में काम किया। देव आनंद ने उन्हें सर्वप्रथम 'हरे रामा हरे कृष्णा' में लिया, यद्यपि इस फिल्म में देव जीनत भाई-बहन बने थे, पर इस ने 'दम मारो दम-बाला' को स्टार भी बना दिया और देव के निकट भी ला दिया।

इसके बाद देव आनंद और जीनत अमान कई फिल्मों में आए। 'इश्क इश्क इश्क', 'डार्लिंग डार्लिंग', 'हीरा पन्ना', 'वारंट', 'कलाबाज' आदि।

जिन दिनों देव आनंद और जीनत अमान की मित्रता अपने शिखर पर थी, जीनत ने 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' साइन कर ली। इसकी शूटिंग के दौरान वह राजकपूर के प्रभाव में ऐसी आई कि देव-कैम्प को उपेक्षित कर बैठी।

सुरैया-देव आनंद, दिलीप कुमार-मधुबाला,

'राम-सीता' और 'शंकर-पार्वती' की जोड़ियाँ



शोभना समर्थ-प्रेम अदीब

सामाजिक फिल्मों में समय-समय पर हीरो-हीरोइनों की जोड़ियाँ लोकप्रिय हुई, उसी प्रकार धार्मिक एवं पौराणिक चित्रों में भी दो जोड़ियों ने दर्शकों में असाधारण लोकप्रियता प्राप्त की।

प्रेम अदीब और **शोभना समर्थ** ने यूं तो सर्वप्रथम एक सामाजिक फिल्म 'इंडस्ट्रियल इण्डिया' में अभिनय किया परन्तु इन दोनों को प्रतिष्ठा राम और सीता के रूप में मिली। इस रोल में वे दोनों प्रथम बार **'भरत मिलाप'** में आए। इसके बाद दोनों ने 'राम राज्य', 'राम बाण' और 'राम विवाह' में काम किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'तारामती', 'सौभाग्य' आदि में भी अभिनय किया था।

दूसरी जोड़ी निरुपाराय और त्रिलोक कपूर की थी। शिव-पार्वती के रूप में उन्होंने नाम कमाया। निरुपा और त्रिलोक कपूर ने लगभग डेढ़ दर्जन पौराणिक फिल्में की। दोनों को सर्वप्रथम प्रसिद्धि मिली 'हर हर महादेव' से। इसके बाद उन्हें 'शिव भक्ति', 'शिव कन्या' और 'शिव रात्रि' में भी शंकर-पार्वती के रोल निभाने पड़े। इन शिव कथाओं के अतिरिक्त निरुपा-त्रिलोक 'दशावतार', 'ईश्वर भक्ति', 'राम जन्म', 'श्री गणेश जन्म', 'राजरानी दमयंती', 'वीर अर्जुन, 'चक्रधारी', 'दुर्गा पूजा' 'वामन अवतार' तथा 'वतन' में भी आए। ये फिल्म १९४८ और ५५ के बीच आईं।

उनके तुरंत बाद अनीता गुहा और महिपाल ने भी कुछ पौराणिक फिल्में कीं परन्तु जो प्रतिष्ठा शोभना समर्थ और प्रेम अदीब ने तथा निरुपाराय और त्रिलोक कपूर ने अर्जित की, कोई भी अन्य जोड़ी उसे मात नहीं दे पाई।

राजकपूर-नरगिस इन सभी जोड़ियों की लोकप्रियता के पीछे इन कलाकारों के वे रोमांटिक संबंध थे जिनके चर्चे पत्र-पत्रिकाओं में हुए। इन सितारों का आपसी व्यवहार, मेल-मुलाकात ने इस तरह की चर्चाओं को बढ़ावा दिया, ऐसी रोमांटिक जोड़ियों में एक नाम तब बढ़ा जब निर्देशक गुरुदत्त वहीदा रहमान को खोजकर बंबई लाए।

गुरुदत्त ने वहीदा रहमान को हैदराबाद में एक फिल्मी पार्टी में देखा। वह उसी दक्षिण भारतीय फिल्म की पार्टी थी जिसमें वहीदा रहमान ने अभिनय किया था। उन दिनों गुरुदत्त निर्माता राज खोसला के लिए **'सी.आई.डी.'** आरंभ करने जा रहे थे। देव आनंद और शकीला को लिया जा चुका था। एक अन्य अभिनेत्री को लिया जाना लगभग निश्चित हो गया था कि तभी गुरुदत्त ने वहीदा को देखा, वह उसके व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुए कि उन्हें बंबई बुलाया। वहीदा की शर्तों पर अनुबंध किया। इन शर्तों में एक यह थी कि वह अपनी इच्छा के अनुरूप ही परिधान पहनेंगी। और इस शर्त को लेकर 'सी.आई.डी.' में तब विवाद खड़ा हो गया जब वहीदा ने एक दृश्य में बिना दुपट्टे के मैक्सी पहनने से इंकार कर दिया। अंत में वहीदा ही के आगे निर्माताओं को झुकना पड़ा।

गुरुदत्त और वहीदा रहमान की मित्रता फिल्म **'प्यासा'** में हुई। इस फिल्म ने वहीदा रहमान को स्टार बना दिया, शायर और तवायफ के रोल में दोनों जमे भी खूब। इसके बाद दोनों 'चौदहवीं का चाँद' में आए और फिर यह जोड़ी भारत की पहली सिनेमा स्कोप फिल्म **'कागज के फूल'** में दिखाई दी। गुरुदत्त और वहीदा की आखरी फिल्म 'साहब बीवी और गुलाम' थी। इसके अतिरिक्त दोनों 'रिवाज' में काम कर रहे थे परंतु वह अधूरी ही रह गई।

राजेश खन्ना फिल्म 'आराधना' में आकर स्टार बने और शक्ति सामंत की इसी फिल्म ने राजेश और शर्मिला टैगोर की जोड़ी को प्रतिष्ठित किया। इसके बाद उन्होंने दोनों को 'अमर प्रेम' में प्रस्तुत किया। असित सेन के 'सफर' में भी इन दोनों भावुक कलाकारों को सराहा गया। इनके अतिरिक्त दोनों ने और भी फिल्में कीं। इनमें 'मालिक', 'राजा रानी', 'बदनाम फरिश्ते' और 'दाग' प्रमुख हैं।

मुमताज के साथ भी राजेश खन्ना ने कई फिल्में कर दारासिंह की इस भूतपूर्व हीरोइन को सामाजिक फिल्मों में स्थान दिलाया। इन दोनों ने जिन फिल्मों में साथ-साथ अभिनय किया वे थीं 'बंधन', 'अपना देश', 'आईना', 'प्रेम कहानी'।

वैसे राजेश खन्ना ने आशा पारेख के साथ 'बहारों के सपने', 'आन मिलो सजना', 'कटी पतंग', तथा शबाना आजमी के साथ 'अमर दीप', 'अवतार' तथा 'थोड़ी सी बेवफाई' की पर राजेश खन्ना की जोड़ी शर्मिला टैगोर और मुमताज ही के साथ जमी।

अपने २५ वर्ष के सक्रिय फिल्म कैरियर में धर्मेंद्र ने कई अभिनेत्रियों के साथ कई-कई फिल्में कीं परंतु उनकी जोड़ी दो ही के साथ बनी, मीना कुमारी के साथ उनका प्यार अधूरा रहा। हेमा मालिनी ने विवाहित होते हुए भी धर्मेंद्र को अपना

मीनाक्षी-विनायक



लिया। जो कार्य राज कपूर-नरगिस अथवा गुरुदत्त- वहीदा रहमान नहीं कर सके उसे धर्मेंद्र-हेमा ने कर दिखाया।

माहेश्वरी बंधुओं की 'काजल' पहली फिल्म थी जिसमें मीना कुमारी व धर्मेंद्र साथ-साथ आए। यद्यपि इस फिल्म में वे दोनों उसी तरह भाई-बहन बने थे जिस प्रकार 'हरे रामा हरे कृष्णा' में देवआनंद और जीनत अमान। पर दोनों जल्दी ही एक दूसरे पर आसक्त हो गए। यह वह जमाना था जब मीना कुमारी और कमाल अमरोही में तनाव चल रहा था। मीना कुंठाग्रस्त थी। धर्मेंद्र के लिए मीना कुमारी बहुत बड़ी स्टार थीं। एक जमाने में वह उनके फैन थे।

दोनों ने 'फूल और पत्थर' में रोमांटिक रोल किया। इस फिल्म ने रजत जयंती मनाई। उसके बाद दोनों ने कुछ फिल्में और कीं। 'चंदन का पलना' दोनों की आखरी फिल्म थी। कारण इस बीच मीना कुमारी काफी अस्वस्थ हो गई और धर्मेंद्र ने 'तू हंसीं में जवान' में प्रथम बार हेमा मालिनी के साथ हीरो का रोल किया। इसके बाद दोनों ने 'शराफत' की। यहाँ तक तो दोनों के संबंध मात्र को स्टार के रहे। परंतु 'प्रतिज्ञा' में धरम-हेमा की मित्रता आरंभ हो गई। इन तीन फिल्मों की सफलता ने दोनों की जोड़ी को प्रतिष्ठित भी कर दिया। इसके बाद 'राजा जानी', 'नया जमाना', 'जुगनू', 'ड्रीम गर्ल', 'चरस', 'बगावत' और 'दिल्लगी' में दोनों आए। इस बीच धर्मेंद्र और हेमा मालिनी पति-पत्नी भी बन गए। और जैसा कि फिल्मों में स्वाभाविक होता है पति-पत्नी बनने के पश्चात उनका रंग भी फीका पड़ गया।

अमिताभ बच्चन के आरंभिक कैरियर में जया भादुड़ी ने बड़ा साथ दिया। उनके साथ 'एक नजर', 'जंजीर' और 'अभिमान' कर उनके डगमगाते कैरियर को संभाला। इस स्नेह और सहानुभूति ने दोनों को पति-पत्नी बना दिया। पर अमिताभ बच्चन की यदि वास्तव में जोड़ी बनी तो बस रेखा के साथ।

अमिताभ बच्चन और रेखा प्रथम बार 'दो अंजाने' में आए। फिल्म की समाप्ति तक गहरे मित्र बन गए। दर्शकों में उनकी जोड़ी जमाई 'मिस्टर नटवर लाल' और 'मुकद्दर का सिकंदर' ने। इन दोनों फिल्मों में इन दोनों ने इतना खुलकर अभिनय किया कि देखने वाले मुग्ध हो गए।

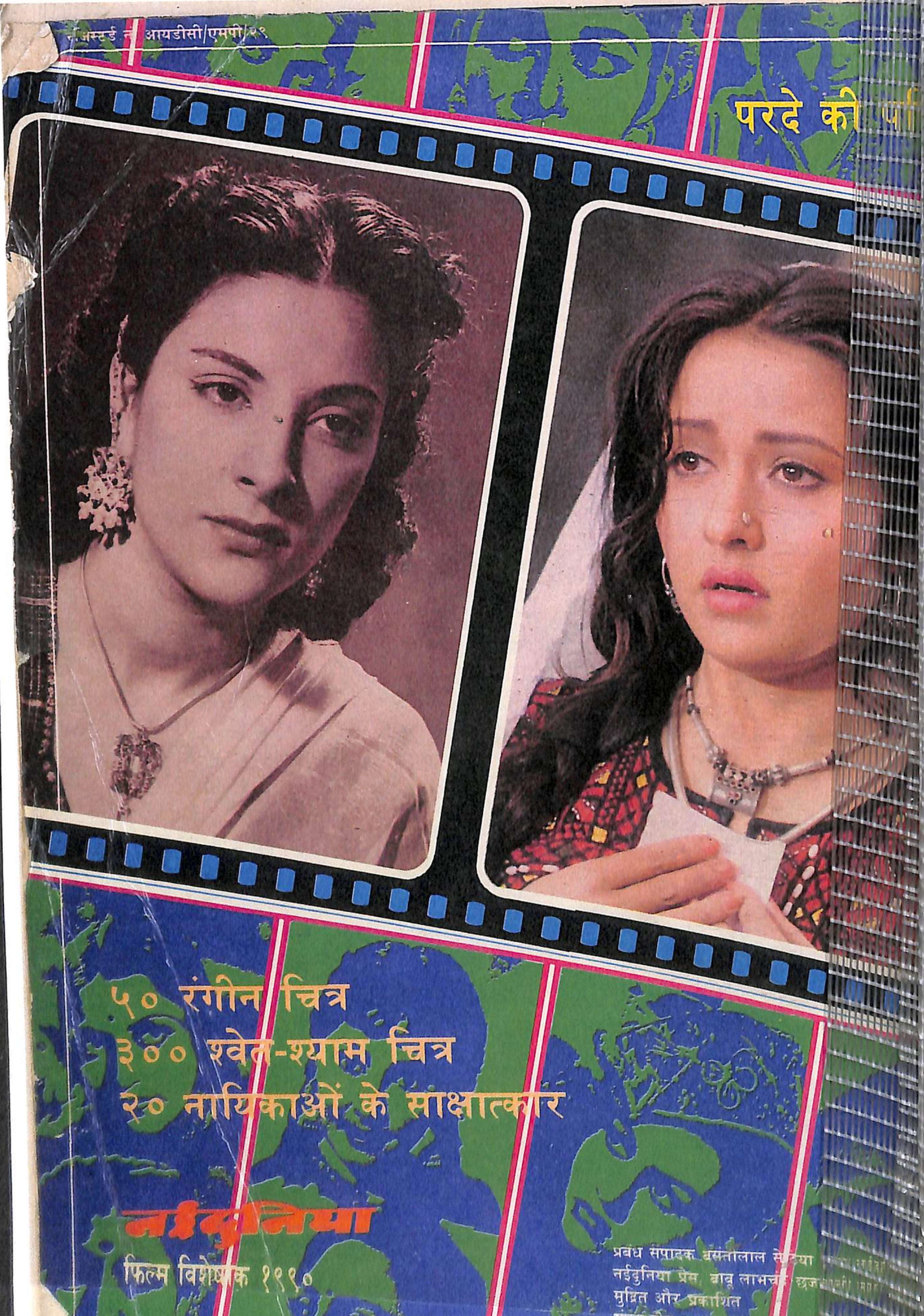
इसके बाद दोनों ने 'खून पसीना', 'गंगा की सौगंध', 'राम बलराम', 'आलाप', 'सुहाग' कीं। इस बीच दोनों के संबंध और विशेष रूप से रेखा की बेबाकी ने जया-अमिताभ के संबंध में तनाव पैदा कर दिया। परिणाम यह हुआ कि अमिताभ बच्चन ने रेखा के साथ फिल्में स्वीकार करना बंद कर दिया।

वैसे अमिताभ बच्चन ने हेमा मालिनी के साथ भी कई फिल्में कीं। इन फिल्मों में 'सत्ते पे सत्ता', 'दो दुनी पाँच', 'देश प्रेमी', 'नास्तिक' आदि में दोनों साथ-साथ आए। पर सही माने में अमिताभ की जोड़ी न जया भादुड़ी के साथ बनी न हेमा मालिनी के साथ।

भारतीय सिनेमा के इतिहास में अलग-अलग समय में अलग-अलग जोड़ियाँ भी बनती-बिगड़ती रहीं, उदाहरण के लिए 'मुक्ति' ने काननबाला और के.एल. सहगल की जोड़ी बनाई। 'अधिकार' ने बरुआ-जमुना की। 'डायमंड क्वीन' ने नादिया और जान कावस की जोड़ी बनाई थी। राजरानी मीरा ने 'दुर्गा खोटे और पृथ्वीराज' की जोड़ी बनाई। वैजयंतीमाला ने फिल्म 'एक झलक' से किशोर कुमार के साथ अपना हिंदी फिल्म कैरियर आरंभ किया व दोनों ने बाद में 'एक थी लड़की', 'मिस माला', 'पहली झलक', 'आशा', 'नई दिल्ली' में काम किया।

उसी प्रकार प्रदीप कुमार मीना कुमारी के साथ 'नूरजहाँ', 'बहू बेगम' में। नरगिस के साथ 'पुलिस', 'घर संसार', 'मिस इंडिया' और उनकी आखरी फिल्म 'रात और दिन' में आए। इसी प्रकार मीना कुमारी ने राजकुमार के साथ 'दिल अपना और प्रीत पराई', 'दिल एक मंदिर' तथा 'पाकीजा' की।

शत्रुघ्न सिन्हा और रीना राय सर्वप्रथम 'मिलाप' में आए। उसके बाद दोनों ने कई फिल्में कीं जिनमें 'कालीचरण' सर्वाधिक कामयाब रही। इसी तरह 'सोलहवाँ सावन' में विफलता पाने के बाद जब श्रीदेवी ने जीतेंद्र के साथ 'हिम्मतवाला' से पुनः अपना कैरियर आरंभ किया, तो दोनों की जोड़ी बन गई और फिर दोनों 'मवाली', 'जस्टिस चौधरी', 'मकसद', 'तोहफा' और न जाने किन-किन फिल्मों में आए। जीतेंद्र और शांताराम की पुत्री राजश्री ने 'गीत गाया पत्थरों ने' से अपना हीरो-हीरोइन का कैरियर आरंभ किया और दोनों कई फिल्मों में आए। राजश्री ने अपनी अंतिम फिल्म 'सुहागरात' भी जीतेंद्र ही के साथ की। दिलीप कुमार और निम्मी की 'दाग' सफल हुई तो दोनों 'आन', 'अमर', 'उड़न खटोला' में साथ-साथ आए। ■


आयडीसी/एमपी/२९
परदे की
५० रंगीन चित्र
३०० श्वेत-श्याम चित्र
२० नायिकाओं के साक्षात्कार
नईदुनिया
फिल्म विशेषांक १९९०
प्रबंध संपादक बसंतीलाल सेठिया
नईदुनिया प्रेस, बाबू लाभचंद छजलानी
मुद्रित और प्रकाशित